॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

॥ ॐ ॥

अथर्व्ववेदीयमुंडकोपनिषदारम्भः ॥ ५ ॥

अथ प्रथममुंडकगत[illegible] ॥ १ ॥

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्यां सर्व्वविद्याप्रतिष्ठामथर्व्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

श्री

अथर्ववेदीय मुंडकोपनिषद् भाष्यभाषादीपिका ॥ ५ ॥

अथ मुंडकोपनिषद्गत प्रथममुंडक भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ १ ॥

प्रथममुंडकगतप्रथमखंड भाष्यभाषादीपिका ॥ १ ॥

टीका:—"ब्रह्मा, देवनके मध्य प्रथम होताभया" इत्यादिरूप यह अथर्वणवेदकी मुंडकउपनिषद् है, सो व्याख्यान करनेकूं इच्छित है ।

---

१ सर्व उपनिषद्रूप प्रमाणोके राजाका यह उपनिषद् उत्तम होनेतैं मस्तक है; यातैं मुंडकउपनिषद् कहियेहै । इसविषै तीन मुंडक हैं । एक एक मुंडकविषै दो दो खंड हैं ! याके सर्व मिलिके षट् खंड हैं ।

२ ब्रह्मोपनिषद् औ गर्भोपनिषद् आदिक अथर्वण वेदकी बहुत उपनिषद् हैं । तिनकूं शारीरक भाष्यविषै अनुपयोगी होनेकरि व्याख्यान

तैंहां आदि इस उपनिषद्के विद्याके संप्रदायके कर्त्तापनैकी परं-
परारूप संबंध "ऐसैं महत् पुरुषोनैं परमपुरुषार्थका साधन हो-
नेकरि बडेश्र विद्या प्राप्त करी है" इसरीतिकी विद्याकी स्तुति
अर्थ आ[illegible] है। जातैं स्तुतिकरि [illegible] वि-

करनेकूं अनिच्छित [illegible] दृश्यता आदिक गुणरूप धर्मनके कथनतैं"
इत्यादिक अधिकरण सूत्रविषै उ[illegible] होनेकरि व्याख्यान करनेकूं इच्छित इस
मुंडकउपनिषद्के आरंभके पदरूप प्रत[illegible]ष्यकार इहां ग्रहण करैहैं।

३ ननु, यह उपनिषद् मंत्ररूप है औ [illegible] कर्मसंबंधी होनेकरि
प्रयोजनवान्पना है। इन मंत्रनकी योजनाके करने[illegible] प्रमाणकी अप्रती-
तितैं तिनके संबंधके असंभवतैं निष्प्रयोजन होनेतैं व्याख्यान करनेकूं इ-
च्छितपना नहीं संभवैहै ? ऐसी आशंकावालेकूं यह उत्तर है:—[illegible]दी !
इन मंत्रनका कर्मसैं संबंधहीं है, यह तेरा कथन सत्य है; तथापि ब्र
द्याके प्रकाश करनेके सामर्थ्यतैं विद्यासैं संबंध होवैगा ॥ ननु, विद्या
रुषकृत होनैतैं ताकी प्रकाशक या उपनिषद्कूं बी पुरुषरचितपनैके प्र
पक्षपाती पुरुषके दोषसैं जन्यताकी शंकाकरि अप्रमाणरूप होनेतैं व्याख्य
करनेकूं इच्छितपना बनै नहीं ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विद्या
संप्रदायके प्रवर्त्तकहीं पुरुष हैं, परंतु नवीन कल्पनासैं रचनेवाले पु
नहीं। तिनकूं विद्याके संप्रदायका कर्त्तापना जो है, सो बी आधुनिक ना
जिसकरि अविश्वास होवै; किंतु अनादि परंपरासैं प्राप्त है। तातैं अना
कालसैं प्रसिद्ध ब्रह्मविद्याके प्रकाशनेविषै समर्थ उपनिषद्का जो पुरुष
संबंध है, सो संप्रदायके कर्त्तापनैकी परंपरारूपहीं है। ता पुरुषनकूं विद्य
संप्रदायके कर्त्तापनैरूपहीं संबंधकूं आदिविषैहीं यह उपनिषद् कहैहै।

४ जैसैं विद्याका पुरुषनसैं संबंध है, तैसैंहीं जब उपनिषद्का बी पु
रचितपनैके निवारण अर्थ पुरुषनसैं संबंध कहनेकूं इच्छित होवै, तब
प्रकारका संबंधका कहनेवाला कोई अन्य चाहिये। इहां आपहीं उप[illegible]
षद्करि अपनें संबंधके कहनेतैं आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवैहै ? यह
आशंका करिकें आचार्य कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—विद्याकी स्तुतिविषै
तात्पर्यतैं अपने संबंधके कथनविषै आपकी प्रवृत्तिरूप दोष नहीं।

५ विद्याकी स्तुति किसअर्थ है ? तहां कहैहैं।

प्य भई विद्याविषै मुमुक्षुजन आदरसहित हुये प्रवृत्त होवैहैं, यातैं श्रोताकी बुद्धिविषै रुचिके उपजावने अर्थ विद्याकूं महान् करैहैं। प्रयोजनके साथि विद्याके साधनसाध्यरूप संबंधकूं तो "हृदयकी ग्रंथि भेदकूं पावतीहै" इत्यादि (इस ४ खंडके ८ वें) वाक्यसैं आगे कहैगी। औ ईंहां विधिनिषेधमात्रविषै तत्पर जो अपरशब्दकी वाच्य ऋग्वेदादिरूप विद्या है, तिसविषै संसारके कारण अविद्या आदिक दोषका निवर्त्तकपना नहीं है। यातैं, "परा औ अपरा" ऐसैं इस मुंडकके चतुर्थमंत्रसैं विद्याके भेदके कारणपूर्वक "अविद्याके भीतर वर्त्तमान" इत्यादिरूप इस प्रथम मुंडकके २ खंडके षष्ठ वाक्यसैं आपहीं कही औ तैसैं "लोकनकूं कर्मरचित जानिके"

---

६ विद्याका जो प्रयोजन है, सोई या उपनिषद्का बी प्रयोजन होवैगा; इस अभिप्रायसैं विद्याका प्रयोजनसैं संबंध कहैहैं।

७ जब संसारके कारणकी निवृत्ति ब्रह्मविद्याका फल है, तब अपरविद्यासैंहीं ताकी निवृत्तिके संभवतैं तिस फलके अर्थ ब्रह्मविद्याकी प्रकाशक उपनिषद् व्याख्यान करनेकूं योग्य नहीं ? यह आशंका करिके कहैहैं। इहां यह भाव है:–संसारका कारण अविद्या आदिक दोष है; ताका निवर्त्तकपना कर्मरूप अपरविद्याकूं संभवै नहीं; काहेतैं कर्म औ अविद्या आदिकके अविरोधतैं। जातैं सैकडोंवार प्राणायामकूं करनेहारे पुरुषकूं बी शुक्तिके दर्शन विना ताके अविद्याकी निवृत्ति नहीं देखियेहै; तातैं अपरविद्याकूं संसारकी कारण अविद्याका निवर्त्तकपना नहीं है।

८ किंवा परमपुरुषार्थकी साधन होनेकरि ब्रह्मविद्याकूं परविद्यापना है, औ निकृष्ट संसाररूप फलवाली होनेकरि कर्मविद्याकूं अपरविद्यापना है। तातैं नामके बलतैं अपरविद्याकूं मोक्षकी साधनताका अभाव है, ऐसैं जानियेहै। इस अभिप्रायसैं इहां कहैहैं।

९ कर्मजड जो कहतेहैं कि:–केवल ब्रह्मविद्याकूं कर्मकर्त्ताके घृतावलोकन आदिककी न्याईं संसाररूप होनेकरि कर्मकी अंग होनेतैं स्वतंत्र पुरुषार्थका साधनपना नहीं है ? सो तिनका कथन पीछली श्रुतिनैंहीं निषेध किया है। ऐसैं इहां कहैहैं। इहां यह अर्थ है:–ब्रह्मविद्याकूं कर्मकी अंगरूप हुये,

इस २ खंडके द्वादशवें वाक्यसैं सर्व साधन औ साध्यरूप विषयविषै वैराग्यपूर्वक, परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन औ गुरुके प्रसादसैं प्राप्त होनेयोग्य जो ब्रह्मविद्या है, ताकूं कहैहै । [११]औ "ब्रह्मवेत्ता ब्रह्महीं होवैहै" औ "सर्व पर अमृत हुये मुक्त होवैहैं" इत्यादि तृतीय मुंडकके २ खंडके ९ औ ६ वाक्यनसैं इस ब्रह्मविद्याके प्रयोजनकूं वारंवार कहैहै ॥ [१२]यद्यपि ज्ञानमात्रविषै सर्व आश्रमीपुरुषनकूं अधिकार

इस श्रुतिविषै कही जो कर्मकी निंदा सो नहीं चाहिये । जातैं अंगके विधान अर्थ अंगीकी निंदा नहीं करियेहै । इहां तो सर्व साध्य औ साधनकी निंदासैं तिन विषयनविषै वैराग्यके कथनपूर्वक परब्रह्मके प्राप्तिकी साधन ब्रह्मविद्याकूं श्रुति कहैहै । यातैं ब्रह्मविद्याकूं आपहीं मुख्य होनेतैं ताकी प्रकाशक उपनिषदनकूं कर्मकर्त्ताकी स्तुतिकी कारकता नहीं है ।

१० जब उपनिषदनकूं स्वतंत्र ब्रह्मविद्याकी प्रकाशकता होवै, तब तिनके अध्ययनकर्त्ता सर्वकूंहीं क्यूं ब्रह्मविद्या नहीं होवैहै ? यह आशंका करिके कहैहैं । इहां यह भाव है:—यद्यपि सर्वकूं गुरुके अनुग्रह आदिक संसारके नाशके साधनके अभावतैं ब्रह्मविद्या नहीं होवैहै, तथापि श्रेष्ठ अधिकारीनकूं होवैहै ।

११ ननु, ब्रह्मविद्या जब स्वतंत्र है, तब प्रयोजनकी साधन नहीं होवैगी; काहेतैं सुखकी प्राप्ति औ दुःखकी निवृत्ति इन दोनूंकूं प्रवृत्तिकरि साध्य होनेके निश्चयतैं ? तहां कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—स्मरणमात्रसैं विस्मरण भये सुवर्णके लाभके होते सुखके प्राप्तिकी सिद्धितैं, औ रज्जुस्वरूपके ज्ञानमात्रतैं सर्पजन्य भय कंप आदिक दुःखकी निवृत्तिकी सिद्धितैं, सुखकी प्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिरूप प्रयोजनकूं नियमकरि प्रवृत्ति औ निवृत्तिकरि साध्यपना नहीं है । यातैं श्रुति, प्रतीत किये विद्याका प्रयोजनसैं संबंधकूं वारंवार कहती है । तातैं ता विद्याकी प्रकाशक उपनिषदूकी व्याख्यानकरनेकी योग्यता संभवैहै ।

१२ एकदेशी जो कहतेहैं कि:—स्वाध्याय (अपनी अपनी शाखाके संबंधी वेदभाग)के अध्ययनके विधिके अर्थज्ञानरूप फलका तीनवर्णकूं अधिकार है, यातैं अध्ययन करी उपनिषद्तैं जन्य ब्रह्मज्ञानविषै सर्व त्रिवर्णकूं अधिकार है । तातैं सर्व आश्रमके कर्मसैं समुच्चयकूं प्राप्त भई ब्रह्म-

है, तथापि संन्यास आश्रमविषै स्थित विद्याहीं मोक्षकी साधन है; कर्म-सहित विद्या नहीं। यह "भिक्षाके आचरणकूं आचरते हुये" २ खंडके ११ वें औ "संन्यासयोगतैं" (६ खंडके ६ वें) इत्यादि वाक्यकूं कहती हुयी दिखावैहै। औ विद्या[13] अरु कर्मके विरोधतैं ब्रह्म आत्माकी एकताके ज्ञानके साथि स्वप्नविषै बी कर्म संपादन करनेकूं शक्य नहीं औ विद्याके[14] कोईक कालविषै अभावके निमित्तकूं अनियमित होनेतैं काल औ कर्मसैं संकोचका असंभव है। [15]जो पूर्वके ग्रहस्थनविषै

विद्याहीं मोक्षकी साधन है ? तहां कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—सर्व सामग्रीके त्यागरूप संन्यासविषै स्थित परब्रह्मकी विद्याहीं मोक्षका साधन है, ऐसैं वेद दिखावैहै। तैसैं संन्यासीनकूं कर्मसाधनके अभावतैं कर्मका संभव नहीं। औ तिनके आश्रमका धर्म बी, शम, दम, आदिकसैं वृद्धिकूं प्राप्त भई विद्या-विषै सम्यक् निष्ठावान्‌पनाहीं है। तिनका शौच आचमन आदिक कर्म बी वस्तुतैं आश्रमका धर्म नहीं। काहेतैं, तिस कर्मकूं लोकसंग्रह अर्थ होनेतैं औ "इहां ज्ञानसैं तुल्य पवित्र नहीं है" इस गीतास्मृतिके वाक्यतैं, ज्ञानाभ्याससैंहीं अपावनताकी निवृत्तितैं औ त्रिकालस्नानके विधि आदिककूं अज्ञानी संन्यासीका विषय होनेतैं। यातैं कर्मकी निवृत्तिसैंहीं ज्ञानका औ कर्मका समुच्चय बनै नहीं।

१३ इस कहनेके हेतुतैं बी कर्मसहित विद्या मोक्षकी साधन नहीं, ऐसैं कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—मैं अकर्त्ता ब्रह्महीं हूं, औ कर्म करताहूं; यह स्पष्ट व्याघातदोष है।

१४ उत्पन्न भई विद्यावाला पुरुष बी जब ब्रह्म औ आत्माकी एकताकूं भूलताहै; तब क्या करैगा; तातैं समुच्चय संभवैहै ? ऐसैं कहनेकूं योग्य नहीं, यह कहैहै।

१५ ननु, अंगिरा आदिक ग्रहस्थनकूं विद्याके संप्रदायकी प्रवर्त्तकताके देखनेतैं ग्रहस्थाश्रमके कर्मनसैं ज्ञानका समुच्चय इस उक्त लिंगतैं जानियेहै ? यह आशंका करिके कहैहैं। इहां यह भाव है:—युक्तिसहित लिंगकूंहीं सूचकताके अंगीकारतैं औ समुच्चयविषै युक्तिके अभावतैं औ उलटा विरो-

ब्रह्मविद्याके संप्रदायका कर्त्तापना आदिकरूप लिंग है, सो तो पूर्वस्थित विधिकूं बाध करनेकूं इच्छता है। जब तम औ प्रकाशका संभव सैकडो विधिनसैं बी एक ठिकाने करनेकूं शक्य नहीं, तब केवल लिंगनसैं एकठिकाने करनेकूं शक्य नहीं; यामैं क्या कहना है। [१६]ईसैं रीतिसैं उक्त संबंध औ प्रयोजनवाली या मुंडकउपनिषद्का अल्पग्रंथरूप विवरण (संक्षेपतैं व्याख्यान) करनेका आरंभ करियेहै ॥ [१७]जे मुमुक्षुपुरुष या उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्याकूं श्रद्धा भक्तिपूर्वक प्रवृत्त हुये परमप्रेमकी विषय होनेकरि ग्रहण करैहैं, तिनके गर्भ जन्म जरा औ रोग आदिक क्लेशके समूहकूं शिथिल करैहै; वा परब्रह्मकूं प्राप्त करैहै, औ अन्य अविद्या आदिक संसारके कारणकूं नाश करैहै, यातैं उपनिषद् कहियेहै। याके मंत्रनका अब व्याख्यान करैहैं:—ब्रह्मा जो है सो धर्म ज्ञान वैराग्य औ ऐश्वर्य, इन च्यारीगुणनसैं अन्य सर्वकूं उल्लंघन करिके वर्त्तता

धके दर्शनतैं लिंगसैं समुच्चयकी सिद्धि नहीं है। औ संप्रदायके प्रवर्त्तक पुरुषनकूं गृहस्थाश्रमके आभासमात्रपनैंके अनुसंधानकरि वारंवार बाधतैं औ इस अर्थविषै “ जिस मुजका सर्वत्र है, औ जिस मुजका कछु बी नहीं है। मिथिलापुरीके दग्ध भये मेरा कछुबी दग्ध होता नहीं ” इस जनक राजाके उद्धारके देखनेतैं, कर्माभाससैं समुच्चय नहीं होवैहै, औ तहां प्रेरकप्रमाणरूप विधि नहीं देखियेहै।

१६ अब सिद्ध करी या उपनिषद्की व्याख्यान करनेकी योग्यताकूं आचार्य समान करैहैं।

१७ इस ग्रंथविषै उपनिषद्शब्दकी योजना कैसैं है ? इस आशंकाके भये, ग्रंथकूं उपनिषद्शब्दकी वाच्य विद्यारूप अर्थवाला होनेतैं ग्रंथविषै उपनिषद्शब्दकी योजना लक्षणासैं है; ऐसैं दिखावने अर्थ विद्याकूं उपनिषद्शब्दका अर्थपना कहैहैं।

१८ इहां यह अर्थ है:— अपरिपक्व ज्ञानतैं दो वा तीन जन्मकरि मोक्षके संभवतैं ब्रह्मविद्या क्लेशके समूहकूं शिथिल करैहै, ऐसैं कहा।

है, यातैं परिवृद्ध है, याहीतैं महान् है। तातैं सो ब्रह्मा प्रकाशयुक्त इंद्रादिक **देवनके मध्य गुणनसैं प्रथम** (मुख्य वा तिन देवके पूर्व) **हुया स्वतंत्र** होनेकरि **प्रकट होताभया**। जैसैं धर्म अधर्मके वशतैं अन्य संसारी जीव उपजतेहैं, तैसैं नहीं। "जो यह इंद्रियनसैं ग्राह्य वस्तुकूं लंघिके वर्त्तता है, सूक्ष्म है, अप्रकट है, सनातन है, सर्वभूतमय है, औ अचिंत्य है। सो यह आपहीं प्रकट होता भया (रजवीर्यके संयोग विना आविर्भावकूं पाया)" या स्मृतितैं ब्रह्मदेवका स्वतंत्रपना जानियेहै। फेर सो ब्रह्मा कैसा है? **सर्व जगत्का उत्पन्न करनेहारा है औ उत्पन्न भये भुवनका पालन करनेहारा है** [यह जो विद्याके प्रवर्त्तक ब्रह्माका विशेषण है, सो विद्याकी स्तुतिअर्थ है]। **सोई** प्रख्यात महान् भाववाला ब्रह्मा; ब्रह्म जो परमात्मा ताकी विद्या है, सो जातैं "जिसकरि सत्य अक्षर पुरुषकूं जानता है" इस विशेषणतैं परमात्माकूं विषय करनेवाली है, यातैं ब्रह्मविद्या कहियेहै। अथवा सर्वके अग्रज ब्रह्मानैं कथन करी है, यातैं ब्रह्मविद्या कहियेहै। औ सर्वविद्याके आविर्भावकी हेतु होनेतैं सो सर्वविद्याकी प्रतिष्ठा (आश्रय[१९]) है। अथवा सर्वविद्याकरि जाननेयोग्य वस्तु जिसकरि जानियेहै (जिसके उत्पन्न हुये सर्व विद्याकी समाप्ति होवैहै) "जिसकरि नहीं सुन्या वस्तु सुन्या होवैहै, औ नहीं मान्या वस्तु मान्या होवैहै, औ नहीं निश्चय किया वस्तु निश्चय किया होवैहै" इस श्रुतितैं। यातैं सो सर्वविद्याकी प्रतिष्ठा (अवधि) कहियेहै। ता सर्ववि[२०]-

---

१९ महावाक्यसैं उत्पन्न भई बुद्धिवृत्तिसैं आविर्भावकूं प्राप्त भया ब्रह्महीं ब्रह्मविद्या है। सो ब्रह्म जातैं सर्वका प्रकाशक है, तातैं सर्व विद्याकी प्रकाशक होनेकरि आश्रय करियेहै; ऐसी जो ब्रह्मविद्या सो सर्वविद्याकी आश्रय है।

२० इहां ब्रह्मविद्याकूं सर्वविद्याकी प्रतिष्ठा कहनेकरि यह उपनिषद् ताकी स्तुति करैहैं।

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्। स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह। भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्व्वमिदं विज्ञातं भवतीति? ॥ ३ ॥

याकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मविद्याकूं ब्रह्माके अनेक सृष्टिके प्रकारनविषै, एक सृष्टिके प्रकारके पूर्व अथर्वाऋषि उत्पन्न किया है; यातैं सो ज्येष्ठ पुत्र है। तिस अथर्वा नामक ज्येष्ठ पुत्रके तांई [ब्रह्मा] कहते भये ॥ १ ॥

टीकाः—जा इस ब्रह्मविद्या-कूं ब्रह्मा अथर्वा-ऋषि-के तांई कहते भये, ताही ब्रह्मातैं प्राप्त भई ब्रह्मविद्याकूं अथर्वाऋषि पूर्व अंगिरा नाम ऋषि-के तांई कहता भया। सो अंगिराऋषि, भारद्वाजगोत्रवाले सत्यवाह नामक ऋषि-के तांई कहताभया। सो भारद्वाज-ऋषि जो परब्रह्मतैं अश्रेष्ठ ब्रह्मदेवकरि प्राप्त भई है, यातैं परावर है; वा पर औ अपररूप सर्वविद्याके विषयविषै व्याप्त होनेतैं परावर है। ऐसी ता परावर-रूप ब्रह्मविद्या-कूं अंगिरा नामक अपने शिष्य वा पुत्र-के तांई कहताभया ॥ २ ॥

महान् ग्रहस्थ ऐसा जो शुनक ऋषिका पुत्र शौनकऋषि, सो भारद्वाजके शिष्य अंगिरा नामक आचार्य-के तांई विधिवत् (शास्त्रके अनुसार) समीप आयाहुया पूंछताभया। इहां शौनक औ अंगिराके संबंधतैं पीछे विधिवत् इस विशेषणके कहनेतैं पूर्वके ऋषिनके आचार्यके समीप जायके प्रश्न करनेके विधिका अनियम है, ऐसैं जानियेहै। वा विधिवत् यह जो विशेषण है, सो मध्य[२१]

---

२१ जैसैं देहलीके मध्य धऱ्या जो दीपक, सो दोनूं और प्रकाशताहै,

दीपकन्यायके अर्थ है ॥ असदादिकविषै बी आचार्यके समीप जायके प्रश्न करनेके विधिकूं इष्ट होनेतैं ॥ सो आचार्यके समीप जायके प्रश्नका करना क्या है? तहां कहैहैं। शौनक उवाचः–हे भगवन्! किसके[22] विशेषकरि जाने हुये सर्व यह जानने योग्य वस्तु विशेषकरि जान्या जावै है? इहां "एकके जाने हुये सर्वका जाननेवाला होवैहै" ऐसै शिष्ट पुरुषनके संवादकूं शौनकऋषि पूर्व सुनता भया है। ता एक वस्तुके विशेष स्वरूपके जाननेकूं इच्छता हुया "किसके जाने हुये?" ऐसैं तर्ककूं करता हुया पूंछता भया। अथवा[23] लोकनकी सामान्यदृष्टिसैं जानिकेहीं पूंछता भया। जैसैं लोकविषै समानजाति आदिक सकल भेद जे हैं, वे समानजाति आदिककी एकताके ज्ञानसैं लौकिक जनोकरि जाननेमैं आवते हैं। तैसैं सर्व जगत्के भेदका एक कारण क्या है, जिस एकके जानेहुये सर्व जान्या जावै है? यहवी लौकिकजनोकरि जाननेमैं आवता है। यातैं लोकनकी सामान्यदृष्टिसैं यह प्रश्न बनै है ॥ ननु[24] जब अज्ञात वस्तुविषै "किसके जानेहुये?" यह प्रश्न अघटित है, तब प्रथम "सो क्या है?" ऐसा प्रश्न युक्त है; पीछे वस्तुके सद्भावके सिद्ध भये "किसके जाने हुये?" ऐसा प्रश्न होवैहै। जैसैं लोकविषैपे-

---

तैसैं मूलश्रुतिविषै अंगिराशब्द औ शिष्यका विशेषणरूप उपसन्नशब्द, इन दोनूंके मध्य जो "विधिवत्" शब्द है, ताका दोनूं और संबंध है।

२२ अब प्रश्नके बीजकूं कहैहैं।

२३ उपादानतैं कार्यकी भिन्नसत्ताके अभावतैं उपादानके जाने हुये ताका कार्य, तातैं भिन्न नहीं है, ऐसैं जान्या जावै है; ऐसी लोकविषै सामान्य व्याप्ति है, ताके बलतैं वा पूंछता भया, ऐसैं कहैहैं।

२४ अब प्रश्नके अक्षरनकी असमीचीनताका आक्षेप करिके समाधान करैहैं। इहां यह अर्थ है:—"सो क्या है?" ऐसैं उच्चारण किये अक्षरनकी बहुलतासैं श्रम होवैहै, तिसतैं भयकरि "किसके जाने हुये?" ऐसैं अक्षरनकी सुगमताके लाघवतैं यह प्रश्न है।

तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये वेदितव्य इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति । परा चैवापरा च ॥४॥

टिका आदिक आधारनके सद्भावके प्रथम जानें हुये पीछे अमुक वस्तु "किसविषै रखनेकूं योग्य है ?" यह प्रश्न होवैहै; तैसें ॥ सो कथन बनै नहीं:—काहेतें शिष्यकूं अक्षरनकी बहुलताकरि परिश्रमतें भयकूं प्राप्तभया होनेतें "सो क्या है, जिसके जाने हुये सर्वका जाननेहारा होवैहै ?" ऐसा प्रश्न नहीं संभवै है; किंतु "किसके जाने हुये सर्व यह जान्या जावै है ?" ऐसाहीं प्रश्न संभवै है ॥ ३ ॥

टीका:—**ता** शौनक ऋषि-**के तांई सो** अंगिरानामक मुनीश्वर **कहतेभये** । क्या कहतेभये ? सो कहिये है । अंगिरा उवाचः— **दोनूं विद्या जानने योग्य हैं; ऐसैं प्रसिद्ध** जो वेद अर्थके जाननेवाले परमार्थदर्शी **ब्रह्मवेत्ता कहते हैं** ॥ कौंन वे दोनूं विद्या हैं ? तहां कहैहैं:—एक **परा** कहिये परमात्मविद्या है । **औ** दूसरी **अपरा** कहिये धर्म औ अधर्मके साधन अरु तिनके फलकूं विषयकरनेवाली विद्या है ॥ ननु "किसके जाने हुये सर्वका जाननेहारा होवैहै ?" ऐसैं शौनकनैं पूंछ्या है । तिसके कहनेकूं योग्य हुये अंगिरामुनि "दोनूं विद्या" इत्यादिरूप वाक्यसैं नहीं पूंछेअर्थकूं कहतेहैं । तहां कहैहैं:—यह दोष बनै नहीं, काहेतें प्रतिउत्तरकूं क्रमकी अपेक्षावाला होनेतैं जातैं अपराविद्या जो है सो निषेध करने योग्य अविद्या है । ताके विषयके नहीं जाने हुये कछुक तत्त्व (वस्तु) नहीं जान्या होवैहै । यातैं "पूर्व पक्षकूं निषेध करिकेहीं पीछे सिद्धांत कहनेकूं योग्य होवैहै" इस न्यायतैं अंगिरामुनि, प्रथम नहीं पूंछे अर्थकूं कहते हैं ॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

टीकाः—तिन दोनूंमैं अपराविद्या कौंनसी है? तहां कहियेहैः—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, औ अथर्ववेदः ये च्यारी वेद हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त (वेदके नामोका कोश), छंद (पिंगल) औ ज्योतिष; ये षट् वेदके अंग हैं। यह अपराविद्या है॥ अब यह पराविद्या कहियेहैः—जिसकरि सो आगे षष्ठमंत्रसैं कहनेके हैं विशेषण जिसके, ऐसा अक्षर (ब्रह्म) प्राप्त[25] होवैहै, सो परा विद्या है॥ ननु[26], ब्रह्मविद्या जब ऋग्वेद आदिकतैं बाहीर है, तब सो पराविद्या कैसैं होवैगी औ मोक्षकी साधन कैसैं होवैगी? जातैं "जे वेदतैं बाहीर स्मृतियां हैं, औ जे केई कुदृष्टियां हैं, वे जातैं मरणकूं पायके नरकविषै स्थिति करावनेवाली जानीहैं, यातैं वे सर्व निष्फल हैं" ऐसैं स्मृतिविषै कहाहै। यातैं कुदृष्टिरूप होनेतैं औ निष्फल होनेतैं सो ब्रह्मविद्या अनादर करनेकूं योग्य होवैगी। औ उपनिषदनकूं ऋग्वेद आदिकतैं बाहीरपना होवैगा। जब सो ब्रह्मविद्या ऋग्वेद आदिकरूप है, तब "अब परा" इत्यादिरूप

---

२५ जातैं अविद्याकी निवृत्तिहीं परब्रह्मकी प्राप्ति कहिये है, भिन्न अर्थ नहीं; तातैं परब्रह्मकी प्राप्ति औ अधिगमशब्दके अर्थका भेद नहीं है।

२६ षट् अंगसहित वेदनकूं अपरविद्यापनैकरि कहनेतैं, तिनतैं भिन्न वेदसैं बाहिर होनेकरि ब्रह्मविद्याकूं परविद्यापना नहीं संभवै है; ऐसैं वादी आक्षेप करैहै। इहां यह अर्थ हैः—विद्याकूं वेदसैं बाहिरपनैके हुये, तिस अर्थवाले उपनिषदनकूं बी ऋग्वेद आदिकसैं बाहिरपना प्राप्त होवैगा।

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्व्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ ६ ॥

वाक्यसैं ताका ऋग्वेद आदिकतैं भिन्न करना व्यर्थ है? यहँ[27] कथन बनै नहीं:–काहेतैं, इहां जानने योग्य विषयके विज्ञानकूं पराविद्या शब्दसैं कहनेकूं इच्छित होनेतैं। जातैं इहां उपनिषदनतैं जानने योग्य अक्षर (ब्रह्म)-कूं विषयकरनेवाला विज्ञान पराविद्या है, ऐसैं मुख्यताकरि कहनेकूं इच्छित है। उपनिषद्शब्दका समूह नहीं औ वेदशब्दसैं तो सर्व ठिकाने शब्दका समूह कहनेकूं इच्छित है। अक्षर(ब्रह्म)कूं शब्दके समूहसैं जाननेके योग्य हुये बी गुरुके पास जाने आदिक अन्य प्रयत्न विना औ वैराग्यरूप अन्य प्रयत्नविना अक्षरका विज्ञान नहीं संभवैहै। यातैं ब्रह्मविद्याका भिन्न करना औ यह पराविद्या है, यह कथन बनैहै ॥ ९ ॥

टीका:–[28]जैसैं विधिके विषयविषै वाक्यार्थज्ञानके कालतैं अन्य कालविषै कर्त्ताआदिक अनेक कारककी समाप्तिके द्वारसैं अग्निहोत्रादिरूप अनुष्ठान करनेयोग्य अर्थ है; तैसैं इहां पराविद्याके विषयविषै नहीं। किंतु, इहां तो जाननेरूप अर्थ, वाक्यार्थज्ञानके समकालविषैहीं ता अवधिकूं प्राप्त भया होवैहै। काहेतैं, केवल शब्दसैं प्रकाश किये अर्थके ज्ञानमात्रकी निष्ठातैं भिन्न अनुष्ठानके अभावतैं। तातैं इहां पराविद्याकूं षष्ठ वाक्यसैं लेके नवमवाक्यपर्यंत विशेषण

---

२७ उपनिषदनकूं वेदसैं बाहिर होनेकरि विद्याका तिनतैं भिन्न करना नहीं संभवै है; किंतु इहां वस्तुकूं विषय करनेवाले वैदिक ज्ञानकी बी शब्दके समूहरूप वेदतैं अधिकताके अभिप्रायसैं विद्याका भिन्न करना है। ऐसैं कहैहैं।

२८ कर्मके ज्ञानतैं विद्याकी विलक्षणताके अभिप्रायसैं विद्याका ऋग्वेद आदिकतैं भिन्न करना है, ऐसैं अब कहैहैं।

सहित अक्षरसैं युक्त करैहैं:-[२९]जो सो **अदृश्य है;** कहिये सर्व ज्ञानइंद्रियनका अविषय है। औ **अग्राह्य है;** कहिये कर्मइंद्रियनका अविषय है। औ **अगोत्र है;** कहिये गोत्र जो वंश तिसतैं रहित है। अर्थ यह जो जिसकरि सो ब्रह्म वंशवाला होवै, ऐसा ताका कोऊ नहीं है। जे वर्णन करियेहैं ऐसे जे स्थूलपनैं आदिक वा शुक्लपनैं आदिक गुणवान् वस्तुरूप शरीर आदिक द्रव्यके धर्म हैं, वे वर्ण कहियेहैं। वे वर्ण जिसकूं अविद्यमान हैं, ऐसा जातैं अक्षर है, यातैं सो **अवर्ण है।** औ चक्षु अरु श्रोत्र जे हैं, वे सर्वजंतुनके नाम औ रूप विषयके ग्रहणविषै साधन हैं; वे चक्षु औ श्रोत्र जाकूं अविद्यमान हैं, ऐसा जातैं अक्षर है; यातैं सो **अचक्षुःश्रोत्र** (चक्षु औ श्रोत्रसैं रहित) है। औ "[३०]जो सर्वज्ञ है अरु सर्ववित् है" इत्यादिरूप याहीं खंडके अष्टममंत्रविषै चेतनावान्‌पनैरूप विशेषणतैं ब्रह्मकूं संसारी जीवनकी न्याई चक्षु औ श्रोत्रआदिक साधनोसैं विषयनकी साधकता प्राप्त भई; सो इहां "अचक्षुःश्रोत्र" इस विशेषणसैं निवारण करियेहै। काहेतैं "सो परमात्मा चक्षुरहित हुया देखताहै, औ कर्णरहित हुया सुनताहै" इत्यादि विशेषणके देखनेतैं। किंवा सो अक्षर **अपाणिपाद है;** कहिये कर्मइंद्रियनसैं रहित है। जातैं ऐसैं अग्राह्य औ अग्राहकरूप है, यातैं **नित्य है;** कहिये अविनाशी है। औ ब्रह्मासैं आदिलेके स्थावरपर्यंत प्राणीनके भेदरूप विविधप्रकारसैं होवैहै, यातैं **विभु है।** औ **सर्वगत है,** कहिये आकाशकी न्याईं व्यापक है। औ **अतिशयसूक्ष्म है;** काहेतैं शब्द आदिक स्थूलभावके कारणोसैं रहित

---

२९ इहां "जो" "सो" इन शब्दनसैं आगे कहनेका वस्तु, बुद्धिविषै राखिके सिद्धकी न्याईं स्मरण करियेहै।

३० अप्राप्तके निषेधके प्रसंगतैं इहां अक्षरशब्दकूं प्रधानरूप अर्थकी परता है, ऐसैं शंका करनेकूं योग्य नहीं है; यह मानिके कहैहैं।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च। यथा पृथिव्या-मोषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केश-लोमानि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ॥७॥

होनेतैं। शब्द आदिक जे हैं वे आकाश औ वायु आदिकनके उत्तर उत्तर स्थूलभावके कारण हैं; तिनके अभावतैं, सो अतिशयसूक्ष्म है। किंवा, **सो अव्यय है;** उक्त धर्मवाला होनेतैंहीं सो घटने बढनेरूप व्ययकूं पावता नहीं; यातैं अव्यय है। जातैं अंगरहित ब्रह्मका शरीरकी न्यांई अंगनके घटनेरूप व्यय संभवै नहीं, औ राजाकी न्यांई भंडारके घटनेरूप व्ययबी संभवै नहीं औ गुण (वृद्धि)रूप द्वारवाला व्यय बी संभवै नहीं; काहेतैं गुण (आगमन)तैं रहित होनेतैं, औ सर्वका आत्मा होनेतैं; यातैं अव्यय है। औ सो पृथिवीकी न्यांई स्थावरजंगमरूप भूतनका कारण है, यातैं **भूतयोनि है।** जा ऐसै लक्षणवाले अक्षर-कूं, **धीर** जे विवेकी पुरुष हैं, वे **सर्वऔरतैं** (सर्वका आत्मारूप) **देखतेहैं।** इस प्रकारका अक्षर (ब्रह्म), जिस विद्यासैं प्राप्त होवैहै; सो विद्या पराविद्या कहियेहै। यह पदनके समुदायरूप वाक्यका अर्थ है ॥ ६ ॥

टीका:—षष्ठमंत्रविषै "भूतयोनिरूप अक्षर है," ऐसैं कहा। तहां तिस अक्षरका सो भूतयोनिपना कैसैं है? यह लोकप्रसिद्ध दृष्टांत-नसैं कहियेहै:—[31] **जैसैं** लोकविषै प्रसिद्ध **ऊर्णनाभि** नामक कोई कीट है, सो अन्य किसी बी कारणकी अपेक्षा न करिके आपहीं अपने शरीरतैं अभिन्न तंतुनकूं **सृजता है;** कहिये बाहीर प्रसारता है, फेर तिनहींकूं **ग्रहण करताहै;** कहिये तिनकूं अपने आत्मभावके

---

३१ ब्रह्म कारण नहीं है, सहायसैं रहित होनेतैं; कुलालमात्रकी न्यांई। इस अनुमानका व्यभिचारीपना ऊर्णनाभिके दृष्टांतसैं कहा।

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्म्मसु चा-
मृतम् ॥ ८ ॥

ताईं प्राप्त करैहै । औ [32]जैसें पृथिवीविषै तंडुलसैं आदिलेके वृक्षादिरूप स्थावरपर्यंत जे औषधियां हैं, वे अपने स्वरूपसैं अभिन्नहीं उत्पन्न होवैहैं । औ [33]जैसें विद्यमान (जीवते हुये) पुरुषतैं नख केश औ रोम विलक्षण उत्पन्न होवैहैं ॥ जैसें यह दृष्टांत है, तैसें अन्य निमित्तकी अपेक्षासैं रहित उक्त लक्षणवाले अक्षरतैं इस संसारमंडल-विषै विपरीत लक्षणवाला औ समान लक्षणवाला संपूर्ण विश्व (जगत्) उत्पन्न होवैहै । इहां [34]अनेक दृष्टांतनका जो ग्रहण है, सो सुखसैं अर्थके समुजावनेके लिये है । ब्रह्मसैं उत्पन्न भया जो विश्व है, सो इसी क्रमसैं उत्पन्न होवैहै; बदरीफलकी मुष्टिके फेकनेकी न्यांईं नहीं । यह भाव है ॥ ७ ॥

टीकाः—अब सृष्टिके क्रमके नियमके कहनेकी इच्छारूप अर्थवाला यह अष्टम मंत्र आरंभ करियेहैः—उत्पत्तिके विधिका ज्ञाता होनेकरि भूतयोनि अक्षररूप जो ब्रह्म, सो ज्ञानरूप तपसैं सृष्टिकी अनुकूलतारूप स्थूलताकूं पावता है, कहिये जलसैं पूर्ण क्षेत्रविषै अंकुरके ताईं उत्पन्न करनेकूं तैयार भये बीजकी न्यांईं औ पुत्रके

---

३२ ब्रह्म जगत्का उपादान नहीं है, तासैं अभिन्न होनेतैं; स्वरूपकी न्यांईं । इस अन्य अनुमानका व्यभिचारीपना पृथिवीके दृष्टांतसैं कहैहैं ।

३३ जगत् जो है सो ब्रह्मरूप उपादानवाला नहीं, तिसतैं विलक्षण होनेतैं; जो जिसतैं विलक्षण है सो तिस उपादानवाला नहीं होवैहै, जैसें घट जो है सो तंतुरूप उपादानवाला नहीं, तैसें । इस अनुमानका पुरुषके संबंधी केशआदिकके दृष्टांतसैं व्यभिचार कहैहैं ।

३४ ननु, एकहीं दृष्टांतविषै उक्त तीन अनुमानोंका व्यभिचारीपना जोडनेकूं शक्य है ? ऐसैं शंका करनेवालेके प्रति कहैहैं ।

ताईं उत्पन्न करनेकूं इच्छते हुये पिताकी न्यांई, इस जगत्के ताईं उत्पन्न करनेकूं इच्छता हुया अक्षररूप ब्रह्म हर्षसैं पुष्टताकूं पावता है। ऐसैं सर्वज्ञपनैसैं जगत्की उत्पत्ति स्थिति औ संहारकी शक्तिके ज्ञानवाला होनेकरि पुष्टताकूं प्राप्त भये तिस ब्रह्म-तैं यह भोगिये है (आवरणादिरूपसैं अनुभव करियेहै), ऐसा; वा अन्नकी न्यांई सर्वके ताईं साधारण होनेवाला ऐसा जो संसारी जीवनका साधारण अव्याकृतरूप अन्न, सो उपजावनेकी इच्छायुक्त प्रधान अवस्था रूपसैं उत्पन्न होवैहै। तिस जगत्के सृजनेकी इच्छायुक्त अवस्थावाले अव्याकृत (माया)रूप अन्नतैं ब्रह्मके ज्ञानशक्ति औ क्रि-

---

३५ ईश्वरपनैका उपाधिरूप जो मायातत्त्व, सो महाभूतआदिकरूपसैं सर्वजीवनकरि देखियेहै, यातैं साधारण है। तौ बी सो अनादिसिद्ध होनेतैं कैसें जन्मताहै? यह आशंका करिके कहैहैं। इहां यह रहस्य है:—केईक कहतेहैं कि, कर्मके संस्काररूप अपूर्वके समवाय संबंधवाला सूक्ष्मभूत अव्याकृत है। सो बनै नहीं; काहेतैं ताकूं जीवजीवके प्रति भिन्न होनेतैं ईश्वरपनैकी उपाधि होनेके असंभवतैं, औ सामान्यरूपसैं संभव हुये बी पृथिवीआदिक सामान्यरूपनकी बहुलताकरि प्रकृतिविषै एकताकी श्रुतिके विरोधकी प्राप्तितैं, औ जड महामायारूपसैंहीं संभव हुये बी ताकूं कर्मके अपूर्वके समवायकरि युक्तपना नहीं होवैगा। काहेतैं तिस महामायाकूं अकारकरूप होनेतैं अरु बुद्धिआदिकनकूंहीं कारक (कर्त्ता)पनैके कथनतैं, कारकके अवयवनविषैहीं क्रियाके समवाय संबंधके अंगीकारतैं। किंवा, कार्यकूं अपने कारणका उपादानपना नहीं देख्याहै। यातैं पटकूं तंतुके उपादानताकी न्यांई अपंचीकृत भूतनकी समष्टिरूप सूक्ष्मभूतनकूं अपने कारण अपंचीकृत पंच महाभूतनका उपादानपना नहीं होवैगा। तातैं महाभूतनकी उत्पत्तिआदिकके संस्कारका आश्रय जो तीन गुणोकी साम्य अवस्थारूप मायातत्व है, सो इहां अव्याकृत आदिक शब्दनका वाच्य अंगीकार करनेकूं योग्य है।

३६ पूर्व कल्पविषै हिरण्यगर्भभावकी प्राप्तिके निमित्त श्रेष्ठ उपासन औ कर्म जिसनैं अनुष्ठान किया है ताके अनुग्रह अर्थ मायाउपाधिवाला ब्रह्म, हिरण्यगर्भ अवस्थाके आकारसैं होवैहै। तिस अवस्थाका अभिमानी सो

यः सर्व्वज्ञः सर्व्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नञ्च जायते ॥ ९ ॥

इति प्रथममुंडके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

याशक्तिकरि युक्त व्यष्टिरूप जगत्का साधारण (समष्टिरूप सूत्रात्मा नामवाला) अविद्या काम कर्म औ भूतनके समुदायरूप बीजका अंकुर, जगत्का आत्मा, हिरण्यगर्भरूप **प्राण** उत्पन्न होता भया । तिस हिरण्यगर्भरूप प्राणतैं संकल्प विकल्प संशय औ निश्चयरूप **मन** नामवाला अंतःकरण आदिकका उपादान अपंचीकृत भूतनका पंचक उत्पन्न होवैहै । तिस संकल्प आदिकरूपवाले मनतैं बी **सत्य** नामवाला आकाश आदिक पंचीकृत भूतनका पंचक (विराट्) उत्पन्न होवैहै । तिस सत्य नामवाले भूतनके पंचकतैं क्रमकरि ब्रह्मांडरूप पृथिवी आदिक **सप्त-लोक** उत्पन्न होवैहैं । तिन लोकनविषै मनुष्य आदिक प्राणीनके वर्ण औ आश्रमके क्रमसैं कर्म उत्पन्न होवैहैं । औ तिन निमित्तरूप **कर्मनविषै** कर्मजन्य फलरूप **अमृत** उत्पन्न होवैहै । जहां लगि शतकोटि कल्पनसैं बी कर्म नाशकूं पावते नहीं, तहां लगि तिनका फल बी नाशकूं पावता नहीं; यातैं सो अमृत कहियेहै ॥ ८ ॥

टीकाः—कथन किये अर्थकूंहीं संक्षेपसैं कहनेकी इच्छावाला नवम मंत्र आगे कहनेके अर्थकूं कहैहैः—जो उक्तलक्षणवाला अक्षर नामक परमात्मा सामान्य[37]करि सर्वकूं जानताहै, यातैं **सर्वज्ञ** है; औ विशेषैं[38]-

---

कर्म औ उपासनाका कर्त्ता जीव [बी उपास्य हिरण्यगर्भसैं अभिन्नभाव करि] हिरण्यगर्भ कहियेहै, इस अभिप्रायतैं इहां कहैहैं ।

३७ इहां समष्टिरूप माया नामक उपाधि सामान्य कहियेहै । तासैं सर्वकूं जानताहै, यातैं सर्वज्ञ है ।

३८ इहां व्यष्टिरूप अविद्या नामक उपाधि विशेष कहियेहै । तिसकरि

अथ प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तदेतत्सत्यं । मन्त्रेषु कर्म्माणि कवयो यान्य-पश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि । तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥ १ ॥

करि सर्वकूं जानताहै, यातैं सर्ववित् है; औ जिसँका ज्ञानमय (ज्ञानका विकारहीं सर्वज्ञतारूप) तप है, परिश्रमरूप नहीं; तिस उक्त लक्षणवाले सर्वज्ञ-तैं यह कथन किया कार्यरूप हिरण्यगर्भ नामवाला ब्रह्म उत्पन्न होवैहै । किंवा, यह देवदत्त है यज्ञदत्त है; इत्यादि रूपवाला नाम, औ यह शुक्ल है, नील है इत्यादि स्वरूपवाला रूप औ तंडुल अरु यव आदिरूप अन्न पूर्वमंत्रविषै उक्तक्रमसैं उत्पन्न होवैहै । ऐसैं पूर्वमंत्रसैं इस मंत्रका अविरोध जानना ॥ ९ ॥

इति श्रीमुंडकोपनिषद्गत प्रथममुंडके प्रथमखंड भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

अथ प्रथममुंडकगत द्वितीयखंड भाष्यभाषादीपिका प्रारंभः ॥ २ ॥

टीकाः—"ऋग्वेद," "यजुर्वेद" इत्यादिरूप प्रथमखंडके पंचम मं-

अनंत जीवभावकूं प्राप्त भया है औ सोई सर्व उपाधिवाला हुया तिन जीवनकरि सृजे हुये सर्व जगत्कूं जानताहै; यातैं सर्ववित् है ।

३९ ननु, प्रजापतिनकूं तपकरि स्रष्टापना प्रसिद्ध है, यातैं स्रष्टापनैविषै तपका अनुष्ठान कहनेकूं योग्य है । तातैं ईश्वरकूं संसारीपना प्राप्त होवैगा ! यह आशंका करिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—सत्वगुणप्रधान माया औ अज्ञान नामवाला जो विकार है, तिस उपाधिवाला उत्पन्न भया सर्वपदार्थनके अभिज्ञपनैरूप ज्ञानस्वरूप विकारहीं ईश्वरका तप है; परंतु प्रजापतिनकी न्याईं क्लेशरूप तप नहीं ।

त्रसैं षट् अंगसहित च्यारी वेदरूप अपराविद्या कही। "जो सो अवश्य है" इत्यादिरूप षष्ठमंत्रसैं लेके "नाम रूप औ अन्न उत्पन्न होवैहै" इस नवम मंत्रपर्यंत जो ग्रंथ है, तिसकरि कथन किये लक्षणवाला जो अक्षर है, सो जिस विद्याकरि प्राप्त होवैहै सो पराविद्या है। ऐसैं विशेषणसहित यह पराविद्या कही। यातैं पीछे इन दोनूं विद्याके विषय (अधीन) जे संसार औ मोक्ष हैं, वे विवेचन करनेकूं योग्य हैं; या प्रयोजनके लिये अब उत्तर ग्रंथका आरंभ करियेहै। तिनमैं कर्त्ता आदिक साधन क्रिया औ फलके भेदरूप औ उपादानरूपसैं अनादि औ ब्रह्मज्ञानतैं पूर्व अत्यंत निवृत्तिके असंभवतैं अनंत जो संसार है, सो अपरविद्याका विषय है। सो दुःखरूप होनेतैं सर्व शरीरधारी जीवैंनकरि त्यागनेकूं योग्य है। औ नदीके प्रवाहकी न्यांई उच्छेदरहित संबंधरूप जो संसार है, तिसकी अत्यंत निवृत्तिरूप औ ब्रह्मसैं अभिन्न होनेतैं अनादि, अनंत, अजर, अमर (अपक्षयरहित), अमृत (नाशरहित), अभय, शुद्ध, प्रसन्न, औ अपने आत्माविषै स्थितिस्वरूप परमानंद अद्वैतरूप जो मोक्ष[४१] है; सो परविद्याका विषय है। तिनमैं आदिविषै प्रथम[४२] अ-

---

४० एकजीववादी जो कहतेहैं कि, एक चैतन्य एकहीं अविद्यासैं बद्ध हुया संसारकूं पावता है; सोई कदाचित् मुक्त होवैहै। हम तुम आदिक जीवाभासनकूं बंध औ मोक्ष नहीं है, सो पक्ष इहां जीवनके बहुवचनकी सूचनासैं निषेध किया; काहेतैं ता पक्षकूं श्रुतिसैं बाहिर होनेतैं।

४१ सुषुप्तिविषै बी क्रिया कारक औ फलके भेदकी निवृत्ति होवैहै, तातैं ज्ञानपूर्वक निवृत्तिकी विलक्षणता कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—अपनी उपाधिरूप अविद्याके कार्यकी जो अविद्याकी निवृत्तिकरि अत्यंतनिवृत्ति, सो विद्याका फल है।

४२ अपरविद्याके औ परविद्याके विषयनकूं दिखायके पूर्व अपरविद्याके विषयके दिखावनेविषै श्रुतिका अभिप्राय कहैहैं।

परविद्याका जो विषय है तिसके दिखावने अर्थ, इस द्वितीय खंडका आरंभ है। काहेतैं, तिस अपरविद्याके विषयके देखे हुये तिसविषै वैराग्यके संभवतैं। तैसैं आगे इसीहीं उपनिषद्विषै "लोकनकूं कर्मरचित जानिके" इत्यादिरूप इकीशवें मंत्रसैं कहियेगा। जातैं नहीं दिखाये वस्तुकी परीक्षा (ज्ञान) संभवै नहीं, यातैं तिस अपरविद्याके विषयकूं दिखावते हुये कहैहैं:—**सो यह सत्य है।** सो क्या है? तहां कहैहैं:—ऋग्वेद आदिक नामवाले **मंत्रनविषै** जो अग्निहोत्र आदिक **कर्म हैं।** मंत्रनसैंहीं प्रकाशित भये **जिन कर्मन-कूं** बुद्धिमान् वसिष्ठ आदिक **कवि देखतेभये।** ऐसा जो कर्मका समूह है सो सत्य[43] है; काहेतैं पुरुषार्थ[44]का अव्यभिचारी साधन होनेतैं। औ वे वेदविहित औ ऋषिनकरि देखे हुये कर्म, तीनके संयोगमय हौत्र[45] अध्वर्यव औ उद्गात्र, इन तीन प्रकारके स्वरूप वाले आधाररूप **त्रेताविषै** वा त्रेतायुगविषै कर्मिष्ठ लोकनकरि किये हुये

---

४३ इष्टफलका साधन होनेकरि वा अनिष्टफलका साधन होनेकरि वेदकारि जो कर्म बोधन करियेहै, ताकूं प्रतिबंधके अविद्यमान हुये तिस तिस फलके साधन होनेका अव्यभिचार है, सो ता कर्मका सत्यपना है; स्वरूपसैं अबाध होनेरूप सत्यपना नहीं। काहेतैं "जातैं ये प्लव (फलसहित विनाशी कर्मवाले) हैं" इत्यादिरूप याके षोडशवें मंत्रसैं निंदित होनेतैं। औ कर्मकी स्वरूपसैं अबाध्यतारूप सत्यताके हुये स्वप्नकी कामिनीकी न्याईं सफलक्रियाकी निर्वाहकतारूप अबाध्यता घटे है, इस अभिप्रायसैं कहैहैं।

४४ अर्थ धर्म काम औ मोक्ष, इन च्यारीका नाम पुरुषार्थ है। तिनमैंसैं इहां मोक्षकूं छोडिके तीनका ग्रहण है।

४५ ऋग्वेदविषै विधान किया कर्म हौत्र कहियेहै। यजुर्वेदविषै विधान किया कर्म अध्वर्यव कहियेहै। सामवेदविषै विधान किया कर्म औद्गात्र कहियेहै; इस तीन प्रकारके कर्मरूप त्रेताविषै। यह अर्थ है।

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाऽऽज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् ॥ २ ॥

बहुत प्रकारसैं प्रवृत्त भयेहैं । यातैं हे लोको ! आप सत्यकाम (जैसा विद्यमान है तैसै कर्मफलकी इच्छावाले) हुये तिन कर्मन-कूं नित्य आचरो (निर्वाह करो) । जैसैं नगरकी प्राप्तिविषै निमित्त-रूप मार्ग है; तैसैं यह आपकूं आपकरि आचरे हुये कर्म-के फलरूप लोकविषै (ता कर्मके फलकी प्राप्तिअर्थ) निमित्तरूप मार्ग है । जे जे अग्निहोत्रादिरूप ऋग्वेद आदिक तीनो वेदनविषै नि-रूपण किये कर्म हैं, वे यह मार्ग (अवश्य फलकी प्राप्तिका सा-धन) है । यह अर्थ है ॥ १ ॥

टीकाः—तिनमैंसैं आदिविषै तहां लगि अग्निहोत्रहीं दिखावनेके अर्थ कहियेहै; काहेतैं अग्निहोत्रकूं सर्व कर्मनके मध्य प्रथम हो-नेतैं ॥ सो अग्निहोत्र कैसैं होवैहै ? तहां कहियेहैः—जब च्यारी ओर-तैं ईंधनोसैं प्रज्वलित भये अग्निविषै ज्वाला चलती है, तब (तिसकालविषै) चलती हुई ज्वालामैं दर्श औ पूर्णमासरूप दोनूं घृतके भागनके मध्यरूप कुंडस्थान-विषै देवताका उद्देश करि-

---

४६ इहां सत्यकामपदका मोक्षकाम (मोक्षकी कामनावाले), ऐसैं स-मुच्चयके अभिप्रायसैं व्याख्यान करना अयुक्त है; काहेतैं "यह आपकूं सु-कृतके लोकविषै मार्ग है" इस स्वर्गफलकी साधनताकूं विषय करनेवाले शेषवाक्यके विरोधतैं ।

४७ कर्मका फल जातैं अवलोकन करियेहै (भोगियेहै), यातैं लोक कहियेहै ।

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च । अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥३॥

के आहुतिनकूं डाले ॥ यह सम्यक् आहुतिनके डालने आदिरूप कर्म, परलोककी प्राप्तिके अर्थ मार्ग है । श्रद्धासैं जो होम किया है ताका सम्यक् आचरण दुष्कर है । तिसविषै विपत्तियां तो अनेक होवैहैं ॥ २ ॥

टीका:—कैसैं दुष्कर है ? तहां कहैहैं:—जो अग्निहोत्रीका अग्निहोत्र, दर्शनामक कर्मसैं रहित है औ पौर्णमासनामक कर्मसैं रहित है औ चातुर्मास्य नामक कर्म-सैं रहित है औ शरदआदिक कालविषै करने योग्य आग्रयण नामक कर्म-सैं रहित है ॥ तैसैं जाका अग्निहोत्र, अतिथिसैं रहित है; कहिये जाके अग्निहोत्रमैं दिनदि-

---

४८ "सूर्याय स्वाहा" औ "प्रजापतये स्वाहा" ऐसैं प्रातःकालविषै, अरु "अग्नये स्वाहा" औ "प्रजापतये स्वाहा" ऐसैं सायंकालविषै; दोनूं आहुतियां प्रसिद्ध हैं । तातैं इहां श्रुतिविषै आहुतिशब्दका बहुवचन कैसैं है ? तहां कहैहैं:—अनेक दिनविषै जे आहुतिनके डालनेके अनुष्ठान हैं, तिनकी अपेक्षासैं इहां आहुतिशब्दका बहुवचन है ।

४९ दर्श औ पूर्णमासकूं अग्निहोत्रकी साधनताविषै प्रमाणके अभावतैं तिनका न करना अग्निहोत्रकी विपत्तिरूप कैसैं है ? यह आशंका करिके, जीवनपर्यंत विधिके वशतैं अग्निहोत्रीकूं दर्शआदिक कर्मकी अवश्य करनेकी योग्यतातैं, तिनका न करना अग्निहोत्रकी विपत्ति होवैहै । इस अभिप्रायसैं "दर्शतैं रहित" इत्यादिरूप अग्निहोत्रका विशेषण है ।

५० शरदआदिक कालविषै नूतन अन्नसैं करने योग्य जो कर्म, (अन्नकोट) सो आग्रयण कहियेहै ।

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिव्हाः ॥ ४ ॥

नविषै अतिथिका पूजन किया जावै नहीं, औ जाके अग्निहोत्रकालविषै सम्यक् होम किया होवै नहीं; औ जाका अग्निहोत्र, वैश्वदेव नामक कर्मसैं रहित है, औ जिसनैं होम किया है तौ बी अविधिसैं होम किया है; सो अग्निहोत्र ता अग्निहोत्रीरूप कर्त्ताके सप्तम लोकसहित जे लोक हैं, तिन लोकनकूं नाश करनेकी न्यांई नाश करैहै; काहेतैं श्रममात्र फलके होनेतैं जातैं कर्मनके सम्यक् किये हुये कर्मनके परिणामरूपसैं पृथिवीसैं आदिलेके सत्यपर्यंत सप्तलोकरूप फल प्राप्त होवैहै । वे लोक इस प्रकारके अग्निहोत्र आदिक कर्मसैं प्राप्त होनेके अयोग्य होनेतैं नाश हुयेकी न्यांई होवैहैं, औ परिश्रममात्र तो अव्यभिचारी (अवश्य भया) है । यातैं तिन लोकनकूं नाश करैहै, ऐसैं कहियेहै ॥ अथवा पिंडदानादिरूप अनुग्रहसैं संबंधकूं प्राप्त भये पिता, पितामह, प्रपितामह, पुत्र, पौत्र औ प्रपौत्ररूप जे आपसहित सप्त लोक हैं, वे उक्त प्रकारके अग्निहोत्र आदिक कर्मसैं आपके उपकारके करनेवाले नहीं होवैहैं ॥ यातैं नाश होवैहैं, ऐसैं कहियेहैं ॥ इस रीतिसैं अग्निहोत्र आदिकसैं उपलक्षित जो कर्म, सो दुष्कर है ॥ ३ ॥

टीकाः—काली औ कराली, औ मनोजवा, औ सुलोहिता, औ जो सुधूम्रवर्णा, औ स्फुलिंगिनी, औ विश्वरूपी, औ देवी;

---

५१ यजमान जो है, सो पिताआदिक तीनका पिंड औ उदकके दानसैं उपकार करैहै; औ पुत्रआदिक तीनका ग्रासआदिकके दानसैं उपकार करैहै । तातैं इहां मध्यवर्ती यजमानसैं संबंधकूं प्राप्त भये पूर्वले तीन औ पीछले तीन ग्रहण करियेहैं; ऐसैं कहेहैं ।

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहु-
तयो ह्याददायन् । तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ ५ ॥

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्य्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति । प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥ ६ ॥

ये सप्त चलती हुयी ज्वालारूप अग्निकी जिह्वा हैं । अग्निकूं होमद्रव्यकी आहुतिके ग्रसनअर्थ ये सप्त जिह्वा हैं ॥ ४ ॥

टीकाः—इन प्रकाशमान अग्निकी जिह्वाके भेदनविषै जो अग्निहोत्री, कालके अनुसार अग्निहोत्रादिरूप कर्मकूं आचरताहै, ता यजमान-कूं ये यजमानसैं करी हुयी आहुतियां ग्रहण करती हुयी सूर्यकी किरणरूप होयके तिन किरणरूप द्वारनसैं ता यजमानकूं ता स्वर्गके ताईं प्राप्त करैहैं । [वह स्वर्ग कैसा है ? तहां कहैहैं:—] जहां (जा स्वर्गविषै) एक देवनका पति इंद्र निवास करताहै ॥ ५ ॥

टीकाः—वे आहुतियां सूर्यकी किरणोंसैं यजमानकूं स्वर्गके ताईं कैसैं ले जावैहैं ? यह कहियेहैः—वे आहुतियां "आओ आओ" ऐसैं बुलावती हुयी औ प्रकाशमान हुयी "औ जैसैं ब्रह्मलोक पुण्यका फलरूप है तैसा यह आपका पुण्यरूप सुकृतका फलरूप ब्रह्मलोक (स्वर्ग) है;" ऐसी प्रिय वाणीकूं कहती हुयी औ पूजन करती हुयी, ता यजमानकूं सूर्यकी किरणोंसैं ले-जावैहैं ॥ ६ ॥

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥ ७ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः । जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥ ८ ॥

टीकाः—अब यह उपासनारहित कर्म जो है, सो जातैं इतनें (उक्त) फलवाला है, औ अविद्या काम अरु क्रियाका कार्य है; यातैं असाररूप है औ दुःखका कारण है, ऐसैं ताकी निंदा करियेहैः— जातैं ये यज्ञके निर्वाहक षोडश ऋत्विक् यजमानपत्नी औ यजमान इस भेदतैं अष्टादश संख्यावाले अदृढ (अस्थिर) या कर्मके आश्रय हैं, ऐसैं शास्त्रनैं कहाहै; औ जिन अष्टादश आश्रयन-विषै उपासनारहित, होनेतैं निकृष्ट केवल कर्म है । यातैं तिन निकृष्टकर्मके आश्रयरूप अष्टादश संख्यावालोंकूं अस्थिर होनेकरि विनाशी होनेतैं तिनकरि साध्य जो कर्म सो फलसहित विनाशकूं पावताहै । क्षीर औ दधि आदिकनके आश्रय मृत्तिकापात्रके विनाश आदिककी न्यांई ता कर्मके आश्रय फल स्वर्गरूप स्थानका नाश होवैहै । जातैं ऐसैं है, यातैं जो अविवेकी मूढ, यह कर्म श्रेय (मोक्षका साधन) है, ऐसैं जानिके हर्षकूं पावतेहैं; वे कछुक कालपर्यंत स्वर्गविषै स्थित होयके फेर बी जरा औ मृत्युकूंहीं पावतेहैं ॥ ७ ॥

टीकाः—किंवा वे मूढ, अविद्याके भीतर वर्त्तमान हुये, कहिये अत्यंत अविवेकयुक्त हुये, औ तत्त्वदर्शीके उपदेशकी अपेक्षासैं विना अपने मनोरथसैं, हमहीं बुद्धिमान् हैं, अरु जानने योग्य

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इ-त्यभिमन्यन्ति बालाः। यत्कर्म्मिणो न प्रवेद-यंति रागात्तेनाऽऽतुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥ ९॥

इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेद-यन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविशन्ति॥ १०॥

वस्तुके जाननेवाले पंडित हैं, ऐसैं आपकूं मानतेहैं। वे मूढ, जरा औ रोग आदिक अनेक अनर्थनके समूहनसैं अत्यंत पीडाकूं पावते हुये च्यारी औरतैं भ्रमतेहैं। जैसैं लोकविषै अंध-पुरुषसैं मार्गकूं देखनेवाले अंध (नेत्ररहित) पुरुष, खड्डा औ कंटक आदिकविषै गिरतेहैं, तैसैं वे मूढ संसारविषै गिर-तेहैं॥ ८॥

टीकाः—किंवा अज्ञानीरूप जे बालक हैं; वे अविद्याविषै बहुत प्रकारसैं वर्त्तमान हुये, हमहीं कृतार्थ (प्रयोजनकूं प्राप्त भये) हैं, ऐसैं अभिमानकूं करतेहैं। जातैं ऐसैं कर्मिष्ठ जन कर्म-फलके रागतैं होता जो है अपना तिरस्कार, ताके निमित्तकूं नहीं जानतेहैं; ता कारणसैं दुःखसैं आतुर हुये क्षीण भया है कर्मका फलरूप लोक जिनका, ऐसैं होयके स्वर्ग लोकतैं गिरतेहैं॥ ९॥

टीकाः—किंवा पुत्र पशु औ स्त्री आदिकनविषै प्रमादकूं प्राप्त होनेकरि जे प्रमूढ, इष्ट जो यागादिरूप श्रुतिप्रतिपादित कर्म है, औ पूर्त्त जो वापी कूप अरु तडाग आदिरूप स्मृतिप्रतिपादित कर्म है, ताकूं यहहीं अतिशयकरि पुरुषार्थका मुख्य साधन है ऐसैं चिंतन करते हुये अन्य जो आत्मज्ञाननामक श्रेयका साधन है ताकूं नहीं जानतेहैं। वे प्रमूढ, स्वर्गके ऊपर विद्यमान भोगके स्थानविषै कर्मफलकूं अनुभव करिके फेर या मनुष्य लोककूं

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्य्यां चरन्तः । सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११ ॥

वा इस मनुष्यलोकतैं अतिशय हीन तिर्यक् औ नरक आदिरूप लोककूं, शेष रहे कर्मके अनुसार पावतेहैं ॥ १० ॥

टीकाः—जे[52] फेर तिनतैं विपरीत उपासनायुक्त, वानप्रस्थ औ संन्यासी औ जे शांत (जितेंद्रिय) विद्वान् (उपासनाप्रधान गृहस्थ) भिक्षाके भोजनकूं करते हुये संग्रहके अभावतैं स्त्रीयनसैं रहित देशरूप वनविषै वर्त्तमान हुये, अपने आश्रमके अर्थ शास्त्रविहित कर्मरूप तप औ हिरण्यगर्भ आदिककूं विषय करनेवाली उपासनारूप श्रद्धा, इन दोनूं-कूं सेवन करतेहैं; वे सूर्य-सैं उपलक्षित उत्तरायणरूप द्वारसैं विरज (जैसैं पुण्यपापरूप कर्मके क्षयकूं प्राप्त हुये होवैं, तैसैं) हुये तिसविषै जातेहैं । जिस सत्यलोक आदिक-विषै अमृतस्वरूप सो प्रथम उत्पन्न भया औ अविनाशी स्वभाववाला (जहांलगि संसार है, तहांलगि स्थित होनेवाला) हिरण्यगर्भरूप पुरुष है । इहांपर्यंत तो अपर विद्यासैं प्राप्त होनेयोग्य संसारकी गतियां हैं ॥ "केईक पुरुष निश्चयकरि इस (ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप) मोक्षकूं इच्छते नहीं, किंतु ईहांहीं[53] तिनके सर्व काम विलय होवैहैं औ वे धीर पुरुष एकाग्रचित्तवाले हुये सर्वगत वस्तुकूं सर्व औरतैं पायके सर्वात्मभावकूं पावतेहैं" इन श्रुतिनतैं, औ प्रसंगतैं, यह अपरविद्याकी गति है, ऐसैं जानियेहै । जातैं यह प्रसंग, अपर विद्याके प्रसंगके प्रवृत्त हुये अकस्मात् प्रवृ-

५२ ऐसैं केवल कर्मिष्ठनके फलकूं कहिके अब सगुणब्रह्मकी उपासनासहित आश्रमके कर्मकरि युक्त पुरुषनके संसारगोचरहीं फलकूं दिखावैहैं ।

५३ मुक्त पुरुषनके इहांहीं सर्व कामके विलयकूं औ सर्वात्मभावकूं श्रुतियां दिखावैहैं । ब्रह्मलोककी प्राप्ति तो देशसैं परिच्छिन्न फल है, तातैं मोक्ष नहीं है; ऐसैं इहां कहैहैं ।

परीक्ष्य लोकान् कर्म्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥

त्त भया है, यातैं यह मोक्षका प्रसंग नहीं है । औ पुण्यपापमय कर्मकी क्षीणतारूप विरजपना जो कहा है, सो तो आपेक्षिक है, यातैं समस्त साध्य अरु साधनरूप क्रिया कारक अरु फलके भेदसैं भिन्न हिरण्यगर्भकी प्राप्तिपर्यंत जो द्वैत है, इतनाहीं अपरविद्याका कार्य है । तैसैं हुये स्थावर आदिकरूप संसारकी गतिकूं उल्लंघन करनेवाले पुरुषनकूं "ब्रह्मा, मरीचि आदिक प्रजापति, यम, महत्तत्व (सूत्रात्मा) औ अव्यक्त (त्रिगुणात्मक प्रकृति)रूप या गतिकूं पंडितजन सात्विक (सत्वगुणके परिणाम ज्ञानसहित कर्मकी फलरूप) उत्तम गति कहतेहैं" या स्मृतितैं ब्रह्मलोकादिककी प्राप्तिरूप उत्तम गति होवैहै; यह सिद्ध भया॥ ११॥

टीकाः—अब इस साध्य अरु साधनरूप सर्व संसारतैं विरक्त पुरुषकूं ब्रह्मविद्याविषै अधिकारके दिखावनेअर्थ यह कहियेहैः—**ब्राह्मण** जो है सो अविद्या आदिक दोषवाले पुरुषके प्रतिहीं विधान किया होनेतैं स्वाभाविक अविद्या काम अरु कर्मरूप दोषवाले पुरुषकरि अनुष्ठान करने योग्य जो यह ऋग्वेद आदिरूप अपरविद्याका विषय है, ताकूं औ जो ता अनुष्ठानके कार्य हुये फलरूप लोक हैं, औ जो विहित कर्मका अकरण औ प्रतिषेध कर्मका करना औ मर्यादाके उल्लंघनरूप दोषकरि साध्य नरक ति-

---

५४ "ब्राह्मणका जैसा एकता समता औ सत्यता [आदिरूप] धन है, ऐसा और नहीं" इस स्मृतितैं, औ ब्राह्मणकूं निवृत्तिप्रधान व्यवहारवाला होनेतैं ब्रह्मविद्याका मुख्य ब्राह्मणकूंहीं अधिकार हैं, या अभिप्रायतैं इहां श्रुतिविषै अधिकारीका विशेषणरूप ब्राह्मणपद है ।

र्यकूं अरु प्रेतयोनिरूप लोक हैं; तिन संसारकी गतिरूप अव्यक्तसैं आदिलेके स्थावरपर्यंत व्याकृत अरु अव्याकृत स्वरूप, बीज अरु अंकुरकी न्यांई परस्परकी उत्पत्तिके निमित्त अनेक शत औ सहस्र अनर्थनकरि पूर्ण कदलीके गर्भकी न्यांई, असार, माया, मृगजल गंधर्वनगरके आकार, स्वप्न, जलगत बुद्बुद, औ फेनके तुल्य क्षणक्षणविषै नाश होनेवाले, पींठतैं करिके (पीछेसैं देखे हुये) अविद्या अरु कामरूप दोषकरि प्रवर्त भये धर्म अधर्मरूप कर्मसैं रचित लोकनकूं प्रत्यक्ष अनुमान उपमान औ शास्त्ररूप च्यारी प्रमाणनसैं सर्व ओरतैं यथार्थपनेकरि निश्चयकरिके [लोकनकूं निश्चयकरिके क्या करै? तहां कहियेहैः—] वैराग्यकूं करै। सो वैराग्यका प्रकार दिखावैहैंः—या संसारविषै कोईबी अकृत (अजन्य) पदार्थ नहीं है, किंतु सर्वहीं लोक कर्मरचित हैं, औ कर्मरचित होनेतैं अनित्य हैं। कछुबी वस्तु नित्य नहीं है, यह अभिप्राय है। सर्व कर्म तो अनित्यका साधन है। जातैं उत्पत्ति होनेयोग्य, वा प्राप्ति होनेयोग्य, वा संस्कार करनेयोग्य, वा विकार करनेयोग्य, इस भेदतैं च्यारी प्रकारकाहीं सर्व कर्मका कार्य है। इसतैं अन्य कर्मनका विषय नहीं है। औ मैं; नित्य, अमृत, अभय, कूटस्थ (परिणामरहित), अचल (स्फुरणरहित), ध्रुव (प्रयत्नरहित), वस्तुसैं अर्थी (प्रयोजन)वाला हूं; तिसतैं विपरीत वस्तुसैं नहीं। यातैं बहुत श्रमकरि युक्त औ अनर्थके

---

५५ इसलोकसंबंधी कर्म फलरूप पुत्रादिकके नाशकूं विषय करनेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण है॥ विवादका विषय स्वर्गादिक अनित्य है, क्रियाकरि साध्य होनेतैं, घटकी न्यांई। यह अनुमान परलोकसंबंधी फलके नाशकूं विषय करनेवाला है। "सो जैसैं इहां कर्मसैं संपादित लोक क्षयकूं पावताहै, तैसैं उहां पुण्यसैं संपादन किया लोक क्षयकूं पावताहै" इत्यादिरूप आगम प्रमाण है; तिन प्रमाणनसैं अनित्य होनेकरि सर्व प्रकारसैं निश्चय करिके। यह अर्थ है।

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ ॥

इति मुण्डकोपनिषदि प्रथमं मुण्डकं समाप्तम् ॥ १ ॥

साधनरूप कृत (कर्म) सैं क्या प्रयोजन है ! इस प्रकार वैराग्यकूं प्राप्त होवै । पीछे सो वैराग्यकूं प्राप्त भया ब्राह्मण, समिधनके भारा ग्रहण किया है हस्तविषै जिसनैं, ऐसा हुया अभय शिव अकृत औ नित्यरूप जो पद है, ताकी विशेषकरि प्राप्ति अर्थ, शम दम अरु दयाकरि संपन्न श्रोत्रिय (अध्ययन किये औ श्रवण किये अर्थकरि संपन्न) औ ब्रह्मनिष्ठ (सर्वकर्मनकूं त्यागिके केवल अद्वैतरूप ब्रह्मविषै जाकी निष्ठा होवै ऐसै) गुरुके ताईंहीं शरण जावै । सो ब्राह्मण ता गुरुके तांई शास्त्रके अनुसार समीप गया हुया गुरुकूं प्रसन्न करिके सत्य औ अक्षररूप पुरुषकूं पूंछे ॥ १२ ॥

टीकाः—ता शास्त्रके अनुसार समीप आये शांतचित्तवाले (गर्व आदिक दोषनतें रहित) औ बाह्य इंद्रियनकी उपरतिरूप शमकरि

---

५६ इहां समित्पाणिपद अगर्वरूप विनयका उपलक्षण है ।

५७ इहां ब्रह्मनिष्ठशब्द जो है, सो तपोनिष्ठशब्दकी न्याईं है । जातैं कर्म औ आत्मज्ञान इन दोनूंका विरोध है, यातैं कर्मिष्ठकूं ब्रह्मनिष्ठा नहीं संभवैहै । ताहींतैं इहां सर्वकर्मकूं त्यागिके ब्रह्मविषै निष्ठा कही । अमुक कर्मके करनेतैं अमुक फलकी प्राप्ति होवैगी, औ ताके न करनेतैं प्रत्यवाय आदिक अनर्थकी प्राप्ति होवैगी; इस बुद्धिपूर्वक जो कर्मका वा किसी अन्य साधनका करना, सो कर्त्तव्य कहियेहै । तिस कर्त्तव्यकी बुद्धिका जो त्याग, सो इहां सर्वकर्मका त्याग है; क्रियामात्रका त्याग नहीं ।

५८ शास्त्रका ज्ञाता पुरुष बी ब्रह्मनिष्ठ गुरु विना स्वतंत्र ब्रह्मज्ञानकी खोजना नहीं करै; इस अर्थके जनावनेके लिये इहां एवशब्दका पर्याय "हीं" शब्द है ।

अथ द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

तदेतत्सत्यं। यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य! भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥ १ ॥

युक्त (सर्वतैं विरक्त) शिष्य के तांई सो विद्वान् (ब्रह्मवेत्ता गुरु) जिस परविद्यारूप विज्ञान-सैं अदृश्य आदिक विशेषणवाले सत्य औ अक्षररूप पुरुषकूं जानता है, ता ब्रह्मविद्याकूं यथार्थ कहै ॥ आचार्यका बी यह नियम है जो, न्यायतैं प्राप्त भये शिष्यका अविद्यारूप महोदधितैं उद्धार करना ॥ १३ ॥

इति श्रीमुंडकोपनिषद्गत प्रथम मुंडके द्वितीयखंड भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

अथ द्वितीयमुंडकगत प्रथमखंड भाष्यभाषा-दीपिका प्रारभ्यते ॥ २ ॥

टीकाः—इहांपर्यंत अपर विद्याका सर्व कार्य कहा। अब सो अपर विद्याका कार्यरूप संसार जिस सारवाला है, औ जिस अक्षररूप मूलतैं उपजेहै, औ जिसविषै लीन होवैहै, सो पुरुष नामवाला अक्षर सत्य है। जिसके जाने हुये सर्व यह जान्या जावैहै, सो पराहरूप ब्रह्मविद्याका विषय है। सो कहने योग्य है। यातैं यह उत्तर

---

५९ अवयवनके अन्यथाभावरूप परिणाम स्वरूप क्षरणतैं रहित होनेतैं, औ शरीररहिततारूप अक्षतपनैंतैं, औ विकाररूप क्षयतैं रहित होनेतैं यह पुरुष अक्षर कहियेहै।

६० "दो विद्या जाननेकूं योग्य हैं" इस याके चतुर्थ मंत्रसैं दोनूंविद्याके कहनेका आरंभ करिके, प्रथममुंडकसैं अपरविद्याका वर्णन करिके अब परविद्याका वर्णन करनेकूं द्वितीयमुंडकका आरंभ है; ऐसैं इहां कहेहैं।

ग्रंथ आरंभ करियेहैः–[६१]जो अपरविद्याका विषय कर्मका फ-
लरूप सत्य है, सो आपेक्षिक है। यह परविद्याका विषय तो पर-
मार्थतैं सत्‌रूप होनेतैं सो यह विद्याका विषय **सत्य** (यथार्थ)
है। औ अन्य, अविद्याका विषय होनेतैं मिथ्या है॥ [६२]ननु, अक्ष-
वस्तुकूं अत्यंत परोक्ष होनेतैं प्रत्यक्षकी न्यांई कैसैं प्राप्त होवैंगे?
या शंकाकूं मनमैं ल्यायके दृष्टांत कहैहैंः–जैसैं **सुंदर प्रकार**
करि प्रज्वलित भये अग्नितैं सहस्र (अनेक) **अग्निके समान**
रूपवाले अग्निके अवयवरूप **विस्फुलिंग** (चिणगारे) **निक-**
सतेहैं; तैसैं हे सोम्य (प्रियदर्शन शिष्य)! उक्त लक्षणवाले
अक्षरतैं आकाश आदिककी न्यांई नाना देहरूप उपाधिनके भेदके
अनुसारी होनेतैं **विविध** प्रकारके **भाव** (जीव) **उपजतेहैं**।
जैसैं घटादिक उपाधिकरि परिच्छिन्न नानाप्रकारके आकाशरूप
छिद्रके भेद, घटादिक उपाधिनके भेदके अनुसार होवैहैं, ऐसैं

---

६१ जैसा पूर्व कर्मका बी सत्यपना कहाथा, तैसा यह परविद्याके वि-
षयका सत्यपना माननेकूं योग्य नहीं; ऐसैं कहैहैं।

६२ इहां यह हार्दव हैः–ब्रह्मकूं पुण्यपापरूप अपूर्वकी न्यांई अत्यंत
परोक्ष होनेतैं, (एक शास्त्ररूप प्रमाणसैं जाननेकूं योग्य होनेतैं) ताका
प्रत्यक्षज्ञान संभवै नहीं; औ मोक्ष जो है सो साक्षात्कारके अधीन है; तातैं
तिस सत्यरूप अक्षरकूं मुमुक्षुजन कैसैं प्रत्यक्षकी न्यांई प्राप्त होवैंगे? इस
अभिप्रायसैं जीवब्रह्मकी एकताविषै दृष्टांत कहैहैं। इहां यह अर्थ हैः–ए-
कताके हुये प्रत्यक्‌रूप आत्माकूं अपरोक्ष होनेतैं ब्रह्मका बी घटके एकदे-
शके प्रत्यक्षसैं सारे घटके प्रत्यक्षकी न्यांई प्रत्यक्षपना होवैगा। इहां उक्त
दृष्टांत औ सिद्धांतका यह वर्णन हैः– जैसैं अग्निके सूक्ष्म अवयवरूप वि-
स्फुलिंगनविषै भिन्न भिन्न देशनके अवच्छेदसैं युक्त होनेकरि अवयवपनै
आदिकका व्यवहार है, परंतु स्वरूपसैं फेर बी अग्निरूपताहीं है; उष्ण औ
प्रकाशपनैके अविशेषतैं। तैसैं चेतनरूपताके अविशेषतैं जीवनकूं स्वरूपसैं
ब्रह्मरूपताहीं है।

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः॥२॥

जीव बी नाना नामरूप रचित देहरूप उपाधिके भेदके अनुसार होवैहैं। फेर बी घटादिकके विलय भये पीछे आकाशरूप छिद्रनके विलयकी न्यांई तिसीहीं अक्षर-विषै देहरूप उपाधिनके विलय भये पीछे लीन होवैहैं। जैसैं आकाशकूं छिद्रनके भेदके उत्पत्ति औ प्रलयका निमित्तपना जो है, सो घटादिक उपाधिनका कियाहीं है; तैसैं अक्षरकूं बी जीवनके उत्पत्ति औ प्रलयका निमित्तपना जो है, सो नामरूपकृत देहउपाधिरूप निमित्तका कियाहीं है ॥ १ ॥

टीकाः—अब नाँम[६३] रूपके बीजभूत अव्याकृत नामवाले औ अपने कार्यकी अपेक्षाकरि पर (श्रेष्ठ) अक्षरतैं पर जो सर्व उपाधिनके भेदसैं रहित, औ आकाशकी न्यांई सर्व मूर्त्ति (आकार) सैं रहित, औ "नेति नेति (कार्यरूप नहीं औ कारणरूप नहीं)" इत्यादिक विशेषणवाला जो अक्षरकाहीं स्वरूप है, ताकूं कहनेकूं इच्छते हुये कहैहैं:— जो स्वयंज्योतिरूप होनेतैं दिव्य (प्रकाशमान) है, वा अपने आत्मारूप स्वर्गविषै स्थित है, यातैं दिव्य है, वा अलौकिक है। जातैं दिव्य है; औ जातैं सर्व मूर्त्तिनसैं रहित है यातैं अमूर्त्त है; पूर्ण है, वा शरीररूप पुरीनविषै रहता है यातैं पुरुष है। ऐसा दिव्य औ अमूर्त्त (आकाररहित) जो पुरुष है सो बाँहिर[६४] अरु भीतरके देशकरि सहित वर्त्तता है। औ

---

६३ अक्षर पुरुषकूं जो उपाधिका किया जीवकी उत्पत्ति औ प्रलयका निमित्तपना कहा, सो कार्यकारणभावकरि तिनकी एकताकी सिद्धि अर्थ है। परमार्थतैं स्तुतिरूप निमित्तवाला जीवनकी उत्पत्ति औ प्रलयका निमित्तभाव बी नहीं है, ऐसैं कहैहैं।

६४ देहकी अपेक्षासैं जो बाहिर औ भीतररूप देश प्रसिद्ध है, तिसके

अजन्मा है; कहिये किसीतैं बी जन्मकूं पावता नहीं; काहेतैं; स्वरूपतैं जो अजन्मा है ताके जन्मके निमित्तके अभावतैं। जैसैं स्वरूपतैं जन्मवाले जलगत बुद्बुद आदिकनके जन्मके निमित्त वायु आदिक हैं, औ जैसैं स्वरूपतैं जन्मवाले आकाशके छिद्रनके भेदक जन्मके निमित्त घटादिक हैं; तैसैं स्वरूपतैं जन्मरहित परमात्माके जन्मका निमित्त नहीं है। यातैं [६५]सर्व भावरूप विकारनकूं जन्मरूप मूलवाले होनेतैं तिस जन्मके निषेधतैं सर्व विकार निषेधकूं प्राप्त होवैहैं। जातैं यह पुरुष बाहिर भीतर सहित है, औ अजन्मा है; यातैं अजर है, अमृत है, अक्षय है, ध्रुव है, औ अभय है; यह अर्थ है। [६६]यद्यपि देहादिक उपाधिनके भेदकी दृष्टिवाले पुरुषनकूं तल मल आदिक धर्मवाले आकाशकी न्याईं अविद्याके वशतैं देहके भेदनविषै, सो पुरुष, प्राणसहित मनसहित इंद्रियसहित औ विषयसहित प्रतीत होवैहै; तथापि स्वरूपतैं परमार्थकरि देख्या हुया क्रियाशक्तिके भेदवाला चलनरूप प्रसिद्ध विद्यमान प्राण वायु जिसविषै विद्यमान नहीं है; यातैं यह पुरुष **अप्राण** है। तैसैं अनेक ज्ञानशक्तिके भेदवाला संकल्प आदिकरूप मन बी जिसविषै अविद्यमान है, यातैं यह पुरुष **अमना** है।

साथि तादात्म्यसैं वा तिसके अधिष्ठानपनैसैं वर्तता है, यातैं सबाह्याभ्यंतर (बाहिरभीतरसहित) है; याहींतैं सर्वरूप होनेतैं तिसतैं भिन्न जन्मके निमित्तके अभावतैं अज (अजन्मा) है।

६५ जायते (जन्म), अस्ति (प्रकटता), विपरिणमते (विपरिणाम) अपक्षीयते (अपक्षय), विनश्यति (विनाश); इन यास्क नाम मुनिनैं निरुक्त नामक ग्रंथविषै कथन किये षट् अनिर्वचनीयभावरूप विकारनके निषेधविषै अजशब्दके तात्पर्यकूं कहैहैं।

६६ जीवनकूं प्राण आदिककरि युक्त होनेतैं तिनकी स्वरूपताके हुये ब्रह्मकूं बी प्राणआदिककरि युक्तपना प्राप्त भया, ताकूं निवारण करैहैं।

इहां अप्राण औ अमना इस कथनतैं प्राण आदिक वायुके भेद कर्म्मेंद्रिय औ तिनके विषय तथा मन बुद्धि ज्ञानेंद्रिय औ तिनके विषय निषेध किये जानने । जैसैं "ध्यान करते हुयेकी न्याईं है, औ लीला (क्रिया) करते हुयेकी न्याईं है" इस अन्य श्रुतिविषै दोनूं उपाधिनके निषेधतैं सर्व उपाधिनका निषेध जनाया है; तैसैं इहां वी जानिलेना । जातैं ऐसैं उपाधिनसैं रहित अद्वैतरूप है, तातैं शुभ्र (शुद्ध) है । जातैं शुभ्र है, यातैं नामरूपके बीज (ब्रह्म)-का उपाधि होनेकरि लक्षित है स्वरूप जिसका, ऐसै माया उपाधिरूप औ ता उपाधिकरि विशिष्ट ब्रह्मरूप सर्व कार्यनतैं पर (श्रेष्ठ) अक्षरतैं पर (निरुपाधिक) सो पुरुष है । यह अर्थ है ॥ ननु, जिसविषै सो आकाश नामक अक्षर सम्यक् व्यवहार-का विषय हुया ओत औ प्रोत है, ता अक्षर पुरुषकूं फेर प्राणादिकसैं रहितपना कैसैं है ? तहां कहियेहैः—जब प्राणादिक, उत्पत्तितैं पूर्व पुरुषकी न्याईं अपने स्वरूपसैं विद्यमान होवै तब पुरुषकूं विद्यमान प्राणादिकसैं प्राणादिमान्‌पना होवै; परंतु वे प्राणादिक उत्पत्तितैं पूर्व विद्यमान नहीं हैं, यातैं परपुरुष प्राणादि-कसैं रहित है ॥ २ ॥

---

६७ ननु, माया तत्त्वरूप अक्षरकूं परपना कैसैं है ? इस आशंकाके भये कहैहैंः—जातैं मायातत्त्व सर्व कार्य औ कारणका बीज होनेकरि लखियेहै, यातैं पर है । कार्य जो है सो अपर (अश्रेष्ठ) रूप प्रसिद्ध है । जातैं तिसका कारण होनेकरि जानियेहै, यातैं मायातत्त्व पर (श्रेष्ठ) है । औ यौक्तिक बाधतैं अनिर्वचनीय हुये वी ताके स्वरूपके उच्छेदके अभावतैं मायातत्त्व अक्षर है । सो गीताके पंचदशम अध्यायविषै कहाहैः— "सर्व (कार्यकारणरूप) भूत क्षर हैं औ कूटस्थ (कपटकी न्याईं मिथ्या स्थित होनेवाला मायातत्त्व) अक्षर कहियेहै । उत्तम पुरुष तो अन्य है, जो पर-मात्मा ऐसैं कहाहै" इति ।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्व्वेंद्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ ॥

टीका:—जैसें पुत्रके अनुत्पन्न हुये देवदत्त पुत्रसैं रहित है, तैं पर पुरुषकूं वे प्राणादिक कैसें विद्यमान नहीं हैं? तहां कहियेहैं:- जातैं नाम रूपके बीज (ब्रह्म) के उपाधिकरि लक्षित या पुरुष-तैं अविद्याके अधीन कार्यरूप नाममात्र मिथ्या स्वरूप **प्राण** उपजे है। "वाणीसैं उच्चारण किया विकार (कार्य) नाममात्र है" इस अन्य श्रुतितैं। तिस हेतुकरि जैसें पुत्ररहित देवदत्तकूं स्वप्न विषै देखे हुये पुत्रसैं पुत्रसहितपना नहीं है; तैसें अविद्याके विषय (अधीन) औ गुणयुक्त प्राणसैं परपुरुषकूं प्राणसहितपना नहीं है। ऐसें **मन** औ **सर्व इंद्रिय** औ तिनके विषय इसीहीं पुरुषतैं उपजे हैं। यातैं या पुरुषकूं आरोपसैं रहित (यथार्थ) प्राणादिकसैं रहितपना सिद्ध भया। जैसें वे प्राणादिक उत्पत्तितैं पूर्व परमार्थतैं अविद्यमान हैं, तैसें उत्पत्तितैं पीछे तिसीहींविषै लीन होवैहैं; ऐसें जानना। जैसें या पुरुषतैं मन औ इंद्रियरूप करण उपजेहैं; तैसें शरीर औ विषयनके कारण जे **आकाश** औ आवह आदिक सप्त भेदवाला बाहिरका **वायु** औ **अग्नि** औ **जल** औ **विश्वकी धारण करनेवाली पृथिवी;** ये शब्द स्पर्श रूप रस औ गंधरूप पीछे

---

६८ जोई चैतन्य निरुपाधिक शुद्ध अविकल्परूप ब्रह्म, तत्त्वज्ञानतैं जीवनका कैवल्य (मोक्ष) रूप है; सोई ब्रह्म, मायाविषै स्थित प्रतिबिंबरूपसैं कारण होवैहै; ऐसें कहैहैं।

६९ जब प्राणकी उत्पत्तितैं पूर्व आत्माकूं प्राणसहितपना नहीं है, तौ प्राणकी उत्पत्तितैं पीछे आत्माकूं प्राणसहितपना होवैगा? इस शंकाकी निवृत्ति अर्थ, अन्य श्रुतिविषै प्रसिद्ध प्राणके विशेषणकूं कहैहैं।

अग्निर्म्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्व्वभूतान्तरात्मा ॥४

पीछले गुणवाले औ पूर्वपूर्वके गुणसहित पंचभूत याही पुरुषतैं उपजेहैं ॥ ऐसैं "दिव्य अमूर्त्त पुरुष है" इत्यादि मंत्रसैं निर्विशेष (निरुपाधिक) सत्य अक्षर पुरुषरूप परविद्याके विषयकूं संक्षेपतैं कहिके; फेर सोई पूर्वउक्त सविशेष (सोपाधिक) वस्तु, अब विस्तारसैं कहनेकूं योग्य है । जातैं सूत्रभाष्यकी उक्तिकी न्यांई एकहीं प्रसंगविषै संक्षेप औ विस्तारसैं कथन किया पदार्थ सुखसैं जान्या जावैहै; यातैं पूर्व संक्षेपतैं कथन किये निरुपाधिक वस्तुकूं अब सोपाधिकपनैकरि विंस्तारसैं कहैहैं ॥ ३ ॥

टीकाः—जो प्रथम उत्पन्न भये हिरण्यगर्भरूप प्राणतैं उपजेहै, औ अन्यतत्त्वसहित आकाशके स्वरूपसैं लखियेहैः ऐसा इस हिरण्यगर्भके भीतर वर्त्तमान विराट् है, सो बी याहीं पुरुषतैं उपजेहै, औ इसीका स्वरूप है; याही अर्थकूं अब कहैहैं, औ ता विराट् पुरुषकूं विशेषण देतेहैंः—"हे गौतम! यह प्रसिद्ध स्वर्गलोक अग्नि है" इस श्रुतितैं । अग्नि जो स्वर्गलोक सो है मस्तक जिसका, औ चंद्र औ सूर्य हैं दोनूं चक्षु जिसके, औ दश दिशा हैं दोनूं श्रोत्र जिसके, औ प्रसिद्ध च्यारी वेद हैं वाणी जिसकी, औ वायु है प्राण जिसका, औ समस्त जगत् है हृदय (अंतःकरण) जिसका । जातैं अंतःकरणका विकाररूपहीं सर्व जगत् मनविषैहीं है; काहेतैं सुषुप्तिविषै जगत्के प्रलयके देखनेतैं, औ जाग्रत्विषै बी तिसीहीं मनतैं अग्नितैं चिणगारेकी न्यांई उत्पन्न होनेतैं । यातैं इहां सर्व जगत् विराट्का अंतःकरण कहा । औ जिसके दोनूं पादनसैं पृथिवी भई है, यह प्रथम शरीरधारी त्रैलो-

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्य्यः सोमात् प-र्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्। पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः ॥५॥

क्यमय देहरूप उपाधिवाला अनंतरूप विष्णुदेव आकाश आदिक सर्व भूतनका अंतरात्मा (स्थूल पंचभूतरूप शरीरवाला विराट्) है। सोई सर्व भूतनविषै द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता औ सर्व कर-णोंका स्वरूप है। औ पांचं अग्निरूप द्वारसैं जे प्रजा व्यवहा करैहैं, वे प्रजा बी तिसीहीं पुरुषतैं उपजेहैं; ऐसैं अब आगिले मं-त्रविषै कहियेहै ॥ ४ ॥

टीकाः—तिस परपुरुष तैं प्रजाकी स्थितिविशेषरूप जो स्वर्ग-लोकरूप अग्नि है सो उत्पन्न होवैहै. जा अग्नि-का सूर्य समि-धकी न्यांई समिध है। जातैं सूर्यसैं स्वर्गलोक प्रकाशित होवैहै याते सूर्य, ताका समिध है। तिस स्वर्गलोकरूप अग्नितैं उत्पन्न भये चंद्रमातैं मेघ-रूप दूसरा अग्नि उपजेहै। तिस मेघतैं पृथि-वीविषै औषधियां होवैहैं। पुरुषरूप अग्निविषै हवन करी हुयी औषधिनतैं पुरुषरूप अग्नि जो है, सो स्त्री-रूप अग्नि-विषै वी-र्यकूं सिंचन करैहै। ऐसैं क्रमकरि परब्रह्मरूप पुरुषतैं बहुतसी ब्राह्मण आदिक प्रजा उत्पन्न होवैहैं ॥ किंवा कर्मके साधन औ फल तिसीहीं पुरुषतैं होवैहैं, ऐसैं अब आगिले मंत्रविषै कहैहैं ॥ ९ ॥

---

७० स्वर्गलोक, मेघ, पृथिवी, पुरुष, औ स्त्री; इन पांचविषै अग्निकी दृष्टिकूं अन्य श्रुतिकरि उक्त होनेतैं तिन स्वर्गआदिक पांच अग्निरूप द्वारसैं। यह अर्थ है।

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्व्वे क्रतवो दक्षिणाश्च। संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य्यः ॥ ६ ॥

टीकाः—तिस पुरुषतैं कर्मके साधन औ फल कैसैं होवैहैं ? तहां कहियेहैः—ता पुरुषतैं नियमित अक्षरवाले पद हैं अंतविषै जिनके, ऐसै गायत्री आदिक छंदकरियुक्त मंत्ररूप **ऋचा** औ पांच[71] अवयववाला सात[72] अवयववाला अरु अर्थरहित अक्षररूप स्तोम आदिकके गायनकरि युक्त भेदतैं तीन भांतिका **साम**; औ नियमरहित अक्षरवाले पद हैं अंतविषै जिनके, ऐसै वाक्यरूप **यजुर्वेदके मंत्र**; ऐसैं तीन प्रकारके मंत्र होते भये। औ यज्ञोपवीत आदिक लक्षणवाले कर्त्ताके नियमविशेषरूप **दीक्षा**, औ यज्ञके स्तंभसहित सर्व अग्निहोत्र आदिक **क्रतुरूप यज्ञ**, औ एक[73] गौसैं आदिलेके अपरिमित सर्व धनके दानपर्यंत **दक्षिणा**, औ कालरूप **संवत्सर**, औ कर्त्तारूप **यजमान**, ये कर्मके साधन, औ तिस कर्त्ताके कर्मके फलरूप **लोक**, वे उपजेहैं। जिन लोकन-विषै चंद्रमा लोकनकूं **पोषण करैहै** औ जिन लोकनविषै **सूर्य तपता है**, वे लोक दक्षिणायन औ उत्तरायणरूप दोनूं मार्गनसैं गमन करनेयोग्य विद्वान् अरु अविद्वान्रूप कर्त्ताके फलरूप हैं ॥ ६ ॥

---

७१ हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, औ निधन; नामक पांच अवयववाला जो साम है, सो पांचभक्तिक कहियेहै।

७२ हिंकार, प्रस्ताव, आद्य, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव, औ निधन; नामक सात अवयववाला जो साम है, सो सात्तभक्तिक कहियेहै।

७३ विश्वजित् औ सर्वमेध, इन दोनूं यागनविषै सर्वस्व (सर्वधन) की दक्षिणा होवैहै; यातैं एक गौकूं आरंभ करिके सर्वस्वपर्यंत दक्षिणा होवैहै।

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि । प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्य्यं विधिश्च ॥ ७ ॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः । सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ ८ ॥

टीकाः—औ ता पुरुष-तैं कर्मके अंगभूत वसु आदिक गणोंके भेदसैं बहुत प्रकारके **देव**, सम्यक् उत्पन्न होते भये । **साध्य** नामक देवविशेष औ कर्मके अधिकारी **मनुष्य** औ ग्राम औ वनके निवासी **पशु** औ **पक्षी**, उत्पन्न होते भये, औ मनुष्य आदिकनका जीवन, **प्राण** औ **अपान**, औ हवनरूप अर्थवाले **तंडुल** अरु **यव**, औ कर्मका अंग[७४] पुरुषके संस्कारस्वरूप अरु स्वतंत्र फलका साधनरूप **तप**, औ जाके पूर्व होते सर्व पुरुषार्थनके साधनोका कारणरूप चित्तकी प्रसन्नता होवैहै, ऐसी आस्तिकपनेकी बुद्धिरूप **श्रद्धा**, औ पीडाका न करनेवाला जूठसैं रहित यथार्थ अर्थका कथनरूप **सत्य**, औ मैथुनके अकरणरूप **ब्रह्मचर्य** औ कर्त्तव्यतारूप **विधि**; ये सर्व उत्पन्न होते भये ॥ ७ ॥

टीकाः—किंवाः—ताहीं पुरुष-तैं मस्तकविषै स्थित दो श्रवण, दो नेत्र, दो घ्राण, औ एक मुखगत रसना ये **सप्त प्राण** (इंद्रिय) होवैहैं; औ तिन प्राणनकी अपने अपने विषयकी प्रकाश करनेरूप **सप्त ज्वाला** होवैहैं । तैसैं सप्त विषयरूप **सप्त समिध** होवैहैं ।

---

७४ "ब्राह्मणका पयोव्रत, क्षत्रियका यवागू (कांजी) व्रत है, औ वैश्यका आमीक्षा (मिलित दधि औ दुग्धका विकार) व्रत है," इत्यादि श्रुतिविषै विधान किया जो कृच्छ्र औ चांद्रायण आदिक व्रत, सो कर्मका अंगभूत तप है ।

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्व्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्व्वरूपाः । अतश्च सर्व्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९ ॥

जातैं विषयनसैं ये इंद्रियरूप प्राण बाहिर प्रवृत्त होवैहैं, यातैं विषय इनके समिध हैं । औ "जो याका विज्ञान है ताकूं होम करता है" या अन्य श्रुतितैं, तिन विषयनके विज्ञानरूप सप्त होम होवैहैं । किंवा जिनविषै प्रांण[75] विचरतेहैं; ऐसैं इंद्रियनके स्थानरूप ये सप्त लोक होवैहैं । वे प्राण कैसैहैं किः— जो प्राण निद्राकालमैं शरीररूप वा हृदयरूप गुहाविषै रहतेहैं, औ जो परमेश्वरनैं प्राणीनके भेदके प्रति सप्त सप्त स्थापन कियेहैं । या सारे प्रकरणका यह अर्थ हैः— आत्मयाजी[76] विद्वान् पुरुषनके जे कर्म औ तिन कर्मनके साधन औ कर्मनके फल हैं, अरु अविद्वान् पुरुषनके कर्म औ तिन कर्मनके साधन औ कर्मनके फल हैं; यह सर्व जगत् सर्वज्ञ पर पुरुषतैंहीं उत्पन्न भया है ॥ ८ ॥

टीकाः—या पुरुष-तैं सर्व क्षार आदिक सप्त समुद्र होवैहैं औ हिमवान् आदिक सर्व पर्वत याहीं पुरुष-तैं होवैहैं, औ बहुरूपवाली गंगा आदिक नदीयां याही पुरुषतैं स्रवैहैं, औ याहीं पुरुष-तैं सर्व तंडुल अरु यव आदिक औषधियां होवैहैं, औ याहीं पुरुष-तैं मधुर आदिक षट् प्रकारका रस होवैहै, जा रससैं स्थूल पंच भूतनकरि आवृत हुया अंतरात्मा (लिंगशरीर) स्थित होवैहै । लिंगरूप जो सूक्ष्मशरीर सो जातैं स्थूलशरीर औ आत्माके मध्यविषै बढताहै; यातैं अंतरात्मा कहियेहै ॥ ९ ॥

---

७५ इहां प्राण, ऐसै प्राणोके विशेषणतैं यह विशेषण प्राण अपान आदिक वायुरूप प्राणोके निषेध अर्थ है, ऐसैं जानियेहै ।

७६ "सर्व यह जगत्, औ मैं, परमात्माहीं है;" ऐसी भावनापूर्वक परमेश्वरके आराधनकी बुद्धिसैं जो यजन करतेहैं, वे आत्मयाजी कहियेहैं ।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य !॥ १० ॥

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ २ ॥

टीका:—ऐसैं पुरुषतैं यह सर्व उत्पन्न भया है।यातैं वाणीसैं उच्चारण किया विकार नाममात्र (मिथ्या) है, औ पुरुषहीं सत्य है। यातैं पुरुषहीं यह सर्व है। पुरुषतैं अन्य विश्व नाम कछु वस्तु नहीं है। यातैं "हे भगवन्! किसके जाने हुये सर्व यह [illegible] जावैहै?" इस तृतीय मंत्रविषै जो कहाथा, सो यह कँथन किया। ननु, इस सर्वके कारण परमात्माके जाने हुये, "पुरुषहीं यह सर्व विश्व है" ऐसैं जान्या जावैहै। फेर यह विश्व क्या है? तहां कहियेहैः—अग्निहोत्रादिरूप कर्म औ ता कर्मका किया ज्ञानमय तप औ अन्यहीं जो यह सर्व है, सो जातैं ब्रह्मका कार्य्य है; तातैं हे सोम्य (प्रियदर्शन)! सर्व प्राणीनकी हृदयरूप गुहाविषै स्थित परम अमृतरूप या ब्रह्मकूं "यह मैंही हूं" ऐसैं जो जानताहै, सो ऐसै विज्ञानतैं इहां जीवता हुयाहीं (न मन्या हुया) अविद्याके ग्रंथिकी न्यांई दृढ भई अविद्याकी वासनाकूं नाश करैहै ॥ १० ॥

इति श्रीमुंडकोपनिषद्गतद्वितीयमुंडके प्रथमखंडभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

---

७७ जो तृतीयमंत्रसैं शिष्यनैं पूछ्याथा किः— "हे भगवन्! किसके जाने हुये सर्व यह जान्या जावैहै?" सो निरूपण कियाः— सर्व परमात्मातैं उपजेहै। यातैं परमात्मस्वरूप सर्व, तिसके जाने हुये जान्या जावैहै। ऐसैं अविद्याके क्षयरूप फलके कथनसैं समाप्त किया।

अथ द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैतत् समर्पितम् । एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परविज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयमुंडकगत द्वितीयखंड भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ २ ॥

टीकाः—अँरूप औ सत्स्वरूप जो अक्षर (ब्रह्म) है, सो किस प्रकारसैं जाननेकूं योग्य है ? तहां कहियेहैः— जो ब्रह्म प्रकाशरूप है औ सम्यक् स्थित है; कहिये "वाणी आदिक उपाधिनसैं प्रकाशताहै औ विराजताहै" इस अन्य श्रुतितैं । शब्दादिकनकूं प्रकाशता हुया भासताहै, औ दर्शन श्रवण मनन औ विज्ञान आदिक उपाधिनके धर्मनसैं प्रकट हुया सर्व प्राणीनके हृदयविषै लखियेहै, औ जो यह प्रकट हुया ब्रह्म हृदयविषै सम्यक् स्थित है; सो दर्शन औ श्रवण आदिक प्रकारनसैं हृदयरूप गुहाविषै विच-

---

७८ अब जिसकूं एकवार उपदेशमात्रसैं "अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं" ऐसा वाक्यार्थका ज्ञान अनुभवपर्यंत होवै नहीं, ताकूं वाक्यके अर्थकीहीं वारंवार भावना औ युक्तिके अनुसंधानरूप उपायका अनुष्ठान कर्त्तव्य है । इस अभिप्रायसैं कहेहैं ॥

७९ विश्वके ज्ञानरूपसैं प्रकाशमान ब्रह्म है, ताकूं मुमुक्षु सदा भावना करे । यह अर्थ है । सो अन्य ग्रंथकारोनैं बी कहाहैः— "जो है, जो भासता है, सो आत्मरूप है । तिसतैं अन्य भासता नहीं, औ अंन्य है नहीं । किंतु केवल अपनी सत्तारूप संवित् (चेतन) भासता है । ग्राह्य (विषय) औ ग्रहीता (विषयी) यह कल्पना मिथ्याही है" इति ।

८० सर्व प्राणीनके हृदयविषै स्थित वाक् आदिक उपाधिनसैं शब्दादिकनकूं प्राप्त हुयेकी न्याईं ब्रह्मही जीवभावकूं प्राप्त हुया भासताहै; तातैं सो अपरोक्ष है, ऐसैं सदा स्मरण करै । यह अर्थ है ।

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च । तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः । तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥ २ ॥

रनेवाला **गुहाचर** ऐसै **नामवाला** प्रख्यात है । औ (८१)जो ब्रह्म सर्वतैं बडा होनेतैं महत् है, औ सर्व पदार्थनका आश्रय होनेतैं सर्वसैं प्राप्त होवैहै, यातैं पद है; याहीतैं **महत्पदरूप** है ॥ नतु सो ब्रह्म महत्पदरूप कैसैं है? तहां कहियेहैः—जो चलनेवाला पक्षी आदिक है, औ प्राण अपान आदिक **प्राणोवाला** मनुष्य पशुआदिक है, औ **निमिष** आदिक क्रिया-वाला है, औ अनिमिषवाला है । यह सर्व इस ब्रह्म-विषै रथचक्रकी नाभिविषै अरकी न्यांई प्रवेशकूं पाया है । ऐसा जो आश्रय है; **याकूं** हे शिष्य! तुम सर्व **जानो** । सो ब्रह्म तुह्मारा आत्मरूप है, औ **सत् असत् स्वरूप** है; काहेतैं सत् असत् कहिये मूर्त्त औ अमूर्त्त-रूप जो स्थूल औ सूक्ष्म प्रपंच तिनकूं तिस ब्रह्मतैं भिन्न भावके अभावतैं । औ सोई **ब्रह्म वरेण्य है;** कहिये नित्य होनेतैं सर्वकूं मांगनेयोग्य है, औ **प्रजाके विज्ञानतैं पर** (न्यारा) है; कहिये जो लौकिक ज्ञानका अगोचर है, औ जो **वरिष्ठ है;** कहिये सर्व श्रेष्ठ पदार्थनविषै सोई एक ब्रह्म अतिशयकरि श्रेष्ठ है; काहेतैं सर्व दोषनसैं रहित होनेतैं ॥ १ ॥

टीकाः—(८२)**जो** ब्रह्म अपने प्रकाशसैं सूर्य आदिककूं प्रकाशता

---

८१ अब सर्व यह जगत् कार्यरूप औ परिच्छिन्नरूप है; काहेतैं, आश्रयसहितका कार्यरूप होनेतैं औ परिच्छिन्न होनेतैं घटादिककी न्यांई तातैं जो सर्वका आश्रय है, सोई मायाका आश्रय आत्मरूप है । इस उक्तिके अनुसंधानकूं कहैहैं ।

८२ घटादिककी न्यांई सूर्यादिककूं जडताके हुये बी जो प्रका

यातैं प्रकाशवान् है । किंवा[३] जो सामाआदिक सूक्ष्म वस्तुनतैं बी सूक्ष्म है[८४] औ पृथिवी आदिक स्थूल वस्तुनतैं अतिशयकरि स्थूल है, औ जिसविषै[८५] पृथिवी आदिक लोक अरु जे मनुष्य आदिक चैतन्यके आश्रित प्रसिद्ध सर्व लोकके निवासी हैं, वे स्थित हैं। सो[८६] यह सर्वका आश्रय अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म है सो प्राण है, औ सो वाक् औ मन है, औ चशब्दसैं उपलक्षित सर्व करणरूप है। कहिये प्राण आदिकनके भीतर विद्यमान जो चैतन्य है, सो तिनका आश्रय होनेतैं प्राण औ इंद्रिय आदिक सर्व संघातरूप है । काहेतैं "प्राणका प्राण है" इत्यादिरूप अन्य श्रुतितैं। जो प्राण आदिकनके भीतर चैतन्यरूप अक्षर है, सो यह सत्य है; यातैं सो अमृत (अविनाशी) है। सो मनसैं वेधनेकूं (ताडन करनेकूं) योग्य है; कहिये तिसविषै मनका समाधान करनेकूं योग्य है। जातैं ऐसैं है, यातैं हे सोम्य ! वेधन कर (अक्षरविषै चित्तकूं एकाग्र कर) ॥ २ ॥

मानपनैविषै विचित्रता है, ताका ब्रह्मरूप प्रकाशविना असंभव है। ता असंभवरूप अर्थापत्ति प्रमाणसैं बी ताका कारण निश्चय करनेकूं योग्य है। ऐसैं इहां कहैहैं।

८३ ब्रह्मकूं प्रकाशवान् होनेतैं सूर्यादिककी न्यांई इंद्रियकी विषयता प्राप्त भई, ताका इहां निषेध करैहैं।

८४ तब ब्रह्मकूं परमाणुके परिमाणकरि युक्तपना होवैगा ? यह शंका करनेकूं योग्य नहीं है; ऐसैं इहां कहैहैं।

८५ तब ब्रह्म स्थूल होनेतैं अन्य आधारवाला होवैगा ? यह आशंका करनेकूं योग्य नहीं है; ऐसैं इहां कहैहैं।

८६ अब प्राण आदिकनकी जो प्रवृत्ति है, सो चेतन अधिष्ठानरूप निमित्तवाली है; जडकी प्रवृत्ति होनेतैं, रथ आदिककी प्रवृत्तिकी न्यांई। औ चेतनके भेदविषै प्रमाणके अभावतैं एक चैतन्यमात्र है, ऐसैं विचार

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपास निशितं सन्धीयत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य! विद्धि ॥ ३ ॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥४॥

टीकाः—कैसैं[८७] वेधनेकूं योग्य है? तहां कहिये हैः—उपनिषद्विषै प्रसिद्ध धनुषरूप महान् अस्त्रकूं लेके तिस धनुषविषै निरंतर ध्यानसैं तीक्ष्ण (संस्कारयुक्त) किये बाणकूं संधान करना । जातैं इहां हस्तसैंहीं धनुषका आकर्षण (खीचना) संभवै नहीं, यातैं तिस अक्षर ब्रह्मरूप लक्ष्य-विषै भावनाकूं प्राप्त भये चित्तसैं इंद्रियसहित अंतःकरणकूं अपने विषयतैं निवृत्त करिके लक्ष्यविषैहीं ल्यावनेरूप धनुषका आकर्षण करिके, हे सोम्य! तिसहीं उक्त लक्षणवाले अक्षररूप लक्ष्यकूं वेधन कर (अक्षरविषै चित्तकूं एकाग्र कर) ॥ ३ ॥

टीकाः—अब कथन किये जो धनुष आदिक, वे कहिये हैंः—ॐकाररूप धनुष है । जैसैं धनुष जो है सो लक्ष्य (निसान)विषै बाणके प्रवेशका कारण है; तैसैं आत्मारूप बाणका अक्षररूप ल-

---

करना; यह कहैहैं । इहां यह निष्कर्ष हैः—आत्मा प्राण आदिकनका अधिष्ठान होनेतैं प्राण आदिक शब्दनका लक्ष्य जानना ।

८७ अब विचारविषै असमर्थकूं ॐकारका आश्रय करिके ब्रह्म औ आत्माविषै क्रम मुक्तिरूप फलवाली चित्तकी एकाग्रताके दिखावनेका आरंभ करैहैं । इहां यह अभिप्राय हैः—“ ॐकार ब्रह्म है ” ऐसैं ध्यावनेवाले जितेंद्रिय पुरुषकूं जो ॐकार संबंधी चैतन्यका प्रतिबिंब स्फुरता है; “ सो आत्मा है, ” ऐसा जो चिंतन सो ॐकाररूप धनुषविषै बाणका संधान है । ता ब्रह्मका चेतनके प्रतिबिंबरूप जीवसैं एकतारूप जो संधान, सो लक्ष्यका वेध है ।

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः । तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥ ५ ॥

क्ष्यविषै प्रवेशका कारण ॐकार है । जैसैं अभ्यास किये धनुषसैं संस्कारयुक्त औ तिस धनुषरूप आश्रयवाला हुया बाण लक्ष्यविषै स्थित होवैहै; तैसैं जातैं अभ्यास किये ॐकारसैं संस्कारयुक्त औ तिस ॐकाररूप आश्रयवाला हुया आत्मा प्रतिवंधके अभावसैं अक्षरविषै स्थित होवैहै; यातैं ॐकार जो है सो धनुषकी न्यांई धनुष है । औ आत्मारूप बाण है; कहिये उपाधिकरि लक्षित परमात्माहीं जलगत सूर्यके प्रतिबिंब आदिककी न्यांई इस देहविषै सर्व बुद्धिकी वृत्तिनका साक्षी होनेकरि प्रवेशकूं पाया है; सो बाणकी न्यांई है । औ आत्माके अर्थ विषयनकी प्राप्तिकी तृष्णारूप प्रमादसैं रहित अरु सर्वतैं विरक्त अरु जितेंद्रिय अरु एकाग्र चित्तसैंवेधनेकूं योग्य जो ब्रह्म, सो लक्ष्य कहिये है। तातैं तिस वेधनेतैं पीछे बाणकी न्यांई तन्मय (ताका रूप) होवैहै । जैसैं बाणकूं लक्ष्यके साथि एकरूपतामय फल होवैहै, तैसैं देहादिक अनात्माकार वृत्तिनके तिरस्कारसैं अक्षरके साथि एकरूपतामय फलकूं संपादन करना । यह अर्थ है ॥ ४ ॥

टीकाः–अक्षरकूंहीं दुःखसैं जाननेकूं योग्य होनेतैं ताका फेरिफेरि जो कथन है, सो सुखसैं लखावनेके अर्थ है, यातैं ताहींकूं फेरि फेरि कहैहैं:–जा अक्षर पुरुष-विषै स्वर्ग पृथिवी औ आकाश-रूप जगत् प्रवेशकूं पाया है औ अन्य सर्व करणसहित मन प्रवेशकूं पाया है । हे शिष्य ! ताही सर्वके आश्रय एक (अद्वैतरूप) तुह्मारे औ सर्व प्राणीनके प्रत्यक्स्वरूप आत्माकूं जानो, औ आत्माकूं जानिके अन्य अपर विद्यारूप वाणीनकूं औ तिन-

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः । ॐमित्ये ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमर परस्तात् ॥ ६ ॥

करि जानने योग्य साधनसहित सर्व कर्मकूं छोडो । [88]यह आत्मा ज्ञान अमृतका (मोक्षकी प्राप्ति अर्थ) सेतु (पांज) है; का संसाररूप महोदधिके ऊतरनेका कारण होनेतें । जैसें यह आत ज्ञान मोक्षकी प्राप्ति अर्थ सेतु (पुल) है; तैसें "ताहींकूं जा मृत्युकूं लंघिके जाता है, मोक्षकी प्राप्ति अर्थ अन्य मार्ग नहीं है यह अन्य श्रुति कहती है ॥ ९ ॥

टीका:–किंवा–जैसें रथचक्रकी नाभिविषै प्रवेशकूं प्र भये अर (टेढेकाष्ठ) हैं; ऐसें जिस हृदय-विषै सर्व ओरतें दे व्यापनैवाली प्रसिद्ध नाडीयां सम्यक् प्रवेशकूं प्राप्त भई हैं, ति हृदयविषै बुद्धिकी वृत्तिनका साक्षीरूप सो यह प्रसंगविषै प्रा भया आत्मा, तिस हृदयके मध्यविषै देखता हुया, सुनता हुय मनन करता हुया, जानता हुया वर्त्तता है; औ क्रोध हर्ष आदि वृत्तिनसैं अनेक प्रकारका हुयेकी न्यांई होवैहै । कहिये अंतःक णरूप उपाधिके अविवेककरि युक्त होनेतें याकूं लौकिकजन, हर्ष प्राप्त भया है, अरु क्रोधकूं प्राप्त भया है; ऐसें कहतेहैं । आत्माकूं ॐ इस प्रकारसैं ॐकाररूप आश्रयवाले हुये शा उक्त कल्पनासैं ध्यान करो । ऐसें ज्ञानवान् आचार्यनैं शिष्य तांई कहने योग्य जो वस्तु है, सो कहा । अब ब्रह्मविद्याके ननेकी इच्छावाले कर्मरहित औ मोक्षके मार्गविषै प्रवृत्त भये शिष्य हैं, तिनकूं विघ्नरहित होनेकरि, आचार्य ब्रह्मकी प्राप्ति

८८ अब साधनसहित सर्व कर्मकूं त्यागिके आत्माहीं जाननेकूं य है, इस अर्थविषै कारण कहैहैं ।

यः सर्व्वज्ञः सर्व्वविद्यस्यैष महिमा भुवि । दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः । मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय। तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ ७ ॥

चाहतेहैंः–हे शिष्य ! तुह्मारेकूं मैंनें कथन किया जो[८९] यह संसाररूप महोदधिकूं लंघिके प्राप्त होनेयोग्य परविद्याका विषय है, सो तुमारेकूं मेरे उपदेशतैं पीछे अविद्यारूप तमतैं पैरं जो अविद्यारूप तमका पर पार है, ताके अर्थ (अविद्यारहित ब्रह्मात्मस्वरूपकी प्राप्तिअर्थं) निर्विघ्न जैसें होवै तैसें होहू ॥ ६ ॥

टीकाः–सो आत्मा किसविषै वर्त्तता है ? तहां कहैहैंः–जो सर्वज्ञ है, सर्ववित् है [ऐसें जो पूर्व व्याख्यान किया है ताकूं फेर विशेषण देते हैंः–], औ जाका यह प्रसिद्ध पृथिवीविषै महिमा (विभूति) है । कौंन यह महिमा है ? तहां कहैहैंः–ये स्वर्ग औ पृथिवी दोनूं जाकी आज्ञाविषै धारण किये हुये स्थित होवैहैं, औ सूर्य अरु चंद्रमा ये दोनूं जाकी आज्ञाविषै अर्द्धदग्धकाष्ठरूप अ-

---

८९ सर्वेश्वरता औ मनोमयता आदिक गुणकरि युक्त ब्रह्मका हृदयकमलविषै जो ध्यान है, सो क्रममुक्तिरूप फलवाला है । यातैं हे मंदबुद्धिवाले ब्रह्मवेत्ता ! तुम ता ध्यानकूं करो । ऐसें दिखावनेकूं इहां “ जो यह संसाररूप महोदधिकूं लंघिके प्राप्त होने योग्य परविद्याका विषय है, ” ऐसें कहाहै ।

९० कर्मसंगीजनोकी संगतिसैं कर्मविषै श्रद्धा औ विषयविषै श्रद्धा होवैहै । सो वाक्यार्थके ज्ञानकी अनुभवपर्यंतताकी प्रतिबंधकरूप विघ्न है । सो विघ्न तुह्मारेकूं मति होहू, ऐसा कथन है । परंतु वाक्यार्थके अनुभवके उत्पन्न भये फलकी प्राप्तिविषै विघ्नकी शंका नहीं है; या अभिप्रायसैं कहैहैं ।

लातचक्रकी न्यांई निरंतर भ्रमतेहैं, औ जाकी आज्ञाविषे वर्त्त-
मान नदीयां अरु समुद्र अपने देशकूं लंघिके वर्त्तते नहीं। तैसैं
स्थावर औ जंगम जे हैं, वे जाकी आज्ञाविषे नियमसैं स्थित हैं
तैसैं षट् ऋतु दो अयन औ साठ अब्द (संवत्सर) जे हैं, वे
जाकी आज्ञाकूं लंघिके वर्त्तते नहीं। तैसैं कर्त्ता कर्म औ फल
जे हैं, वे जाकी आज्ञातैं अपने अपने कालकूं लंघिके वर्त्तते नहीं,
सो यह महिमा है ॥ ऐसा जिसका पृथिवी लोकविषै महिमा है,
सो यह सर्वज्ञ है। **सो यह आत्मा,** सर्व बुद्धिवृत्तिनके प्रकाशक,
मन (हृदय) रूप ब्रह्मपुरविषै विद्यमान आकाशविषै स्थित
हुयेकी न्यांई भासताहै। जातैं आकाशकी न्यांई सर्वव्यापक
आत्माकूं गमन आगमन वा स्थिति, अन्य प्रकारसैं संभवै नहीं।
यातैं सो आत्मा मनकी वृत्तिनसैंहीं ता हृदयाकाशविषै स्थित
हुया भासताहै। औ मनरूप उपाधिवाला होनेतैं **मनोमय हुया**
यह आत्मा **प्राण अरु शरीरका लेजानेवाला है;** कहिये स्थूल
शरीरतैं अन्य सूक्ष्म शरीरकूं लेजाता है। औ दिनदिनमैं बढनेवाले
अरु घढनेवाले भोजन किये अन्नके परिणाममय पिंडरूप **अन्न-**
विषै हृदयकमलके छिद्रमैं अपनी उपाधिरूप **बुद्धिकूं सम्यक्**
स्थापन करिके स्थित भया है। जातैं बुद्धिकी स्थितिहीं आ-
त्माकी अन्नविषै स्थिति है, यातैं इहां "बुद्धिकूं स्थापन क-
रिके अन्नविषै स्थित होता भया," ऐसैं कहा। **ता आत्मतत्त्वकूं**
धीर जे विवेकी हैं, वे शास्त्र औ आचार्यके उपदेशसैं जन्य अरु
शम दम ध्यान औ वैराग्यसैं उद्भवकूं प्राप्त भये **श्रेष्ठ ज्ञानसैं सर्व**
ओरतैं पूर्ण जानतेहैं। तिनकूं जो सर्व अनर्थ दुःख अरु श्रमसैं
रहित **आनंदरूप** औ **अमृतरूप हुया** अपने आपविषै सर्वदा विशे-
षकरि भासताहै ॥ ७ ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥८॥

टीकाः—अब इस पुरुषकूं कथन किये परमात्मज्ञानका यह फल कहियेहैः—तिस कारणरूपसैं पर, औ कार्यरूपसैं अवर, सर्वज्ञ, असंसारी परमात्माके "यह साक्षात् मैं हूं" ऐसैं देखे हुये या पुरुष-का अविद्याकी वासनामय हृदयका (बुद्धिके आश्रित) ग्रं-

---

९१ इहां यह शंकासमाधानरूप विचार हैः—इहां भाष्यविषै अविद्याकी वासनाका समुदायरूप हृदयका ग्रंथि भेद (नाश) कूं पावताहै; ऐसैं कहा। ताका कौंन अर्थ है? सो वादी पूंछताहै; शंकाः—हे सिद्धांती! क्या बुद्धिके विद्यमान हुये अविद्या आदिकका भेद, ज्ञानका फल है, किंवा तिस बुद्धिकी निवृत्तिके हुये अविद्या आदिकका भेद (नाश), ज्ञा-नका फल है? ये दोनूं विकल्प हैं। तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहींः—काहेतैं, उपादानके विद्यमान हुये कार्यके अत्यंतनाशके असंभवतैं। द्वितीयपक्ष वी बनै नहींः—काहेतैं ज्ञानके अज्ञानसैंहीं साक्षात् विरोधकी प्रसिद्धितैं। किंवाः— बुद्धि वी अनादि है, वा सादि है? तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहींः—काहेतैं "इसतैं प्राण होवैहै मन औ सर्व इंद्रिय होवैहैं" इस श्रुतिके विरोधतैं औ द्वितीयपक्ष बी बनै नहींः—काहेतैं, प्रलयविषै ब्रह्मज्ञानविनाहीं बुद्धिके नाशके संभवतैं, [अनंतताके अलाभतैं] तिसकी व्यर्थताके प्रसंगतैं, औ बुद्धिके सादिपनैके हुये बुद्धिका उपादान जब साक्षात् ब्रह्म है, तब तिस ब्रह्मके नाशविना बुद्धिका अत्यंत नाश नहीं होवैगा। अरु बुद्धिकी उपा-दान जब माया है, तब सो द्रष्टागत ज्ञानसैं नाश होनेकूं योग्य नहीं है; काहेतैं लोकप्रसिद्ध मायावीविषै स्थित मायाके द्रष्टागत ज्ञानसैं नाशके अ-दर्शनतैं। किंवा बुद्धिका जो नाश है, सो तिस बुद्धिका फल नहीं; काहेतैं अपने नाशकूं अफलरूप होनेतैं औ सो बुद्धिका नाश आत्माका वी फल नहीं; काहेतैं ताकूं बुद्धिसैं संगके अभावतैं, ता बुद्धिके नाशकूं अफलरूप होनेतैं। किंवा आत्माके अविद्या आदिकके अनाश्रयपनैका कथन श्रुतिवि-

थि नाशकूं पावताहै। तैसैं "जे काम याके हृदयविषै आश्रित हैं इस अन्य श्रुतितैं बुद्धिके आश्रित कथन किये जे काम हैं, नाशकूं पावतेहैं। औ यह ग्रंथि हृदयके आश्रित है; आत्मा आश्रित नहीं; ऐसैं जानियेहै। औ याके लौकिक जनोकूं मरण पर्यंत गंगाके प्रवाहकी न्यांई प्रवृत्त भये जे अज्ञानकूं विषय करने वाले सर्व संशय हैं, वे छेदनकूं पावतेहैं। औ इस निःसंश

रुद्ध है; काहेतैं आरंभविषै "अविद्याके भीतर वर्त्तमान" ऐसैं श्रवणतैं औ समाप्तिविषै "अनीशासैं मोहकूं पाया हुया शोककूं करताहै" ऐसैं श्रवणतैं॥ जो कहो कि, बुद्धिगतहीं अविद्या आदिकका आत्माविषै अध्यास होवैहै? तो "अध्यास होवैहै" इस शब्दका कौंन अर्थ है? आत्माविषै स्थापन करियेहै वा भ्रांतिसैं देखियेहै? तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहीं काहेतैं, अन्यके धर्मकी अन्यविषै स्थितिके असंभवतैं। औ द्वितीयपक्ष क होगे तो भ्रांतिसैं किसकरि देखियेहै? आत्माकरि वा बुद्धिकरि? तिनमैं प्रथम आत्माकरि बनै नहीं:—काहेतैं आत्माकूं अविद्याकी आश्रयताके अनंगीकारतैं। औ बुद्धिकरि बी देखना बनै नहीं:—काहेतैं बुद्धिकूं आत्माके ताईं विषय करनेके असंभवकरि आत्मगत अविद्याआदिकके दर्शनके असंभवतैं, औ भ्रांतिकूं अपने आश्रयविषै स्थित यथार्थ अनुभवसैं निवर्त होनेकी प्रसिद्धितैं, बुद्धिकूं अनुभवकी आश्रयताके प्रसंगतैं। तातैं इस भाष्यका सम्यक् अर्थ हम नहीं देखतेहैं? यह शंका है। हे वादी! ऐसैं जब कहै, तब समाधान कहियेहै सो श्रवण कर:—चेतनके अधीन अनादि अनिर्वचनीय जो अविद्या है, सो चैतन्यकूं अवच्छिन्न करिके आपकरि अवच्छिन्न (विशिष्ट) चैतन्यके बुद्धिआदिकसैं तादात्म्यरूपकरि वर्त्तती है। ता अविद्याके ब्रह्मात्माके साक्षात्कारसैं निवर्त्त होनेयोग्य रूपके अंगीकारतैं, तिस अविद्याकी निवृत्तिके हुये तिसतैं उत्पन्न हृदयग्रंथिका भेद, श्रुतिकरि कहियेहै; औ भाष्यकारका बुद्धिके आश्रयकरि जो हृदयग्रंथिका कथन है, सो बुद्धि उक्त तादात्म्यरूप अहंकारकी विशेषण होनेकरि अविद्याआदिकके व्यावहारिकपनैके अभिप्रायसैं है औ आत्माकूं ग्रंथिकी अनाश्रयताका जो कथन है, सो आत्माकी निर्विकारताके अभिप्रायसैं है।

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥९॥

भये अविद्यारहित पुरुषके जे ज्ञानकी उत्पत्तितैं पूर्व इस जन्मविषे किये, औ फलके आरंभसैं रहित जन्मांतरविषे किये, औ इस जन्मविषै ज्ञानकी उत्पत्तिके साथि होनेवाले जे कर्म हैं, वे क्षयकूं पावतेहैं । परंतु इस जन्मके आरंभक जे प्रारब्ध कर्म हैं, वे क्षयकूं पावते नहीं; काहेतैं फल देनेकूं प्रवृत्त होनेतैं । यह ज्ञानी पुरुष, जन्ममरणादिरूप संसारके नाशके होनेतैं मुक्त होवैहै । यह अर्थ है ॥ ८ ॥

टीकाः—कथन किये अर्थकेहीं संक्षेपसैं कहनेवाले आगिले तीन मंत्र हैं, तिनका बी व्याख्यान अब करियेहैः—तलवारके कोशकी न्याई आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका स्थान होनेतैं, अरु सर्वके भीतर होनेतैं, **पर** जो बुद्धिके ज्ञानरूप **प्रकाशमय कोश है;** तिस-विषै अविद्या आदिक सर्व दोषरूप **रज** (मल)-सैं **रहित** औ सर्वसैं बडा होनेतैं, अरु सर्वका आत्मा होनेतैं **ब्रह्मरूप;** औ षोडशकलारूप अवयवनसैं रहित होनेतैं **निष्कल,** औ जातैं विरज अरु निष्कल है, यातैं **सो शुभ्र** (शुद्ध) **है;** औ अग्नि आदिक सर्व ज्योति (प्रकाशन)-**का** बी **सो ज्योति है;** कहिये अग्नि आदिकनका बी जो ज्योतिपना है, सो अपने अंतर्गत ब्रह्मात्मचैतन्यरूप ज्योतिका किया है । जो अन्य प्रकाशसैं अभासमान आत्मारूप ज्योति (प्रकाश) है, सोई परम ज्योति है । **ऐसा जो परम ज्योति है ताकूं,** शब्दादिक विषय औ बुद्धिकी वृत्तिनके साक्षीरूप **आत्माकूं जाननेहारे** आत्माकारवृत्तिके अनुसारी आत्मवेत्ता विवेकी पुरुष **जानतेहैं** । जातैं सो परमज्योति है; तातैं वे आत्माकार वृत्तिके अनुसारी पुरुषहीं तिसकूं जानतेहैं; अन्य जे बाह्य अर्थाकार वृत्तिके अनुसारी हैं वें जानते नहीं ॥ ९ ॥

**न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा वि
द्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु
भाति सर्व्वं तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति १०**

टीकाः—सो ब्रह्म, ज्योतिनका ज्योति कैसैं है? तहां कहियेहै:-
तिस अपने आत्मारूप ब्रह्म-विषै सर्वका प्रकाशक सूर्य बी भा
सता नहीं, कहिये ता ब्रह्मकूं प्रकाशता नहीं। सो सूर्य तिसीहीं
प्रकाशतैं अन्य सर्व अनात्माके समूहकूं प्रकाशताहै; परंतु ताक
आपतैं प्रकाशके करनेविषै सामर्थ्य नहीं है। यह अर्थ है। ऐसैं
तिसविषै चंद्र अरु तारागण भासता नहीं, औ ये बीजलिये
भासती नहीं; तब यह हम लोकनका विषय जो अग्नि सो
कहांसैं भासेगा। बहुत कहनेसैं क्या है? परंतु यह[92] जो जगत
भासता है, सो सर्व तिसीहीं परमेश्वरके स्वरूपतैं प्रकाशरूप हो
नेतैं भासमान हुये पीछे भासताहै। जैसैं अग्निके संयोगतैं जल
औ अर्द्धदग्धकाष्ठ आदिक जो है, सो जलावनेवाले अग्निके पीछे
जलावताहै, आपतैं नहीं। तैसैं सर्व जगत् ताहीके प्रकाशमान हुये
पीछे प्रकाशताहै, आपतैं नहीं। औ ताहीके प्रकाशसैं सर्व यह
सूर्य आदिककरि युक्त जगत् भासता है। जातैं[93] ऐसैं सोई ब्रह्म
भासताहै, औ कार्यगत विविधप्रकारके प्रकाशसैं विशेषकरि भा
सता (प्रकाशता) है; यातैं तिस ब्रह्मका स्वरूपतैं प्रकाशरूपपना
जानियेहै। जो वस्तु स्वरूपतैं अविद्यमान है, सो अन्यका प्र
काश करनेकूं समर्थ नहीं होवैहै; काहेतैं स्वरूपतैं अविद्यमान

९२ इहां प्रकट अर्थविषै बाधित भये जगत्की अनुवृत्ति (बाध भये
पीछे प्रतीति) दिखाई। यातैं शरीरसहितकूं बंधभ्रांतिकी निवृत्तिरूप जीव
न्मुक्ति विरोधकूं पावती नहीं।

९३ "तिसके प्रकाशसैं सर्व यह भासताहै" ऐसैं इस ब्रह्मकी स्वयं
प्रकाशरूपताविषै तात्पर्य कहेहैं।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ११ ॥

इति मुण्डकोपनिषदि द्वितीयमुण्डकं समाप्तम् ॥ २ ॥

प्रकाशवाले घटादिकनकूं अन्यकी प्रकाशकताके न देखनेतैं, औ प्रकाशरूप सूर्यादिकनकूं अन्यकी प्रकाशकताके देखनेतैं ॥ १० ॥

टीकाः—जो[९४] सो ज्योतिनका ज्योति ब्रह्म है, सोई सत्य है, औ अन्य जो वाणीसैं आरंभ किया विकार नाममात्र जो ताका कार्य है, सो सर्व मिथ्या है। इस विस्तारसैं हेतुकरि प्रतिपादन किये अर्थकूं वेदस्थानी या मंत्रसैं फेर समाप्त करैहैंः—यह जो अविद्यायुक्त दृष्टिवाले पुरुषनकूं **अग्रभागविषै भासमान** वस्तु है, सो उक्तलक्षणवाला **अमृतरूप ब्रह्महीं** है; तैसैं **पीछे ब्रह्म** है, तैसैं **दक्षिण ओरतैं ब्रह्म** है, तैसैं वाम ओरतैं ब्रह्म है, तैसैंही नींचे ब्रह्म है औ **ऊंचे ब्रह्म** है, अन्य बी कार्यके आकारसैं सर्व ओरतैं प्रसऱ्या हुया नामरूपवाला यह भासमान जो वस्तु सो **ब्रह्म** है। बहुत कहनेसैं क्या है! परंतु **यह समस्त** जगत् **अत्यंत श्रेष्ठ ब्रह्महीं** है। ब्रह्मसैं भिन्न जो प्रतीति है, सो सर्व रज्जुविषै सर्पके प्रतीतिकी न्याईं अविद्यामात्र है, औ "एक ब्रह्महीं परमार्थतै सत्य है" यह वेदकी आज्ञा है ॥ ११ ॥

इति श्रीमुंडकोपनिषद्गत द्वितीयमुंडक भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ २ ॥

---

९४ समाप्तिके मंत्रका तात्पर्य कहैहैं। इस मंत्रविषै ब्रह्मसैं विविधप्रकारका करियेहै, ऐसा ताका विकार (कार्य) रूप सर्व जगत्, "जो यह स्थाणु है, सो पुरुष है" इस वाक्यकी न्याईं "सम ब्रह्महीं है" ऐसैं बाधविषै सामानाधिकरण्यके हुये अन्वय औ व्यतिरेककरि बाधरूप अभावके निषेधसैं ब्रह्ममात्र बोधन करियेहै।

अथ तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ ५ ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ १ ॥

अथ मुंडकोपनिषद्गत तृतीयमुंडक भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

प्रथमखंड भाष्यभाषादीपिका ॥ ५ ॥

टीकाः–जा पराविद्यासैं सो अक्षर पुरुष नामक सत्य प्राप्त होवैहै औ जाकी प्राप्तिके हुये हृदय ग्रंथि आदिक संसारके कारणका अत्यंत नाश होवैहै; ऐसी जो पराविद्या सो कही । औ अक्षरके दर्शनका उपायरूप जो योग है, सो धनुष आदिकके ग्रहणकी कल्पनासैं कहा । अब तिस ज्ञानके सहकारी सत्य आदिक साधन, कहनेकूं योग्य हैं; तिनके अर्थ इस उत्तर ग्रंथका आरंभ है । तहां तत्त्वकूं अत्यंत दुःखसैं जाननेकूं योग्य होनेतैं, पूर्व किया बी तत्त्वका निर्धारण फेर मुख्यताकरि अन्य प्रकारसैं करियेहै । तहां सूत्ररूप जो प्रथम मंत्र है, सो परमार्थरूप वस्तुके निश्चयअर्थ आरंभ करियेहैः– **जीव औ ईश्वर ये दोनूं** शोभायुक्त गैमनवाले होनेतैं, वा पक्षीके समान होनेतैं (वृक्षकूं आश्रय करनेतैं) पक्षी हैं । ते सर्वदा **साथिहीं युक्त** (वर्त्तमान) हैं, औ जातैं तुल्य प्रख्यातिवाले हैं, अरु तुल्य प्रकाशके कारण हैं; यातैं परस्पर **सखा** हैं । ऐसैं हुये दोनूंके ज्ञानका स्थानक होनेतैं, **एक** जो **वृक्ष**

९५ जीवकूं अज्ञानी होनेकरि नियममैं रखनेके योग्य होनेकरि उचित होनेतैं, औ ईश्वरकूं सर्वज्ञ होनेकरि नियामकपनेकी शक्तिके योगतै जीव औ ईश्वर इन दोनूंका नियम्य औ नियामकभावकी प्राप्तिरूप गमन (उडना) कचित् है ।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥ २॥

की न्याई छेदनरूप धर्मकी तुल्यतातैं शरीर-रूप वृक्ष है, ता-के ताईं एक वृक्षके प्रति फलके उपभोगअर्थ दोनूं पक्षीनकी न्याई आलिंगन (मिलाप) करते भये। कहिये, यह शरीररूप वृक्ष ऊंचे (श्रेष्ठ ब्रह्मरूप) मूलवाला है, औ नीची (प्राण आदिक) शाखावाला है, औ अपनी स्थितिके नियमसैं रहित होनेतैं अश्वत्थ है, औ अज्ञानपर्यंत होनेवाला है, औ क्षेत्र नामवाला है, औ सर्वप्राणीनके कर्मफलका आश्रय है; ताकूं पक्षीनकी न्याई अविद्या काम अरु कर्मकी वासनाके आश्रय लिंगशरीररूप उपाधिवाला आत्मा(जीव) औ ईश्वर ये दोनूं मिलते भये। मिले हुये तिन दोनुंके मध्य एक जो लिंगशरीररूप उपाधिवाला क्षेत्रज्ञ (जीव) है, सो वृक्षके ताईं आश्रय करता हुया कर्मजन्य सुखदुःखमय अनेक प्रकारकी वेदनाके अनुभवरूप स्वादु फलकूं अविवेकतैं भोगता है, औ अन्य जो नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त स्वभाववाला सर्वज्ञ शुद्धसत्त्वगुणप्रधान मायाउपाधिवाला ईश्वर है सो भोगता नहीं। जातैं यह ईश्वर नित्य साक्षीपनैकी सत्तामात्रसैं भोग्य औ भोक्ता इन दोनूंका प्रेरक है, यातैं सो तो नहीं भोगता हुया वृक्षसैं न्यारा होयके केवल देखताहीं है। ताका दर्शनमात्रसैंहीं राजाकी न्याई प्रेरकपना सिद्ध भया ॥ १ ॥

टीकाः—तहां ऐसैंहुये उक्तप्रकारके शरीररूप एक वृक्षविषै पुरुष जो भोक्ता जीव है, सो अविद्या काम औ कर्मके फल रागादिरूप बडे बोजसैं रोक्या हुया समुद्रके जलविषै तुंबेकी न्याईं निमग्न भया है, कहिये निश्चयरि देहविषै आत्मभावकूं प्राप्त भया है। औ

"यहहीं मैं अमुकका पुत्र हूं, औ इसका पौत्र हूं, पतला हूं, जाडा हूं, गुणवान् हूं, गुणरहित हूं, सुखी हूं, दुःखी हूं;" इस प्रकारका ज्ञान याकूं होवैहै, इसतैं अन्य ज्ञान नहीं। ऐसैं जन्मता है, मरता है, औ संबंधी अरु बांधवनसैं संयोगकूं पावता है; अरु वियोगकूं पावता है। यातैं मोहै[९६]कूं पावता हुया, कहिये अनेक प्रकारके अनर्थनसैं अविवेकी होनेकरि चिंताकूं पावता हुया; "मैं किसी बी कार्यके करनेविषै समर्थ नहीं हूं, मेरा पुत्र नष्ट भया; मेरी भार्या मर गई, अब मुजकूं जीवनेसैं क्या प्रयोजन है?" इस प्रकारका दीनभावरूप जो अनीशा (असामर्थ्य) है, ता-सैं संतापरूप शोककूं पावताहै। सो ऐसैं प्रेत तिर्यक् औ मनुष्य आदिक योनिनविषै वेगवान्ताकूं प्राप्त भया जीव, कदाचित् अनेक जन्मविषै संचय किये शुद्ध धर्मरूप निमित्तसैं कोईक परम दयालु पुरुषनैं दिखाये योगमार्गविषै; अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, सर्वका त्याग, शम, औ दम आदिककरि युक्त एकाग्र चित्तवाला हुया जिस कालविषै अनेक योगी जनकरि औ कर्मिष्ठ लोकनकरि सेवन किये देहवृक्षरूप उपाधिके लक्षणतैं अन्य (विलक्षण); क्षुधा तृषा शोक मोह जरा औ मृत्युसैं रहित असंसारी ईश्वरकूं, औ "यह मैं सर्व जगत्का आत्मा हूं, सर्वकूं समान हूं, सर्वभूतनविषै स्थित हूं, औ अन्य अविद्याजनित उपाधिसैं परिच्छिन्न मिथ्या आत्मा नहीं हूं; औ जगत् जो है सो इसीहीं मुज परमेश्वरका रूप है," इस प्रकारकी विभूतिरूप इसके महिमाकूं ध्यावता हुया देखताहै, तब वीतशोक होवैहै; कहिये सर्व शोकके सागरतैं मुक्त (कृतकृत्य) होवैहै ॥ २ ॥

---

९६ आवरण औ विक्षेप, ये दोनूं अविद्याके कार्य हैं। तिनमैं ईश्वरभावकी अप्राप्तिरूप जो अनीशा, सो आवरण है; औ जो शोककूं करताहै, सो विक्षेप है। तिन दोनूंका हेतु जो अनिर्वचनीय अज्ञान, सो मोह है। तिस मोहकरि विशिष्ट हुया। यह अर्थ है।

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येष यः सर्व्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी । आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥

टीका:—अन्य मंत्र बी इसीहीं अर्थकूं विस्तारसहित कहैहैः—जिस कालविषै विद्वान् (साधक पुरुष) स्वयंज्योति स्वभाववाले सर्व जगत्के कर्त्ता ब्रह्मयोनि ईश्वररूप पुरुषकूं देखताहै; तब सो देखनेवाला विद्वान्, बंधनरूप पुण्य पाप-मय कर्म-कूं मूलसहित दग्ध करिके निरंजन (निर्लेप) हुया परम (सर्वसैं अधिक) अद्वैतरूप समभावकूं पावताहै ॥ ३ ॥

टीका:—किंवा, जो यह प्राणका प्राण परमेश्वर, ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंब (तृणगुच्छ) पर्यंत सर्व भूतनसैं (सर्व भूतनविषै स्थित सर्वात्मा हुया) विविध प्रकारका भासताहै । ऐसैं सर्व भूतनविषै स्थित परमेश्वरकूं जो वाक्यार्थ ज्ञानमात्रविषै विद्वान् हुया, यह मैं हू, ऐसैं साक्षात् आत्मभावसैं जानताहै, सो अन्य सर्वकूं उल्लंघन करिके कहनेके स्वभाववाला अतिवादी नहीं होवैहै, कहिये जो पुरुष ऐसैं प्राणके प्राणरूप आत्माकूं साक्षात् जानताहै, सो अतिवादी नहीं होवैहै । जब सर्व आत्माहीं है तातैं अन्य नहीं है, तब यह विद्वान् किसकूं उल्लंघन करिके कहै! जिसकूं तो श्रेष्ठ अश्रेष्ठ अन्य वस्तु देखनेमैं आवताहै, सो ताकूं उल्लंघन करिके कहताहै । यह विद्वान् तो आपतैं अन्यकूं देखता नहीं,

अन्यकूं सुनता नहीं, अन्यकूं जानता नहीं; यातैं अतिवादी नहीं होवैहै। किंवा, यह विद्वान्, आत्माविषैहीं है क्रीडा जिसकी, अन्य पुत्र दारा आदिकविषै नहीं, सो कहिये आत्मक्रीड; तथा आत्माविषैहीं है प्रीति जिसकी, सो कहिये आत्मरति; तथा ज्ञान ध्यान औ वैराग्य आदिक है क्रिया जिसकी, सो कहिये क्रियावान् ऐसा है। केईक[९७] वादी तो क्रियावान्, इस पदकूं अग्निहोत्रादिरूप कर्म औ ब्रह्मविद्याके समुच्चय अर्थ इच्छतेहैं; सो "यह ब्रह्मवेत्ताके मध्य वरिष्ठ है" इस मुख्य अर्थवाले वचनसैं विरोधकूं पावताहै। जातैं बाह्य क्रिया औ आत्माविषै प्रीति, ये दोनूं साथिहीं होनेकूं शक्य नहीं, किंतु कोईक बाह्य क्रियातैं विशेष करि निवृत्तिकूं पाया हुया पुरुष आत्मक्रीड होवैहै; काहेतैं बाह्य क्रिया औ आत्मक्रीडाके विरोधतैं, तम औ प्रकाशकी एकत्र स्थिति संभवै नहीं। तातैं इस वचनसैं ज्ञान औ कर्मके समुच्चयका प्रतिपादन जो करियेहै, यह जूठा बकवाद है। "अन्य वाणीनकूं छोडो" "संन्यासयोगतैं" इत्यादि श्रुतिनतैं। तातैं जो ज्ञान ध्यान आदिक क्रियावाला भेदरहित अर्थकी मर्यादावाला संन्यासी है, यहहीं इहां क्रियावान् है। जो ऐसैं लक्षणवाला अतिवादरहित आत्मक्रीड आत्मरति औ क्रियावान् ब्रह्मनिष्ठ है, सो यह सर्व **ब्रह्मवेत्ताके मध्य वरिष्ठ** (मुख्य) है ॥ ४ ॥

---

९७ इहां प्राचीनवृत्तिकार भर्तृप्रपंचनामक, ज्ञानकर्मके समुच्चयके प्रतिपादक वेदांतके एकदेशीकी व्याख्याकूं प्रकट करिके निषेध करैंहैं।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्य्येण नित्यम्। अन्तः शरीरे ज्योतिर्म्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

टीकाः—अत्र संन्यासीकूं सम्यक् ज्ञानके सहकारी जे निवृत्तिप्रधान सत्य आदिक साधन हैं, वे विधान करियेहैं:—यह आत्मा नित्य जूठवचनके त्यागरूप **सत्यसैं प्राप्त होनेकूं योग्य है**। किंवा नित्य इंद्रिय अरु मनकी एकाग्रतारूप **तपसैं प्राप्त होनेकूं योग्य है**। "मन औ इंद्रियनकी एकाग्रता परम तप है" ऐसैं स्मृतिविषै कथन किया होनेतैं, उक्त तपका लक्षण युक्त है । जातैं सो तप आत्माके दर्शनके अभिमुख होनेतैं आत्माके दर्शनकूं अनुकूल है, यातैं यह तप ताका परम साधन है । अन्य जो चांद्रायण आदिरूप तप है, सो ताका परम साधन नहीं । किंवा, **यथार्थ आत्माके दर्शनसैं नित्य प्राप्त होनेकूं योग्य है**। किंवा नित्य मैथुनके अनाचरणरूप **ब्रह्मचर्यसैं प्राप्त होनेकूं योग्य है**। जैसैं ये साधन इहां कहे, तैसैं "जिनविषै कपट जूठ औ माया नहीं है" इस प्रश्न उपनिषद्के वाक्यविषै वी कहेहैं ॥ जो इन साधनोसैं प्राप्त

---

९८ "सम्यक्ज्ञानके सहकारी," इहां सम्यक् ज्ञानशब्दसैं वस्तुकूं विषय करनेवाले अनुभवरूप फलपर्यंत वाक्यार्थका ज्ञान कहियेहै। जातैं अपरोक्ष अनुभवरूप फलवाले ज्ञानकूं अविद्याकी निवृत्तिरूप अपने कार्यविषै सहकारीकी अपेक्षाका असंभव है; यातैं परिपक्वविद्याके लाभअर्थ अपरिपक्वज्ञानका औ सत्य आदिक साधनोका समुच्चय मानियेहीं है। इतनेकरि भास्करके मतकी सिद्धि होवै नहीं; काहेतैं परिपक्वविद्यामैं सहकारीकी अपेक्षाविषै प्रमाणके अभावतैं, औ तिस विद्यातैं कर्मके अलेपके श्रवणतैं, औ कर्मरहित देवादिकनकूं मुक्तिके श्रवणतैं ।

सत्यमेव जयते नानृतं। सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ६ ॥

होवैहै, यह आत्मा कौन है ? तहां कहियेहै:—शरीरके भीतर हृदयकमलगत आकाशविषै **प्रकाशमय शुद्ध** आत्मा है, जा आत्मा-कूं क्रोध आदिक चित्तके मलरूप दोषनसैं रहित संन्यासी पावतेहैं। कहिये सो आत्मा नित्य सत्यादिरूप साधनोसैं संन्यासीनकरि प्राप्त होवैहै । कदाचित् होनेवाले सत्यादिकसैं नहीं प्राप्त होवैहै । इहां यह सत्यरूप साधनकी स्तुतिकेअर्थ अर्थवाद है ॥ ९ ॥

टीकाः—सत्य (सत्यवान्) हीं **जयकूं पावता है, अनृत** (अनृतवादी) **नहीं** । जातैं पुरुषके अनाश्रित केवल सत्य औ जूठके संभव हुये, जय वा पराजय संभवै नहीं; किंतु असत्यवान् जो अनृतवादी सो पराभवकूं पावता है, सत्यवान् नहीं; यह लोकविषै प्रसिद्ध है। यातैं सत्यका बलवान् साधनपना सिद्ध भया। किंवा सत्यका अतिशय साधनपना शास्त्रतैं बी जानियेहै ॥ कैसैं जानियेहै ? तहां कहैहैं:—यथार्थ वचनकी व्यवस्थारूप **सत्यसैं देवयान नामक मार्ग** निरंतरपनैकरि **प्रवृत्त भया है** । औ **जहां** सत्यरूप उत्तम साधनका साध्य **सो** परमार्थ तत्त्वरूप पुरुषार्थ स्वरूपसैं वर्त्तमान **परम निधान है**। ऐसा जो ब्रह्मलोक, **तहां** जिस **प्रकारसैं** उपासनावाले औ कपट माया शठभाव अहंकार दंभ अरु जूठसैं रहित, औ **सर्व ओरतैं तृष्णारहित; ऋषिजन गमन करतेहैं**। सो सत्यसैं निरंतरपनैकरि प्रवृत्त भया है । यह पूर्वके पदसैं संबंध है ॥ ६ ॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति । दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥ ७ ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्म्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्त तस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥

टीकाः—सो[९९] सत्यका निधान क्या है, औ सो किस धर्मवाला है ? तहां कहियेहैः—सो प्रसंगविषै प्राप्त भया ब्रह्म, सत्यादि साधन करि सर्व ओरतैं व्याप्त होनेतैं बढा है, औ स्वयंप्रकाश (इंद्रिय अगोचर) है, याहींतैं अचिंत्यरूप है । औ सो आकाश आदिक सूक्ष्मतैं वी अतिशय सूक्ष्म है । जातैं यह सर्वका कारण है, यातैं याकूं सर्वसैं अधिक सूक्ष्मपना है । ऐसा हुया सूर्य औ चंद्र आदिक आकारसैं विविध प्रकार भासता (प्रकाशता) है । किंवा सो ब्रह्म अज्ञानी जननकूं अत्यंत अगम्य होनेतैं दूरतैं दूर देश-विषै वर्त्तता है । औ विद्वानोंका आत्मा होनेतैं; अरु सर्वांतर होनेतैं, अरु " आकाशके बी भीतर है " इस श्रुतितैं; इस देह-मैं समीपविषै वर्त्तता है । इहांहीं चेतनावाले पुरुष-नके मध्य बुद्धिरूप गुहाविषै स्थित यह ब्रह्म, दर्शन आदिक क्रियावाला होनेकरि योगी पुरुषनसैं लखियेहै । यद्यपि तहांहीं गूढ हुया सो ब्रह्म विद्वानोकरि लखियेहै; तथापि अविद्यासैं आवृत हुया तहांहीं स्थित ब्रह्म अविद्वानोकरि नहीं लखियेहै ॥ ७ ॥

टीकाः—फेर बी असाधारणविषै बी असाधारणरूप, ताके ज्ञानका साधन कहियेहैः—जातैं यह ब्रह्मसैं अभिन्न आत्मा अरूप होनेतैं कि-

---

९९ सत्यका निधान जो कहा, ताकूं फेर विशेषणयुक्त करियेहैं; ऐसैं कहैहैं ।

सी बी पुरुषकरि **चक्षुसैं नहीं ग्रहण करियेहै,** औ अवाच्य होनेतैं **वाणीसैं बी नहीं ग्रहण करियेहै,** औ अन्य देव (इंद्रिय)नसैं **नहीं ग्रहण करियेहै।** औ तपकूं सर्व फलकी प्राप्तिकी साधनताके हुये बी **तपसैं नहीं ग्रहण करियेहै। वा** तैसें प्रसिद्ध महद्भाववाले अग्निहोत्रादिरूप वैदिक **कर्म्मसैं बी नहीं ग्रहण करियेहै॥** फेर ताके ग्रहणका साधन कौंन है? तहां कहैहैंः—ज्ञान जो है सो सर्व प्राणीनकूं स्वभावसैं आत्माके बोधनविषै समर्थ है, तो बी बाह्य विषयनविषै रागादिक दोषनसैं मलिन (अप्रसन्न) हुया नित्य समीपस्थित आत्मभावकूं बी मलसैं आवृत दर्पणकी न्यांई, औ चंचल जलकी न्यांई, बोधन करता नहीं। सो ज्ञान, जब इंद्रिय अरु विषयनके संबंधसैं उत्पन्न रागादिक मलकी मलिनताके दूरी करनेतैं दर्पण औ जल आदिककी न्यांई प्रसन्न (स्वच्छ औ शांत) स्थित होवै, तब ज्ञांनका प्रसाद (बुद्धिकी प्रसन्नता) होवैहै। तिस **ज्ञानके प्रसादसैं शुद्ध अंतःकरणवाला** पुरुष, जातैं ब्रह्मकूं देखनेकूं योग्य है; **तातैं यह पुरुष** सर्व अवयवनके भेदसैं रहित **निष्कलरूप ता** आत्मा-कूं सत्य आदिक साधनवान् अरु जितेंद्रिय होयके, एकाग्र मनसैं **ध्यावता हुया** आत्माकूंहीं **देखता** (पावता) है ॥ ८ ॥

---

१०० जिसकरि अर्थ जानियेहै, ऐसी जो बुद्धि सो ज्ञान है; ताका प्रसाद जो प्रसन्नता, सो ज्ञानप्रसाद कहियेहै। पुरुष ध्यावता हुया ज्ञानप्रसादकूं पावताहै। ज्ञानप्रसादसैं आत्माकूं देखता है। ऐसा अर्थका क्रम इहां जानना; काहेतैं, संशयादि मलसैं रहित प्रमाणके ज्ञानकूंहीं साक्षात्कारका हेतु होनेतैं ध्यानक्रियाकूं प्रमाज्ञानकी साधनताकी असिद्धितैं। यह अर्थ है।

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश । प्राणैश्चित्तं सर्व्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥ ९ ॥

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥ १० ॥

इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

टीकाः—यह आत्मा सूक्ष्म है। सो जिस शरीर-विषै प्राण-वायु, प्राण औ अपान आदिक भेदरूप पांच प्रकारसें सम्यक् प्रवेशकूं पाया है, तिसीहीं शरीर-विषै हृदय देशमैं केवल विशुद्ध ज्ञानरूप चित्तसैं जाननेकूं योग्य है ॥ किसप्रकारके चित्तसैं आत्मा जाननेकूं योग्य है ? तहां कहैहैं:—घृतसैं दुग्धकी न्यांई औ अग्निसैं काष्ठकी न्यांई, जिसँ[१] चैतन्यकरि प्राण औ इंद्रियकरि सहित प्रजाका सर्व अंतःकरण व्याप्त है । जातैं लोकविषै प्रजाका सर्व अंतःकरण चेतनावाला प्रसिद्ध है; तातैं ता चेतनावृत्तिरूप चित्तसैं आत्मा जाननेकूं योग्य है । फेर वह चित्त, कैसा है कि:—जिसँ[२] क्लेशादि मलरहित शुद्ध चित्तविषै यह कथन किया आत्मा विशेषकरि स्वस्वरूपसैं आपकूं प्रकाशता है ॥ ९ ॥

टीकाः—जो पुरुष ऐसैं उक्तलक्षणवाले सर्वके आत्माकूंआत्मभावसैं

---

१०१ बौद्ध आदिककूं चित्तआदिकविषै चेतनताके भ्रमके दर्शनतैं, चित्त जो है सो तिस अपने संबंधी वस्तुविषै चैतन्यका आविर्भाव करनेमैं स्वभावतैंहीं योग्य है । तातैं चित्तविषै परमात्माकी अभिव्यक्ति (आविर्भाव)के संभवतैं, चित्तसैं ब्रह्मके जाननेकी योग्यता कहियेहै । ऐसी संभावना अर्थ इहां कहैहैं ।

१०२ जब चैतन्यकरि सर्वका चित्त व्याप्त है, तब चित्तविषै ब्रह्म आपहीं अपरोक्ष क्यूं नहीं होवैहै ? तहां कहैहैं ।

अथ तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् । उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः ॥ १ ॥

प्राप्त भया है, ताकूं सर्वात्मा होनेतैं सर्वकी प्राप्तिरूप फल होवैहै; यह कहैहैंः—जो क्लेशरहित है, औ आत्माविषै निर्मल अंतःकरणवाला पुरुष है; सो जिसं[3] जिस पुत्रादिरूप लोककूं "मुज अर्थ वा अन्य अर्थ होवे," ऐसैं मनसैं चितवताहै औ जिन भोगनकूं इच्छता है, तिस तिस लोककूं औ तिन चितवन किये भोगनकूं परमार्थतत्त्वके ज्ञानतैं पावताहै । तातैं विद्वान्कूं सत्यसंकल्पवाला होनेतैं; विभूतिकी इच्छावाला जो पुरुष है, सो आत्मज्ञानसैं शुद्ध अंतःकरणवाले आत्मज्ञानीकूं पादप्रक्षालन सेवा औ नमस्कार आदिकसैं पूजन करै । तातैं यह आत्मज्ञानी पूजाके योग्यहीं है ॥ १० ॥

इति श्रीमुंडकोपनिषद्गत तृतीयमुंडके प्रथमखंड भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ५ ॥

अथ तृतीय मुंडकगत द्वितीय खंड भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

टीकाः—जातैं सो यह इस उक्तलक्षणवाले ब्रह्मरूप सर्वकामनाके आश्रय परम धामकूं जानता है, जिस ब्रह्मरूप धाम-विषै सर्व जगत् स्थित है, औ जो ब्रह्मरूप धाम शुद्ध हुया अपने प्रकाशसैं भासता है; तातैं ऐसैं तिस आत्मज्ञानी पुरुषकूं बी जो बुद्धि-

१०३ इहां सगुणविद्याका फल बी निर्गुणविद्याकी स्तुतिके वास्ते मुमुक्षुनकूं रुचि उपजावने अर्थ कहियेहै ।

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र । पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्व्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २ ॥

मान् पुरुष विभूतिकी कामनासैं रहित मुमुक्षु हुये, परमात्मारूप देवकी न्यांई उपासतेहैं; वे इस प्रसिद्ध शरीरके उपादान कारण बीजरूप वीर्यकूं लंघिके जातेहैं; फेरि फेरि योनिकूं धारते नहीं. "फेर किसीविषै प्रीतिकूं करता नहीं" इस श्रुतितैं । यातैं तिस आत्मज्ञानीकूं पूजन करना यह अभिप्राय है ॥ १ ॥

टीकाः—अब मुमुक्षुकूं कामका त्यागहीं मुख्य साधन है, यह दिखावैहैं:—जो पुरुष दृष्ट औ अदृष्ट विषयरूप भोगनकूं गुणबुद्धिसैं चितवता हुया इच्छताहै, सो तिन धर्मअधर्मविषै प्रवृत्तिके कारण विषयनकी इच्छारूप कामनाके साथि तहां तहां जन्मताहै । कहिये जिन जिन विषयनविषै विषयनकी प्राप्तिकी निमित्त कामना, कर्मनविषै पुरुषकूं प्रेरणा करैहैं, तिन तिन विषयनविषै तिन कामनासैं वेष्टित हुयेकी न्यांई जन्मताहै । औ जो पुरुष परमार्थतत्त्वके ज्ञानतैं आत्मकाम होनेकरि च्यारी ओरतैं प्राप्त भये हैं काम (भोग) जिसकूं, सो पूर्णकाम है; औ निकृष्टरूप अविद्याके स्वरूपसैं निकासिके विद्याकरि अपने श्रेष्ठरूपसैं किया है आत्मा जिसका, ऐसा कृतात्मा है । तिस पूर्णकाम कृतात्मा पुरुष-के तो इसीहीं विद्यमान शरीर-विषै सर्व धर्म अधर्मविषै प्रवृत्तिके हेतुरूप काम विनाशकूं पावतेहैं । तिस

---

१०४ विषयनविषै यथार्थ दोषनके दर्शनतैं पुरुष पूर्णकाम (क्षीणभये रागवाला) होवैहै । सो विरुद्ध लक्षणासैं आत्मकाम भया है । तिस आत्माकी जिज्ञासासैंहीं चित्तकूं वश करनेवाले पुरुषके विषयनतैं इच्छाके भेदरूप काम निवृत्त होवैहैं । यह अर्थ सामर्थ्यतैं जानियेहै ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥ ३ ॥

कामके जन्मके कारणके विनाशतैं वे काम उपजते नहीं । यह अभिप्राय है ॥ २ ॥

टीकाः—जब ऐसैं परमात्माके लाभतैं सर्वका लाभ होवैहै, तब ताके लाभार्थ शास्त्र अध्ययन आदिक उपाय बहुतकरि करनेकूं योग्य है ॥ ऐसैं प्राप्त हुये यह कहियेहैः—परम पुरुषार्थरूप जिसका लाभ है, ऐसा व्याख्यान किया जो **यह आत्मा,** सो वेद अरु शास्त्रके बहुतसे अध्ययनरूप **प्रवचनसैं पावने योग्य नहीं,** तैसैं ग्रंथके अर्थकी धारणशक्तिरूप **बुद्धिसैं** पावने योग्य **नहीं,** तैसैं उपनिषदनके विचारसैं भिन्न **बहुतसे श्रवणसैं बी** पावने योग्य नहीं । तब सो आत्मा किस साधनसैं पावने योग्य है? तहां कहियेहैः—**यह विद्वान्, जा आत्मा-कूंहीं पावनेकूं इच्छताहै, तिस वर्णन**[१०६] **(भजन)-सैं यह परमात्मा पावनेकूं योग्य है,** अन्य साधनसैं नहीं; काहेतैं नित्यप्राप्त स्वभाववाला होनेतैं । वि-

१०५ उत्पन्न भये कामोका ज्ञानविना बी क्षयके संभवतैं, इहां स्वहेतुके विनाशतैं काम फेर जन्मते नहीं; ऐसैं कहाहै । यह अर्थ है ।

१०६ "मैं परमात्मा हूं" ऐसा अभेदका अनुसंधान वर्णन करियेहै । तिस वर्णनसैं यह आत्मा पावनेकूं योग्य होवैहै । बहिर्मुख पुरुषसैं तो सैकडोवार श्रवण आदिकके किये हुये बी नहीं पाईयेहै । यातैं "मैं परमात्मा हूं" इस चिंतनरूप परमात्माके भजनकूं पूर्व करिकेहीं श्रवणादिक संपादन करनेकूं योग्य हैं; यह भाव है ॥ अथवा जिसीहीं परमात्माकूं पावनेकूं इच्छताहै, तिस मुमुक्षुरूपसैं स्थित भये परमात्माकरि अभेदके अनुसंधानरूप वर्णन (प्रार्थना)सैं करिके मुमुक्षुरूपसैं स्थित भया परमात्माहीं पावनेकूं योग्य है । इस रीतिसैं अभेदके अनुसंधानसैंहीं पावनेकूं योग्य है; क्रमसैं नहीं । यह अर्थ है ।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादा-त्तपसो वाप्यलिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ ४ ॥

द्वान्कूं यह आत्माका लाभ किस प्रकारका है? तहां कहियेहैः— **तिस** विद्वान्-**का यह आत्मा,** अविद्यासैं आवृत **अपनी** उत्कृष्ट स्वात्मतत्त्वस्वरूप **तनूकूं प्रकाशताहै;** कहिये विद्याके हुये घटादिकके प्रकाशकी न्याईं आविर्भावकूं पावताहै । तातैं अन्यके त्यागसैं आत्माके लाभकी प्रार्थनाहीं आत्मलाभका साधन है । यह अर्थ है ॥ ३ ॥

टीका:—जातैं ये लिंगयुक्त संन्याससहित बल अप्रमाद औ तपरूप साधन, आत्माकी प्रार्थनाके सहकारी हैं; यातैं **यह आत्मा,** आत्मनिष्ठासैं उत्पन्न भये **बलसैं** रहित पुरुष-करि **पावनेकूं योग्य नहीं औ** लौकिक पुत्र पशु आदिक विषयनकी आसक्तिरूप निमित्तसैं भये कर्तव्यके विस्मरणरूप **प्रमादतैं** पावनेकूं योग्य **नहीं** । तैसैं संन्यासरूप [107] **लिंगसैं रहित** ज्ञानरूप **तपतैं बी वा** पावनेकूं योग्य **नहीं । जो विद्वान्** तत्पर हुया **इन** बल अप्रमाद संन्यास औ ज्ञानरूप **उपायनसैं प्रयत्न करताहै, तिस** विद्वान्-**का यह आत्मा ब्रह्मधामके ताईं सम्यक् प्रवेश करता है** ॥४॥

१०७ इंद्र, जनक, औ गार्गी; आदिकनकूं बी आत्मलाभके श्रवणतैं संन्यासरूप लिंगसैं रहित ज्ञानरूप तपतैं बी पावनेकूं योग्य नहीं, यह कैसैं कहतेहो? तहां कहैहैं;—यद्यपि इंद्रादिककूं बाह्य संन्यासके अभावतैं बी आत्मलाभ भया है, यह तेरा कथन सत्य है; तथापि—संन्यास नाम सर्वके त्यागका है । तिनकूं बी बाह्यविषयनविषै ममताके अभिमानके अभावतैं, आंतर संन्यास विद्यमानहीं था; बाहिरका लिंग (संन्यास) तो श्रुतिकरि कहनेकूं इच्छित नहीं; काहेतैं “लिंग जो है सो धर्मका कारण नहीं” इस स्मृतितैं । औ कर्मके त्यागकी सहितता कहनेकूं इच्छित है ।

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृताऽऽत्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः । ते सर्व्वगं सर्व्वतः प्राप्य धीरा युक्ताऽऽत्मानः सर्व्वमेवाविशन्ति ॥ ५ ॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्न्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्व्वे ॥ ६ ॥

टीकाः—ब्रह्मके ताईं कैसैं प्रवेश करताहै? तहां कहियेहैः—जो परमात्माके दर्शनवाले ऋषिजन इस आत्मा कूं सम्यक् जानिके तिसीहीं ज्ञानसैं तृप्त हुये शरीरकी वृद्धिके कारण बाहीरकी तृप्तिके साधनसैं नहीं, औ परमात्माके स्वरूपसैंहीं सिद्ध भये आत्मावाले हुये राग आदिक दोषनसैं रहित जितेंद्रिय भये हैं; वे अत्यंत विवेकी नित्य चित्तकी एकाग्रताके स्वभाववाले पुरुष, आकाशकी न्याईं सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्म-कूं उपाधिसैं परिच्छिन्न एकदेशसैं नहीं पायके, किंतु सर्वत्र पायके, शरीरके पतनकालविषै बी सर्वके ताईंहीं प्रवेश करतेहैं; कहिये फूटे घटके आकाशकी न्याईं उपाधिके परिच्छेदकूं छोडतेहैं । ऐसैं ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मधामके ताईं प्रवेश करतेहैं ॥ ९ ॥

टीकाः—किंवाः—जो पुरुष वेदांतसैं जनित विज्ञानके परमात्मारूप जानने योग्य अर्थके निश्चयवाले हैं, औ सर्व कर्मके परित्याग पूर्वक केवल ब्रह्मनिष्ठास्वरूप संन्यासयोगतैं प्रयत्न करनेके स्वभाववाले यति हैं, औ संन्यासयोगतैं शुद्धचित्तवाले हैं; वे सर्व, परांत[108]कालविषै ब्रह्मरूप लोकं[109]नविषै जीवते हुयेहीं परम

---

१०८ संसारीनके जे मरणके काल हैं, वे परांतकाल हैं। तिनकी अपेक्षासैं मुमुक्षुनका संसारके अंतविषै जो चरम देहके परित्यागका काल है, सो परांतकाल है; तिस परांतकालविषै ।

१०९ इहां साधकनकूं बहुत होनेतैं ब्रह्मरूप लोक एक है, तौ बी अ-

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्व्वे प्रतिदेवतासु । कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व्व एकीभवन्ति ॥ ७ ॥

अरु मरणधर्मरहित ब्रह्म है आत्मा जिनका; ऐसै परामृत हुये सर्व ओरतैं दीपकके[110] निर्वाणकी न्याई औ घटाकाशकी न्याई मुक्त होवैहैं । गमन करने योग्य अन्यदेशकूं अपेक्षा करते नहीं । काहेतैं "जैसैं आकाशविषै पक्षीनका औ जलविषै जलचरका पाद नहीं देखियेहै; तैसैं ज्ञानी पुरुषनकी गति [नहीं देखिये] है" औ "संसार मार्गनके पार (समाप्ति)की इच्छावाले पुरुष, मार्गविषै नहीं गमन करनेहारे होवैहैं" इन श्रुति औ स्मृतितैं । [111]जातैं देश-करि परिच्छिन्न जो गति है, सो संसारकूं विषय करनेवालीहीं है, परिच्छिन्न साधनकरि साध्य होनेतैं । ब्रह्म तो सर्वरूप होनेतैं देशके परिच्छेदसैं गमन करने योग्य नहीं है । जब देशसैं परि-च्छिन्न ब्रह्म होवै, तब मूर्त्तद्रव्यकी न्यांई आदिअंतवाला अन्यके आश्रित सावयव अनित्य औ क्रियासाध्य होवैगा । परंतु ब्रह्म, इस प्रकारका होनेकूं योग्य नहीं है, यातैं ताकी प्राप्ति बी देशसैं परिच्छिन्न होनेकूं योग्य नहीं है ॥ ६ ॥

टीकाः—औ ब्रह्मवेत्ता जे हैं, वे अविद्या आदिक संसारके बंधनकी निवृत्तिरूप मोक्षकूं इच्छतेहैं, कार्यरूप मोक्षकूं नहीं । किंवा मोक्ष-

---

नेककी न्यांई देखियेहै; औ पाईयेहै यातैं बहुवचन है । परंतु "ब्रह्मलोक-नविषै" या शब्दका ब्रह्मविषै । यह अर्थ है ।

११० दीपककूं बत्तीके किये अवच्छेदके ध्वंस हुये जैसैं तेजके सामान्य-भावकी प्राप्ति होवैहै, तैसैं इन ज्ञानीपुरुषनकूं उपाधिके किये अवच्छेदके ध्वंस हुये चेतनके सामान्यभावकी प्राप्ति होवैहै; ऐसैं इहां कहैहैं ।

१११ तर्कतैं बी इहांहीं मोक्ष कहनेकूं योग्य है, ऐसैं कहैहैं ।

कालविषै जो देहकी आरंभक प्राण आदिक **पंचदश** संख्यावाली **कला** प्रश्नउपनिषद्रूप याके ब्राह्मणभागके षष्ठ प्रश्नविषै कथन करी हैं, वे अपने अपने कारणके तांई **लयकूं प्राप्त**[११२] **होवैहैं**। औ देहके आश्रित चक्षुआदिक करणविषै स्थित जे **देव**[११३] हैं, वे सूर्य आदिक **प्रतिदेवताविषै प्राप्त होवैहैं**। [११४]**औ** [जो मुमुक्षुनैं किये कर्म हैं, तिनमैंसैं फलके आरंभवाले कर्मनकूं उपभोगसैंहीं क्षीण होनेतैं, तिनकूं छोडिके इहां अवशेष रहे जे फलके आरंभसैं रहित कर्म हैं, तिनका ग्रहण है। औ आत्मा जो है सो अविद्यारचित बुद्धिआदिक उपाधिकूं अपना स्वरूप मानिके जल आदिकविषै सूर्य आदिकके प्रतिबिंबकी न्यांई तिसीहीं विज्ञानमय स्वरूपके साथि इस देहके भेदविषै प्रवेशकूं पाया है। काहेतैं, कर्मनकूं तिस विज्ञानरूप बुद्धिके तांई फलके देने अर्थ होनेतैं। यातैं आत्मा विज्ञानमय कहियेहै] **कर्म** अरु **विज्ञानमय आत्मा,** वे यह सर्व उपाधिकी निवृत्तिसैं; सत्, **पर, अव्यय,** अक्षर, आकाशतुल्य, अजन्मा, अजर अमर, अभय, अकार्य, अकारण, अंतररहित, बाहिररहित, अद्वैत, शिव, औ शांत ब्रह्म-**विषै** जलआदिक आधारके दूरीकिये सूर्य आदिकविषै सूर्य आदिकके प्रतिबिंबकी न्यांई औ घटादिकके दूरी किये घटादिकके संबंधी आकाशकी न्यांई **एकताकूं पावते है** ॥ ७ ॥

---

११२ इहां भूतनके अंशनका औ भूतनके कार्यका महाभूतविषै लय दिखाया।

११३ मायामय महाभूतनके आश्रित जीवनकी अविद्यामय अदृष्टसहित आपआपके सूक्ष्मभूतनसैं आपआपके प्राणआदिका आरंभ करियेहै, औ वे प्राणआदिक तत्त्व, कर्मसैं प्रेरित सूर्यआदिक देवनकरि आश्रित होवैहैं। कर्मके भोगकरि अंतके भये, वे देव अपने स्थानकूं जातेहैं।

११४ अब जो अपना अपना अपनी अविद्याका कार्य है, सो सर्व ब्रह्मकूंहीं पावताहै; ऐसैं कहैहैं।

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ ॥

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। नास्याब्रह्मवित्कुले भवति । तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ९

टीकाः—किंवाः—जैसैं गंगा आदिक नदीयां चलती हुयी समुद्रकूं पायके, नाम औ रूपकूं छोडिके, समुद्रविषै अस्तकूं पावैहैं; तैसैं विद्वान्, अविद्याकृत नाम औ रूपतैं मुक्त हुया पूर्व उक्त अक्षररूप परतैं पर दिव्य उक्तलक्षणवाले पुरुषकूं पावता है ॥ ८ ॥

टीकाः—नचु, मोक्षविषै अनेक विघ्न प्रसिद्ध हैं; यातैं ब्रह्मवेत्ता बी पंच क्लेशनके मध्य एक क्लेशकरि औ वादविषै अन्य वादीकरि विघ्नतैं मरणकूं पाया हुया अन्य गतिकूं पावैगा, ब्रह्मकूंहीं नहीं ? यह कथन बनै नहीं:—काहेतैं, विद्यासैंहीं सर्व प्रतिबंधकूं दूरी किया होनेतैं । जातैं मोक्ष जो है सो केवल अविद्यारूप प्रतिबंधवाला है, अन्य प्रतिबंधवाला नहीं; काहेतैं मोक्षकूं नित्य होनेतैं, औ आत्मारूप होनेतैं । तातैं सो जो कोईक लोकविषै प्रसिद्ध तिस परम ब्रह्मकूं "साक्षात् मैंहीं हूं" ऐसैं जानता है; सो अन्य गतिकूं पावता नहीं. देवनसैं बी याकी ब्रह्मप्राप्तिके प्रति विघ्न करनेकूं शक्य नहीं है, जातैं सो ज्ञानी इन देवनका आत्मा होवैहै । तातैं ब्रह्मवेत्ता विद्वान् ब्रह्महीं होवैहै । किंवा, इस विद्वान्‌के कुल (शिष्यपरंपरा) विषै अब्रह्मवित् नहीं होवैहै । किंवा, यह विद्वान् जीवता हुयाहीं अनेक इष्ट वस्तुके वियोगरूप निमित्तसैं भये मनके संतापरूप शोककूं तरता है (उल्लंघन करता है),

तदेतदृचाऽभ्युक्तं क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः । स्वयं जुह्वते एकर्षिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ॥ १० ॥

तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ११ ॥

॥ इति तृतीयमुण्डके द्वितीयखंडः ॥ २ ॥

इति श्रीमुण्डकोपनिषत्समाप्ता ॥ ९ ॥

औ धर्म अरु अधर्म नामक **पापकूं तरता है;** औ **गुहारूप ग्रंथिनतैं मुक्त हुया अमृत होवैहै ।** ऐसैं "हृदयका ग्रंथि भेदकूं पावता है" इत्यादिरूप या वाक्यसैं पूर्व कहाहीं है ॥ ९ ॥

टीकाः—अब ब्रह्मविद्याके दानके विधिके दिखावनेसैं, या उपनिषद्की समाप्ति करियेहैः—**सो यह** विद्याके दानका विधान इस **मंत्रनैं कहा है:**—जो शास्त्रउक्त कर्मके अनुष्ठानरूप **क्रियावाले हैं,** औ **श्रोत्रिय** (अपर ब्रह्मविषै कुशल) **हैं,** औ **ब्रह्मनिष्ठ** (परब्रह्मकी जिज्ञासावाले) **हैं,** औ **श्रद्धावान् हुये आप एकर्षि** नामवाले अग्नि-**के ताईं हवन करतेहैं; तिन** संस्कारयुक्त चित्तवाले पात्ररूप पुरुषन-**के ताईंहीं इस ब्रह्मविद्याकूं कहना । औ** मस्तकविषै अग्निके धारण करनेरूप अथर्वणवेदविषै प्रसिद्ध जो **शिरोव्रत है,** सो **जिनोनैं शास्त्रउक्त विधिके अनुसार किया हैं;** तिनके ताईंहीं [११५] ऐसैं ब्रह्मविद्याकूं कहना ॥ १० ॥

टीकाः—तिस **इस अक्षर पुरुषरूप सत्यकूं पूर्व अंगिरा** ना-

---

११५ इस ग्रंथद्वारा विद्याके दानविषै यह अथर्वणवेदवाले ब्राह्मणोका विधि है । ऐसैं प्रसंगविषै ग्रहण किये एतत् (इस) शब्दतैं जानियेहै ।

मक मुनीश्वर विधिवत् समीप प्राप्त भये, औ पूछनेवाले शौनक ऋषि-के ताईं कहता भया। ऐसैं अन्य आचार्य बी तिसीहीं प्रकारसैं मोक्षके अर्थ विधिवत् समीप प्राप्त भये मोक्षके अर्थी मुमुक्षुके ताईं कहै। इस ग्रंथ-कूं व्रतके आचरणसैं रहित पुरुष अध्ययन करता बी नहीं। जातैं व्रतके आचरणवाले पुरुषकी विद्या, संस्कारयुक्त हुयी फलके अर्थ होवैहै; यातैं व्रतरहित पुरुष या ग्रंथके अध्ययनके योग्य नहीं है। इस रीतिसैं समाप्त भई जो ब्रह्मविद्या, सो जिन ब्रह्मादिकनतैं परंपराके क्रमसैं सम्यक् प्राप्त भई है, तिन परम ऋषिनके ताईं नमस्कार है। जो ब्रह्मादिक परम ब्रह्मकूं साक्षात् जानते भये, वे परम ऋषि हैं। तिन परम-ऋषिनके ताईं फेर बी नमस्कार है। इहां दो वार जो कथन है, सो अत्यंत आदरके अर्थ है, औ इस तृतीय मुंडककी समाप्ति अर्थ है ॥ ११ ॥

इति श्री मुंडकोपनिषद्गत तृतीयमुंडक भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ३ ॥

इगि श्रीमद् बापुसरस्वतीपूज्यपाद शिष्य पीतांबरशर्मविदुषा श्रीमद् भगवत्पादकृत भाष्यानुसारेण विरचिता मुंडकोपनिषद् भाष्य भाषादीपिका समाप्ता ॥ ५ ॥

ग्रंथरूप द्वारसैं विद्याके प्रसंगविषै प्राप्तपनैके संभवतैं, सर्वठिकाने ऐसा ब्रह्मविद्याका दान नहीं है; ऐसै सूचन करते हुये कहैहैं।

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

श्री

गौडपादीयकारिकासहिताऽथर्ववेदीय माण्डूक्योपनिषद् प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरणम् ॥

नत्वा नारायणं देवं गौडपादं च शंकरम् ॥
ज्ञानानंदयतिं कुर्वे व्याख्यां मांडूक्यसंश्रुतेः ॥ १ ॥

भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण.

टीकाः—जिसके प्रसादतैं श्रीगौडपादाचार्यनैं मांडूक्यउपनिषद्के वार्त्तिकरूप श्लोक रचेहैं, तिस नारायण देवकूं; औ तिन श्लोकरूप वार्त्तिकके कर्त्ता श्रीगौडपादाचार्यकूं औ तिन श्लोकसहित या मांडूक्य उपनिषद्के भाष्यके कर्त्ता श्रीशंकराचार्यकूं; औ तिस भाष्यके व्याख्यानके कर्त्ता श्रीज्ञानानंद मुनिकूं नमस्कार करिके, तिनके प्रसादतैं मैं मुमुक्षुनके मोक्षअर्थ किंचित् टीका मिश्रित परिपूर्ण श्री गौडपादाचार्यकृत कारिकासहित मांडूक्यउपनिषद्की भाषादीपिकानामक टीकाकूं मतिके अनुसार करूं हूं ॥ १ ॥

---

१ जैसैं मंडूक (दादुर) तीन कूदि मारिके जलके भीतर प्रवेश करताहै, तैसैं या उपनिषद्विषै जाग्रत् आदिक तीन स्थानगत तीन पादनकूं छोडिके चतुर्थपादरूप हुया पुरुष ब्रह्मभावकूं पावताहै। यातैं मंडूकके तुल्य होनेतैं यह आत्मा मंडूक है; ताकी प्रतिपादक यह उपनिषद् मांडूक्य कहियेहै।

भाष्यकारकृत मंगलाचरणम्

प्रज्ञानांशुप्रतानैः स्थिरचरनिकरव्यापिभिर्व्याप्य लोकान्
भुक्त्वा भोगान् स्थविष्ठान् पुनरपि धिषणोद्भासितान् काम-
जन्यान् ।
पीत्वा सर्वान् विशेषान् स्वपिति मधुरभुङ्मायया भोजयन् नो
मायासंख्यातुरीयं परममृतमजं ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि ॥ १ ॥

भाष्यकारकृत मंगलाचरण

टीकाः—अमृत अज तो परब्रह्म है, ताकूं मैं नम्या हूं । वह परब्रह्म कैसा है किः—जन्मादिविकाररहित प्रकृष्ट ज्ञानरूप जो ब्रह्म

---

२ श्रीगौडपादाचार्यकूं नारायणके प्रसादतैं प्राप्त भये, औ मांडूक्य उपनिषद्‌के अर्थके प्रकट करनेके परायण जे गौडपादाचार्यके किये श्लोक (कारिका) हैं, तिनकूं व्याख्यान करनेकूं इच्छते हुये भगवान् भाष्यकार, करनेकूं इच्छित भाष्यकी निर्विघ्न समाप्तिकी सिद्धि अर्थ, परदेवताके स्वरूपके स्मरणपूर्वक शिष्ट पुरुषनके आचाररूप प्रमाणतैं सिद्ध, ता परदेवताके नमस्काररूप मंगलकूं मुखतैं आचरते हुये अर्थतैं या ग्रंथके आरंभविषै वांछित विषय आदिक च्यारी प्रकारके अनुबंधकूं बी सूचन करैहैं । तिनमैं विधिमुखसैं वस्तुका प्रतिपादन है; इस प्रक्रियाकूं दिखावै हैं । इहां "जो परब्रह्म है, ताकूं मैं नम्याहूं" इस कहनेकरि मैं (अहं) शब्दके अर्थकी तिस (तत्) शब्दके अर्थसैं एकताके स्मरणरूप नमनकूं सूचन करनेवाले आचार्यनैं तत्पदके अर्थरूप ब्रह्मका प्रत्यगात्मापना सूचन करिके, तत्पद औ त्वंपदके अर्थकी एकतारूप ग्रंथका विषय सूचन किया । औ "जो" शब्दकूं प्रसिद्ध अर्थका प्रकाशक होनेतैं वेदांत प्रसिद्ध जो ब्रह्म है, ताकूं नम्यांहूं, इस संबंधसैं मंगलाचरण बी श्रुतिकरि करिये है । ब्रह्मकूं अद्वितीय होनेतैंहीं जन्ममरणके कारणके अभावतैं "अमृत औ अज (अजन्मा)" ऐसैं कहा । जन्ममरणरूप बंधकूं संसाररूप होनेतैं ताके निषेधसैं स्वरूपतैं असंसारीभावकूं दिखावनेवाले आचार्यनैं इहां सर्व अर्थनकी निवृत्तिरूप प्रयोजन प्रकाश किया ॥

३ जब वेदांत प्रमाणतैं सिद्ध ब्रह्म, स्वरूपतैं अद्वितीय औ असंसारी

है, "प्रज्ञान ब्रह्म है," इस श्रुतितैं । तिस सूर्यरूप बिंबस्थानी ब्रह्म-के किरणरूप जो सूर्यके प्रतिबिंबके तुल्य निरूपण करियेहैं, औ बिंबके तुल्य औ ब्रह्मतैं भेदकरि असत् चिदाभास जीव हैं, ति-नके वृक्षादिक स्थिर औ मनुष्यादिक चर प्राणीनके समूहके तांई व्यापनेवाले विस्तारनसैं लोक जो विषय, ति-नके तांई व्यापिके देवताके अनुग्रह सहित बाह्य इंद्रियद्वारा बुद्धिके तिस तिस विषयाकार परिणामसैं जन्यतारूप अतिशय स्थूलतावाले सुखदुःखके साक्षात्काररूप भोगनकूं भोगिके[5] फेर बी बुद्धिसैं प्रकाशित भये, औ अविद्या कर्म अरु कामसैं जन्य भोगनकूं भोगिके सर्व जाग्रत् औ स्वप्नरूप स्थूल औ सूक्ष्म विषयनकूं अ-ज्ञातरूप अपने आत्माविषै लय करिके जो ब्रह्म सोवता है; कहिके कारणके अभावसैं स्थित होवैहै, औ जो मधुरभुक् (आ-नंदका भोक्ता) है, औ जो ब्रह्म प्रतिबिंबके तुल्य हमारेविषै मा-याकृत मिथ्यारूप तीन अवस्थाके संबंधीपनेकी न्यांई संबंधीपनेकूं

है; तब तीन अवस्थाकरि युक्त भोक्ता जीव कैसैं अनुभव करिये हैं, औ भुगावनेवाला ईश्वर कैसैं सुनिये है, औ विषयनका समूहरूप भोज्य कैसैं भिन्न देखिये है ? सो यह अद्वैतविषै विरोधकूं पावैगा ? यह आशंका क-रिके ब्रह्मविषैहीं जीव जगत् औ ईश्वर, यह सर्व कल्पित संभवै है; या अ-भिप्रायसैं इहां कहैहैं ॥

४ इस कथनकरि उक्तविषयनसैं जीवनका संबंध कहा ॥

५ इहां " भोगिके " इस पदका " सोवता है " इस आगे कहनेके पदसैं संबंध है । इस कथनकरि जाग्रत् अवस्था ब्रह्मविषै कल्पित है; ऐसैं कहा ।

६ इहांसैं तिसीहीं ब्रह्मविषै स्वप्नकी कल्पनाकूं दिखावै हैं ।

७ ऐसैं ब्रह्मविषै दोनूं अवस्थाकी कल्पनाकूं दिखायके । अब तहांहीं सु-षुप्तिकी कल्पनाकूं दिखावै हैं ।

८ सुषुप्तिविषै आनंदकी प्रधानता है, इस अभिप्रायसैं ब्रह्मकूं विशेषण देते हैं ।

योविश्वात्मा विधिजविषयान् प्राश्य भोगान् स्थविष्ठान्
पश्चाच्चान्यान् स्वमतिविभवान् ज्योतिषा स्वेन सूक्ष्मान् ।
सर्वानेतान् पुनरपि शनैः स्वात्मनि स्थापयित्वा
हित्वा सर्वान् विशेषान् विगतगुणगणः पात्वसौ नस्तुरीयः २

संपादन करिके हमकूं मायासैं शुगावता हुया वर्त्तता है । तिस माया-कल्पित मिथ्या-संख्याकी अपेक्षा-सैं तुरीय (चतुर्थ) मरणरहित अजन्मा पर[11] ब्रह्मके तांई मैं नम्र भया हूं ॥ १ ॥

टीकाः—जो[12] यह प्रत्यगात्मा अविद्या औ कालसैं उत्पन्न भये धर्म अधर्मरूप विधिसैं जन्य शब्दआदिक विषयरूप सूर्यआदिक देवताके अनुग्रहसहित बाह्य इंद्रियद्वारा बुद्धिके परिणामके विषय होनेकरि अत्यंत स्थूल औ भोगके योग्य होनेकरि भोगशब्दके वाच्य भोगनकूं साक्षात् अनुभव करिके स्थित भया, पं-

---

९ तीन अवस्था, औ तिन अवस्थावाले जीव, औ मायावी ईश्वर; यह सर्व शुद्ध ब्रह्मविषै कल्पित हैं; या अभिप्रायसैं अब कहैहैं ।

१० तिसीहीं ब्रह्मकूं तीन अवस्थातैं न्यारा होनेकरि ताकी ज्ञानमात्र स्वरूपताकूं दिखावै हैं ।

११ ब्रह्मकूं मायावी होनेकरि निकृष्टभावकी आशंका करिके, "पर (उत्कृष्ट) " ऐसैं कहा । ब्रह्मकूं मायाद्वारा तिस मायासैं संबंधके हुये बी स्वरूपद्वारा तासैं संबंध नहीं है, यातैं कहांसैं निकृष्टता होवैगी यह अर्थ है ।

१२ प्रथमश्लोकविषै विधिमुखसैं वस्तुके प्रतिपादनकी प्रक्रियाकूं आश्रय करिके तत्पदके अर्थसैं आरंभ करिके ताकी त्वंपदके अर्थभूत प्रत्यगात्मस्वरूपता कही, औ विषय अरु फलके कथनसैं संबंध औ अधिकारी सूचन किये । अब इस द्वितीयश्लोकविषै निषेधद्वारा वस्तुके प्रतिपादनकी प्रक्रियाकूं आश्रय करिके त्वंपदके अर्थसैं आरंभ करिके ताकी तत्पदके अर्थभूत असंसारी ब्रह्मस्वरूपताकूं प्रतीति करावै हैं । तहां त्वंपदके अर्थरूप स्वतःसिद्ध चिदात्माविषै आरोपित जाग्रत् अवस्थाकूं उदाहरण करैहैं ।

चीकृत पंचमहाभूत औ तिसका कार्यरूप स्थूल **जगत्मय विराट्**का शरीररूप विश्व है, तिस जागरित स्थानरूप विश्वविषै अहं मम इस अभिमानवान् हुया **विश्व जीवरूप** होवैहै । **औ पीछे**[१३] जाग्रत्के हेतु कर्मके क्षयके अनंतर स्वप्नके हेतु कर्मके उद्भव हुये जाग्रत्के स्थूल विषयनतैं **अन्य**, औ याहीं हेतुतैं सूक्ष्म औ बाह्य इंद्रियनकूं विषयनतैं निवृत्त होनेतैं अविद्या काम औ कर्मसैं प्रेरणाकूं प्राप्त भई **आपकी बुद्धिके प्रभावतैंहीं उत्पन्नभये अंतःकरणकी वासनामय**, औ सूर्यआदिक प्रकाशनकूं स्वप्नविषै अस्तकूं प्राप्त भये होनेतैं **आत्मारूप प्रकाशसैंहीं विषय किये भोगनकूं अनुभव करिके**, अपंचीकृत पंचमहाभूत औ तिसके कार्यरूप सूक्ष्म प्रपंचमय हिरण्यगर्भके **शरीररूप स्वप्नस्थानके तांई** अभिमान करता हुया तैजस जीवरूप होवैहै । **फेर**[१४] **बी** स्थूल औ सूक्ष्म शरीररूप दोनूं उपाधिद्वारा जाग्रत् औ स्वप्नरूप दोनूं स्थानोविषै प्रवृत्तिके किये श्रमकी उत्पत्तिके अनंतर, तिस श्रमके बी परित्यागकी इच्छाके हुये स्थूल औ सूक्ष्मके विभागकरि जाग्रत् औ स्वप्नरूप दोनूं स्थानोविषै स्थित, इन प्रसंगविषै प्राप्त भये **सर्व बी विशेष** (भोग)**नकूं धीरेसैं** (क्रमसैं वा अक्रमसैं) अज्ञात कारणरूप अपने स्वरूपविषै **स्थापन** (लय) **करिके** अव्याकृत उपाधिकी प्रधानतावाला हुया, प्राज्ञ जीवरूप होवैहै । सो[१५] **यह सर्व गुणो-**

---

१३ अब तिसीहीं चिदात्माविषै स्वप्न अवस्थाके आरोपकूं कहैहैं ।

१४ अब तिसीहीं चिदात्माविषै सुषुप्तिकी कल्पनाकूं दिखावै हैं ।

१५ अब जाग्रत् आदिक तीन स्थानोंकरि युक्त, औ " अंतःप्रज्ञ नहीं है, अरु बहिःप्रज्ञ नहीं है; " इस (१६ वें श्लोक) आदिक निषेध शास्त्रसैं उत्पन्न भये प्रमाण ज्ञानविषै आरूढ भये तिसीहीं प्रत्यगात्माके कार्य अरु कारणरूप सर्व बी अनर्थविशेषनकूं प्रमाणज्ञानके प्रभावतैंहीं त्यागिके, निरुपाधिक परिपूर्ण ज्ञानरूप परमात्मस्वरूपसैं सिद्ध भये तत्त्वकूं कहैहैं; औ ताकी प्रार्थना करैहैं ।

श्रीगौडपादीयकारिकासहिताथर्व्ववेदीयमांडूक्योपनिषदारम्भः ॥ ६ ॥

॥ हरिः ॐ ॥ ॐमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्व्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव १

के समूह-की कल्पनासैं रहित औ नित्य ज्ञानरूप स्वस्वभाववाला तुरीयरूप परमात्मा सर्व कार्यकारणरूप अनर्थनके-भेदनकूं बी प्रमाणजन्य ज्ञानके प्रभावतैंहीं त्यागिके व्याख्यानके कर्त्ता होनेकरि औ श्रोता होनेकरि स्थित भये हमकूं पुरुषार्थविषै विघ्नकारी कारणके निषेधपूर्वक मोक्षके दानसैं औ ताके हेतु ज्ञानके दानसैं रक्षण करहू ॥ २ ॥

अथ मांडूक्योपनिषद् भाष्यभाषादीपिका ॥ ६ ॥

टीकाः–यह[१६] ॐ इस प्रकारका जो अक्षर है, सो यह सर्व है। ताका उपव्याख्यान वेदांत[१७] (शास्त्र)के अर्थका सार संग्रहरूप चारी प्रक-

---

१६ जाकूं उद्देश करिके मंगलाचरण किया, ताकूं कहनेकूं आदिविषै व्याख्यान करनेयोग्य मंत्रके प्रतीक (प्रथम पद)कूं ग्रहण करैहैं ।

१७ यह क्या शास्त्रपनेकरि व्याख्यान करनेकूं इच्छित है, वा प्रकरणपनैकरि ? तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहीं । काहेतैं, शास्त्रके लक्षणके अभावतैं या ग्रंथकूं अशास्त्ररूप होनेतैं । जातैं एक प्रयोजनसैं संबंधवाला सर्व अर्थका प्रतिपादक, शास्त्र कहियेहै । या ग्रंथविषै मोक्षरूप एक प्रयोजनकरि युक्तपनैके हुये बी, सर्व अर्थका प्रतिपादकपना नहीं है; यातैं शास्त्रके लक्षणके अभावतैं याकूं अशास्त्रपना युक्त है । औ द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं; काहेतैं, प्रकरणके लक्षणके अभावतैं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:–शास्त्रके एकदेशसैं संबंधवाला औ शास्त्रके अन्यकार्यविषै स्थित जो होवै, सो प्रकरण कहियेहै । यह ग्रंथ, प्रकरणपनैकरि व्याख्यानक-

रणवाला "यह ॐ इसप्रकारका जो अक्षर है" इत्यादिरूप ग्रंथ है, सो आरंभ करियेहै । यांहींतैं यातैं भिन्न संबंध विषय औ प्रयोजन कहनेकूं योग्य नहीं हैं, किंतु जोई वेदांतशास्त्रविषै संबंध विषय औ प्रयोजन हैं, वेई इहां होनेकूं योग्य हैं । तथापि प्रकरणके व्याख्यान करनेकी इच्छावाले पुरुषकरि संक्षेपतैं कहनेकूं योग्य हैं । तहां प्रयोजनकी न्यांई साधनोंका प्रकाशक होनेकरि विषयसैं संबंधवाला जो शास्त्र, सो परंपरासैं श्रेष्ठ संबंध विषय औ प्रयोजनवाला होवैहै । फेर तिसका प्रयोजन क्या है ? तहां कहियेहैः—रोगार्त-पुरुषकूं रोगकी निवृत्तिके हुये जैसैं स्वस्थता होवैहै तैसैं दुःखीरूप, आत्माकूं द्वैतप्रपंचकी निवृत्तिके हुये जो अद्वैतभावरूप स्वस्थता होवैहै, सो प्रयोजन है । जातैं द्वैतप्रपंचकूं अविद्याकृत होनेतैं विद्यासैं ताकी निवृत्ति होवैहै, यातैं ब्रह्मविद्याके प्रकाश करने अर्थ इस ग्रंथका आरंभ करियेहै । "जैंहांहीं द्वैतकी न्यांई होवैहै, जहां वा अन्यकी न्यांई होवैहै; तहां अन्य अन्यकूं देखे औ अन्य अन्यकूं जाने, जहां तो इस पुरुषकूं सर्व आत्माहीं होता भया, तहां किसकरि किसकूं देखे, किसकरि किसकूं जाने" ?

रनेकूं इच्छित है; काहेतैं, निर्गुण वस्तुमात्रका प्रतिपादक होनेतैं, औ ताके प्रतिपादनके संक्षेपरूप अन्यकार्यके होनेतैं; या ग्रंथविषै प्रकरणके लक्षणकूं संपूर्ण होनेतैं ।

१८ या ग्रंथकूं प्रकरणरूप हुये बी विषय आदिक अनुबंधरहितता-रूप दोष करि याके व्याख्यानकरनेकी अयोग्यता है ? यह आशंका करिके कहैहैं ।

१९ भाष्यकारकरि प्रयोजन आदिकके कहनेकी योग्यताके सिद्ध भये, शास्त्र औ प्रकरणके मोक्षरूप प्रयोजनवान्पनैकी प्रतिज्ञा करैहैं ॥

२० आत्माकी अविद्याके किये द्वैतकी आत्मविद्यासैं कारणकी निवृत्तिकरि निवृत्तितैं, आत्मविद्याके आविर्भावअर्थ शास्त्रका आरंभ घटैहै. औ अविद्याके किये द्वैतके विद्यमान देहभावविषै प्रमाण नहीं

इत्यादि श्रुतिनतैं इस अर्थकी सिद्धि है । तहां[21] प्रथम ॐकारके निर्णयअर्थ आगमप्रधान आत्मतत्त्वके निश्चयका उपायरूप प्रथम प्रकरण है । रज्जुविषै सर्प आदिकके विकल्पकी निवृत्तिके हुये रज्जुके स्वरूपकी प्राप्तिकी न्यांई, जिसैं[22] द्वैतप्रपंचकी निवृत्तिके हुये अद्वैतकी प्राप्ति होवैहै; तिस द्वैतके हेतुतैं मिथ्यापनैके प्रतिपादन अर्थ द्वितीय प्रकरण है । तैसैं[23] अद्वैतकूं बी मिथ्यापनैके प्रसंगकी प्राप्तिके हुये युक्तितैं ताके परमार्थपनैके दिखावनेअर्थ तृतीय प्रकरण है । [24]अद्वैतके परमार्थभावके निश्चयके विरोधिरूप जे अन्य वेदविरुद्ध वाद हैं, तिनकूं परस्पर विरोधि होनेतैं अयथार्थ होनेकरि युक्तिकरिहीं तिनके निराकरणअर्थ चतुर्थ प्रकरण है ॥ फेर[25] ॐकारके निर्णयविषै आत्मतत्त्वकी प्राप्तिका

है ? यह आशंकाकरिके अन्वय औ व्यतिरेककी अनुसारी श्रुतिकूं उदाहरण करैहैं ।

२१ विषय औ प्रयोजन आदिक अनुबंधके आरंभद्वारा ग्रंथके आरंभके स्थित हुये आदिविषै या ग्रंथके च्यारी प्रकरणका एक एक असिलित विषय, ज्ञानकी सुगमताअर्थ सूचन करनेकूं योग्यहै; ऐसैं कहिके प्रथम प्रकरणके विषयकूं कहैहैं ।

२२ अब वैतथ्यनामक द्वितीय प्रकरणके अवांतरविषयकूं दिखावैहैं ।

२३ अब अद्वैतनामक तृतीय प्रकरणके अर्थ विशेषके कहनेका आरंभ करैहैं ॥

२४ अब अलातशांतिनामक चतुर्थ प्रकरणके अर्थविशेषकूं कहैहैं ।

२५ ॐकारके निर्णयरूप द्वारसैं आत्मज्ञानका उपायरूप प्रथम प्रकरण है, ऐसैं जो कहा; सो अयुक्त है । काहेतैं, ॐकारके निर्णयकूं आत्मज्ञानकी हेतुताके अयोगतैं । जातैं अन्य अर्थका ज्ञान, अन्य अर्थके ज्ञानविषै व्याप्तिविना उपयोगकूं पावता नहीं, औ इहां धूम अरु अग्निकी न्याई व्याप्ति नहीं देखियेहै, औ ॐकारकूं आत्माका कार्यपना युक्त नहीं है ।

उपायपना कैसैं प्रतिपादन करियेहै? तहां[२६] कहियेहैः– "ॐ इस प्रकारका यह," "यह आलंबन है" "हे सत्यकाम! यह पर औ अपररूप जो ब्रह्म है, सो ॐकार है। तातैं विद्वान् इसीहीं साधनसैं दोनूंके मध्य एककूं पावता है" "ॐ ऐसैं आत्मा (बुद्धि)कूं जोडे;" "ॐ यह ब्रह्म है" "ॐ कारहीं यह सर्व है;" इत्यादि श्रुतिनतैं। सर्प[२७] आदिक विकल्पके आश्रय रज्जु आदिककी न्यांई, जैसैं अद्वैतरूप आत्मा परमार्थतैं सत्‌रूप हुया प्राण आदिक विकल्पका आश्रय है। तैसैं प्राणआदिकरूप विकल्पकूं विषय करनेवाला सर्व बी वाणीरूप प्रपंच ॐकारहीं है। औ सो[२८] ॐकार आत्माका स्वरूपहीं है; काहेतैं, तिस आत्माका वाचक होनेतैं। जातैं ॐकारके विकार शब्दके उच्चारणका विषय सर्व प्राणआदिक आत्माका विकल्प नामसैं भिन्न नहीं है, काहेतैं, "वाणीसैं उच्चारण किया विकार नाममात्र है," औ "सो इसका यह सर्व वाणीरूप तंतुसैं नाम-

---

काहेतैं, आकाशआदिकके अवशेषतैं, औ ता ॐकारकूं आत्माकी न्याई सर्वात्मा होनेकरि ताके कार्यपनेके व्याघाततैं। ऐसैं मानता हुया वादी पूर्व कहे प्रथम प्रकरणके अर्थकेताई आक्षेप करैहै।

२६ हम अनुमानप्रमाणके आश्रयतैं ॐकारके निर्णयकूं आत्मज्ञानका उपाय नहीं जानतेहैं, जिसकरि व्याप्तिका अभावरूप दोष होवै; किंतु, श्रुतिके प्रमाणतैं ॐकारका निर्णय आत्मज्ञानका हेतु है, ऐसैं समाधान करैहैं॥

२७ ननु, आपकरि व्याप्त भये प्रतिभास (भ्रांति)वाले सत्‌मात्र चिदात्माविषै प्राण आदिक विकल्पकूं कल्पित होनेतैं आत्माकूं सर्वका आश्रयपना है, परंतु ॐकारकूं सो सर्वका आश्रयपना नहीं है; ताके अनुस्यूतपनेके अभावतैं? यह आशंका भई। तहां कहैहैं।

२८ ननु, अर्थनके समूहकूं आत्मारूप आश्रयवाला होनेतैं, औ ॐकाररूप आश्रयवाला होनेतैं, वाणीरूप प्रपंचके दोनूं आश्रय प्राप्त भये? यह कथन बनै नहीं; ऐसैं कहैहैं।

रूप दामोसैं बद्ध हैं;" "सर्वहीं यह नामविषै है," इत्यादि श्रुतिनतैं ॐकारकूं सर्वका आश्रयपना बनै है। [29]यातैं यह श्रुति, "ॐ इसप्रकारका यह अक्षर यह सर्व है" ऐसैं कहैहै। जो यह विषयरूप अर्थका समूह है, ताकूं नामसैं अभिन्न होनेतैं औ नामकूं ॐकारसैं अभिन्न होनेतैं ॐकारहीं यह सर्वहै। औ जो परब्रह्म नामके कथनरूप उपायपूर्वकहीं जानियेहै, सो ॐकारहीं है। [30]तिसं इस पर औ अपर ब्रह्मरूप ॐ इस प्रकारके अक्षरका ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होनेतैं, ब्रह्मके समीप होनैकरि विस्पष्ट कथनरूप प्रसंगविषै प्राप्त जो **उपव्याख्यान** है, सो जाननेकूं योग्य है। उक्त न्यायतैं भूत भविष्यत् औ वर्तमान, इन तीन कालोंकरि परिच्छेद करनेकूं योग्य जो वस्तु है, सो बी यह ॐकारहीं है। औ जो अन्य तीनकालोंतैं भिन्न कार्यरूप लिंगसैं जानने योग्य औ कालसैं परिच्छेद करनेकूं अयोग्य अव्याकृत आदिक है, सो बी ॐकारहीं है। [31]ईहां नाम (वाचक) औ नामी (वाच्य)की एकताके हुये बी नामकी प्रधानतासैं यह निर्देश किया है ॥ १ ॥

---

२९ प्रथम प्रकरणके अर्थकूं प्रतिपादन करिके तिस अर्थविषै मूलश्रुतिकूं प्रकट करैहैं ॥

३० अब "तिसका" इत्यादिरूप मूलश्रुतिके भागकूं प्रकटकरिके व्याख्यान करैहैं।

३१ वाच्य औ वाचककूं एकहीं सत् वस्तुविषै कल्पित होनेकरि तिनकी एकरूपताकूं कथनकरि होनेतैं, फेर "सर्व यह ब्रह्म है" ऐसैं क्यूं कहियेहै? तहां उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक आगिले वाक्यके फलसहित तात्पर्यकूं कहैहैं।

सर्वꣳ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥ २ ॥

टीका:—"ॐ[३२] इसप्रकारका यह अक्षर यह सर्व है" इत्यादि नामकी प्रधानतासैं निर्देश किये वस्तुका फेर नामीकी प्रधानतासैं जो निर्देश (कथन) है, सो नाम औ नामीकी एकताके निश्चय अर्थ है। अन्यथा नाम जो है तिसविषै नामीका निश्चय होवैगा, औ नामीकी नामरूपता गौण है, एसी आशंका होवैगी। औ वाच्य औ वाचकरूप नामी औ नामकी एकताके निश्चयका इन दोनूंकूं एकहीं प्रयत्नसैं एककालविषै लय करता हुया तिनतैं विलक्षण ब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै, यह प्रयोजन है। तैसैं आगे कहियेगा कि:—"पाद जे हैं वे मात्रा हैं, औ मात्रा जे हैं वे पाद हैं" इस रीतिसैं। सो[३३] कहैहैं:—सर्व (कार्य औ कारण) हीं यह ब्रह्म है। सर्व जो ॐकारमात्र है, ऐसैं श्रुतिनैं कहाहै, सो यह ब्रह्म है। तिस परोक्षपनैंकरि कथन किये ब्रह्मकूं प्रत्यक्षतैं विशेषकरि निर्देश करैहै:—यह आत्मा ब्रह्म है। इहां "यह" ऐसैं विश्व तैजस प्राज्ञ औ तुरीयरूप च्यारी पादवाला होनेकरि विभागकूं प्राप्त भये आत्माकूं प्रत्यगात्मारूप होनेकरि कहनेकूं इच्छित अर्थके निश्चय अर्थ, असाधारण शरीरके हस्तके अग्रकूं हृदयदेशके तांई ल्याव-

---

३२ वाच्यकूं वाचकपनैके कथन करिहीं तिनके एकताकी सिद्धितैं, फेर वाचककी वाच्यरूपताका कथनरूप व्यतिहार (उलटायके कहना) वृथा है? यह आशंका करिके कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—वाच्यसैं वाचककी एकताकूं न कहिके वाचकसैंहीं वाच्यकी एकताके कहे हुये उपाय औ उपेयकी करी हुई जो एकता, सो मुख्य नहीं है; किंतु गौण है? यह आशंका प्राप्त होवैगी, ताके निवारण अर्थ व्यतिहारका कथन सफल है।

३३ कहे हुये वाचकके वाच्यसैं अभेदविषै वाच्यकूं प्रकटकरिके जोडतेहैं।

नेरूप व्यापारमय अभिनयसैं "यह आत्मा है," ऐसैं कहैहैं। सो[३४] यह ॐकारका वाच्य औ पर (अधिष्ठान) औ अपर (प्रत्यगात्मा)रूप होनेकरि स्थित भया आत्मा चारी पादवाला है। (तहां दृष्टांत):—[३५]कार्षापणके पादकी न्यांई, गौके पादकी न्यांई नहीं। विश्व[३६] आदिक तीनके मध्य पूर्वपूर्वके विलय करनेसैं तुरीयका निश्चय होवैहै। ऐसैं हुये पादशब्द तुरीयके करणभावका साधन होवैहै; औ प्राप्त होवैहै। ऐसैं हुये पादशब्द तुरीयके कर्म (विषय)भावका साधन होवैहै। परंतु निरवयरूप आत्माकूं दोनूं प्रकारके पादनकी कल्पना बनै नहीं ॥ २ ॥

---

३४ अब "सो यह है" इत्यादिरूप अन्यवाक्यकूं प्रकटकरिके व्याख्यान करैहैं।

३५ आत्माकूं सर्वका अधिष्ठान होनेकरि अपरोक्षरूपसैं पर (श्रेष्ठ) पना है, औ प्रत्यगात्मारूपसैं अपर (अश्रेष्ठ)पना है। तिस हेतुकरि कार्यकारणरूपसैं सर्वका स्वरूप होनेकरि स्थित हुया आत्मा ज्ञानकी सुगमता-अर्थ च्यारीपादवाला कल्पना करियेहै; तिसविषै दृष्टांतकूं कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—कोइक देशविषै कार्षापणशब्द जो है, सो षोडशपणोका (धान्यके मापविशेषका) नाम है, तहां जैसैं व्यवहारकी बहुलता अर्थ पादकी कल्पना करियेहै, तैसैं इस आत्माविषै बी पादकी कल्पना है। परंतु जैसैं गौ च्यारीपादवाली कहियेहै, तैसैं आत्मा च्यारीपादवाला कहनेकूं शक्य नहीं है। काहेतैं, आत्माके निष्कल (निरवयव)भावकी प्रतिपादक श्रुतिके विरोधतैं।

३६ विश्वसैं आदिलेके तुरीयपर्यंत पदार्थनविषै जो पादशब्द है, सो जब करण व्युत्पत्तिवाला (साधनरूप अर्थवाला) होवै, तब विश्व आदिककी न्यांई तुरीयके बी करण (साधन)कोटिविषै प्रवेशके हुये ज्ञेयवस्तुकी असिद्धि होवैगी; औ जब पादशब्द विश्वआदिक सर्वविषै कर्मव्युत्पत्तिवाला (विषयरूप अर्थवाला) होवै, तब सर्वकूं ज्ञेयरूप होनेतैं ज्ञानके साधनकी असिद्धि होवैगी? यह आशंकाकरिके, पादशब्दकी प्रवृत्तिकूं विभागकरिके प्रकट करैहैं।

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥३॥

टीकाः—आत्माका च्यारीपादकरि युक्तपना कैसैं है? तहां[37] कहैहैंः—जो जागरित (जागृत् अवस्था) है स्थान (अभिमानका विषय) जिसका, ऐसा **जागरितस्थान** है। औ बाहिर जो आत्माकूं अपने आत्मातैं भिन्न विषयहै, तिसविषै है प्रज्ञा[38] जिसकी, सो **बहिःप्रज्ञ** है। कहिये, अविद्याकृत[39] जो प्रज्ञा है, सो बाहिरके विषयवालीहीं हुयी भासती है। तैसैं[40] "तिस इस प्रसिद्ध वैश्वानररूप आ-

---

३७ आत्माके च्यारीपाद तो दूरतैं निषेध कियेहैं, ऐसैं वादी शंका करैहै ॥

३८ परमार्थतैं आत्माकूं च्यारी पादवान्पनैके अभाव हुये बी कल्पना किये उपाय (साधन) औ उपेय (साध्य) रूप च्यारीपाद अविरुद्ध हैं, इस अभिप्रायसैं प्रथमपादकूं प्रतिपादन करैहैं।

३९ प्रज्ञा जो बुद्धि, ताकूं प्रथम भीतर होनेकी प्रसिद्धितैं, ताका "बाहिरके विषयवाली है" यह विशेषण अयुक्तहै? ऐसी आशंकाकरिके, ताका व्याख्यान करैहैं। इहां यह भाव हैः—चैतन्यरूप जो स्वरूपभूत प्रज्ञा है, सो बाह्य विषयविषै भासती नहीं; काहेतैं, ताकूं विषयकी अपेक्षासैं रहित होनेतैं, किंतु बुद्धिरूप जो प्रज्ञा है, सो बाहिरके विषयविषै भासती है।

४० बाह्य विषयके वास्तव अभावतैं सो प्रज्ञा बाह्यविषयविषै बी कैसैं भासतीहै? यह आशंकाकरिके कहैहैं। इहां यह अर्थ हैः—स्वरूपभूत जो प्रज्ञा है, सो वस्तुतैं बाह्यविषयवाली नहीं अंगीकार करियेहै; परंतु बुद्धिवृत्तिरूप जो यह अज्ञानसैं कल्पित प्रज्ञा है, सो बाह्यविषयवाली होवैहै। सो बुद्धिवृत्तिरूप प्रज्ञा बी वस्तुतैं बाह्यविषयभावकूं नहीं अनुभव करैहै; काहेतैं, वस्तुतैं आपके अभावतैं औ बाह्यविषयकूं कल्पित होनेतैं। यातैं बुद्धिवृत्तिका बाह्य विषयका प्रकाशकपना प्रातिभासिक (कल्पित) है।

४१ अब पूर्वके विशेषणसैं अन्य विशेषणकूं मिलावतेहैं।

त्माका सुंदर तेजवाला स्वर्गलोक मस्तकहीं है, नानाप्रकारका श्वेतपीतादि गुणवाला सूर्य चक्षु है, औ नानाप्रकारके विचरनेके स्वभाववाला वायु प्राण है, औ विस्ताररूप गुणवाला आकाश देहका मध्यभाग है, औ उनका हेतुरूप जल मूत्रका स्थान है, औ पृथ्वीहीं दो पाद हैं, औ अग्निहोत्रकी कल्पनाविषै उपयोगी होनेकरि आहवनीय नामक जो अग्नि है; सो मुखपनैकरि कहा है" तिस इस श्रुतिकरि उक्त ये सप्त हैं अंग जिसके, ऐसा **सप्त अंगवाला** है। तैसैं[42] ज्ञानेंद्रिय औ कर्मेंद्रिय मिलिके, दश इंद्रिय, औ प्राण आदिक पांच वायु, औ मन बुद्धि अहंकार अरु चित्त ये चारि अंतःकरण; ये उंनीस हैं मुखकी न्यांई मुख (ज्ञानके[43] द्वार) जिसके, ऐसा **उंनीस मुखवाला** है। औ[44] सो ऐसे विशेषणवाला वैश्वानर, उक्त उंनीस द्वारनसैं शब्दादिक स्थूल विषय-

---

४२ अब अन्य विशेषणकूं मिलावते हैं।

४३ इहां ज्ञानपद कर्मका उपलक्षण है, यातैं ज्ञानके साधन औ कर्मके साधन इस विश्वजीवके मुख (ज्ञान औ कर्मके साधन) हैं। इहां ऐसैं विवेचन करनेकूं योग्य है:—पांच ज्ञानेंद्रिय मन औ बुद्धिकूं ज्ञानविषै साधनपना प्रसिद्ध है, औ कर्मेंद्रियनकूं वचन आदिक कर्मविषै साधनपना है; फेर प्राणनकूं ज्ञान औ कर्म दोनूंविषै परंपरासैं साधनपना है; काहेतैं प्राणोंके होतेहीं ज्ञान औ कर्मकी उत्पत्तितैं, औ तिनके न होते ज्ञान औ कर्मकी अनुत्पत्तितैं। मन औ बुद्धिकूं सर्व ठिकाने साधारण साधनपना है, औ अहंकारकूं बी प्राण आदिककी न्यांईहीं साधनपना माननेकूं योग्य है, औ चित्तकूंहीं चैतन्यके आभासके उदयविषै साधनपना कहा है।

४४ पूर्व उक्त विशेषणकरियुक्त वैश्वानरका "स्थूलभूक्," ऐसा अन्य विशेषण है; ताकूं विभाग करैहैं। इहां शब्द आदिक विषयनका जो स्थूलपना है, सो दिशा आदिक देवताके अनुग्रहसहित श्रोत्र आदिक इंद्रियनसैं ग्रहण होनेरूप है।

नकूं भोगताहै, यातैं **स्थूलभुक्** है; औ[४५] सर्व नरनकूं अनेक प्रकारसैं ले जाताहै, यातैं विश्वानर है । यद्वा विश्व ऐसा जो नर सो कहिये विश्वानर, । विश्वानरहीं सर्व[४६] पिंडके स्वरूपसैं अभिन्न होनेतैं **वैश्वानर** है; सो प्रथम पाद है । पीछले[४७] तीन पादनके ज्ञानकूं इसके ज्ञानपूर्वक होनेतैं, इस वैश्वानरकूं प्रथमपना है । "यँह आत्मा ब्रह्म है, सो यह आत्मा च्यारी पादवाला है" या द्वितीय वाक्यसैं इस प्रत्यगात्माके च्यारीपादकरि युक्तपनेरूप प्रसंगविषै, स्वर्गलोक आदिकनका मस्तक आदिक अंगपना कैसैं कहा ? तँहां कहैहैं:—यह दोष नहीं है । काहेतैं, अधिदवसहित

---

४५ अब वैश्वानरशब्दका प्रसंगविषै प्राप्त विश्व जीवकूं विषय करनेपना स्पष्ट करैहैं ।

४६ विश्व ऐसा जो नर, सो कहिये वैश्वानर । इस रीतिसैं सर्व नरनकी एकता कैसैं बनैगी; काहेतैं, जाग्रत् अवस्थावाले नरनकूं अनेकरूप होनेतैं तिनके तादात्म्यके असंभवतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं । इहां सर्व पिंडनका स्वरूप समष्टिरूप विराट् कहिये है, तिस रूपसैं सर्व विश्वजीवनकूं अभिन्न होनेतैं उक्त अर्थकी सिद्धि है ।

४७ ननु, विश्वकी तैजसतैं उत्पत्तिके होनेतैं तिसीहीं तैजसका प्रथमपना युक्त है, औ कार्यकूं तो पीछे होनेपना उचित है ? यह आशंका करिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—विश्वकूं जो प्रथमपना है, सो लय करनेकी अपेक्षासैं है, उत्पत्तिकी अपेक्षासैं नहीं ।

४८ अब अध्यात्म (व्यष्टि) औ अधिदैव (समष्टि)के भेदकूं लेके पूर्वउक्त विश्वके सप्त अंगवान्‌पनेके तांई वादी आक्षेप करैहै ।

४९ अध्यात्म (विश्व) औ अधिदैव (विराट्)के भेदके अभावतैं विश्वकूं पूर्व उक्त सप्त अंगवान्‌पनैका विरोध नहीं है, ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं । इहां कथन किये हेतुका यह भावार्थ है:—अधिदैवकरि सहित पंचीकृत पंचमहाभूत औ तिनके कार्यस्वरूप सर्वहीं स्थूलरूप अध्यात्म प्रपंचकूं इस विराट्स्वरूपसैं प्रथमपादपना है । अपंचीकृत पंचमहाभूत औ तिनके कार्यस्वरूप सूक्ष्मरूप तिसीहीं अध्यात्म प्रपंचकूं हिरण्यगर्भरूपसैं द्वितीयपादपना

सर्व प्रपंचके इस आत्माके स्वरूपसैं च्यारीपादपनैकूं कहनेकूं इच्छित होनेतैं । ऐसैं[५०] सर्वप्रपंचकी निवृत्तिके हुये अद्वैतकी सिद्धि होवैहै, औ सर्व भूतनविषै स्थित एक आत्मा देख्या होवैहै, औ सर्वभूत आत्माविषै देखे हुये होवैहैं । ऐसैं "जो सर्व भूतनकूं आत्माविषैहीं देखताहै" इस ईशावाक्यके षष्ठ मंत्ररूप श्रुतिका अर्थ समाप्त किया होवैहै । अन्यथा[५१] अपने देहकरि परिच्छिन्नहीं प्रत्यगात्मा सांख्यआदिकनकी न्यांई देख्या होवैगा । तैसैं[५२] हुये

है । कार्यरूपताकूं त्यागिके कारणरूपताकूं प्राप्त भये तिसीहीं अध्यात्म प्रपंचकूं अव्याकृतरूपसैं तृतीयपादपना है, औ कार्यकारणरूपताकूं छोडिके सर्व कल्पनाके अधिष्ठानपनैकरि स्थित भये तिसीहींकूं सत्य ज्ञान अनंत औ आनंदरूपसैं चतुर्थपादपना है । तातैं ऐसैं अध्यात्म औ अधिदैवके अभेदकूं लेके उक्त प्रकारसैं च्यारीपादवान्पनैकूं कहनेकूं इच्छित होनेतैं, पूर्व पूर्व पादके उत्तर उत्तर पादरूपसैं विलय करनेतैं जिज्ञासुकी तुरीय स्वरूपविषै स्थिति, सिद्ध होवैहै ।

५० जब ऐसैं जिज्ञासु मुमुक्षुकी तुरीयविषै स्थिति अंगीकार करियेहै, तब तत्त्वज्ञानके प्रतिबंधक प्रातिभासिक (कल्पित) द्वैतकी निवृत्तिके हुये "अद्वैत परिपूर्ण ब्रह्म मैं हूं" ऐसा महावाक्यके अर्थका साक्षात्कार सिद्ध होवैहै; ऐसैं फलितकूं कहैहैं ।

५१ अध्यात्म ओ अधिदैवके अभेदके अंगीकाररूप द्वारसैं पूर्व उक्त रीतिसैं तत्त्वज्ञानके अनंगीकारविषै दोष कहैहैं ।

५२ ननु, आत्माकी एकताविषै सुख आदिकके भेदकी व्यवस्थाके असंभवसैं शरीर शरीरके प्रति आत्माका भेद सिद्ध होवैहै ? यह आशंका करिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—सांख्य आदिकनकूं द्वैतके तांई विषय करनेवाला ज्ञान वांछित है, तिसकरि अद्वैतके तांई विषय करनेवाले तेरे सिद्धांतके विशेषके अभावतैं तेरे पक्षविषै अद्वैत तत्त्व है । इस रीतिका श्रुतिसिद्ध विशेष नहीं सिद्ध होवैगा, यातैं भेदवादविषै श्रुतिका विरोध प्राप्त होवैगा । औ सुख आदिककी व्यवस्था तो उपाधिके किये भेदकूं आश्रय करिके सिद्ध होवैगी ।

अद्वैत है, ऐसा श्रुतिका किया विशेष नहीं होवैगा, काहेतैं सांख्य आदिकनके मतकरि अविशेषतैं । [५३]औ सर्व उपनिषदनकूं सर्व आत्माकी एकताका प्रतिपादकपना अंगीकार करियेहै । [५४]यातैं इस अध्यात्ममय पिंडरूप आत्माकी स्वर्गलोक आदिक अंगसैं युक्तताकरि अधिदैवरूप विराट् आत्मासैं एकताके अभिप्रायसैं सप्त अंगकरि युक्तताका वचन है । काहेतैं, "[५५]मस्तक तेरा पतन भया" इत्यादिक लिंगके दर्शनतैं । [५६]इहां विराट्की जो एकता है, सो हिर-

---

५३ ननु, भेदवादविषै बी अद्वैतकी श्रुति विरोधकूं पावती नहीं; काहेतैं, ध्यानके अर्थ "अन्न ब्रह्म है, ऐसैं जानना" इस वाक्यकी, न्यांई, "अद्वैत तत्त्व है" इस उपदेशकी सिद्धितैं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—उपक्रम औ उपसंहारकी एकरूपता आदिक लिंगसैं सर्व उपनिषदनका सर्व देहनविषै आत्माकी एकताके प्रतिपादनविषै तात्पर्य इच्छित है; यातैं अद्वैत श्रुतिका ध्यानरूप अर्थवान्पना इच्छा करनेकूं शक्य नहीं है; काहेतैं, एकतारूप वस्तुविषै तात्पर्यके लिंगके विरोधतैं ।

५४ अध्यात्म औ अधिदैवकी एकताकूं अंगीकार करिके, अद्वैतविषै तात्पर्यके सिद्ध भये अध्यात्मिकरूप व्यष्टिस्वरूप विश्वकी त्रैलोक्यस्वरूप अधिदैवरूप विराट्के साथि एकताकूं ग्रहण करिके, जो तिस विश्वका सप्त अंगवान्पना पूर्व कहाथा, सो अविरुद्ध है; ऐसैं समाप्त करैहैं ।

५५ अध्यात्म औ अधिदैवकी एकताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ।

५६ ननु, मूल ग्रंथविषै विराट्की विश्वसैं एकताहीं देखिये है । तातैं संपूर्णताकरि अध्यात्म औ अधिदैवकी एकताकूं कहनेकूं वांछित करिके भाष्यकारकरि अद्वैतविषै तात्पर्य कैसैं कहिये है ? तहां कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—जो मुखतैं विराट्की एकता दिखाई, सो तो हिरण्यगर्भकी तैजससैं औ अव्याकृत उपाधिवाले अंतर्यामीकी प्राज्ञसैं जो एकता है, ताके उपलक्षण अर्थ है । यातैं मूल ग्रंथविषै बी संपूर्णताकरि अध्यात्म औ अधिदैवकी एकता, कहनेकूं इच्छित है; यातैं अद्वैतविषै तात्पर्यकी सिद्धि है ।

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति-मुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः॥४॥

ण्यगर्भ औ अव्याकृतरूप आत्माके उपलक्षण अर्थ है । यह मधुब्राह्मणविषै कहाहैः—" जो यह इस पृथिवीविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है, औ जो यह अध्यात्म है " इत्यादि वाक्यसैं । [57]औ प्राज्ञ अरु अव्याकृतकी एकता तो सिद्धहीं है; काहेतैं, दोनूंकूं निर्विशेषरूप होनेतैं । ऐसैं[58] हुये सर्व द्वैतकी निवृत्तिके हुये अद्वैत है, यह सिद्ध होवैगा ॥ ३ ॥

टीकाः—[59]स्वप्न है ममअभिमानका विषयरूप स्थान जिस तैजसरूप द्रष्टाका, ऐसा जो **स्वप्नस्थानवाला** [60]जाग्रत्, ताकी जो प्रज्ञा (बुद्धि) है; सो अनेक साधनवाली औ बाहिरकूं विषयकरनेवाली हुयेकी न्याई भासमान, औ मनरूप स्फुरणमात्र हुयी तिसप्रकारके संस्कारकूं मन-

---

५७ ननु, विश्व औ विराट्कूं स्थूलप्रपंचके अभिमानी होनेतैं औ तैजस अरु हिरण्यगर्भकूं सूक्ष्म प्रपंचके अभिमानी होनेतैं, तिनकी एकता युक्त है; परंतु प्राज्ञ औ अव्याकृतकी किस तुल्यतासैं एकता है ? तहां कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः—प्राज्ञ जो है सो सुषुप्तिविषै सर्व विशेषकूं लय करिके निर्विशेष होवैहै, औ अव्याकृत जो है सो प्रलयदशाविषै सर्व विशेषकूं आपविषै लय करिके निर्विशेषरूप स्थित होवैहै; तातैं उक्त तुल्यताकूं पूर्व करिके तिन प्राज्ञ औ अव्याकृतकी एकता अविरुद्ध है ।

५८ पूर्व उक्त रीतिसैं अध्यात्म (व्यष्टि) औ अधिदैव (समष्टि)की एकताके सिद्ध भये द्वैतकै विलयकी प्रक्रियासैं अद्वैत सिद्ध भया, ऐसैं फलित (सिद्ध भये अर्थ)कूं कहैहैं ।

५९ ऐसैं आत्माके विश्वरूप प्रथमपादकूं व्याख्यान करिके, अब तैजसरूप द्वितीयपादकूं प्रकट करिके व्याख्यान करैहैं ।

६० स्वप्नपदके अर्थकूं निरूपण करनेकूं ताके कारणकूं निरूपण करैहैं ।

विषै धारण करैहै। तैसै संस्कारवाला सो मन, चित्रित[61] पटकी न्याई बाहिरके साधनकी अपेक्षासैं रहित औ अविद्या काम अरु कर्मसैं प्रेरणाकूं पायाहुया जाग्रत्‌की न्याई भासताहै। तैसैं बृहदारण्यक श्रुतिविषै कहाहैः–"इस सर्व साधनकी संपत्तिवाले लोककी मात्रा (लेशरूप वासना) कूं ग्रहणकरिके सोवताहै" तैसैं अथर्वणवेदकी प्रश्नउपनिषद्‌विषैः–"मनरूप परदेवविषै एककी न्याई होवैहैं" ऐसैं प्रसंगविषै प्राप्तकरिके, "इस स्वप्नविषै यह देव महिमाकूं अनुभव करैहै" इस वाक्यसैं कहाहै॥ [62]औ इंद्रियनकी अपेक्षासैं मनकूं भीतर स्थित होनेतैं स्वप्नविषै अंतर है तिस मनकी वासनारूप प्रज्ञा जिसकी, ऐसा जो **अंतःप्रज्ञ** है, औ पूर्वकी न्यांई सप्तअंगवाला है, औ **उंनीस मुखवाला** है, औ **प्रविविक्तभुक्** (वासनामय सूक्ष्मभोगवाला) है। [63]जाग्रत्‌विषै विश्वकूं

---

६१ जाग्रत्‌की वासनाकरि युक्त भया जो मन, सो स्वप्नविषै जाग्रत्‌की न्यांई भासता है; इस अर्थविषै दृष्टांत कहैहैं। जैसैं चित्रकरि युक्त भया पट, चित्रकी न्यांई भासता है; तैसैं जाग्रत्‌के संस्कारकरि युक्त भया जो मन सो जाग्रत्‌की न्यांई भासता है, यह युक्त है। यह अर्थ है।

६२ ननु, विश्वकी बाह्य इंद्रियसैं जन्य प्रज्ञाकूं औ तैजसकी मनसैं जन्य प्रज्ञाकूं भीतर स्थित होनेकी तुल्यतातैं, तैजसका "अंतःप्रज्ञ (भीतरकी प्रज्ञावाला)" यह विशेषण व्यावर्तक (विश्व आदिकतैं भिन्न करनेवाला) नहीं है? तहां कहैहैं।

६३ ननु, विश्व औ तैजसका प्रविविक्तभुक् "(सूक्ष्मभोगका भोक्ता)" यह विशेषण तुल्य है; काहेतैं, दोनूंकी प्रज्ञाकूं भोज्यपनैकी तुल्यतातैं? यह कथन बनै नहींः—काहेतैं, दोनूंकी प्रज्ञाकूं भोज्यपनैकी तुल्यताके हुये बी तिस प्रज्ञाविषै बीचके भेदतैं विश्वकी भोज्य (भोजने योग्य) जो प्रज्ञा है, सो विषयसहित होनेतैं स्थूल जानिये है। औ तैजसकी जो प्रज्ञा है,

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञाघन एवाऽऽनन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥ ५ ॥

विषयसहित होनेकरि स्थूल प्रज्ञाका भोज्य (भोग्य)पना है औ इहां स्वप्नविषै जातैं केवल वासनामात्र स्वरूपवाली प्रज्ञा भोज्य है, यातैं प्रविविक्त (सूक्ष्म) भोग है । औ[६४] विषयरहित केवल प्रकाशस्वरूप प्रज्ञाविषै प्रकाशकपनैकरि होवैहै, यातैं जो तैजस है, सो तैजस द्वितीय पाद है ॥ ४ ॥

टीकाः—दर्शन[६५] औ अदर्शनरूप दोनूं वृत्तिवाली जाग्रत् औ स्वप्न

सो विषयके संबंधसैं रहित वासनामात्र रूपवाली है, यातैं तैजसविषै सूक्ष्मभोग सिद्ध होवैहै; ऐसैं कहैहैं ।

६४ स्वप्नके अभिमानीकूं तेजके विकार (कार्य) होनेके अभावतैं तैजसपना कहांतैं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ।

६५ ऐसैं दोनूंपादनकूं व्याख्यानकरिके, अब तृतीयपादकूं व्याख्यान करते हुये व्याख्यान करनेयोग्य श्रुतिविषै "किसीकूं बी नहीं" इत्यादि विशेषणके तात्पर्यकूं कहैहैं । इहां यह अर्थहैः—स्थूल विषयवाले ज्ञानकी जहां वृत्ति है, ऐसी जो जाग्रत्, सो दर्शनवृत्ति कहियेहै । औ स्थूल विषयके दर्शनतैं अन्य जो दर्शन (ज्ञान), सो वासनामात्र होनेतैं अदर्शन है; ताकी वृत्ति जहां है ऐसा जो स्वप्न, सो अदर्शनवृत्ति कहियेहै । तिन दोनूंविषै सुषुप्तिकी न्याईं तत्त्वके अग्रहणरूप निद्राकूं तुल्य होनेतैं, "जहां सोयाहुया" इत्यादि विशेषणकी तिनविषै बी प्राप्तिके हुये तिनतैं भेदकरि सुषुप्तिकेहीं ग्रहण अर्थ, "जहां सोयाहुया" इत्यादिरूप मूलश्रुतिके वाक्यविषै, "किसीकूं बी नहीं" इत्यादिरूप जो विशेषण है, सो जाग्रत् औ स्वप्नरूप दोनूं स्थानोंतैं भिन्नकरिके सुषुप्तिकूंहीं ग्रहण करावताहै ।

अवस्थाविषै सुषुप्तिकी न्याई तत्वके अबोधरूप निद्राकूं तुल्य होनेतैं, सुषुप्तिके ग्रहणअर्थ इस पंचम श्रुतिवाक्यविषै, "जहां सोया" इत्यादिरूप विशेषण है। [६६]अथवा जाग्रत् आदिक तीन स्थानोंविषै बी तत्त्वकी अबोधरूप जो निद्रा है, सो तुल्य है; यातैं पूर्वके जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानोंतै सुषुप्तिरूप स्थानका विभाग करैहैं:—जिस स्थान वा काल-विषै सोया हुया पुरुष किसी बी काम (भोग) कूं इच्छता नहीं, औ किसीबी स्वप्नकूं देखता नहीं। [६७]यातैं सुषुप्तिविषै पूर्वके जाग्रत् औ स्वप्नरूप स्थानोकी न्याई विपरीत ग्रहणरूप स्वप्नका दर्शन, वा कोईबी कामना विद्यमान नहीं है, यातैं सो सुषुप्त (सुषुप्ति) है। सो यह सुषुप्त है स्थान जिस प्राज्ञका, ऐसा जो सुषुप्तस्थानवाला है, औ एकीभूत है। [६८][६९]जाग्रत् औ स्वप्नरूप दोनूं स्थानोविषै विभागकूं पाया जो मनके स्फुरणरूप द्वैतका समूह, सो जैसैं अपनारूप आत्मातैं भिन्न है, तैसैंहीं तिस रूपके अपरित्यागसैं रात्रिके अंधकारसैं ग्रस्त दि-

---

६६ "किसीबी स्वप्नकूं देखता नहीं" इसीहीं विशेषणसैं दोनूंस्थानोंतै सुषुप्तिके भेदके संभवतैं अन्य विशेषण जो है, सो अकिंचित् कर(निष्प्रयोजन) है? यह आशंकाकरिके कहैहैं। इहां यह अर्थ है;—तत्त्वका अप्रबोधरूप जो निद्रा है, ताकूं जाग्रत् आदिक तीन स्थानोंविषैं बी तुल्य होनेतैं जाग्रत् औ स्वप्नतैं विभाग करिके सुषुप्तिके जनावनेकूं अन्य विशेषण हैं।

६७ एकहीं विशेषणकूं व्यावृत्तकपनेके संभवतैं दोनूं विशेषणोसैं क्या प्रयोजनहै? यह आशंकाकरिके, दोनूं विशेषणोकूं विकल्पकरि व्यावृत्तकपनैके संभवतैं व्यर्थपना नहीं है; ऐसैं मानिके कहैहैं।

६८ उक्त दोनूंविशेषणोसैं विपरीत ग्रहणसैं रहितपना औ भोगके संबंधसैं रहितपना कहनेकूं इच्छित है।

६९ इस द्वैतसहित प्राज्ञ जीवका एकीभूतपनैरूप विशेषण कैसैं बनै? यह आशंकाकरिके कहैहैं।

नकी न्यांई अविवेककरि युक्तहुया अपने विस्तारसहित (कारण-रूप) होवैहै । तिस अवस्थाविषै तिस उपाधिवाला हुया आत्मा एकीभूत कहियेहै । यांहीतैं स्वप्न औ जाग्रत्विषै मनके स्फुरणरूप जे प्रज्ञान हैं, वे सुषुप्तिविषै घनीभूत हुयेकी न्यांई होवैहैं । सो यह अवस्था अविवेकरूप होनेतैं प्रज्ञानघन कहियेहै ॥ जैसैं रात्रिविषै रात्रिके अंधकारसैं अविभागकूं पायाहुया सर्व वस्तु घनकी न्यांई होवैहै; तैसैं आत्मा **प्रज्ञानघनहीं**[७१] होवैहै । मैंनेकूं[७२] विषय औ विषयीके आकारसैं स्फुरणरूप श्रमसैं जन्य दुःखके अभावतैं **आनंदमय** (आनंदकी बहुलतावाला) है, आनंदरूपहीं नहीं; काहेतैं, अविनाशी आनंदतैं रहित होनेतैं । जैसैं[७३] लोकविषै श्रमसैं रहित होयके स्थित हुया सुखी पुरुष आनंदभुक् कहियेहै; तैसैं सुषुप्तिविषै जातैं अत्यंत श्रमरहितरूपहीं यह स्थिति इस पुरुषकरि अनुभव करियेहै; यातैं यह **आनंदभुक्** (आनंदका भोक्ता) है; "यह इस

---

७० यद्यपि सुषुप्तिविषै कार्यका समूह कारणरूप होवैहै, तिस कारणरूप उपाधिवाला आत्मा एकीभूत विशेषणवाला होवैहै; तथापि कारण उपाधिवाले आत्माका " प्रज्ञानघन " यह विशेषण अयुक्त है; काहेतैं, निरुपाधिककूंहीं तैसै विशेषणके संभवतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ।

७१ इहां एवशब्दके पर्याय "हीं" शब्दतैं अज्ञानतैं भिन्न अन्य जाति नहीं है; यह अर्थ होवैहै ।

७२ प्राज्ञकूं आनंदरूप विकारवान् होनेके अभाव हुये " आनंदमय " यह विशेषण कैसैं बनै ? यह आशंकाकरिके, स्वरूपसुखके आविर्भावके प्रतिबंधक दुःखके अभावतैं, मय शब्दके आनंदकी बहुलतारूप अर्थकूं ग्रहणकरिके विशेषणके संभवकूं दिखावैहैं ।

७३ अब "आनंदभुक्" इस विशेषणका दृष्टांतसहित व्याख्यान करैहैं ।

एष सर्व्वेश्वर एष सर्व्वज्ञ एषोऽन्तर्य्याम्येष योनिः सर्व्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥६॥

पुरुषका परम आनंद है," इस श्रुतितैं । स्वंप्न औ जाग्रत्मय प्रतिबोधरूप चित्तके प्रति द्वारभूत होनेतैं चेतोमुख है, वा बोधरूप चित्त है स्वप्न आदिकके आगमनके प्रति मुख (द्वार) जिसकूं ऐसा है; यातैं सो **चेतोमुख** है । भूँत औ भविष्यत्का ज्ञातापना अरु सर्व विषयनका ज्ञातापना इसीकूंहीं है, यातैं यह प्राज्ञ है । सुँषुप्तिकूं पाया पुरुष बी स्वप्न औ जाग्रत्विषै व्यतीत भई सर्व विषयनके ज्ञातापनैरूप पूर्वकी गतिसैं प्राज्ञ कहियेहै । अथवा जातैं प्रज्ञप्तिमात्र इसीहींका रूप है, यातैं यह प्राज्ञ है । अन्य दोनूं अवस्थाविषै विशिष्ट ज्ञान बी है, औ सुषुप्तिविषै अन्यज्ञानरूप उपाधिसैं रहित ज्ञान है, सो ज्ञान इस प्राज्ञका स्वरूपभूत प्रज्ञप्ति कहियेहै। सो यह प्राज्ञ तृतीय पाद है ॥ ९ ॥

टीकाः—यैँह प्राज्ञहीं स्वरूप अवस्थावाला हुया **सर्वेश्वर** है। कहिये

---

७४ प्राज्ञकाहीं " चेतोमुख " ऐसा जो अन्य विशेषण है, ताका अवव्याख्यान करैहैं ।

७५ इस सुषुप्तिके अभिमानीकूं भूत औ भविष्यत् विषयविषै ज्ञातापना है, तैसैं सर्व बी वर्तमान विषयविषै ज्ञातापनाहै । यातैं प्रकर्षकरि जो जानताहै सो प्रज्ञ है; औ जो प्रज्ञ है सोई प्राज्ञ ऐसैं कहियेहै ।

७६ सुषुप्तिविषै सर्व विशेषणके ज्ञानके विलयतैं प्राज्ञकूं ज्ञातापना कहांसैं होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—यद्यपि सुषुप्तिवाला पुरुष तिस अवस्थाविषै सर्व विशेषके ज्ञानसैं रहित होवैहै, तथापि जाग्रत औ स्वप्नविषै उत्पन्न भई जो सर्व विषयनके ज्ञातापनैरूप गति, तासैं प्रकर्षकरि सर्वकूं च्यारी ओरतैं जानताहै; यातैं सो प्राज्ञशब्दका वाच्य होवैहै।

७७ प्राज्ञके अधिदैविकरूप अंतर्यामीके साथि अभेदकूं ग्रहण करिके अन्य विशेषणकूं दिखावैहैं ।

अथ गौडपादाचार्यकृत तदुपनिषदर्थाविष्करणरूप श्लोकावतरणम् ॥

॥ अत्रैते श्लोकाः ॥

बहिःप्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तु तैजसः।
घनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृतः ॥ १ ॥

अधिदैवसहित सर्व भेदके समूहका नियंता है। इस हेतुतैं अन्य नैयायिक आदिककी न्यांई अन्य जातिरूप नहीं है। "हे सौम्य! प्राणरूप बंधनवालाहीं मन है," इस श्रुतितैं। यँहहीं सर्वभेद अवस्थावाला हुया सर्वका ज्ञाता है, यातैं यह सर्वज्ञ है। तसैं[७९] सर्वके भीतर प्रवेशकरिके सर्वभूतनका नियामक है, यातैं यहहीं अंतर्यामी वी है। जातैं यह उक्तप्रकारका भेदसहित जगत् इसतैं उपजेहै, यातैं यह सर्वका योनि (कारण) है। जातैं ऐसैं है, यातैं भूतनके उत्पत्ति औ प्रलय यहहीं है ॥ ६ ॥

गौडपादीय मांडूक्योपनिषत्कारिका भाष्यभाषादीपिका॥८॥

अथ गौडपादाचार्यकृत कारिकायां ॐकारनिर्णायक प्रथमाऽऽगमप्रकरणभाष्यभाषादीपिका ॥ १ ॥

टीकाः—ईहां इस कथन किये उपनिषद्के षट्मंत्रनके अर्थविषै

---

७८ अब प्राज्ञकेहीं अन्य विशेषणकूं साधते हैं।

७९ अब अंतर्यामीपनैंरूप अन्य विशेषणकूं स्पष्ट करैहैं।

८० जातैं जाग्रत्विषै निमित्त औ उपादानकारणका भेद नहीं है, औ भूतनकें उत्पत्ति औ विलय, उपादानतैं विना एकठिकाने संभवते नहीं; यातैं भूतनका उत्पत्ति औ विलय यहहीं है; यह अर्थ है।

८१ गौडपादाचार्योंनैं मांडूक्यउपनिषद्कूं पठनकरिके "इहां ये श्लोक हैं" ऐसैं ता उपनिषद्के व्याख्यानरूप नव श्लोकनका अवतरण किया, ताका अनुवादकरिके भाष्यकार व्याख्यान करैहैं।

दक्षिणाक्षिमुखे विश्वो मनस्यन्तश्च तैजसः ।
आकाशे च हृदि प्राज्ञस्त्रिधा देहे व्यवस्थितः॥२॥

ये गौडपादाचार्यकृत (९) श्लोक हैं:—बहिःप्रज्ञ (बाहिरकी प्रज्ञा-वाला) विभु-रूप विश्व है, औ अंतःप्रज्ञ (भीतरकी प्रज्ञावाला) तो तैजस है; तैसैं घनप्रज्ञ (घनीभूत हुयी प्रज्ञावाला) प्राज्ञ है । एकहीं पुरुष तीनप्रकारसैं कहा है । याका यह अभिप्राय है:—क्रमकरि तीन स्थानवाला होनेतैं, औ "सो मैं हूं" इस स्मृति-करि, औ अनुसंधानतैं पुरुषका तीनस्थानतैं भिन्नपना एकपना शुद्धपना औ असंगपना सिद्ध भया; महामत्स्य आदिकके दृष्टांतके श्रवणतैं ॥ ६ ॥

टीकाः—जाग्रत् अवस्थाविषैहीं विश्वआदिक तीनके अनुभवके दिखावनेअर्थ यह द्वितीयश्लोक है:—दक्षिण नेत्ररूपहीं द्वारविषै मुख्यताकरि स्थूल विषयनका द्रष्टा विश्व, ध्याननिष्ठ पुरुषनकरि अनुभव करियेहै । "जो यह दक्षिण नेत्रविषै पुरुष है, यह प्र-सिद्ध इंध (प्रकाशमान्) इस नामवाला है" इस बृहदारण्यककी श्रु-तितैं । इंध नाम प्रकाशगुणवाले सूर्यके अंतर्गत विराट्के आत्मा वै-

---

८२ जब आत्माके चेतनपनैकी न्याईं जाग्रत् आदिक तीन स्थान स्वाभाविक होवैं, तब चेतनपनैकी न्याईं वे तीनस्थान आत्मातैं व्यभिचार पावनेकूं योग्य नहीं होवैंगे; औ तीनस्थान क्रमकरि औ अक्रमकरि आत्मातैं व्यभिचारकूं पावतेहैं । काहेतैं, आत्माकूं तीनस्थानवाला होनेतैं; यातैं तिन तीनस्थानोतैं आत्माका भिन्नपना सिद्ध भया । "जो मैं सोया था, सो मैं जागताहूं;" इस अनुसंधानतैं आत्माका एकपना निश्चित भया । औ धर्म अधर्म राग औ द्वेष आदिक मलकूं अवस्थाका धर्म होनेतैं तिस अवस्थातैं भिन्न आत्माका शुद्धपना बी सिद्ध होवैहै । संगकूं बी वेद्य होनेकरि अवस्थाके धर्मपनैके अंगीकारतैं, अवस्थातैं भिन्न ताके द्रष्टाका असंगपना बी सिद्ध भया । यह अर्थहै ।

श्वानरका है। सो, औ चक्षुविषै जो द्रष्टा है; यह एक है। यह इस श्रुतिका तात्पर्य है ॥ ननु, सूर्यमंडलके अंतर्गत समष्टि सूक्ष्म देहवाला हिरण्यगर्भ, औ चक्षुगोलकविषै स्थित इंद्रियके अनुग्रहका कर्त्ता हिरण्यगर्भ संसारी जीवतैं अन्य है, औ सूर्यमंडलके अंतर्गत समष्टि स्थूलदेहका अभिमानी, औ चक्षुके दोनूं गोलकके अनुग्रहका कर्त्ता विराट् आत्मा बी तिसतैं अन्यहीं है; औ व्यष्टि देहका अभिमानी दक्षिणनेत्रविषै स्थित द्रष्टा; दोनूं चक्षु औ करणोंका नियामक औ कार्य अरु कारणका स्वामी जो क्षेत्रज्ञ है, सो तो तिन दोनूं समष्टिदेहके अभिमानी हिरण्यगर्भ औ विराट्तैं अन्य अंगीकार करियेहै। ऐसैं हुये समष्टि औ व्यष्टिपनैंकरि स्थित जीवके भेदतैं कथन करी जो एकता सो अयुक्त है? यह कथन बनै नहीं। काहेतैं, कल्पित भेदके होते बी वास्तव भेदके अनंगीकारतैं। औ "एक देव सर्व भूतनविषै गूढ है" इस श्रुतितैं। औ हे भारत! सर्व क्षेत्रनविषै क्षेत्रज्ञ बी मुजकूं जान, "भूतनविषै विभागतैं रहित हुया बी विभागकूं प्राप्त हुयेकी न्याई स्थित है" इस गीतास्मृतितैं, सर्व करणोविषै समान हूये बी दक्षिणनेत्रविषै ज्ञानकी स्पष्टताके देखनेतैं तहां विश्वजीवका विशेषकरि कथन है। दक्षिणनेत्रविषै स्थित जो विश्व है, सो रूपकूं देखिके मीचेहुये नेत्रवाला होयके, तिसीहीं

---

८३ यद्यपि देह देशके भेदविषै विश्व अनुभव करियेहै, तथापि जाग्रत्विषै तैजस कैसैं अनुभव करियेहै? यह आशंकाकरिके द्वितीयपादका व्याख्यान करैहैं। इहां यह अर्थ है:- जैसैं स्वप्नविषै जाग्रत्की वासनारूपसैं प्रकट भये पदार्थनके समूहकूं द्रष्टा अनुभव करताहै, तैसैंहीं जाग्रत्विषै दक्षिणनेत्रमैं द्रष्टा होनेकरि स्थित हुया अश्रेष्ठरूपकूं देखिके, फेर नेत्रकूं मीचिकें, पूर्व देख्या जो रूप; सो रूपके ज्ञानसैं जन्य उद्भूत वासनारूपसैं मनविषै प्रकट होवैहै; ताकूं स्मरण करताहुया विश्वहीं तैजस होवैहै। तैसैं हुये तिन विश्व औ तैजसके भेदकी शंका बनती नहीं।

देखेहुये रूपकूं मनके भीतर स्मरण करताहुया, स्वप्नकी न्याई वासनारूपसैं प्रकट भये तिसीहीं रूपकूं देखताहै। जैसैं इहां जाग्रत्‌विषै देखताहै, तैसैं स्वप्नविषै बी देखताहै। यातैं मनके भीतर तो तैजस बी विश्वहीं है। औ[८४] जो विश्व तैजसभावकूं प्राप्त भया है, सो फेर स्मरणरूप व्यापारकी निवृत्तिके हुये हृदय-गत आकाशविषै स्थित हुया प्राज्ञ एकीभूत औ घनप्रज्ञहीं होवैहै। काहेतैं, मनके व्यापारके अभावतैं। जातैं दर्शन औ स्मरणरूपहीं मनके स्फुरण हैं, तिनके अभाव हुये हृदयविषैहीं अव्याकृतमय प्राणरूपसैं अवस्थानहीं जाग्रत्‌विषै सुषुप्ति है। "प्राणहीं इन सर्व (वागादिक)कूं आपविषै संहार करताहै" इस श्रुतितैं। यातैं अव्याकृतमय प्राणरूपसैं जाग्रत्‌गत सुषुप्तिविषै प्राज्ञका अवस्थान जो कहा, सो युक्तहीं है। औ[८५] तैजस जो है सो हिरण्यगर्भ है।

---

८४ अब तृतीयपादका व्याख्यान करतेहुये जाग्रत्‌विषैहीं सुषुप्तिकूं दिखावैहैं। इहां यह अर्थ है:— जो विश्व, तैजसभावकूं प्राप्त भयाहै, सो फेर स्मरणरूप व्यापारकी निवृत्तिके हुये हृदयगत आकाशविषै स्थित हुया प्राज्ञ होयके तिस प्राज्ञके लक्षणकरि युक्त होवैहै। जातैं रूपविषयके दर्शन औ स्मरणकूं छोडिके श्रेष्ठ आकाशविषै स्थित भये तिस जीवकूं प्राज्ञतैं अन्य अर्थपना नहीं है,। यातैं सो एकीभूत (विषय औ विषयीके आकारसैं रहित) है। जातैं एकीभूत है, यातैं घनप्रज्ञ (विशेष ज्ञान अरु अन्यरूपसैं रहित) हुया स्थित होवैहै। यह अर्थ है।

८५ पूर्वहीं विश्व औ विराट्‌की एकताकूं औ अनंतर प्राज्ञ औ अव्याकृतकी एकताकूं दिखाईहुई होनेतैं, तैजस औ हिरण्यगर्भके नहीं कथन किये औ कहने योग्य अभेदकूं अब कहैहैं। अब तैजस जो है सो हिरण्यगर्भरूप है; काहेतैं, लिंगशरीररूप मनविषै स्थित होनेतैं। अर्थ यह जो हिरण्यगर्भकूं समष्टिरूप मनविषै स्थित होनेतैं, औ तैजसकूं व्यष्टिरूप मनविषै स्थित होनेतैं; औ तिन समष्टि औ व्यष्टिरूप मनकूं एकरूप होनेतैं, तिनविषै स्थित तैजस औ हिरण्यगर्भकी बी एकता कचित् है।

काहेतैं, "यह पुरुष मनोमय है" इत्यादिक श्रुतिनतैं । मन जो है सो लिंगरूप है; इस मनविषै स्थित होनेतैं तैजस औ हिरण्यगर्भकी एकता बनै है ॥ नँनु, सोए पुरुषके पास बैठे जनोकरि प्राणके व्यापारके स्पष्ट देखनेतैं सुषुप्तिविषै प्राण जो है, सो नाम औ रूपकरि व्याकृत (स्पष्ट) है । औ श्रुतिविषै करण जे हैं वे तिस प्राणरूप होवैहैं, ऐसैं कहाहै; यातैं बी ताकी व्याकृतता सिद्ध होवैहै । तातैं अव्याकृतता कैसैं संभवै ? तहां कहैहैं:—यह दोष नहीं है; काहेतैं, अव्याकृतकूं देश औ कालके किये परिच्छेदके अभावतैं । जैसैं देशकालके किये परिच्छेदतैं रहित अव्याकृत (माया) है, तैसैं सुषुप्तिवान् पुरुषकी दृष्टिसैं प्राण बी देशकालके किये परिच्छेदतैं रहित है । यातैं सुषुप्तिवान्के प्राणकी औ अव्याकृतकी एकता युक्त है । यद्यपि परिच्छिन्न अभिमानवाले पुरुषनके मध्य "यह मेरा प्राण है," ऐसैं प्राणके अभिमानके हुये प्राणकी व्याकृतताहीं होवैहै; तथापि सुषुप्तिअवस्थाविषै पिंडकरि परिच्छिन्न जो विशेष है, ताकूं विषय करनेवाला जो "यह मेरा प्राण है," ऐसा अभिमान है, ताका निरोध प्राणविषै होवैहै; यातैं प्राण, अव्याकृतहीं है । जैसैं मरणके भये अभिमानके निरोधसैं परिच्छिन्न अभिमानीनका प्राण अव्याकृत होवैहै; तैसैं प्राणके अभिमानी पुरुषकूं बी सुषुप्तिविषै प्राणके अभिमानके निरोधसैं प्राणकी अव्याकृतता समानहीं है । तातैं विशेष अभिमानके निरोध हुये अव्याकृतपना प्रसिद्ध है। किंवा जैसैं अधिदैवरूप अव्याकृत, जगत्की उत्पत्तिका बीज है, तैसैं प्राणनामक, सुषुप्ति जाग्रत् औ स्वप्नका बीज होवैहै । तैसैं हुये कार्यकी उत्पत्तिकी बीजरूपता दोनूंकूं समान है । औ अव्या-

---

८६ अब प्राणके पूर्वउक्त अव्याकृतपनैके तांई वादी आक्षेप करैहै । इहां यह अर्थ है:—सुषुप्तिविषै प्राण जो है सो नाम औ रूपकरि व्याकृत (स्पष्ट) युक्त है; काहेतैं ता प्राणके व्यापारकूं सोये पुरुषके पास बैठे मनुष्यनकरि अतिशय स्पष्ट देख्या होनेतैं ।

कृत अवस्थावाला जो तिन दोनूंका अधिष्ठान चेतन है सो एक है; यातैं बी तिनकी एकता सिद्ध होवैहै । तातैं परिच्छिन्न अभिमान-वाले उपाधिसहित जीवनकी तिस अव्याकृतके साथि एकता है । ऐसैं पूर्व उक्त एकीभूत प्रज्ञानघन औ सर्वेश्वर इत्यादिरूप प्राज्ञका विशेषण घटित है ॥ प्राणशब्दकूं तिस इस पंचवृत्तिरूप वायुके विकार प्राणविषै रूढ होनेरूप हेतुके होनेतैं अव्याकृतकूं प्राणशब्दकी वाच्यता कैसैं होवैहै ? तहां कहैहैं:—"हे सोम्य ! मन जो है सो प्राण-रूप बंधन (सुषुप्तिविषै अपने लयके आधार)वाला है" इस श्रु-तितैं, अव्याकृतकूं प्राणशब्दकी वाच्यता होवैहै । ननु, इस श्रुति-विषै "हे सोम्य ! आगे सत्हीं था" ऐसैं प्रसंगविषै प्राप्त किया सत्रूप ब्रह्महीं प्राणशब्दका वाच्य है, अव्याकृत नहीं ? तहां कहै-हैं:—यह दोष नहीं है; काहेतैं, सत्रूप ब्रह्मकी बीजरूपताके अंगी-कारतैं ।यद्यपि तिस उक्त श्रुतिविषै प्राणशब्दका वाच्य सत्ब्रह्म है; तथापि तहां जीव औ सर्व कार्यके समूहकी उत्पत्तिकी बीजरूपताकूं अपरित्यागकरिकेहीं सत्ब्रह्मकूं प्राणशब्दकी वाच्यता औ सत्शब्दकी वाच्यता है । जब निर्बीजरूप ब्रह्म प्राणआदिकशब्दका वाच्य कहनेकूं इच्छित होवै तब "नेति नेति (कार्यरूप नहीं औ कारणरूप नहीं)" औ "जिसतैं वाणियां निवृत्त होवैहैं" औ "सो विदि-ततैं अन्यहीं है, औ अविदिततैं बी अन्यही है" इस श्रुतितैं औ तैसैं "सो सत् नहीं कहियेहै, औ असत् नहीं कहियेहै" इस गी-तास्मृतितैं, ब्रह्मकूं शब्दकी विषयताका निषेध किया है; तासैं वि-रोध होवैगा ॥ किंवा जब निर्बीजरूप होनेकरिहीं ब्रह्म इसप्रकरणविषै कहनेकूं इच्छित होवै, तब सुषुप्ति औ प्रलयमैं सत्ब्रह्मविषै लीन औ एकरूप हुये जीवनके फेरि उत्थानका असंभव होवैगा । अथ-वा मुक्तिदशाविषै सत्ब्रह्मकूं प्राप्त भये मुक्तपुरुषनकी फेरि उत्प-त्तिका प्रसंग होवैगा । सर्वकूं अज्ञानरूप बीजके अभावकी तुल्यतातैं औ ज्ञानसैं दाहकरनेके योग्य बीजके अभाव हुये, ज्ञानकी व्यर्थताका

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक्।
आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत ॥ ३ ॥
स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तन्तु तैजसम्।
आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत ॥४॥

प्रसंग होवैगा। तातैं सर्व श्रुतिनविषै बीजसहितताके अंगीकारसैंहीं सत्‌ब्रह्मकूं प्राणभावका कथन औ कारणभावका कथन है। याहीतैं "पररूप अक्षरतैं पर है" औ "बाहिर भीतर सहित है, यातैं अजन्मा है" औ "जिसतैं वाणियां निवृत्त होवैहैं" औ "नेति नेति" इत्यादिक श्रुतिकरि बीजसहितताके निषेधसैं ब्रह्मका कथन है। तिसीहीं प्राज्ञशब्दके वाच्यकी तुरीयरूपतासैं देहादिकके संबंधसैं रहित तिस परमार्थरूप अबीज अवस्थाकूं आगे यह श्रुति भिन्न कहेगी। औ "मैं कछुबी नहीं जानता भया" ऐसे सुषुप्तितैं ऊठे पुरुषके स्मरणके देखनेतैं, जीवकी अवस्था बी अनुभव करियेहीं है। इसरीतिसैं यह जीव तीनप्रकारसैं देहविषै स्थित भया (अभिमानकूं पाया) है; ऐसैं कहियेहै ॥ २ ॥

टीका:—विश्वै नित्यहीं स्थूलभुक् (स्थूलभोगका भोक्ता) है। औ तैजस प्रविविक्तभुक् (वासनामय सूक्ष्मभोगका भोक्ता)है। तैसैं प्राज्ञ आनंदभुक् (आनंदका भोक्ता) है। ऐसैं तीन प्रकारके भोगकूं जानो ॥ ३ ॥

टीका:—स्थूल भोग विश्वकूं तृप्त करैहै, औ सूक्ष्म भोग तो तैजसकूं तृप्त करैहै, तैसैं आनंद भोग प्राज्ञकूं तृप्त करैहै, ऐसैं तीनप्रकारकी तृप्तिकूं जानो। इन दोनूं श्लोकनका अर्थ पूर्व कहा है, यातैं भाष्यकारनैं लिख्या नहीं ॥ ४ ॥

---

८७ ऐसैं विश्व आदिक तीनकी तीनप्रकारसैं देहविषै स्थितिकूं प्रतिपादनकरिके, अब तिनकेहीं तीनप्रकारके भोगकूं सूचन करैहैं।

८८ अब भोगसैं भयी तृप्तिकूं तीनप्रकारसैं विभाग करैहैं।

त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः ।
तदैतदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते ॥ ५ ॥
प्रभवः सर्व्वभावानां सतामिति विनिश्चयः ।
सर्व्वं जनयति प्राणश्चेतोंऽशून् पुरुषः पृथक् ॥ ६ ॥

तीनं जाग्रत् आदिकधाम (स्थानो) विषै जो स्थूल सूक्ष्म औ आनंद नामवाला एकहीं तीन प्रकारका भया भोज्य है, औ जो विश्व तैजस अरु प्राज्ञ नामवाला, "सो मै हूं" इस एकताके अनुसंधानतैं औ द्रष्टापनैंके अविशेषतै एकहीं भोक्ता कहा है। जो भोज्य औ भोक्तापनैंकरि अनेक प्रकारके भेदवाले इन दोनूंकूं जानताहै, सो भोगता हुया लिप्त होता नहीं, काहेतैं सर्व भोज्यकूं एक भोक्ताका भोज्य (भोग्य) होनेतैं। जाका जो विषय है, सो तिस विषयकरि घटता नहीं, वा बढता नहीं; जैसैं अग्नि जो है सो काष्ठादिरूप अपने विषयकूं जलायके घटता नहीं वा बढता नहीं; तैसैं ॥ ९ ॥

टीकाः—विद्यमान सर्व पदार्थनकी उत्पत्ति होवैहै, यह निश्चय है। यातैं प्राणरूप पुरुष सर्व जगत्-कूं औ चिदाभासरूप चेतनके अंशनकूं भिन्नभिन्न उपजावता है ॥ अपने अधिष्ठानरूपसैं विद्य-

---

८९ प्रसंगविषै प्राप्त भोक्ता औ भोग्य, इन दोनूं पदार्थनके ज्ञानके बीचके फलकूं कहैहैं।

९० "यह योनि (कारण) है" इस षष्ठ मंत्रविषै प्राज्ञकूं प्रपंचका कारणपना प्रतिज्ञा किया। तहां सत्कार्यके प्रति प्राज्ञकूं कारणपना है, किंवा असत्कार्यके प्रति कारणपना है? या संदेहके भये ताका निर्द्धार करनेकूं अब आरंभ करैहैं।

९१ ननु, सत्‌रूप पदार्थनकूं सत्‌रूप होनेतैंहीं तिनकी उत्पत्ति संभवै नहीं; काहेतैं, सत्‌रूप ब्रह्मविषै अतिप्रसंगतैं? यह आशंकाकरिके, श्लोकके पूर्वार्द्धका व्याख्यान करैहैं। इहां यह अर्थ हैः—अपने अधिष्ठानरूपसैं वि-

विभूतिं प्रसवन्त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः।
स्वप्नमायास्वरूपेति सृष्टिरन्यैर्विकल्पिता ॥ ७ ॥

मान विश्व तैजस औ प्राज्ञरूप भेदवाले सर्व पदार्थनकी अविद्यारचित नामरूपमय मिथ्यास्वरूपसैं उत्पत्तिरूप संसार होवैहै। औ वंध्याका पुत्र यथार्थरूपसैं वा मिथ्यारूपसैं वी जन्मता नहीं, ऐसैं आगे कहियेगा। जब असत् पदार्थनकाहीं जन्म होवै, तब व्यवहार करने योग्य ब्रह्मके ग्रहणविषै द्वाररूप लिंगके अभावतैं असत्पनैका प्रसंग होवैगा। अविद्यारचित मिथ्यावीजतैं उत्पन्न भये रज्जुसर्पादिकनका रज्जु आदिक रूपसैं सद्भाव देख्या है। किसीबी पुरुषनैं अधिष्ठानरहित रज्जुसर्प औ मृगजल आदिक कहीं देखे नहीं। जैसैं रज्जुविषै सर्पकी उत्पत्तितैं पूर्व रज्जुरूपसैं सर्प सत्हीं होता भया। ऐसैं सर्व पदार्थनका उत्पत्तितैं पूर्व प्राणमय बीजरूपसैंहीं सद्भाव है। यातैं "ब्रह्महीं यह है" "आत्माहीं यह आगे होता भया" ऐसैं श्रुति बी कहती है। ऐसैं प्राण बीजरूप व्यवहारकी योग्यतासैं सर्व अचेतनरूप जगत्कूं उपजातता है। औ सूर्यके किरणोकी न्याई चेतनरूप पुरुषके चेतनरूप, औ जलगत सूर्यके समान, प्राज्ञ तैजस औ विश्व भेदसैं देव तिर्यक् आदिक देहके भेदनविषै भासमान जो चेतनके किरणोकी न्याई किरणरूप जे जीव हैं, तिन विषयभावतैं विलक्षण औ अग्निके विस्फुलिंगकी न्याई, औ जलगत सूर्यकी न्याई चेतनके लक्षणसहित जीवरूप अन्य सर्व पदार्थनकूं प्राणबीजरूप पुरुष उपजावताहै। "जैसैं ऊर्णनाभि है" औ "जैसैं अग्नितैं विस्फुलिंग (चिणगारे) होवैहैं" इत्यादि श्रुतितैं ॥ ६ ॥

टीकाः—[९२] **अन्य जे सृष्टिके चिंतन करनेवाले हैं, वे ईश्वरकी**

द्यमान (सत्रूप) पदार्थनकाहीं अविद्याका किया मिथ्या आरोपित स्वरूप है, तिसकरि उत्पत्तिरूप संसार होवैहै।

९२ अब जड चेतनरूप जगत्की उत्पत्तिकूं प्रसंगविषै प्राप्त भये अपने मतके विवेचन अर्थ, अन्य मतके कहनेका आरंभ करैहैं।

अपने ऐश्वर्यमय विस्ताररूप विभूतिकी उत्पत्तिकूं "सृष्टि है"ऐसैं मानतेहैं ॥ परमार्थके चिंतन करनेवाले तत्त्वविदनका तो सृष्टिविषै आदर नहीं है; काहेतैं "इंद्र (परमात्मा) मायाकरि बहुरूप प्रतीत होवैहै" इत्यादि श्रुतितैं। जैसैं मायावी जो इंद्रजालिक पुरुष है, ताका सूत्र, आकाशविषै फेंकियेहै, फेर सो मायावी पुरुष ता सूत्रके ताईं आयुधसहित युद्धकूं चढिके अदृश्य होयके युद्धसैं खंडखंड होयके पतन भया, फेर उठ्या; ताकूं देखनेवाले पुरुषनकूं ताकी रची माया औ मायाके कार्यके स्वरूपके चिंतनविषै आदर नहीं होवैगा। तैसैंहीं यह मायावीके सूत्रके प्रसारणके समान सुषुप्ति औ स्वप्न आदिक विलास है, औ ता सूत्रके ताईं आरूढ मायावीके समान तिन सुषुप्ति आदिकविषै स्थित प्राज्ञ औ तैजस आदिक जीव हैं। जैसैं सूत्र औ तिसविषै आरूढ पुरुषतैं अन्य परमार्थरूप मायावी है, सोई पृथिवीविषै स्थित औ मायासैं ढांप्याहुया अदृश्यमान नहीं स्थित होवैहै। तैसैं तुरीयनामक परमार्थतत्त्व है। यातैं तिस परमार्थतत्त्वके चिंतनविषैहीं मोक्षके इच्छु विवेकी पुरुषनका आदर है, निष्प्रयोजन सृष्टिविषै आदर नहीं। यातैं सृष्टिके चिंतन करनेवाले वादीनकेहीं ये विकल्प हैं, ऐसैं कहैहैं:—अन्यवादियोनैं **स्वप्न औ मायास्वरूप सृष्टि है, ऐसैं कल्पना करी हैं ॥ ७ ॥**

---

९३ परमार्थके चिंतन करनेवाले पुरुषनके सृष्टिविषै अनादरतैं, अपरमार्थविषै निष्ठावाले पुरुषनकूंही सृष्टिविषै विशेष चिंताहै; इस उक्त अर्थविषै श्लोकके उत्तरार्द्धकूं प्रकट करैहैं। या मतमैं जाग्रत्के पदार्थनकीहीं स्वप्नविषै प्रसिद्धितैं स्वप्नका सत्यपना है औ मणिआदिरूप मायाकी सत्यताके अंगीकारतैं इन दोनूं विकल्पनकी सिद्धांततैं विलक्षणता जाननी यह भाव है।

इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरिति सृष्टौ विनिश्चिताः।
कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः ८
भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे।
देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा॥९॥

टीकाः—केईक ईश्वरवादी प्रभुकी इच्छामात्रहीं सृष्टि है, ऐसैं निश्चयकूं प्राप्त भये हैं। काहेतैं प्रभुकूं सत्यसंकल्पवाला होनेतैं। घटादिरूप जो सृष्टि है, सो संकल्पमात्रहीं है; संकल्पतैं भिन्न नहीं ॥ केईक कालके चिंतन करनेवाले जे ज्योतिषशास्त्रके वेत्ता हैं, वे कालतैं भूतनकी उत्पत्तिकूं मानतेहैं ॥ ८ ॥

टीकाः—अन्य वादी भोगके अर्थ सृष्टि है, ऐसैं मानतेहैं। औ अन्य वादी क्रीडाके अर्थ सृष्टि है, ऐसैं मानतेहैं ॥ अब सिद्धांतकूं कहैहैं:—यह सृष्टि देव (परमेश्वर)का स्वभाव है। तिस पूर्णकाम देव-कूं कौन इच्छा है ? कोइबी नहीं (इहां स्वभावपक्षका आश्रयकरिके उक्तदोनूं पक्षनविषै अथवा सर्वपक्षनके मध्य दूषण कहा) [९५]जैसैं रज्जुआदिकनकूं अविद्यारूप स्वभावविना सर्प आदिक आकारसैं भासनेविषै कारणपना कहनेकूं शक्य नहीं है, तैसैं परमात्माकूं मायारूप स्वभावविना आकाशआदिक आकारसैं भासनेविषै कारणपना कहनेकूं शक्य नहीं है ॥ ९ ॥

---

९४ इहां स्वभाव जो कहा, सो क्या है ? ऐसैं कहेहुये स्वाभाविक अपरोक्ष जो मायाशब्दका अर्थ, ताका नाम स्वभाव है। ऐसैं कहैहैं।

९५ जो पूर्व (८ वें श्लोकविषै) "कालतैं भूतनकी उत्पत्तिकूं मानते हैं" ऐसैं कहा, तहां कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—जैसैं अधिष्ठानभूत रज्जु आदिकनके स्वभावरूप अपने अज्ञानतैंहीं सर्प आदिकका आभासपना है, तैसैं परमात्माकी अपनी मायाशक्तिके वशतैं आकाश आदिकका आभासपना है। "आत्मातैं आकाश होता भया" इस श्रुतितैं। परंतु कालकूं भूतनका कारणपना नहीं है; काहेतैं, प्रमाणके अभावतैं।

उपनिषद्.

नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते । स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥

टीकाः—९६अब क्रमतैं प्राप्त भया चतुर्थपाद कहनेकूं योग्य है; यातैं यह उपनिषद् कहैहैः—अंतःप्रज्ञ (भीतरकी प्रज्ञावाला) नहीं । बहिःप्रज्ञ (बाहिरकी प्रज्ञावाला) नहीं । उभयतःप्रज्ञ (दोनूंओरतैं प्रज्ञावाला) नहीं । प्रज्ञानघन नहीं । प्रज्ञ नहीं । अप्रज्ञ नहीं । अदृष्ट औ व्यवहार करनेके अयोग्य । अग्राह्य । अलक्षण । अचिंत्य । अव्यपदेश (कहनेकूं अयोग्य), एकताके ज्ञानका सार, प्रपंचके उपशमवाला, शांत, शिव, अद्वैत, जो वस्तु है; ता-कूं चतुर्थ पाद मानतेहैं, सो आत्मा है । सो जानने योग्य है ॥ "इहां अंतःप्रज्ञ नहीं" इत्यादि पदनसैं यह श्रुति, सर्व शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्तसैं रहित होनेतैं, तिस आत्माकूं शब्दनकी विषयता होवैगी, इस विशेषके निषेधसैंहीं तुरीयपादकूं कहनेकूं इच्छतीहै ॥ ननु तब सो तुरीय शून्यहीं होवैगा? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं मिथ्याविकल्पकूं शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्तसैं रहितपनैके असंभवतैं । जातैं रजत सर्पपुरुष औ मृगजल आदिक जे विकल्प हैं, वे शुक्ति रज्जु स्थाणु औ ऊषरभूमि आदिकतैं भिन्न होनेकरि अवस्तुपनैके आश्रय हुये कल्पना करनेकूं शक्य नहीं हैं; यातैं तिनका

---

९६ तीन पादनके व्याख्यान कियेहुये, व्याख्यान करनेके योग्य होनेकरि क्रमके वशतैं प्राप्त भये चतुर्थपादका व्याख्यान करनेकूं आगिले ग्रंथकी प्रवृत्ति है; ऐसैं कहैहैं ।

अधिष्ठानरूप तुरीय, शून्यतैं विलक्षण सत्‌रूप मान्या चाहिये ॥ ननु, जब ऐसैं है, तब प्राणआदिक सर्व विकल्पका आश्रय होनेतैं तुरीयकूं जल आदिकके आश्रय घटादिककी न्याई शब्दकी वाच्यता होवैगी; निषेधनसैं प्रतीति करावनेकी योग्यता नहीं ? यह कथन बनै नहीं:-काहेतैं शुक्ति आदिकविषै रजत आदिककी न्याई प्राण आदिक विकल्पकूं असत् होनेतैं । जातैं असत्‌कूं शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्तवाला अवस्तुरूप होनेतैं सत् अरु असत् वस्तुका संबंध नहीं है । औ आत्माकूं गौ आदिककी न्याई स्वरूपसैं अन्य प्रमाणकी विषयता बी नहीं है, औ पाचक आदिककी न्याई क्रियावान्‌पना बी नहीं है, औ नीलघट आदिककी न्याई गुणवान्‌पना बी नहीं है । [९७] यातैं आत्मा, शब्दसैं कहनेकूं योग्य नहीं है ॥ ननु, तब आत्माकूं शशशृंग आदिकके तुल्य होनेतैं असत्‌पना होवैगा ? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं शुक्तिके ज्ञान हुये रजतके तृष्णाकी निवृत्तिकी न्याई तुरीयके आत्मभावके ज्ञान हुये, ता ज्ञानकूं अनात्माके तृष्णाकी निवृत्तिका हेतु होनेतैं, औ तुरीयके आत्मभावके ज्ञान हुयें अविद्या औ तृष्णा आदिक दोषनका संभव नहीं है । औ तुरीयके आत्मभावके ज्ञानविषै हेतुका अभाव बी नहीं है । काहेतैं, "सो तूं है" "सो सत्य है" "सो आत्मा है जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है" "बाहिर भीतर सहित अजन्मा है, आत्माहीं यह सर्व है"। इत्यादि

---

९७ क्या कल्पित अधिष्ठानपना हेतु किया है, किंवा वास्तव अधिष्ठानपना ? तिनमैं प्रथम पक्ष बनै नहीं; काहेतैं, ता कल्पित अधिष्ठानपनैकूं वास्तविक वाच्यताका असाधक होनेतैं; औ अवास्तविक वाच्यपनैविषै तो क्रमका विरोध नहीं है । औ द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं; काहेतैं, शीपी आदिकविषै कल्पित रजत आदिकके अवस्तुपनैकी न्याई, तुरीयविषै बी कल्पित प्राण आदिककूं अवस्तुरूप होनेतैं, तिस प्रतियोगीवाले अधिष्ठानपनैकी वास्तविकताके अयोगतैं । ऐसैं सिद्धांती दूषण देते हैं ।

वाक्यतैं; सर्व उपनिषदनकूं तिसीहीं प्रयोजनके अर्थ होनेकरि परिसमाप्त होनेतैं । सो[९८] यह आत्मा परमार्थरूप च्यारीपादवाला है, ऐसैं पूर्व द्वितीय मंत्रविषै कहाथा, ताके अपरमार्थरूप अविद्यारचित रज्जुसर्प आदिकके तुल्य बीज औ अंकुरस्थानी तीन पादका लक्षण पूर्व कहा । अब या मंत्रविषै अबीजरूप परमार्थस्वरूप रज्जुस्थानी चतुर्थपादकूं "अंतःप्रज्ञ नहीं" इत्यादिरूप या वाक्यसैं सर्पस्थानी उक्त तीनस्थानोके निराकरणसैं कहैहै ॥ ननु, आत्माके च्यारीपादकरि युक्तपनेकूं प्रतिज्ञा करिके तीन पादनके कथनसैंहीं चतुर्थपादकूं अंतःप्रज्ञ आदिक तीनपादतैं भिन्नताके सिद्ध हुये "अंतःप्रज्ञ नहीं" इत्यादिरूप निषेध व्यर्थ होवैगा ? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं सर्पादिरूप विकल्पके निषेधसैंहीं रज्जुके स्वरूपके निश्चयकी न्याई, तीन अवस्थावाले आत्माकूंहीं तुरीयरूप होनेकरि, "सो तूं हैं" या वाक्यके अर्थकी न्याई जाननेकूं इच्छित होनेतैं । जबै तीन अवस्थावाले आत्मातैं विलक्षण अन्य तुरीय होवै, तब ताके निश्चयरूप

---

९८ इस रीतिसैं निषेधमुखसैंहीं तुरीयका प्रतिपादन है, विधिमुखसैं नहीं; ऐसैं प्रतिपादन करिके, अब कथन किये अर्थके अनुवादपूर्वक आगे कहनेके ग्रंथकूं प्रकट करैहैं ।

९९ ननु, जाग्रत् आदिक तीन स्थानकरि विशिष्ट आत्माकूं तुरीयरूपता नहीं है; काहेतैं, तुरीयकूं विशिष्टतैं विलक्षण होनेकरि अत्यंत भिन्न होनेतैं । यातैं ता विशिष्ट आत्माका तुरीयपना आगे कहनेके ग्रंथकरि कैसैं प्रतिपादन करिये है ? यह शंका भई तहां कहैहैं । इहां यह अर्थ है:— तुरीयकी प्रातिभासिकतैं विलक्षणताके हुये बी विशिष्ट (विशेषणवाले) औ उपलक्षित (उपलक्षणवाले) आत्माकी अत्यंत विलक्षणताके अभावतैं, तुरीयका विशिष्टतैं वास्तव भिन्नपना नहीं है; अन्यथा अत्यंत भिन्न औ परस्परके संबंधसैं रहित इन दोनूंके उपाय औ उपेय(फल)भावके अयोगतैं, तुरीयके ज्ञानविषै विशिष्ट आत्माकूं द्वार होनेके अभावतैं; औ ताके ज्ञानके द्वाररूप अन्य वस्तुके अदर्शनतैं तुरीयका अनिश्चयहीं होवैगा ।

द्वारके अभावतैं शास्त्रके उपदेशकी व्यर्थता होवैगी, वा शून्यता होवैगी। जैसैं[100] अधिष्ठानरूप रज्जु, सर्प आदिकसैं भेदकूं पावैहै, तैसैं जब तीन स्थानविषै बी एकहीं आत्मा अंतःप्रज्ञ आदिकपनैं-करि भेदकूं पावताहै, तब अंतःप्रज्ञ आदिकपनैके निषेधके ज्ञान-रूप प्रमाणके समकालहीं आत्माविषै अनर्थरूप प्रपंचकी निवृत्तिरूप फल परिसमाप्त होवैहै। जैसैं[101] रज्जु औ सर्पके विवेकके समकालमैं रज्जुविषै सर्पकी निवृत्तिरूप फलके हुये रज्जुके ज्ञानका अन्यफल वा अन्य प्रमाण वा अन्य साधन खोजनेकूं योग्य नहीं है; तैसैं तुरीयके जानेहुये अन्यप्रमाण वा अन्य साधन खोजनेकूं योग्य नहीं है। फेर[102]

---

१०० इहां यह अर्थ है:—विशिष्टकेहीं निश्चयसैं तुरीयके अनिश्चयके भये निश्चित भये विश्व आदिक विशिष्ट आत्माका उलटा उदय होवैगा, औ तत्त्वतैं अन्यकूं अनिश्चित होनेतैं निरात्मताकी बुद्धिहीं प्राप्त होवैगी।

१०१ संबंधीके परोक्षज्ञानके हेतु शब्दकूं असंबंधीके अपरोक्ष ज्ञानकी हेतुताके असंभवतैं, तुरीयके ज्ञानविषै अन्य प्रमाण मान्या चाहिये; इस पक्षके प्रति कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—तुरीयके साक्षात्कारविषै शब्दसैं भिन्न प्रमाण खोजनेकूं योग्य नहीं है; काहेतैं, शब्दकूं विषयके अनुसारसैं प्रमाण (ज्ञान)का हेतु होनेतैं, औ तुरीयरूप विषयकूं संबंधरहित अपरो-क्षरूप होनेतैं।

१०२ विषयगत प्रकटपना प्रमाणका फल है, अध्यस्तकी निवृत्ति प्रमाणका फल नहीं? यह आशंका करिके कहैहैं। इहां यह भाव है:—अपने विषयके अज्ञानके निवारण अर्थ प्रवृत्त भयी जो प्रमाणकी क्रिया, सो अपने विषयविषै भावरूप अतिशयकूं जब धारण करैहै; तब निवारण-रूप अर्थकी तुल्यतातैं छेदनरूप क्रिया बी छेदन करने योग्य काष्ठके संयो-गके निवारणतैं भिन्न अतिशयकूं धारण करैगी। औ संयोगके विनाशतैं भिन्न विभागविषै अनुभव नहीं है; औ प्रकटताके प्रकाशपनैके हुये ज्ञानकी न्यांई अर्थविषै स्थितपना नहीं होवैगा, औ अप्रकाशपनैके हुये अर्थविषै स्थितपना होवैगा; तिस हेतुकरि अर्थसैंविना अर्थ नहीं है।

जिनके मतविषै तमके दूरी करनेविना घटादिकके ज्ञानविषै प्रमाण प्रवर्त्त होवैहै, तिनके मतमैं छेद करने योग्य वृक्षके अवयवके संबंधके वियोग कियेविना दोनूं अवयवमैंसैं एक अवयवविषै बी छेदनरूप क्रिया प्रवर्त्त होवैहै; ऐसैं कहना होवैगा। [१०३] जैसैं फेर छेदन करनेयोग्य वृक्षके अवयवके संबंधके भिन्न करनेविषै प्रवृत्त भयी, औ तिस वृक्षके अवयवके दोभाव करनेरूप फलविषै अंतवाली छेदनरूप क्रियाकी न्याईं घट औ अंधकारके विवेकके करनेविषै प्रवृत्त भया प्रमाण ग्रहणकरनेकूं अनिच्छित औ अविषयरूप अंधकारकी निवृत्तिरूप फलविषै अंतवाला होवैहै; तब अंतरायवाला घटका ज्ञान नहीं है; यातै सो प्रमाणका फल नहीं है। तैसैं[१०४] आत्माविषै बी

---

१०३ अज्ञानका निवर्त्तकहीं प्रमाण है; इस पक्षमैं विषयके स्फुरणविषै कारणके अभावतैं विषयका स्फुरण नहीं होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—अंधकारसैं आवृत भया घट, व्यवहारके योग्य स्थित होवैहै; ताकूं अंधकारसैं निकासिके ताके व्यवहारकी योग्यताके संपादनविषै प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण प्रवृत्त होवैहै; सो प्रमाण जब ग्रहणकरनेकूं अनिच्छित औ प्रमाज्ञानके अविषय अंधकारकी निवृत्तिरूप फलविषै स्थित होवै, तब घटका स्फुरणरूप प्रयोजनवाला प्रमाणका फल होवैहै। जैसैं छेदनरूप क्रिया जो है, सो छेदन करनेयोग्य वृक्षके दोनूं अवयवनके परस्पर संयोगके निवारणविषै प्रवृत्त हुयी, तिन छेदन करने योग्य वृक्षके दोनूं अवयवनके द्विधा भावरूप फलविषै स्थित होवैहै; परंतु वृक्षके दोनूं अवयवनमैंसैं एक अवयवविषै बी छेदनरूप क्रिया प्रवृत्त होती नहीं; तैसैं इहां बी अंधकारकी निवृत्तिविषैं प्रमाण निवर्त्त होवैहै, परंतु घटका स्फुरण तो ताका फल है। औ तिस प्रमाणकूं स्थिरपना नहीं है; काहेतैं, प्रकाशक प्रमाताके व्यापारकूं अस्थिर होनेतैं।

१०४ किंवा घटादिक जडकूं संवित् (चेतन)की अपेक्षावाला होनेतैं, तिसविषै संवित्कूं प्रमाणकी फलरूपताके हुये बी एक संवित्रूप अजड आत्माविषै मनमैं आरोपित धर्मकी निवर्त्तकताविना संवित्की जनकतारूप

आरोपित अंतःप्रज्ञपनै आदिकके विवेकके करनेविषै प्रवृत्त भये निषेधके ज्ञानरूप प्रमाणका ग्रहण करनेकूं अनिच्छित अंतःप्रज्ञपनै आदिककी निवृत्तिविना तुरीयविषै व्यापारका संभव नहीं है। काहेतैं, अंतःप्रज्ञपनै आदिककी निवृत्तिके समकालहीं प्रमातापनै आदिक भेदकी निवृत्तितैं। तैसैं आगे कहियेगा. "जानेहुये द्वैत विद्यमान नहीं है" या वाक्यसैं॥ ज्ञानकूं भेदकी निवृत्तिरूप फलविना अन्यक्षणविषै अस्थिर होनेतैं, औ ज्ञानके स्थितहुये अनवस्थाके प्रसंगतैं द्वैतकी अनिवृत्ति होवैगी।[१] तातैं निषेधके ज्ञानरूप प्रमाणके व्यापारके समकालमैंहीं आत्माविषै आरोपित अंतःप्रज्ञपनै आदिक

व्यापार संभवै नहीं; ऐसैं कहैहैं। इहां यह भाव है:—तुरीयरूप आत्माविषै प्रमाणका संवेदनका जननरूप व्यापार नहीं कल्पिये है; काहेतैं, इस तुरीयकूं संवित्रूप होनेतैं औ आरोपितकी निवृत्तिसैं विना प्रमाणजन्य फलरूप संवित्की अपेक्षाके अभावतैं।

१०५ किंवा, ज्ञानके अधीन द्वैतकी निवृत्ति करि युक्त क्षणसैं विना अन्यक्षणविषै ज्ञान स्थित होनेकूं समर्थ नहीं है, औ अस्थिर हुया ज्ञान, व्यापारके अर्थ परिपूर्ण नहीं है, तैसैं हुये ज्ञानका द्वैतकी निवृत्तिसैं भिन्न आत्माविषै व्यापार नहीं है; ऐसैं कहैहैं।

१०६ ननु, ज्ञान जो है सो द्वैतका निवर्त्तक हुया बी आपके स्वरूपकूं नहीं निवर्त्त करैहै; काहेतैं, निवर्त्त होनेकी योग्यता औ निवर्त्तकतारूप धर्मके एक धर्मीविषै विरोधतैं। यातैं जहांलगि ज्ञानका निवर्त्तक अन्य आवैगा, तहांलगि ज्ञान स्थित होवैगा? यह आशंका भई। तहां कहैहैं। इहां यह भाव है:—द्वैतके निवर्त्तक ज्ञानकूं द्वैतकी निवृत्तिके अनंतर बी अपने अन्य निवर्त्तककी अपेक्षा करिके स्थित हुये तिस तिस ज्ञानकूं अन्य निवर्त्तककी अपेक्षावाला होनेतैं प्रथम ज्ञानकूं बी निवर्त्तकपनैकी असिद्धि होवैगी।

१०७ इहां यह अर्थ है:—ज्ञानकूं अपने निवर्त्तकपनैका असंभव नहीं है; काहेतैं, आपके औ परके विरोधि बहुत पदार्थनकी प्रतीतितैं।

अनर्थकी निवृत्ति होवैहै; ऐसैं सिद्ध भया ॥ अब तात्पर्यसहित मूल-श्रुतिका अर्थ कहियेहैः—इहां "अंतःप्रज्ञ नहीं" इस पदसैं तैजसका निषेध किया। "बहिःप्रज्ञ नहीं" इसपदसैं विश्वका निषेध किया। "उभयतःप्रज्ञ नहीं" इसपदसैं जाग्रत् औ स्वप्नकी संधिरूप मध्य अवस्थाका निषेध किया। "प्रज्ञानघन नहीं" इसपदसैं सुषुप्ति अवस्थाका निषेध किया; काहेतैं, सुषुप्तिकूं बीजभावके अविवेक-रूप होनेतैं। "प्रज्ञ नहीं" इसपदसैं एक कालविषै सर्व विषयके ज्ञातापनैका निषेध किया। "अप्रज्ञ नहीं" इसपदसैं अचेतनपनैका निषेध किया ॥ ननु, फेर आत्माविषै प्रतीयमान अंतःप्रज्ञ आदि-कनका रज्जुआदिकविषै सर्प आदिककी न्याई निषेधतैं असत्पना कैसैं जानियेहै? तहां कहियेहैः—अंतःप्रज्ञ (तैजस) आदिकनके ज्ञानस्वरूपविषै अविशेषके हुये बी रज्जु आदिकविषै सर्प औ जलधारा आदिकके कल्पित भेदकी न्याई परस्पर व्यभिचारतैं असत्पना है, औ रज्जु आदिककी न्याई अव्यभिचारतैं तिनके ज्ञानस्वरूपका सत्यपना है ॥ ननु, तिनका ज्ञानस्वरूप बी सुषुप्ति-विषै व्यभिचारकूं पावताहै? ऐसैं जो कहै, तो बनै नहींः—काहेतैं, सुषुप्तिवान् पुरुषकूं अनुभवका विषय होनेतैं, औ "विज्ञाताकी विज्ञा-तिका लोप विद्यमान नहीं है" इस श्रुतितैं। याहीतैं अदृष्ट है। जातैं अदृष्ट है, तातैं व्यवहार करनेकूं अयोग्य है। औ कर्मेंद्रिय-नसैं अग्राह्य है, औ अलक्षण है; कहिये अलिंग (अनुमानका अवि-षय) है। याहीतैं अचिंत्य (चिंतनका अविषय) है। याहीतैं शब्दनसैं कहनेकूं अयोग्य है। औ एकात्म्यप्रत्ययसार है; कहिये जाग्रत्आदिक स्थानोविषै यह आत्मा एक है; ऐसा अव्यभिचारी जो ज्ञान तिसकरि अनुसरनेकूं योग्य है। अथवा, जिस तुरीयकी प्राप्तिविषै एक आत्मज्ञानरूप सार (प्रमाण) है, ऐसा सो तुरीय है; "आत्मा है ऐसैंहीं उपासना करना" इस श्रुतितैं। ऐसैं अंतःप्रज्ञपनै आदिक स्थानके अभिमानीके धर्मका निषेध किया। औ प्रपंचसैं

गौडपादीयोपनिषदर्थाविष्करणम् ॥

निवृत्तेः सर्व्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः ।
अद्वैतः सर्व्वभावानां देवस्तुर्य्यो विभुः स्मृतः॥१॥

रहित है, ऐसैं जाग्रत् आदिक स्थानके धर्मका अभाव कहियेहै । याहीतैं शांत (रागद्वेषादिविकारसैं रहित) है, औ शिव (शुद्ध परमानंद बोधस्वरूप) है । जातैं अद्वैत (भेदरूप विकल्पसैं रहित) है, यातैं याकूं चतुर्थ (तुरीयपाद) मानतेहैं; काहेतैं, प्रतीयमान विश्व आदिक तीनपादनके रूपतैं विलक्षण होनेतैं । सो आत्मा है। सो जानने योग्य है । जैसैं प्रतीयमान सर्प भूमिछिद्र औ दंड आदिकतैं भिन्न रज्जु है, तैसैं "सो तूं हैं" इत्यादि वाक्यका अर्थरूप जो आत्मा अदृष्ट हुया द्रष्टा है, औ "द्रष्टाकी दृष्टिका लोप विद्यमान नहीं है" इत्यादि श्रुतिनतैं कहा है; सो जाननेकूं योग्य है । इहां पूर्व अज्ञान अवस्थाविषै भये आत्माके ज्ञेयपनेके ज्ञानसैं आत्माकूं जाननेयोग्य कहाहै, औ आत्माके जाने हुये, ज्ञाता ज्ञान औ ज्ञेयके विभागरूप द्वैतका अभाव है ॥ ७ ॥

टीकाः—ईहां ये नव गौडपादाचार्यके किये श्लोक होवैहैं:—प्राज्ञ तैजस औ विश्वरूप जीवनके **सर्व दुःखनकी निवृत्तिका ईशान** (नियामक) तुरीयरूप आत्मा है, औ सो **प्रभु** है । इहां ईशानपदका व्याख्यानरूप प्रभुपद है। यातैं ईशान कहिये सर्व दुःखनकी निवृत्तिके प्रति प्रभु होवैहै; काहेतैं दुःखकी निवृत्तिकूं ताके ज्ञानरूप निमित्तवाली होनेतैं । औ यह आत्मा जातैं स्वरूपतैं व्यभिचारकूं पावता नहीं, यातैं **अव्यय** है। आत्माका अव्यय ऐसा विशेषण काहेतैं है? तहां कहैहैंः—जातैं रज्जुसर्पकी न्याई विश्व आदिक **सर्व भावनकूं**

१०८ अब "अंतःप्रज्ञपना नहीं है" इस सप्त संख्यावाली श्रुतिकरि उक्त अर्थविषै ताके वर्णनरूप गौडपादाचार्यके किये नव श्लोकनकूं प्रकट करैहैं ।

कार्य्यकारणबद्धौ ताविष्येते विश्वतैजसौ ।
प्राज्ञः कारणबद्धस्तु द्वौ तौ तुर्य्ये न सिध्यतः ॥११
नात्मानं नापरांश्चैव न सत्यं नापि चाऽनृतम् ।
प्राज्ञः किंचन संवेत्ति तुर्य्यं तत्सर्व्वदृक् सदा॥१२

मिथ्या होनेतैं अद्वैत है । यातैं व्ययके हेतु द्वितीय वस्तुके अभावतैं आत्मा अव्यय है । सो यह प्रकाशमान देव तुरीय (चतुर्थ) औ विभु (व्यापक) कहाहै ॥ १० ॥

टीकाः—अब तुरीयके यथार्थपनैके निश्चयअर्थ विश्वं[१०९]आदिकनका सामान्य औ विशेषभाव निरूपण [११०]करियेहैः—करियेहै, ऐसा जो फलभाव, सो कार्य है; औ करता है, ऐसा जो बीजभाव; सो कारण है । तिन तत्त्वके अग्रहण औ अन्यथाग्रहणरूप बीजभाव औ फलभावसैं वे पूर्वउक्त विश्व औ तैजस, ये दोनूं बद्ध अंगीकार करियेहैं। प्राज्ञ तो बीजभावरूप कारणसैंहीं बद्ध है, कहिये तत्त्वका अबोधमात्ररूपहीं बीज प्राज्ञपनैविषै निमित्त है । तातैं वे बीजभाव औ फलभावमय तत्त्वके अग्रहण औ अन्यथाग्रहणरूप विश्व औ तैजस ये दोनूं तुरीयविषै सिद्ध होते नहीं ॥ ११ ॥

टीकाः—फेर प्राज्ञका कारणसैं बद्धपना कैसैं है ? वा तुरीयविषै तत्त्वके अग्रहण औ अन्यथाग्रहणरूप बद्ध जो विश्व औ तैजस, वे तैसै सिद्ध होते नहीं ? तहां कहैहैंः—जातैं **प्राज्ञ** जो है, सो विश्व औ तैजसकी न्याई कछुबी आपकूं नहीं जानताहै, औ **अन्योंकूं बी नहीं** जानताहै, औ असत्य (द्वैत)-कूं **नहीं** जानताहै, औ अविद्यामय बीजरूप अनृत (झूठ)-कूं **वी नहीं जानताहै**; तातैं यह प्राज्ञ अन्यथाग्रहण (विपरीत ज्ञान)के बीजमय अग्रहणरूप अज्ञानसैं बद्ध

---

१०९ इस श्लोकके तात्पर्यकूं कहैहैं ।

११० विश्व आदिकविषै बीचकी विलक्षणताके निरूपणद्वारा तुरीयकूंहीं निर्द्धार करैहैं ।

द्वैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुर्य्ययोः। बीजनिद्रायुतः प्राज्ञः सा च तुर्य्ये न विद्यते॥१३॥

होवैहै। जातैं सो तुतीय, तुरीयतैं अन्यके अभावतैं सर्वदा सर्वदृक् (सर्वरूप औ सर्वका द्रष्टा) है; तातैं तिसविषै तत्त्वका अग्रहणरूप बीज नहीं है। याहीतैं तिस बीजतैं उत्पन्न भये अन्यथा ग्रहणका बी तहां अभाव है। जैसैं सदा प्रकाशरूप सूर्यविषै अप्रकाशना वा अन्यथाप्रकाशना संभवै नहीं; तैसैं सदा दृष्टारूप तुरीयविषै अज्ञान वा अज्ञानका कार्य संभवै नहीं। काहेतैं "दृष्टाकी दृष्टिका लोप विद्यमान नहीं" इस श्रुतितैं। अथवा जातैं जाग्रत् औ स्वप्नविषै सर्वभूतनविषै स्थितिवाला सर्व वस्तुनका दृष्टा जो आभास (प्रकाश) है, सो तुरीयहीं है। यातैं सो तुरीय सदा सर्वदृक् है; काहेतैं "इसतैं अन्य दृष्टा नहीं है" इस श्रुतितैं ॥१२॥

टीकाः—अब तुरीयविषै अन्य निमित्ततैं प्राप्त भई कारणसैं बद्धपनैकी आशंकाकी निवृत्तिअर्थ यह श्लोक है। कैसैं[111] कि? दोनूंविषैं द्वैतके अग्रहणरूप निमित्तके तुल्य होनेतैं, यह आशंका प्राप्त भई है। सो आशंका प्राज्ञकूंहीं कारणसैं बद्धपना है, तुरीयकूं नहीं; ऐसैं निवारण करियेहैः—यद्यपि **प्राज्ञ औ तुरीय दोनूंकूं द्वैतका अग्रहणतुल्य है;** तथापि जातैं **प्राज्ञ** जो है, सो विशेषके बोधके उत्पत्तिकी कारण जो तत्त्वके अबोधरूप **बीजनिद्रा** है, तिस **करि युक्त है,** औ तुरीयकूं सदा दृष्टा स्वभाववाला होनेतैं **सो** तत्त्वके अबोधरूप निद्रा **तुरीयविषै नहीं है।** यातैं तिस तुरीयविषै कारणसैं बंध नहीं है, यह अभिप्राय है ॥ १३ ॥

---

१११ विवादका विषय जो तुरीय, सो कारणसैं बद्ध (संबंधवाला) है, द्वैतके अग्रहणके होनेतैं, प्राज्ञकी न्याईं। इस अनुमानकूंहीं दिखावत्तेहुये प्राज्ञके कारणकरि बद्धपनैविषै अन्य निमित्तकूंहीं प्रकट करैहैं।

स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ।
न निद्रां नैव च स्वप्नं तुर्य्ये पश्यन्ति निश्चिताः
॥ १४ ॥
अन्यथा गृह्णतः स्वप्नो निद्रा तत्त्वमजानतः ।
विपर्य्यासे तयोः क्षीणे तुरीयं पदमश्नुते ॥ १५ ॥

टीकाः—आद्य[११२] जो विश्व औ तैजस, ये **दोनूं** जातैं रज्जुविषै सर्पकी न्याई अन्यथाग्रहणरूप जो स्वप्न औ तत्त्वके अबोधमय अज्ञानरूप जो निद्रा, तिन **स्वप्न औ निद्राकरि युक्त हैं।** यातैं वे कार्य औ कारणसैं बद्ध हैं, ऐसैं पूर्व कहे । औ **प्राज्ञ** तो **स्वप्नसैं रहित** अरु केवल **निद्रासैंहीं युक्त है;** यातैं कारणसैं बद्ध है, ऐसैं पूर्व कहा । औ **निश्चयकूं प्राप्त** भये जे ब्रह्मवेत्ता हैं, वे सूर्यविषै तमकी न्याई विरुद्ध होनेतैं **तुरीयविषै स्वप्नकूं नहीं देखतेहैं, औ निद्राकूं बी नहीं देखतेहैं ।** यातैं तुरीय जो है, सो कार्य औ कारण दोनूंसैं बद्ध नहीं है; ऐसैं पूर्व कहा ॥ १४ ॥

टीकाः—ननु, पुरुष, स्वप्नविषै स्थित कब होवैहै, औ निद्राविषै स्थित कब होवैहै, औ तुरीयविषै निश्चयकूं प्राप्त भया कब होवैहै? तहां कहियेहैः—स्वप्न औ जाग्रत्‌विषै रज्जुमैं सर्पकी न्याई **तत्वके अन्यथा** (विपरीत) **ग्रहण करनेवाले पुरुष-कूं स्वप्न होवैहै, औ** तत्त्वके **न जाननेवालेकूं** तीन अवस्थाविषै तुल्य **निद्रा है** । इहां स्वप्न औ निद्राविषै तुल्य होनेतैं विश्व औ तैजसकूं एक कोटिपना है । तिसविषै अन्यथा ग्रहणतैं औ मुख्य होनेतैं गुणरूप निद्रा है, औ विपर्यास स्वप्न है । द्वितीयकोटि प्राज्ञरूप तृतीयस्थानविषै तो तत्त्वका अज्ञानरूप निद्राहीं केवल विपर्यास है । यातैं तिन

---

११२ अब "वे विश्व औ तैजस कार्य औ कारणकरि बद्ध हैं" इस (११ वें) श्लोकविषै उक्त अर्थकूं अनुभवके आश्रयसैं वर्णन करैहैं ।

**अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुद्ध्यते ।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुद्ध्यते तदा ॥ १६ ॥**

कार्य औ कारणरूप दोनूंस्थानों—के अन्यथा ग्रहण औ अग्रहणमय कार्य औ कारणसैं बंधरूप विपर्यासके परमार्थतत्त्वके बोधतैं क्षीण (नाश) भये तुरीयपदकूं पावताहै; कहिये तब तिस तुरीयविषै दोनूं प्रकारके बंधके रूपकूं न देखता हुया पुरुष तुरीयविषै निश्चयकूं प्राप्त भया होवैहै ॥ १९ ॥

टीकाः—जो यह[११३] संसारी जीव है, सो तत्त्वके अबोधमय बीजरूप औ अन्यथा ग्रहणरूप अनादि—कालसैं प्रवर्त भये दोनूंप्रकारके मायारूप स्वप्न—सैं; "मेरा यह पिता है, यह पुत्र है, यह पौत्र है, यह क्षेत्र है, ये पशु हैं, मैं इनका स्वामी हूं, सुखी हूं, दुःखी हूं, औ इससैं क्षयकूं पाया हूं, अरु इससैं वृद्धिकूं पाया हूं;" इस प्रकारके स्वप्नोंकूं जाग्रत्—औ स्वप्नरूप दोनूं स्थानोंविषै बी देखता हुया सोयाहै। सो जब वेदांतके अर्थरूप तत्त्वके जाननेवाले परमदयालु गुरुसैं ऐसैं "तूं इसपुत्र आदिकका हेतु अरु फलरूप नहीं हैं, किंतु सो (ब्रह्म) तूं हैं" ऐसैं प्रबोधकूं प्राप्त होवै, तब ऐसैं जानताहै ॥ कैसैं जानताहै? तहां कहै हैंः—इस आत्माविषै बाहिर (कार्य) भीतर (कारण) वा जन्म आदिक भावविकार नहीं है। यातैं अजन्मा है; कहिये, बाहिर भीतरसहित औ सर्व भावविकारसैं रहित है। जातैं इस आत्माविषै जन्मादिककी कारणरूप अविद्या औ अज्ञानस्वरूप बीजमय निद्रा नहीं है, यातैं यह अनिद्र है। जातैं सो तुरीय अनिद्र है, याहीतैं अस्वप्न है; अन्यथाग्रहणरूप स्वप्नकूं तिस अज्ञान निद्रारूप निमित्तवाला होनेतैं। जातैं अनिद्र

---

११३ विपर्ययके नाशका हेतु तत्त्वबोध कब होवैहै? इस पूंछनेकी इच्छाके भये कहेहैं।

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्त्तेत न संशयः ।
मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥ १७ ॥
विकल्पो विनिवर्त्तेत कल्पितो यदि केनचित् ।
उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते ॥ १८ ॥

औ अस्वप्न है; तातैं अजन्मा औ अद्वैत है । ऐसैं तुरीयरूप आत्मा-कूं तब जानताहै ॥ १६ ॥

टीकाः—जब प्रपंचकी निवृत्तिसैं अद्वैतकूं जानताहै, तब प्रपंचके अनिवृत्त हुये कैसैं अद्वैत सिद्ध होवैहै ? तहां कहियेहैः—प्रपंच जब परमार्थसैं विद्यमान होवै, तब ऐसैं अद्वैतकी असिद्धि होवैहै; यह तेरा कथन सत्य है, परंतु रज्जुविषै सर्पकी न्याई कल्पित होनेतैं सो विद्यमान नहीं है; यातैं अद्वैत सिद्ध होवैहै,। औ **प्रपंच जब विद्यमान होवै, तब निवृत्त होवैहै, यामैं संशय नहीं है ।** जैसैं रज्जुविषै भ्रांतिबुद्धिसैं कल्पित जो सर्प, सो विद्यमान हुया विवेकतैं निवृत्त होवैहै; यातैं वस्तुतैं नहीं है । औ जैसैं मायावी पुरुषनैं दिखाई जो माया, सो विद्यमान हुयी बी ताके देखनेवाले पुरुषनके नेत्र-बंधके दुरी हुये निवृत्त होवैहै, यातैं वस्तुतैं नहीं है । तैसैं **यह प्रपंचनामवाला द्वैत मायामात्र है,** औ रज्जुकी न्याई अरु मायावीकी न्याई **परमार्थतैं अद्वैत है ।** तातैं कोइबी प्रवृत्त भया वा निवृत्त भया प्रपंच नहीं है; यह अभिप्राय है ॥ १७ ॥

टीकाः—ननु, शास्ता (शिक्षाका कर्ता गुरु) शास्त्र औ शिष्य; इसप्रकारका विकल्प कैसैं प्रवृत्त होवैहै ? तहां कहियेहै—**विकल्प जब किसीकरि कल्पित होवै, तब निवर्त्त होवै ।** जैसैं यह प्रपंच, माया अरु रज्जुसर्पकी न्याई प्रबोधतैं पूर्व है; तैसैं यह शिष्य आदिक भेदरूप विकल्प बी प्रबोधतैं पूर्वहीं उपदेशके नि-

उपनिषद् ॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रम् । पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ ८ ॥

मित्त है । यातैं यह शिष्य शास्ता औ शास्त्ररूप जो वाद (कथन) है, सो उपदेशतैं पूर्व है; औ उपदेशके कार्यरूप ज्ञानके समाप्त भये परमार्थतत्त्वके जानेहुये द्वैत नहीं है ॥ १८ ॥

टीका:—जो वाच्यकी[११४] प्रधानतावाला ॐकार च्यारी पादवाला आत्मा है, ऐसैं व्याख्यान किया; **सो यह आत्मा अध्यक्षर है ।** वाचककी प्रधानतासैं अक्षरकूं आश्रय करिके वर्णन करियेहै; यातैं अध्यक्षर कहियेहै । फेर सो अक्षर क्या है? तहां कहैहैं:—**सो अक्षर ॐकार है । सो यह ॐकार** पादनसैं विभागकूं पायाहुया **अधिमात्र है ।** जातैं मात्राकूं आश्रय करिके वर्तताहै, यातैं अधिमात्र कहियेहै । ननु, आत्माहीं पादनसैं विभागकूं पावताहै, औ मात्राकूं आश्रयकरिके ॐकार स्थित होवैहै, तातैं पादनसैं विभागकूं प्राप्त भये ॐकारका अधिमात्रपना कैसैं है ? तहां कहैहैं:—आत्माके जे **पाद हैं, वे ॐकारकी मात्रा हैं;** औ ॐकारकी जे **मात्रा हैं,** वे आत्माके **पाद हैं ।** यातैं पाद औ मात्राकी एकतातैं यह कथन अविरुद्ध है । कौन वे ॐकारकी मात्रा हैं ? तहां कहैहैं.—**अकार उकार औ मकार;** ये तीन ॐकारकी मात्रा हैं ॥ ८ ॥

---

११४ ऐसैं तत्त्वज्ञानविषै समर्थ मध्यम औ उत्तम अधिकारिनकूं अध्यारोप औ अपवादसैं पारमार्थिक तत्त्व उपदेश किया, अब तत्त्वके ग्रहणविषै असमर्थ कनिष्ठ अधिकारीनकूं आत्माके ध्यानके विधान अर्थ आरोप दृष्टिकूंहीं आश्रयकरिके मूलश्रुतिके च्यारी मंत्रनका व्याख्यान करैहैं ।

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्व्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद १०

टीकाः–[११५]तहां विशेषका नियम करियेहैः–जो **जाग्रत्स्थानवाला वैश्वानर है, सो ॐकारकी अकाररूप प्रथम मात्रा है ॥** किस तुल्यताकरि दोनूंकी एकता है ? तहां कहैहैंः–**व्याप्तितैं वा आदिवाले होनेतैं ।** जैसैं अकारसैं सर्व वाणी व्याप्त है; "अकारहीं सर्व वाणीरूप है" इस श्रुतितैं, तैसैं वैश्वानरसैं जगत् व्याप्त है; "तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानररूप आत्माका मस्तकहीं स्वर्ग है" इत्यादिश्रुतितैं; वाच्यवाचककी एकताकूं हम कहैहैं । जिसकी आदि है सो आदिवाला कहियेहै । जैसैंहीं आदिवाला अकारनामक अक्षर है, तैसैंहीं आदिवाला वैश्वानर है । तातैं तुल्य होनेतैं वैश्वानरकूं अकारपना है । अब तिनकी एकताके ज्ञाताकूं फल कहैहैंः–**जो ऐसैं उक्तप्रकारकी वैश्वानर औ अकारकी एकताकूं जानताहै, सो निश्चयकरि सर्व भोगनकूं पावताहै । औ सो बडे पुरुषनके मध्य प्रथम होवैहै ॥ ९ ॥**

टीकाः–[११६]**जो स्वप्नस्थानवाला तैजस है, सो ॐकारकी उकाररूप द्वितीय मात्रा है ॥** किस तुल्यताकरि दोनूंकी एकताहै ? तहां कहैहैंः–**उत्कर्षतैं वा उभय (द्वितीय)रूप होनेतैं ।** जैसैं

---

११५ पादनके मध्य औ मात्राके मध्य विश्व नामक भेदकी अकाररूपताकूं सूचन करैहैं ।

११६ अब द्वितीयपाद औ द्वितीयमात्राकी एकताकूं कहैहैं ।

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा । मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इद५ सर्व्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

अकारतैं उकार पाठके क्रमतैं उत्कृष्ट है, तैसैं स्थूलउपाधिवाले विश्वतैं सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस उत्कृष्ट है । तिस उत्कर्षतैं तिनकी एकता है । वा जैसैं अकार औ मकारके मध्यविषै स्थित उकार है, तैसैं विश्व औ प्राज्ञके मध्यविषै तैजस है; यातैं तिनकी उभयरूपताकी तुल्यतातैं एकता है । अब तिनकी एकताके ज्ञाताकूं जो फल होवैहै सो कहिये हैः–जो ऐसैं जानता है सो ज्ञानकी संततिकूं बढावताहै, औ तुल्य होवैहै; कहिये मित्रके पक्षकी न्याई शत्रुके पक्षनके मध्य बी द्वेष करनेकूं अयोग्य होवैहै; औ याके कुलविषै अब्रह्मवेत्ता नहीं होवैहै ॥ १० ॥

टीकाः–[117]"जो सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञ है, सो ॐकारकी मकाररूप तृतीयमात्रा है । किस तुल्यताकरि दोनूंकी एकता है ? तहां कहैहैंः–परिमाणतैं वा एकतातैं । इहां यह दोनूंकीतुल्यता हैः–प्रस्थ (धान्य परिमाणके पात्र)सैं यवधान्यके परिमाण(माप) की न्यांई, जैसैं लय औ उत्पत्तिविषै प्रवेश औ निकसनेसैं प्राज्ञकरि विश्व औ तैजस परिमाण कियेकी न्याई होवैहैं; तैसैं अकार औ उकार ये दोनूं अक्षर, ॐकारकी समाप्तिविषै औ फेर उच्चारणविषै मकारमैं प्रवेशकरिके निकसते हुयेकी न्यांई होवैहैं; यातैं वे मकारकरि परिमाण कियेकी न्यांई होवैहैं; तातैं तिन दोनूंकी तुल्यताकरि एकता है । वा जैसैं ॐकारके उच्चारण कीये मकाररूप अंतके अक्षरविषै अकार औ उकार, ये दोनूं एकरूप हुयेकी न्यांई होवैहैं; तैसैं विश्व औ तैजस सुषुप्तिकालमैं प्राज्ञविषै एकरूप

---

११७ अब तृतीयपाद औ तृतीयमात्राकी एकताकूं कहैहैं ।

गौडपादीयश्लोकाः ॥

**विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम्।
मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादाप्तिसामान्यमेव च १९
तैजसस्योत्वविज्ञाने उत्कर्षो दृश्यते स्फुटम्।
मात्रासंम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वं तथाविधम् ॥२०**

हुयेकी न्याई होवैहैं; यातैं तुल्य होनेतैं प्राज्ञ औ मकारकी एकता है. अब तिनकी एकताके ज्ञाताकूं जो फल होवैहै, ताकूं कहैहैं:- जो ऐसैं जानताहै; सो निश्चयकरि-इस सर्व जगत्-कूं यथार्थ जानताहै; औ जगत्का कारणरूप होवैहै। [११८]ईहां बीचके (अवांतर) फलका जो कथन है, सो मुख्य साधनकी स्तुतिअर्थ है ॥ ११ ॥

टीकाः-[११९]ईहां ये गौडपादाचार्यके किये श्लोकरूप मंत्र हैंः- विश्वके अ-कार मात्रा-पनैके कहनेकी इच्छाके हुये, कहिये विश्वका अकारमात्रापना जब कहनेकूं इच्छित होवै; तब उक्तन्यायसैं आदिपनैकी तुल्यता श्रेष्ठ देखियेहै। औ मात्राके निश्चयविषै कहिये विश्वका अकारमात्रापना (मात्राकी विश्वरूपता) जब निश्चय करियेहै, तब व्याप्तिकी तुल्यताहीं श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥

टीकाः-तैजसके उ-कार मात्रा-पनैके ज्ञानविषै, कहिये तैजसके उकारमात्रापनैके कहनेकी इच्छाके हुये, उत्कर्षरूप तुल्यता स्पष्ट देखियेहैः औ मात्राके निश्चयविषै तिसीप्रकारका उभयपना (द्वितीयपना) स्पष्टहीं है ॥ २० ॥

---

११८ तहां एकताके ज्ञानविषै फलके भेदके कथनतैं उपासनाका भेद होवैगा ? यह आशंकाकरिके, साधनोविषै फलके भेदकी श्रुतिके अर्थवाद (स्तावक) पनैकूं अंगीकारकरिके कहैहैं।

११९ पादनका औ मात्राका जो निमित्तसहित एकपना च्यारी मंत्रनकरि श्रुतिनैं कहा, तिसविषै पूर्वकी न्याईहीं श्रुति अर्थके वर्णनरूप गौडपादाचार्यनके किये षट् श्लोकनकूं प्रकट करैहैं।

मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटं ।
मात्रासम्प्रतिपत्तौ तु लयसामान्यमेव च ॥ २१ ॥
त्रिषु धामसु यत्तुल्यं सामान्यं वेत्ति निश्चितः ।
सम्पूज्यः सर्व्वभूतानां वन्द्यश्चैष महामुनिः २२
अकारो जयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम् ।
मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः ॥२३॥

टीकाः–प्राज्ञके मकारभावविषै मान (परिमाण)की तुल्यता श्रेष्ठ है । औ मात्राके निश्चयविषै तो लयकी तुल्यताहीं श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

टीकाः–उक्त प्रकारके जाग्रत्, स्वप्न औ सुषुप्तिरूप तीनस्थानोविषै जो तुल्य समता कही है, ताकूं यह समता इसीप्रकारहीं है; ऐसैं निश्चयकूं पायाहुया जो जानता है; यह लोकविषै सर्व भूतनकूं सम्यक् पूजने योग्य, औ वंदन करने योग्य महामुनि (ब्रह्मवेत्ता) होवैहै ॥ २२ ॥

टीकाः–उक्त प्रकारकी[१२०] तुल्यतासैं आत्माके पादनकी मात्राके साथि एकताकूं करिके उक्त प्रकारके ॐकारकूं जानिके जो ध्यावता है, ताकूं अकार जो है सो विश्वके तांई प्राप्त करैहै; कहिये अकाररूप आश्रयवाले (अकारप्रधान) ॐकारका जाननेवाला पुरुष वैश्वानर (विराट्रूप) होवैहै । तैसैं उकार बी तैजसके तांई प्राप्त करैहै; कहिये उकाररूप आश्रयवाले ॐकारका जाननेवाला हिरण्यगर्भ होवैहै । औ फेर मकार बी प्राज्ञके तांई प्राप्त करैहै; कहिये मकाररूप आश्रयवाले ॐकारका जान-

१२० पूर्व उक्त पाद औ मात्राके तुल्यताके ज्ञानवाले ध्याननिष्ठके फलके विभागकूं दिखावै हैं ।

उपनिषद् ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

नेवाला अव्याकृतरूप होवैहै। औ मकारके[१२१] क्षीण भये बीजभावके क्षयतैं अमात्र-रूप ॐकार-विषै कहीं बी गति नहीं है ॥ २३ ॥

टीकाः—जिसकी[१२२] मात्रा नहीं है, ऐसा जो ॐकार; सो अमात्र है; औ चतुर्थ है; कहिये, तुरीयरूप हुया केवल आत्माहीं है; औ वाचक वाच्यरूप वाणी औ मनकूं मूलाज्ञानके क्षयकरि क्षीण होनेतैं व्यवहार करनेकूं अयोग्य है; औ प्रपंचके उपशमवाला

---

१२१ अब जहां तो पादनका औ मात्राका विभाग नहीं है, तिस ॐकाररूप तुरीय आत्माविषै स्थित भये पुरुषकूं प्राप्त होनेवाला औ प्राप्त होनेयोग्य औ प्राप्ति, इन तीनका विभाग नहीं है; ऐसैं कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—स्थूल प्रपंच, जाग्रत् अवस्था, औ विश्व अभिमानी; ये तीन आकारमात्रारूप हैं। सूक्ष्म प्रपंच, स्वप्न अवस्था, औ तैजस अभिमानी; ये तीन उकारमात्रारूप हैं। स्थूल सूक्ष्मरूप दोनूं प्रपंचनका कारण, सुषुप्ति अवस्था, औ प्राज्ञ अभिमानी; ये तीन मकार मात्रारूप हैं। तिनमैं बी पूर्व पूर्व उत्तर उत्तरके भावकूं पावता है। सो ऐसैं सर्व ॐकारमात्र है, इस रीतिसैं ध्यान करिके स्थित भये औ जो इतने कालपर्यंत ॐ इस रूपसैं जान्या वस्तु है, सो शुद्ध ब्रह्महीं है; ऐसैं आचार्यके उपदेशसैं उत्पन्न भये ज्ञानकरि मकारपनैकरि ग्रहण किये पूर्व उक्त सर्व विभागनके निमित्त, अज्ञानके क्षय भये, शुद्ध ब्रह्मविषैहीं स्थित भये पुरुषकी कहूंबी गति (गमन) नहीं संभवै है; काहेतैं, देश आदिकके किये परिच्छेदके अभावतैं व्यापक होनेतैं।

१२२ ॐकारका स्फुरणरूप जो प्रत्यक्चैतन्य है, सो तीन मात्रावाले अध्यस्त ॐकारके साथि तादात्म्यतैं ॐकार कहिये है। ताकी "अमात्र है" इत्यादिरूप इस १२ संख्यावाले इस श्रुतिके मंत्रकरि परब्रह्मके साथि एकता कहनेकूं इच्छित है; ताकूं प्रकट करिके व्याख्यान करैहैं।

गौडपादीय श्लोकाः ॥

ओङ्कारं पादशो विद्यात् पादा मात्रा न संशयः ॥ ओंकारं पादशो ज्ञात्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ २४ ॥

है औ शिव (कल्याणरूप) है, औ अद्वैत है । ऐसैं उक्त प्रकारके ज्ञानवाले पुरुषकरि उच्चारण कियाहुया ॐकार तीन मात्रावाला औ तीनपादवाला आत्माहीं है । जो ऐसैं जानता है, जो ऐसैं जानता है; सो अपनेहीं आत्मासैं अपने परमार्थरूप आत्माके तांई प्रवेश करता है । कहिये, सुषुप्तिनामक तीसरे स्थानरूप बीजभावकूं दग्ध करिके परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पुरुषनके आत्माके तांई प्रवेशकूं पायाहुया फेर जन्मकूं पावता नहीं; काहेतैं, तुरीयकूं अबीजरूप होनेतैं । जैसैं रज्जु औ सर्पके विवेकके भये रज्जुविषै प्रवेशकूं पाया जो सर्प, सो फेर तिनके विवेकी पुरुषनकूं भ्रांतिज्ञानके संस्कारतैं पूर्वकी न्यांई नहीं होवैहै; ऐसैं इहांबी जानना । साधकभावकूं प्राप्त भये औ सत्मार्गमैं वर्तनेवाले औ मात्रा अरु पादनकी निश्चित तुल्यताके जाननेवाले जे मंद अरु मध्यमबुद्धिवाले सन्यासी हैं, तिनकूं तो यथार्थ उपासना किया ॐकार ब्रह्मकी प्राप्ति (क्रममुक्ति) अर्थ आश्रय होवैहै । तैसैं आगे कहियेगाः—"तीनप्रकारके हीन आश्रम हैं" इत्यादि वाक्यसैं ॥ १२ ॥

इति श्री मांडूक्योपनिषन्मूलमंत्र भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ६ ॥

टीकाः—[१२३]पूर्वकी न्यांई इहां ये श्लोक होवैहैंः—उक्त प्रका-

---

१२३ जैसैं पूर्व गौडपादाचार्यनैं श्रुति अर्थके प्रकाशक श्लोक रचे हैं, तैसैं पीछे बी आचार्यके किये श्लोक श्रुति अर्थविषै ऐसैं संभवै हैं; यह कहैहैं ।

युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम् ।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥ २५ ॥
प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः ।
अपूर्वोऽनन्तरो बाह्यो न परः प्रणवोऽव्ययः २६

रकी तुल्यतासैं पादहीं मात्रा हैं; औ मात्रा पाद हैं; यामैं संशय नहीं, तातैं ॐकारकूं पादनसैं जानना । ॐकारकूं पादनसैं जानिके; कहिये, ऐसैं ॐकारके जानेहुये दृष्ट अर्थरूप वा अदृष्ट अर्थरूप कछुक प्रयोजन-कूं वी चिंतन करना नहीं; काहेतैं कृतार्थ होनेतैं ॥ २४ ॥

टीकाः–[१२४]जातैं ॐकार निर्भयरूप ब्रह्म है, यातैं व्याख्यान किये परमार्थरूप ॐकारविषै चित्तकूं जोडना । ॐकारविषै सदा जुडेहुये पुरुष-कूं कहींवी भय नहीं है; काहेतैं "विद्वान् किसीतैं बी भयकूं पावता नहीं" इस श्रुतितैं ॥ २५ ॥

टीकाः–[१२५]ॐकारहीं अपरब्रह्म है औ ॐकार परब्रह्म कहा है । [१२६]औ परमार्थतैं मात्रा औ पादनके क्षीण भये यह ॐकारहीं परमात्मा ब्रह्म है । तातैं याका पूर्व (कारण) नहीं है, यातैं अ-

---

१२४ ॐकारके ध्यानविषै कुशल पुरुषकूं सर्व द्वैतके अपवाद करनेवाले ॐकारके ज्ञानसैंहीं कृतार्थता होवैहै, ऐसैं कहा। अब तिस ॐकारके ज्ञानसैं रहित औ परके उपदशमात्रकूं आश्रय करनेवाले पुरुषकूं ध्यानकी कर्तव्यता कहैहैं ।

१२५ ॐकार जो है, सो परब्रह्म औ अपरब्रह्म रूपसैं क्रमकरि मध्यम औ मंद अधिकारीनके ध्यानकी योग्यताकूं पावता है; ऐसैं श्लोकके पूर्वार्द्धका व्याख्यान करैहैं ।

१२६ उत्तम अधिकारीकूं तो सर्व भेदसैं रहित एकरस प्रत्यगात्मारूप जो ब्रह्म है, तिसरूपकरि ॐकार सम्यक् ज्ञानकरि पावनेकूं योग्य होवैहै; ऐसैं श्लोकके उत्तरार्द्धका विभाग करैहैं ।

सर्व्वस्य प्रणवो ह्यादिर्मध्यमान्तस्तथैव च ।
एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा व्यश्नुते तदनन्तरम् ॥२७॥
प्रणवं हीश्वरं विद्यात्सर्व्वस्य हृदि संस्थितम् ।
सर्व्वव्यापिनमोंकारं मत्वा धीरो न शोचति२८॥
अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ।
ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः॥२९॥

पूर्व है । औ याकूं भिन्न जातिवाला कछुबी अंतर नहीं है, यातैं अनंतर है । तैसैं यातैं बाहिर अन्य वस्तु नहीं है, यातैं अबाह्य है । औ याकूं अपर (कार्य) नहीं है। यातैं अनपर है। औ याका व्यय (नाश) नहीं होवैहै, यातैं अव्यय है । "बाहिर भीतरसहित है औ अजन्मा है" "सैंधवघनकी न्याईं है" यह अर्थ है ॥२६॥

टीकाः—जैसैं मायाका हस्ती, रज्जुसर्प, मृगजल औ स्वप्न आदिक पदार्थनका आदि मध्य औ अंत मायावी आदिक अधिष्ठान हैं, तैसैं मिथ्या उत्पन्न भये आकाश आदिक सर्व प्रपंच-काहीं आदि मध्य औ तैसैंहीं अंत ॐकार है । ऐसैंहीं मायावी आदिकके स्थानी ॐकार-रूप आत्मा-कूं जानिके तिसके अनंतर (तिसीहीं क्षणतैं) ता परमार्थवस्तुके आत्मभावकूं पावता है ॥२७॥

टीकाः—सर्व प्राणीनके समूह-के सरणरूप वृत्तिके आश्रय हृदयविषै स्थित ईश्वररूप ॐकारकूं आकाशकी न्याईं सर्व-व्यापी जानना । बुद्धिमान् पुरुष, ॐकार-रूप आत्मा-कूं असंसारी मानिके शोककूं करता नहीं; "काहेतैं, आत्माके अज्ञानरूप शोकके निमित्तके अभावतैं;" औ "आत्मवेत्ता शोककूं तरता है" इस श्रुतितैं ॥ २८ ॥

टीकाः—[127]अमात्र (तुरीय पादरूप) है औ जिसकरि ॐका-

---

१२७ अब तुरीयभावकूं प्राप्त भये ॐकारकूं जो जानता है, ताकी स्तुति करैहैं ।

अथ वैतथ्याख्यं द्वितीयं प्रकरणम् ॥ २ ॥

प्रपंचमिथ्यात्वनिरूपणं

वैतथ्यं सर्व्वभावानां स्वप्न आहुर्म्मनीषिणः।
अन्तःस्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना ॥ १ ॥

रका परिमाण करिये ऐसा जो परिच्छेद, सो मात्रा कहिये है। सो मात्रा है अनंत जिसकी; ऐसा जो ॐकार, सो अनंतमात्र है; कहिये याका इतनेपना परिच्छेद करनेकूं अशक्य है। औ द्वैतका उपशमरूप है, औ सर्व द्वैतका उपशमरूप होनेतैंहीं शिवरूप है। इसप्रकार व्याख्यान किया जो ॐकार, सो जिसनैं जान्या है, सो परमार्थतत्त्वके मनन करनेतैं मुनि है; दूसरा शास्त्रका वेत्ता जन बी मुनि नहीं ॥ २९ ॥

इति श्री मांडूक्योपनिषत्सहित गौडपादीय कारिकायां प्रथमाऽऽगमप्रकरण भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

अथ गौडपादाचार्यकृत कारिकायां वैतथ्याख्य द्वितीय प्रकरण भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ २ ॥

टीकाः–"[१२८]जानेहुये द्वैत नहीं है" इस पचीसवें श्लोकविषै, "एकहीं अद्वितीय है" इत्यादि श्रुतिनतैं; जो द्वैतका मिथ्यापना पूर्व कहा, सो आगममात्र (श्रुतिकी प्रधानतासैं अनुगत) है, युक्तितैं सिद्ध नहीं। तिस शास्त्रसैं जानेहुये अर्थविषै युक्तिकी प्रधानतासैं बी सो द्वैतका मिथ्यापना जाननेकूं शक्य (योग्य) है; यातैं यह द्वितीय

१२८ प्रथम प्रकरणविषै आगम (श्रुति)की मुख्यताकरि अद्वैतकूं प्रतिपादन करनेवाले आचार्यनैं ताके विरोधि द्वैतका मिथ्यापना अर्थतैं कहा। अब तिस द्वैतका मिथ्यापना युक्तिकी मुख्यतासैं बी जाननेकूं शक्य है; ऐसैं दिखावनेवास्ते द्वितीयप्रकरणकूं प्रकट करते हुये, आदिविषै प्रपंचके मिथ्यापनैमैं स्वप्नके दृष्टांतकी सिद्धि अर्थ तिस स्वप्नके मिथ्यापनैविषै युक्तिसहित वृद्धपुरुषनकी संमतिकूं कहैहैं।

**अदीर्घत्वाच्च कालस्य गत्वा देशान्न पश्यति ।
प्रतिबुद्धश्च वै सर्व्वस्तस्मिन् देशे न विद्यते ॥ २ ॥**

प्रकरण आरंभ करियेहैः—प्रमाणोंविषै कुशल जे पंडित हैं, वे स्वप्नविषै अनुभव किये सर्व बाहिरके (घटादि) औ भीतरके (सुखादिक) पदार्थनके असत्यपनैकूं कहते हैं। तिनके असत्यपनैविषै हेतु कहैहैंः—सर्व पदार्थनकूं शरीरके मध्यरूप स्थानवाले होनेतैं। जातैं स्वप्नविषै पर्वत औ हस्ती आदिक पदार्थ शरीरके भीतरहीं प्रतीत होवैहैं, शरीरतैं बाहिर नहीं; तातैं वे मिथ्या होनेकूं योग्य हैं। ननु, अंतर्गृह आदिकके भीतर प्रतीयमान घटादिकनसैं यह हेतु व्यभिचारी होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैंः— शरीरके मध्य आवृत (संकुचित) स्थानवाले होनेरूप हेतुसैं। जातैं शरीरके भीतर आवृत जे देहके भीतर नाडीयां हैं, तिनविषै पर्वत औ हस्ती आदिकनका सद्भाव नहीं है। जब देहविषै पर्वत आदिक नहीं हैं, तब देहके अंतर्गत अतिसूक्ष्म नाडीनविषै पर्वत आदिक कहांसैं होवैंगे? यातैं स्वप्नके पदार्थ योग्य देशसैं रहित होनेतैं, रज्जुसर्प आदिककी न्यांई मिथ्या होनेकूं योग्य हैं ॥ १ ॥

टीकाः—ननु, स्वप्नविषै देखने योग्य पदार्थनका शरीरके भीतर आवृत (संकोचित) स्थान है, यह कथन असिद्ध है; जातैं पूर्व देशनविषै सोया हुया पुरुष उत्तर देशनविषै स्वप्नोंकूं देखते हुयेकी न्यांई देखिये है? यह आशंका करिके कहैहैंः—देहतैं बाहिर अन्यदेशके तांई जायके स्वप्नोंकूं नहीं देखता है, किंतु देहके भीतरहीं देखता है। जातैं सोया हुया पुरुष, तत्कालहीं देहके देशतैं शत योजनके अंतरायवाले औ मासमात्रके कालसैं प्राप्त होनेयोग्य देशविषै स्वप्नोंकूं देखते हुयेकी न्यांई देखिये है, औ ता देशकी प्राप्तिके औ तातैं आगमनके योग्य दीर्घकाल नहीं है; यातैं कालकी अदीर्घतातैं स्वप्नका द्रष्टा अन्य देशनके तांई जायके स्वप्नोंकूं

अभावश्च रथादीनां श्रूयते न्यायपूर्व्वकम् ।
वैतथ्यं तेन वै प्राप्तं स्वप्न आहुः प्रकाशितम् ॥ ३ ॥

नहीं देखता है ॥ किंवा प्रबोधकूं पायाहुया सर्व स्वप्नका द्रष्टा निश्चयकरि तिस स्वप्न दर्शनके देशविषै विद्यमान नहीं है । जब स्वप्नविषै अन्यदेशके तांई जावै, तब जा देशविषै स्वप्नोंकूं देखे, ताही देशविषै प्रबोध (जागरण)कूं पावैगा; ऐसैं नहीं होवैहै । किंवा, रात्रिविषै[१२९] सोया हुया पुरुष दिनकी न्यांई पदार्थनकूं देखता है, औ बहुतनके साथि मिलता है, औ जिनसैं मिल्या होवैहै तिनकरि जागरण कालविषै पहिचान्या चाहिये; औ नहीं पहिचान्या जावै है । जब पहिचान्या होवै, तब "आज हम तेरेकूं तहां देखते भये," ऐसैं तिन पहिचानवालेकूं कहना चाहिये; परंतु ऐसैं कोई कहते नहीं । तातैं स्वप्नविषै अन्य देशके तांई जाता नहीं॥२॥

टीकाः—इस कहनेके हेतुतैं बी स्वप्नविषै देखने योग्य पदार्थ मिथ्या हैं । जातैं स्वप्नविषै देखने योग्य रथ आदिकनका अभाव, "तहां रथ नहीं है" इस श्रुतिविषै युक्तिपूर्वक सुनिये है । यातैं तिस शरीरके मध्य नाडीरूप स्थानविषै संकोचकूं प्राप्त होने आदिक हेतु-सैं स्वप्नविषै प्राप्त भयाहीं मिथ्यापना, ताकी अनुवाद करनेवाली औ स्वप्नविषै आत्माके स्वयंज्योतिपनेके प्रतिपाद-

---

१२९ शरीरके भीतरहीं स्वप्नका दर्शन होवैहै, ऐसैं सिद्ध हुये योग्य कालकरि रहित होनेतैं स्वप्नका मिथ्यापना है; ऐसैं कथन किये अर्थका वर्णन करैहैं । इहां यह अर्थ हैः—यद्यपि रात्रिविषै निद्राकूं पाया है, तथापि दिनमैं पदार्थनकूं देखते हुयेकी न्यांई स्थित होवैहै; औ सोयाहुया नेत्र आदिक इंद्रियनके संकोचकूं प्राप्त भया है, तौबी विषयनकूं देखता है; औ सोया हुया बी विचरता है । यद्यपि सहकारीसैं रहित (अकेला) सोया है, तथापि बहुतनके साथि स्वप्नके पदार्थनकूं देखता है, तातैं योग्य कालके औ इंद्रियके औ सहकारिके अभावके हुये बी स्वप्नके देखनेतैं स्वप्नविषै मिथ्यापना सिद्ध भया ।

अन्तस्थानात्तु भेदानां तस्माज्जागरिते स्मृतम् ।
यथा तत्र तथा स्वप्ने संवृतत्वेन भिद्यते ॥ ४ ॥
स्वप्नजागरिते स्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः ।
भेदानां हि समत्वेन प्रसिद्धेनैव हेतुना ॥ ५ ॥

नविषै तत्पर जो यह श्रुति है; तानैं प्रकाश किया है, ऐसैं ब्रह्मवेत्ता कहते हैं ॥ ३ ॥

टीकाः–जैसैं[130] तिस स्वप्नविषै है, तैसैं जाग्रत्‌विषै बी है। तातैं जाग्रतविषै तैसैं जान्या है। परंतु स्वप्नविषै जाग्रत्‌के पदार्थनसैं भेदकूं प्राप्त भये पदार्थन-कूं शरीरके मध्यरूप स्थानवाले होनेतैं औ संकोचकूं प्राप्त होनेकरि जाग्रत्‌तैं स्वप्न, भेदकूं पावता है ॥ याका यह भावार्थ है.—जाग्रत्‌विषै दृश्य पदार्थनका मिथ्यापना है; यह प्रतिज्ञा है। दृश्य होनेतैं; यह हेतु है। स्वप्नविषै दृश्य पदार्थनकी न्यांई; यह दृष्टांत है। जैसैं तिस स्वप्नविषै दृश्य पदार्थनका मिथ्यापना है, तैसैं जाग्रत्‌विषै बी दृश्यपना समान है; यह हेतुका उपनय है। तातैं जाग्रत्‌विषै बी मिथ्यापना जान्या है, यह निगमन है। शरीरके मध्यरूप स्थानवाले होनेतैं औ संकोचकूं प्राप्त होनेकरि स्वप्नविषै दृश्य पदार्थनका जाग्रत्‌के दृश्य पदार्थनतैं भेद है, औ दृश्यपना अरु मिथ्यापना स्वप्न अरु जाग्रत् दोनूंविषै समान है ॥ ४ ॥

टीकाः-भेदकूं प्राप्त भये जाग्रत् औ स्वप्नके पदार्थन-कूं ग्राह्य औ ग्राहक होनेकरि दृश्यतारूप हेतुसैं प्रसिद्ध समानताकरिहीं मनीषी जे विवेकी जन, वे स्वप्न औ जाग्रत इन दोनूं स्थानोकूं एकहीं कहते हैं।[131] ईहां यह पूर्व सिद्ध प्रमाणकाहीं फल कहा॥५॥

---

१३० उक्त रीतिसैं स्वप्नरूप दृष्टांतके सिद्ध भये फलित अर्थरूप अनुमानकूं कहैहैं।

१३१ जाग्रत् औ स्वप्नविषै वर्तमान परस्पर भेदवाले पदार्थनका ग्रा-

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ।
वितथैःसदृशाःसन्तोऽवितथा इव लक्षिताः ॥ ६॥
सप्रयोजनता तेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते ।
तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः॥७॥

टीकाः—भेदकूं प्राप्त भये (परस्पर विलक्षण) जाग्रत्‌विषै दृश्य पदार्थनके आदि औ अंतविषै अभावतैं । इस कहनेके हेतुतैं बी तिनका मिथ्यापना हैः—जो मृगतृष्णा आदिक वस्तु आदिविषै औ अंतविषै नहीं है, सो वर्तमान (मध्य)-विषै बी नहीं है; यह लोकविषै निश्चित है । तैसैं ये भेदकूं प्राप्त भये जाग्रत्‌के दृश्य पदार्थ, आदि अंतविषै अभावतैं मृगतृष्णाआदिक मिथ्या पदार्थन-सैं तुल्य हुये (तुल्य होनेतैं) मिथ्याहीं हैं; तथापि वे अनात्मज्ञानी मूढनकरि सत्यकी न्यांई जाने हैं ॥ ६ ॥

टीकाः—ननु स्वप्नके दृश्यपदार्थनकी न्यांई जाग्रत्‌के दृश्यपदार्थनकूं बी असत्‌पना है, ऐसैं जे कहा; सो अयुक्त है । जातैं जाग्रत्‌के दृश्य जो अन्न पान औ वाहन आदिक, वे क्षुधा औ तृषा आदिककी निवृत्तिकूं औ गमन आगमन आदिक कार्यकूं करतेहुये प्रयोजनसहित देखे हैं, औ स्वप्नके दृश्यनकूं तो सो प्रयोजन सहितपना नहीं है; तातैं स्वप्नके दृश्यनकी न्यांई जाग्रत्‌के दृश्यनका असत्‌पना मनोरथमात्र है ? सो कथन बनै नहींः—काहेतैं, जातैं जाग्रत्‌विषै तिन अन्नपान आदिकन-की जो प्रयोजनसहितता देखी है, सो

श्यपना औ ग्राहकपना समान है, तिस दृश्य होनेरूप हेतुकरि तिनका मिथ्यापनैकरि समभाव प्रसिद्धहीं है । तिस प्रसिद्ध समभावरूप हेतुकरि विवेकी पुरुषनकूं जाग्रत् औ स्वप्नरूप दोनूं स्थानोकी एकरूपता वांछित है; ऐसैं जो पूर्व अनुमान नामक प्रमाण सिद्ध किया, ताहीका दोनूं स्थानोंकी एकतारूप फल इस श्लोकसैं कहा है; ऐसैं श्लोककी योजनासैं दिखावै हैं ।

**अपूर्व्वं स्थानिधर्म्मो हि यथा स्वर्गनिवासिनाम्।
तानयं प्रेक्षते गत्वा यदैवेह सुशिक्षितः ॥ ८ ॥**

स्वप्नविषै विरोधकूं पावती है। जैसैं स्वप्नविषै भोजनकरिके औ पानकरिके अतृप्त होयके उथ्थानकूं पायाहुया पुरुष आपकूं क्षुधा आदिककरि युक्त मानताहै, तैसैं जाग्रत्विषै बी भोजनकरिके औ पानकरिके तृप्त औ तृषारहित होयके सोयाहुया पुरुष, तत्काल आपकूं क्षुधा औ तृषा आदिककरि पीडित, दिनरात्रविषै जलपान औ भोजन करनेसैं रहित, मानताहै। तातैं जाग्रत्के दृश्यनका स्वप्नविषै बी विरोध देख्याहै। यातैं तिन जाग्रत्के दृश्यनका बी असत्पना स्वप्नके दृश्यनकी न्याईं शंका करनेकूं अयोग्य है, ऐसैं हम मानतेहैं। तातैं आदि औ अंतकरि युक्तपना जाग्रत् औ स्वप्न दोनूंविषै समान है; तिस आदिअंतवाले होनेकरि वे जाग्रत्के दृश्य, निश्चयकरि मिथ्याहीं जानेहैं ॥ ७ ॥

टीकाः—ननु स्वप्न औ जाग्रत्के पदार्थनकूं तुल्य होनेतैं जाग्रत्के पदार्थनका जो असत्पना कहा, सो असंगत है; काहेतैं, दृष्टांतकूं असिद्ध होनेतैं। कैसैंकि जाग्रत्विषै देखेहुये ये पदार्थहीं स्वप्नविषै नहीं देखियेहैं, किंतु स्वप्नविषै अपूर्वकूं देखताहै, जातैं च्यारीदंतवाले हस्तीके तांईं आरूढ औ अष्टभुजावाला आपकूं मानताहै, औ अन्य तीननेत्रवालेपनैआदिककूं बी मानता है। इसप्रकारके अपूर्वकूं स्वप्नविषै देखताहै; तातैं स्वप्न, अन्य असत्के समान नहीं है; ऐसैं सत्रूपहीं है। यातैं जाग्रत्के मिथ्यापनैके साधनेविषै स्वप्नका दृष्टांत असिद्ध है। तातैं स्वप्नकी न्याईं जाग्रत्कूं असत्पना जो कहा, सो अयुक्त है? यह कथन बनै नहींः— काहेतैं, हे वादी! स्वप्नविषै देखेहुये पदार्थकूं अपूर्व जो तूं मानताहैं, सो तो जड होनेकरि आपतैं सिद्ध नहीं है; किंतु सो अपूर्व, स्वप्नके द्रष्टारूप स्वप्न-

स्वप्नवृत्तावपि त्वन्तश्चेतसा कल्पितन्त्वसत् ।
बहिश्चेतोगृहीतं सदृतं वैतथ्यमेतयोः ॥ ९ ॥

स्थानवाले स्थानींकाहीं धर्महै । जैसैं स्वर्गके निवासी इंद्र-आदिक-नका सहस्राक्षपना आदिक धर्म है, तैसैं यह अपूर्व स्वप्न-के द्रष्टाका धर्म है; द्रष्टाके स्वरूपकी न्याई स्वतः सिद्ध नहीं । तिन इसप्रकारके अपने चित्तके विकल्परूप अपूर्व पदार्थन-कूं यह स्थानी स्वप्नका द्रष्टा, स्वप्नस्थानके तांई जायके देखताहै । जैसैंहीं इहां लोकविषै सम्यक् सीख्या जो देशांतरका मार्ग है, तिस मार्गसैं पुरुष देशांतरकूं जायके तिन पदार्थनकूं देखता है ताकी न्याई । तातैं जैसैं रज्जुसर्प औ मृगतृष्णा आदिक स्थानीके धर्मनका असत्पना है; ऐसैं स्वप्नविषै देखेहुये अपूर्व-पदार्थनकूं स्थानीका धर्मपनाहीं है, तातैं असत्पना है । यातैं स्वप्नके दृष्टांतका असिद्धपना नहीं है ॥ ८ ॥

टीकाः—[१३२]स्वप्नेदृष्टांतके अपूर्वपनैकी शंकाकूं निषेध करिके फेर जाग्रत्के पदार्थनकी स्वप्नतुल्यताकूं वर्णन करतेहुये कहैहैंः—स्वप्नवृत्ति रूप स्थान-विषै बी भीतर तो चित्तसैं मनोरथकरि संकल्प किया वस्तु तो असत् है; काहतैं अन्य संकल्पके समकालहीं ताके अ-दर्शनतैं । औ तिसीहीं स्वप्नविषै बाहिर चित्तसैं चक्षु आदिकद्वारा ग्रहण किया घटादिक वस्तु सत् है । असत्य है, ऐसैं निश्चय किये हुये बी सत् औ असत्का विभाग देख्या है । इन भीतर औ बाहिर चित्तसैं कल्पना किये दोनूं वस्तुनका मिथ्यापना हीं देख्या है ॥ ९ ॥

---

१३२ जाग्रत्विषै देखनेयोग्य पदार्थनका जो मिथ्यापना है, सो तिन-विषै सत् औ असत्के विभागकी प्रतीतिसैं विरुद्ध है ? यह आशंकाकरिके, दृष्टांतसैं समाधान करैहैं ।

**जाग्रद्वृत्तावपि त्वन्तश्चेतसा कल्पितन्त्वसत् ।
बहिश्चेतोगृहीतं सद्युक्तं वैतथ्यमेतयोः ॥ १० ॥
उभयोरपि वैतथ्यं भेदानां स्थानयोर्यदि ।
क एतान् बुद्ध्यते भेदान् को वै तेषां विकल्पकः ११**

टीकाः—जाग्रत्की वृत्ति—रूप स्थान—विषै बी भीतर तो चित्तसैं संकल्प किया वस्तु तो असत् है, औ तिसीहीं जाग्रत्विषै बाहिर चित्तसैं चक्षुआदिक द्वारा ग्रहण किया घटादिक वस्तु सत् है । असत्य है, ऐसैं निश्चय किये हुये बी सत् असत्का विभाग देख्या है । इन सत् औ असत्—का मिथ्यापना युक्त है; काहेतैं भीतर औ बाहिर चित्तसैं कल्पितपनैकी तुल्यता है, यातैं ॥ १० ॥

टीकाः—अब सर्वके मिथ्यापनैके हुये प्रमाता औ प्रमाण आदिक व्यवहारके असंभवसैं, पूर्ववादी विशेष आशंकाकूं करता हुया कहैहैः— जब जाग्रत् औ स्वप्न, इन दोनूं स्थानोविषै पदार्थनके भेदनका मिथ्यापना है, तब इन भीतर औ बाहिर चित्तसैं कल्पना किये पदार्थनके भेदनकूं कौन प्रमाता जानेगा, औ तिनका निश्चय-करि कौन विकल्पक (कर्ता) होवैगा ? अभिप्राय यह, जो तिनका स्मृति[133] औ अनुभवविषै आश्रय कौन होवैगा ? [134] जबै तिनका

---

१३३ इहां यह अर्थ हैः—कार्यका कर्ता जो है, सो पूर्व अनुभव किये कार्यकूं स्मरणकरिके ताके समान जातिवाले अन्य कार्यनकूं रचताहै; ऐसैं स्मृति औ अनुभवके आश्रयके आक्षेपसैं कर्ताका आक्षेप कहनेकूं इच्छित है । तैसैं हुये सर्वके मिथ्यापनैके सिद्ध भये कर्ता आदिकके व्यवहारका असंभव निवारण करनेकूं अशक्य होवैगा ।

१३४ जो अध्यात्मरूप प्रमाता (जीव) है, औ जो अधिदैवरूप जगत्का कर्ता ईश्वर है; वे दोनूं बी मिथ्या हैं; ऐसैं अंगीकार कियेतैं प्रमाता आदिकका असत्पना होवैगा ? यह आशंका करिके पूर्ववादी कहैहै । इहां यह अर्थ हैः— जब प्रमाता वा कर्ता तुमकरि नहीं अंगीकार करियेहै, तब

कल्पयत्यात्मनाऽऽत्मानमात्मदेहः स्वमायया ।
स एव बुद्ध्यते भेदानिति वेदान्तनिश्चयः ॥१२॥
विकरोत्यपरान् भावानन्तश्चित्ते व्यवस्थितान् ।
नियतांश्च बहिश्चित्त एवं कल्पयते प्रभुः ॥ १३ ॥

कोई वी प्रमाता वा कर्ता नहीं मानोगे, तब तुमकूं निरात्मवाद (शून्यवाद) इष्ट होवैगा ॥ ११ ॥

टीकाः—जो [१३५] **आत्मा—रूप देव आपविषै अपनी मायासैं आपकरि आपकूं** रज्जु आदिकविषै सर्प आदिककी न्याई आगे कहनेके भेदके आकारवाला **कल्पता है,** औ तैसैं **सोई** तिन **भेदनकूं जानता है; ऐसा वेदांतका निश्चय है।** यातैं अनुभवज्ञान औ स्मृतिज्ञानका आश्रय अन्य नहीं है। औ क्षणिकवादिनकी न्याई अनुभवज्ञान औ स्मृतिज्ञान निराश्रयहीं नहीं है; यह अभिप्राय है ॥ १२ ॥

टीकाः—कौन संकल्प करता हुया किस प्रकारसैं कल्पता है? तहां कहियेहैः—**प्रभु** जो ईश्वर (आत्मा) है, सो बाहिर चित्तवाला हुया बाह्य अपर (लोकप्रसिद्ध) शब्दादिरूप **पदार्थनकूं** औ अन्य (शास्त्र प्रसिद्ध) वासनारूपसैं मायारूप **चित्तके भीतर स्थित** अस्पष्ट पृथिवी आदिक **नियमित** औ बीजली आदिक **अनियमित पदार्थनकूं नाना करैहै।** तैसैं अंतरचित्तवाला हुया मनोरथादि-

---

तुमकूं निरात्मभाव (शून्यपना) वांच्छितहीं होवैगा; परंतु सो देखनेकूं शक्य नहीं है; काहेतैं, आत्माविषै करणकी प्रवृत्तिका अभाव है औ निषेध करनेवालेकूंहीं आत्मारूप होनेतैं।

१३५ अब सिद्धांती, कर्ता औ कार्य आदिककी व्यवस्थाके असंभवकूं दूरी करैहैं।

चित्तकाला हि येऽन्तस्तु द्वयकालाश्च ये बहिः ।
कल्पिता एव ते सर्व्वे विशेषो नान्यहेतुकः १४

रूप आपविषै स्थितपदार्थनकूं [१३६] व्यवहारके योग्य कल्पना करिके फेर व्यवहारकी योग्यता अर्थ ऐसै कल्पता है ॥ १३ ॥

टीकाः—[१३७] ननु, स्वप्नकी न्यांई चित्तकरि कल्पित सर्व जाग्रत्का जगत्

---

१३६ इहां यह अर्थ हैः—बाहिर चित्तवाला हुया आत्मा, बहिर्मुख (बाहिरके व्यवहारके योग्य) पदार्थनकूं कल्पताहै; औ भीतर चित्तवाला हुया तिनतैं भिन्न आपविषै स्थित मनोरथादिरूप व्यवहारके योग्य पदार्थनकूं कल्पिके फेर व्यवहारकी योग्यता अर्थ कल्पताहै। इहां यह कथनकिया होवैहैः—जैसैं लोकविषै कुलाल वा तंतुवाय घटरूप वा पटरूप कार्यके करनेकी इच्छावाला हुया आदिविषै व्यवहारके योग्य व्यक्तिकूं (कार्यके आकारकूं) जानिके वा प्रकट करिके पीछे ताही व्यक्तिकूं बाहिरके नामरूपकरि संपादन करैहै। तैसैंहीं यह आदिकर्ता बी मायारूप अपने चित्तविषै नामरूपकरि अप्रकटरूपसैं स्थित भये स्रजने योग्य पदार्थनकूं प्रथम स्रजनेकी ईच्छा आकारसैं प्रकटकरिके पीछे बाहिर सर्व ज्ञानके साधारण रूपसैं संपादन करैहै। ऐसैं प्रपंचकी कल्पनाविषै क्रमका ज्ञान है॥

१३७ जैसैं स्वप्नविषै देखनेयोग्य सर्व कल्पित वस्तु मिथ्याहीं अंगीकार करियेहै, तैसैं जाग्रत्विषै बी देखने योग्य सर्व वस्तु चित्तकरि भासमान है, इस हेतुकरि कल्पित मिथ्याहींहै। यह अबतलकि निर्द्धार किया नहीं, इसविषै पूर्ववादी हेतुकूं कहैहै। इहां यह अर्थहैः—आत्माकी अविद्याकरि कल्पित चित्तकरि प्रथम चित्तके भीतर रचित, औ तहांहीं वर्तमान मनोरथरूप पदार्थ औ बाहिरके रज्जुसर्पादिक पदार्थ; वे चित्तकरि परिच्छेद (भेद)कूं पावनेकूं योग्य हैं। औ जातैं वे कल्पनाकालमात्रविषै होनेवाले पदार्थ प्रमाज्ञानके विषय होते नहीं, जातैं तिनके साथि मनतैं बाहिर जाग्रत्विषै देखनेयोग्य पदार्थनका विलक्षणपना, औ परस्पर परिच्छेदके पावनेकी योग्यता, औ दोनूं कालकरि परिच्छिन्न होनेकरि प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयता देखियेहै; तातैं जाग्रत्का स्वप्नकी न्यांई मिथ्यापना अयुक्त है।

है, यह अबतलकी निर्धार किया नहीं। जातैं चित्तसैं कल्पित औ चित्तसैं जानने योग्य मनोरथादिरूप पदार्थनसैं बाह्य पदार्थनकी परस्पर जाननेकी योग्यतारूप विलक्षणता है, यातैं जाग्रत्का स्वप्नकी न्याईं मिथ्यापना अयुक्त है? सो शंका युक्त नहीं, ऐसैं मूल श्लोकके अक्षरनसैं उत्तर कहैहैं:-जिनका चित्तके कालसैं भिन्न अन्य परिच्छेद करनेवाला काल नहीं है; ऐसे जे चित्तसैं परिच्छेद करने योग्य (चित्तकी कल्पना कालविषै हीं जानने योग्य) पदार्थ, वे चित्तकालवाले[१३८] कहियेहैं; औ परस्पर परिच्छेद करने योग्य (जानने योग्य) जे पदार्थ हैं, वे दोनूंकालवाले[१३९] कहियेहैं। जैसैं[१४०] देवदत्त गौके दोहन पर्यंत स्थित होवैहै, सो जहांलगि स्थित होवैहै; तहांलगि गौकूं दोहन करैहै; औ जहांलगि गौकूं दोहन करैहै तहांलगि स्थित होवैहै; अरु तितने कालपर्यंत यह है, औ इतने कालपर्यंत सो है, ऐसैं बाह्य पदार्थनकूं परस्पर परिच्छेदकपना है, यातैं वे दोनूं कालवाले कहियेहैं। यातैं जो अन्तरविषै (स्वप्नविषै) तो चित्तकालवाले पदार्थ हैं, औ बाहिर (जाग्रत्विषै) दोनूं कालवाले पदार्थ हैं; वे सर्व कल्पितहीं हैं। बाहिरका

---

१३८ जो मनके भीतर मनोरथरूप पदार्थ हैं, वे चित्तकालवाले होवैहैं; तिनके चित्तकालपनैकूं स्पष्ट करैहैं।

१३९ इहां यह अर्थ है:-जो पदार्थ मनसैं बाहिर देखियेहैं, वे भेदकालवाले हैं। काहेतैं, कालका जे भेद सो कहिये भेदकाल; सो भेदकाल जिनका है, ऐसे जे पदार्थ, वे भेद कालवाले कहियेहैं; इस व्युत्पत्तितैं। तातैं वे पूर्वके अन्यकालकरि औ पीछेके अन्यकालकरि परिच्छेदके पावनेकूं योग्यहैं। औ भिन्नकालसैं परिच्छिन्न होनेकरि "सो यह है" इस आकारवाले प्रत्यक्षज्ञानकी सामग्री सहित संस्कारसैं जन्य प्रत्यभिज्ञाज्ञानके विषय होवैहैं।

१४० जाग्रत्के पदार्थनकी प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयताकूं उदाहरण करि स्पष्ट करैहैं।

अव्यक्ता एव येऽन्तस्तु स्फुटा एव च ये बहिः ।
कल्पिता एव ते सर्वे विशेषस्त्विन्द्रियान्तरे ॥ १५

दोनूंकालकरि युक्तारूप जो विशेष है, सो कल्पितपनैसें भिन्न अन्यहेतुवाला नहीं है; काहेतें कल्पितविषै बी तिसप्रकारके विशेषके संभवतें । तातें इहां जाग्रतविषै बी स्वप्नका दृष्टांत स्पष्ट होवै[१४१]हीं है ॥ १४ ॥

टीका:—जे मनके भीतर भावनारूप होनेतें अस्पष्ट पदार्थ हीं हैं, औ जे मनतें बाहिर प्रतीयमान पदार्थ स्पष्टहीं होवैहैं; वे सर्व मनके स्फुरणमात्ररूप होनेतें कल्पितहीं हैं औ स्पष्टतारूप विशेष-तो भीतर अरु बाहिर इन्द्रिय भेदके हुये (इंद्रियके भेदरूप निमित्तवाला) है, तिसविषै मिथ्यापना वा अमिथ्यापना उपयोगकूं पावता नहीं ॥ याका यह भावार्थ है:—यद्यपि मनके भीतर मनकी वासनामात्रसैं प्रकट भये पदार्थनका अस्पष्टपना है, वा मनतें बाहिर चक्षुआदिक इंद्रियनके भीतर पदार्थनका स्पष्टपना है, यह विशेष है; तथापि यह विशेष, पदार्थनकी सत्यताका किया नहीं है; काहेतें, स्वप्नविषै बी तैसें देखनेतें । किंतु यह विशेष इंद्रियभेदका कियाहीं है, यातें जाग्रत्के पदार्थ बी स्वप्नके पदार्थनकी न्याई कल्पित हीं हैं, यह सिद्ध भया ॥ १५ ॥

---

१४१ याका यह रहस्य है:—जे कल्पनाकालविषै होनेवाले पदार्थ मनके भीतर वर्तते हैं, औ जे प्रत्यभिज्ञा ज्ञानके विषय होनेकरि पूर्व उत्तर कालविषै होनेवाले औ बाहिरहीं व्यवहारके योग्य देखियेहैं, वे सर्व कल्पित हुये मिथ्याहीं होनेकूं योग्य हैं । औ प्रत्यभिज्ञाज्ञानकी विषयतारूप जो विशेष है, सो वस्तुके कल्पितपनैका कियाहै; काहेतें, स्वप्न आदिकके कल्पित वस्तुविषै बी "सो यह है" इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञाज्ञानकी विषयताके देखनेतें ।

जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान् पृथग्विधान् ।
बाह्यानाध्यात्मिकांश्चैव यथाविद्यस्तथास्मृतिः १६

टीका:—ननु, बाहिरके औ भीतरके पदार्थनकी परस्परके निमित्त औ नैमित्तिक होनेकरि कल्पनाविषै क्या कारण है ? तहां कहियेहैः— आत्मा जो है सो सर्वकूं अपनी मायाके वशतैं कल्पताहुया आदिविषै "मैं करताहूं, मेरेकूं सुखदुख है" इस लक्षणवाले **जीवकूं** रज्जुविषै सर्पकी न्याईं श्रुतिउक्तलक्षणवालेंहीं शुद्धआत्माविषै विशिष्टरूपसैं **पूर्व कल्पता है; तिसतैं** तिसके अर्थ होनेकरि क्रियाकारक औ फलके भेदसैं प्राण आदिक **नानाप्रकारके बाहिरके औ भीतरकेहीं पदार्थनकूं** कल्पता है ॥ तिस कल्पनाविषै कौन हेतु है ? तहां कहियेहैः—जो यह आप कल्पित भया जीव, सर्व कल्पनाविषै अधिकारी है; सो **जैसी विद्या** (ज्ञान) **वाला है, तैसी स्मृतिवाला होवैहै** ।[१४२] यातैं हेतुकी कल्पनाके ज्ञानतैं फलका ज्ञान होवैहै, तातैं हेतुके फलकी स्मृति होवैहै, तातैं तिसका ज्ञान औ तिसके अर्थक्रियाकारक औ तिसके फलके भेदके ज्ञान होवैहैं; तिनतैं तिनकी स्मृति होवैहै; औ ता स्मृतितैं फेर तिनके

१४२ इहां यह अर्थ हैः—अन्नपान आदिक उपभोगके होते तृप्ति आदिक होवैहै, औ ताके न होते नहीं होवैहै; इस अन्वय व्यतिरेकरूप युक्तितैं भोजन आदिक हेतु है; ऐसी कल्पनाका विज्ञान उपजे है; तातैं तुष्टि आदिक फल है, ऐसी कल्पनाका विज्ञान होवैहै, तातैं अन्य दिवसविषै कथन किये दोनूं वी हेतु औ फलकी स्मृति होवैहै, तातैं फलके साधनसैं भिन्न जातिवाले अन्य साधनविषै कर्तव्यताका विज्ञान होवैहै, तातैं वांछित तृप्ति आदिक फलकी प्रयोजनताविषै पाक आदिक क्रिया औ ताके कारक तंडुल आदिक औ तिनके फल अन्नकी सिद्धि आदिकके संबंधी विशेष विज्ञान आदिक होवैहै, तातैं हेतु आदिककी स्मृति होवैहै, तातैं तिस साधनका अनुष्ठान होवैहै, तातैं फल होवैहै, इस क्रमकरि परस्पर हेतु हेतुमद्भावसैं कल्पना होवैहै ।

अनिश्चिता यथा रज्जुरन्धकारे विकल्पिता ।
सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्मा विकल्पितः ॥१७॥
निश्चितायां यथा रज्ज्वां विकल्पो विनिवर्त्तते ।
रज्जुरेवेति चाद्वैतं तद्वदात्मविनिश्चयः ॥ १८ ॥

ज्ञान होवैहै, तिन ज्ञानोतैं तिनकी स्मृति होवैहै; औ ता स्मृतितैं फेर तिनके ज्ञान होवैहैं; ऐसैं बाहिरके औ भीतरके पदार्थनकूं परस्पर निमित्त औ नैमित्तिक भावसैं अनेक प्रकार कल्पताहै ॥१६॥

टीकाः—तिस पूर्व श्लोकविषै जीवकी कल्पना सर्वकी कल्पनाका मूल है, ऐसैं कहा । सोइ जीवकी कल्पना किसनिमित्तवाली है, यह अब दृष्टांतसैं प्रतिपादन करैहैंः—जैसैं लोकविषै यह अमुक वस्तु है, ऐसैं अपने स्वरूपसैं अनिश्चित भई जो रज्जु, सो मंद अंधकार विषै क्या सर्प है, वा जलधारा है, वा दंड है ? ऐसैं सर्प औ धारा आदिक भावकरि अनेकप्रकारसैं विकल्पकूं प्राप्त होवैहै । जैसैं स्वरूपसैं निश्चय किये अपने हस्तकी अंगुली आदिकविषै सर्पादिविकल्प नहीं देखियेहैं, तैसैं रज्जुस्वरूपसैं निश्चय किये सन्मुखवर्ति रज्जुरूप वस्तुविषै सर्पादिविकल्प होता नहीं; जातैं होवैहै यातैं पूर्व रज्जुके स्वरूपका अनिश्चियहीं ताका निमित्त है । जैसैं यह दृष्टांत है, तैसैं हेतु औ फल आदिक संसारके धर्मरूप अनर्थनतैं विलक्षण होनेकरि अपने शुद्ध ज्ञानमात्र सत्ता अद्वैत रूपकरि अनिश्चित होनेतैं, जीव औ प्राण आदिक अनंतभावनके भेदनसैं आत्मा विकल्पकूं प्राप्त भयाहै । इसप्रकारका यह सर्व उपनिषदनका सिद्धांत है ॥ १७ ॥

टीकाः—[१४३]जैसैं "रज्जुहीं है," इसप्रकार रज्जुके निश्चित्त

---

१४३ अविद्यासैं रचित जीवकी कल्पना है, ऐसैं अन्वयरूपद्वारसैं कहा, ताहीकूं अब व्यतिरेकरूपद्वारसैं दिखावैहैं ।

प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः ।
मायैषा तस्य देवस्य यथा सम्मोहितः स्वयम् १९

भये ताके अज्ञानकी निवृत्तितैं तातैं उत्पन्न भया सर्पादिरूप विकल्प सर्वथा निवृत्त होवैहै, औ रज्जुमात्र अवशेष रहैहै; तैसैं जब आत्माविषै श्रुतिअनुसार निश्चय प्राप्त होवै, तब आत्माकी अविद्यासैं कल्पित जीव आदिक विकल्पकी निवृत्तितैं अद्वैत हीं आत्मतत्व परिशेष रहैहै । यह श्लोकका अक्षरार्थ है । अब याका भावार्थ कहैहैं:—जैसैं "रज्जुहीं है," ऐसैं निश्चयके भये सर्व विकल्पकी निवृत्तिके हुये रज्जुहीं अद्वैत है; तैसैं "नेति नेति" इस सर्व संसारके धर्मसैं रहित वस्तुके प्रतिपादक शास्त्रसैं जनित ज्ञानरूप सूर्यके प्रकाशका किया जो यह आत्माका निश्चय है, सोई "आत्माहीं यह सर्व है, अपूर्व है, अनपर है, अनंतर है, अबाह्य है, बाहिर भीतरसहित है, अजन्मा है, अजर है, अमर है, अमृत (अरोग) है, अभयहीं है;" ऐसा जो यह आत्माका निश्चय है, सोई अद्वितीय शेष रहैहै; फेर द्वैत सर्वहीं निवृत्त होवैहै ॥ १८ ॥

टीकाः—जब "आत्मा एकहीं है," ऐसा निश्चय है; तब सो इन संसाररूप प्राण आदिक अनंत भावनसैं कैसैं विकल्पकूं पाया है? तहां कहियेहै, श्रवण करः—यह तिस आत्मरूप देवकी माया है । जैसैं मायावी पुरुषकरि प्रेरणाकूं प्राप्त भई जो माया, सो अतिशय निर्मल आकाशकूं पुष्पपत्रसहित वृक्षनसैं पूर्ण हुयेकी न्याई करैहै; तैसैं यह देवकी माया बी है । जैसैं इंद्रजालिककी मायासैं लौकिक जन मोहके परवश हुया देखियेहै, तैसैं जिस मायासैं यह आत्मा आप बी मोहित होवैहै । यातैं मोहरूप कार्यद्वारा आत्माविषैहीं मायाका ज्ञान होवैहै । "मेरी माया दुःखसैं नाश होनेकू योग्य है" इस गीताके वाक्यसैं भगवानूंनैं बी मायाकूं मोहकी हेतुता कहीहै ॥ १९ ॥

प्राण इति प्राणविदो भूतानीति च तद्विदः ।
गुणा इति गुणविदस्तत्त्वानीति च तद्विदः॥२०॥
पादा इति पादविदो विषया इति च तद्विदः ।
लोका इति लोकविदो देवाइति च तद्विदः ॥२१
वेदा इति च वेदविदो यज्ञा इति च तद्विदः।
भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः२२

टीकाः—प्राँण[144] (हिरण्यगर्भ) जगत्का हेतु है, ऐसैं प्राणके वेत्ता हिरण्यगर्भके उपासक औ वैशेषिक आदिक, कल्पतेहैं । औ भूत हैं, ऐसैं तिन भूतन—के वेत्ता चार्वाक कल्पतेहैं । सत्व आदिक गुण हैं, ऐसैं गुणके वेत्ता सांख्य कहतेहैं । आत्मा अविद्या औ शिव, ये तीन तत्त्व जगत्के प्रवर्तक हैं; ऐसैं तिन तत्त्वन—के वेत्ता शैव कल्पतेहैं ॥ २० ॥

टीकाः—विश्व आदिक पाद सर्व व्यवहारके हेतु होवैहैं; ऐसैं पादके वेत्ता कल्पतेहैं । औ शब्द आदिक विषय वारंवार भोगे हुये परमार्थ तत्त्वरूप हैं, ऐसैं तिन विषयन—के वेत्ता वात्स्यायन आदिक काव्यकर्ता कल्पतेहैं । पृथ्वी आदिक तीन—लोक वस्तुरूप हैं, ऐसैं लोकके वेत्ता पौराणिक कल्पते हैं । औ अग्नि अरु इंद्र आदिक देव तिस तिस फलके दाता हैं, ईश्वर नहीं; ऐसैं तिन देवन—के वेत्ता कल्पतेहैं ॥ २१ ॥

टीकाः—औ ऋग्वेद आदिक च्यारी वेद परमार्थरूप हैं; ऐसैं वेदके वेत्ता वेदपाठक कल्पतेहैं । औ ज्योतिष्टोम आदिक यज्ञ वस्तुरूप होवैहैं, ऐसैं तिन यज्ञ—के वेत्ता बौधायन आदिक यज्ञ-

---

१४४ कौन वे प्राण आदिक अनंत भाव हैं, जिनकरि मायासैं आत्मा भेदकूं पावता है ? इस पूंछनेकी इच्छाके हुये प्राण आदिककी कल्पनाकूं उदाहरण करि कहैहैं ।

सूक्ष्म इति सूक्ष्मविदः स्थूल इति च तद्विदः ।
मूर्त्त इति मूर्त्तविदो अमूर्तइति तद्विदः ॥ २३ ॥
काल इति कालविदो दिश इति च तद्विदः ।
वादा इति वादविदो भुवनानीति तद्विदः॥२४॥
मन इति मनोविदो बुद्धिरिति च तद्विदः ।
चित्तमिति चित्तविदो धर्माधर्मौ च तद्विदः २५

कर्ता कल्पतेहैं । औ भोक्ताहीं आत्मा है, कर्ता नहीं; ऐसैं भोक्ताकेवेत्ता सांख्य कल्पतेहैं । औ भोज्य वस्तु है, ऐसैं तिस भोजन–के वेत्ता सूपकार (रसोईए) प्रतिज्ञा करैहैं ॥ २२ ॥

टीकाः–आत्मा, सूक्ष्म (अणुपरिमाण) है, ऐसैं केईक सूक्ष्मके वेत्ता कल्पतेहैं । औ स्थूल देह आत्मा है, ऐसैं तिस स्थूल–के वेत्ता केईक चार्वाक कल्पतेहैं । त्रिशूलादि धारी महेश्वर वा चक्रादिधारी मूर्त पदार्थ परमार्थरूप है, ऐसैं मूर्तके वेत्ता आगमके अभिमानी कल्पतेहैं । औ सर्व आकारसैं शून्य निःस्वभाव जो अमूर्त सो परमार्थरूप है, ऐसैं तिस अमूर्त–के वेत्ता शून्यवादी कल्पतेहैं ॥ २३ ॥

टीकाः–काल परमार्थरूप है, ऐसैं कालके वेत्ता ज्योतिषी कल्पतेहैं । औ पूर्व आदिक दिशा परमार्थरूप हैं, ऐसैं तिन दिशा–के वेत्ता स्वरोदयशास्त्रके अभ्यासी कल्पतेहैं । धातुवाद औ मंत्रवाद आदिक वाद वस्तुरूप होवै हैं, ऐसैं केईक वादके वेत्ता कल्पते हैं । चतुर्दश भुवन वस्तुरूप हैं, ऐसैं तिन भुवनकोश–के वेत्ता कल्पतेहैं ॥ २४ ॥

टीकाः–मन हीं आत्मा है, ऐसैं मनके वेत्ता केईक चार्वाक कल्पतेहैं। औ बुद्धि हीं आत्मा है, ऐसैं तिस बुद्धि–के वेत्ता बौद्ध कल्पतेहैं । चित्त हीं आत्मा हैं, ऐसैं चित्तके वेत्ता कल्पतेहैं । औ धर्म अधर्म परमार्थरूप हैं, ऐसैं तिनके वेत्ता मीमांसक कल्पतेहैं ॥२५॥

पञ्चविंशक इत्येके षड्विंश इति चापरे ।
एकत्रिंशक इत्याहुरनन्त इति चापरे ॥ २६ ॥
लोकान् लोकविदः प्राहुराश्रमा इति तद्विदः ।
स्त्रीपुन्नपुंसकं लैङ्गाः परापरमथापरे ॥ २७ ॥
सृष्टिरिति सृष्टिविदो लय इति च तद्विदः ।
स्थितिरिति स्थितिविदः सर्वे चेह तु सर्व्वदा२८

टीकाः—[१४५]पँचीस संख्या-वाला प्रपंच वस्तु है, ऐसैं केईक सांख्य कल्पतेहैं । औ छवीस संख्या—वाला प्रपंच वस्तु है, ऐसैं अन्य पातंजल कल्पते हैं । एकतीस संख्या—वाला प्रपंच वस्तु है, ऐसैं पाशुपत कहतेहैं । औ पदार्थनका भेद अनंत है, नियमित नहीं; ऐसैं अन्य कहतेहैं ॥ २६ ॥

टीकाः—लोकनकूं रंजन करना हीं तत्त्व है, ऐसैं लोकके वेत्ता लौकिकजन कहतेहैं । दक्ष आदिक आश्रम परमार्थरूप हैं, ऐसैं तिन आश्रम—के वेत्ता कहतेहैं । स्त्री पुरुष औ नपुंसक लिंगवाले शब्दका समूह तत्त्व है, ऐसैं वैयाकरणी वर्णन करैहैं । औ अन्य, पर औ अपर ब्रह्म वस्तु है, ऐसैं मानतेहैं ॥ २७ ॥

टीकाः—सृष्टि तत्त्व है, ऐसैं सृष्टिके वेत्ता कहतेहैं। औ लय तत्त्व है, ऐसैं तिस लय—के वेत्ता कहतेहैं । स्थिति हीं तत्त्व है, ऐसैं स्थितिके वेत्ता कहतेहैं ॥ औ उक्त अनुक्त जितने कल्पनाके भेद हैं, वे सर्व

---

१४५ प्रधान जो है सो मूलप्रकृति (मूलकारण) है, औ महत्तत्व अहंकार अरु पांच तन्मात्रा (सूक्ष्मभूत); ये सात प्रकृति (पीछलेकी अपेक्षासैं कारण) औ विकृति (पूर्वकी अपेक्षासैं कार्य) रूप हैं । पांच ज्ञानेंद्रिय पांच कर्मेंद्रिय औ एक मन, ये षोडश विकार (कार्य) हीं हैं । औ पुरुष तो द्रष्टारूपहीं है, किसीका कारण औ कार्य नहीं है । ऐसैं पचीस तत्वनकी संख्यावाला प्रपंच वास्तव है, ऐसैं सांख्यवादी मानते हैं; सो कल्पनामात्र है ।

यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं स तु पश्यति ।
तञ्चावति स भूत्वाऽसौ तद्ग्रहः समुपैति तम् २९
एतैरेषोऽपृथग्भावैः पृथगेवेति लक्षितः ।
एवं यो वेद तत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशङ्कितः॥ ३०॥

इहां इस आत्मा–विषै तो सर्वदा कल्पना अवस्थाविषै कल्पियेहैं, परंतु आत्माकूं कल्पितपना नहीं है; काहेतैं, ऐसैं हुये सर्वकूं कल्पित होनेकरि अधिष्ठानभावके अयोगतैं ॥ प्राणरूप प्राज्ञ बीजरूप है, ताके कार्यके भेदहीं अन्य स्थितिपर्यंत पदार्थ हैं; औ अन्य सर्व लौकिक सर्व प्राणीनकरि कल्पित भेद हैं, वे रज्जुविषै सर्प आदिकनकी न्याईं तिनतैं रहित आत्माविषै आत्मस्वरूपके अनिश्चयकी हेतु अविद्यासैं कल्पित हैं; यह [१८ सैं २९ पर्यंतके श्लोकनका] समुदायरूप अर्थ है । प्राण आदिक श्लोकनके एक एक पदार्थके व्याख्यानविषै अल्प प्रयोजनके होनेतैं प्रयत्न किया नहीं । यह भाष्यकारकी उक्ति है ॥ २८ ॥

टीका:–बहुत कहनेसैं क्याहै; परंतु प्राण आदिकनके मध्य एक उक्त वा अन्य अनुक्त **जिस पदार्थके ताईं जाकूं** आचार्य वा अन्य असुप्त पुरुष, “यहहीं तत्त्व है,” ऐसैं **दिखावै; सो तो तिस पदार्थकूं** “ यह मैं हूं, वा मेरा है,” ऐसैं आत्मारूप **देखताहै** । औ ता द्रष्टाकूं यह पदार्थ जो (जैसा) गुरु आदिकनैं दिखाया है, सो (तैसा) होयके रक्षण करैहै; कहिये अपने स्वरूपसैं ताकूं सर्व औरतैं रोकताहै । तिस पदार्थ–विषै यह हीं तत्त्व है, ऐसा जो **आग्रह** (अभिनिवेश) है; सो **ता** ग्रहण करनेवाले–कूं **प्राप्त होवैहै;** कहिये सो ताके आत्मभावकूं पावताहै ॥ २९ ॥

टीका:–**इन** प्राणादिक आत्मातैं अभिन्नरूप **अभिन्नभावनसैं यह** आत्मा सर्प आदिक कल्पनारूप भावनसैं रज्जुकी न्याईं **भिन्नहीं है, ऐसैं लखाया है;** तौ बी मूढनसैं अलक्षित है । औ विवेकिन-

स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा ।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥ ३१ ॥

कूं तो रज्जुविषै कल्पित सर्प आदिककी न्याई प्राणादिक आत्मासैं भिन्न नहीं है, यह अभिप्राय है; "यह सर्व यह आत्मा है" इस श्रुतितैं । ऐसैं[१४६] रज्जुसर्पकी न्याई आत्माविषै कल्पित पदार्थनके आत्मासैं भिन्न असत् भावकूं, औ केवल निर्विकल्प आत्माकूं जो पुरुष, आत्मज्ञानरूप तत्त्वसैं श्रुतितैं औ युक्तितैं जानताहै, सो शंकारहित हुया यह वाक्य इसके अर्थके पर है, औ यह अन्य अर्थके पर है; ऐसैं विभागतैं वेदके अर्थकूं कल्पताहै । तहां यह मनुका वचन प्रमाण हैः— "अध्यात्मतत्त्वका नहीं जाननेवाला वेदनकूं तत्त्वतैं जाननेकूं समर्थ होता नहीं । कोईबी अनात्मवेत्ता क्रिया (प्रमाण)के फल (तत्त्वज्ञान)कूं पावता नहीं ॥ ३० ॥

टीकाः— [१४७]जो यह द्वैतका असद्भाव युक्तितैं कहा, सो वेदांतप्रमाणसैं निश्चित है; ऐसैं कहैहैंः—जैसैं **स्वप्न अरु माया** असत् वस्तुरूप असत्य हैं, तौबी अविवेकी जनोकरि सत्वस्तुरूप हुयेकी न्याई लखियेहैं; वे विवेकिनकरि असद्रूप **देखे हैं** । औ **जैसैं** तहां तहां प्रकटताकूं प्राप्त भये क्रयविक्रयरूप पदार्थवाले हट्टनकरि युक्त ग्रह औ अट्टालिका औ स्त्रीपुरुषरूप देशके व्यवहारनकरि पूर्णकी न्याई सत्रूप देख्या हुयाहीं **गंधर्वनगर**, अकस्मात् अभावताकूं प्राप्त भया **देख्या है; तैसैं यह विश्व** दे-

१४६ उक्त प्रकारके ज्ञानवाला जो पुरुष है, सो वेदका किंकर नहीं होवै है; किंतु सो जिस वेदके अर्थकूं कहता है, सोई वेदका अर्थ होवै है । यह अर्थ है ।

१४७ जिन युक्तिनकरि इस प्रकरणविषै द्वैतका मिथ्यापना कहियेहै, तिन युक्तिनकूं प्रमाणके अनुग्रहकरि युक्त होनेतैं तिनकी यथार्थता निश्चय करनेकूं योग्य है; ऐसैं कहैहैं ।

न निरोधो नचोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ३२ ॥

ख्या है ॥ कहां किनोंनैं देख्या है? तहां कहैहैं:—"इहां नाना कछुबी नहीं है" "इंद्र (परमात्मा) मायाकरि बहुरूपकूं पावताहै," "यह आगे आत्माहीं होता भया," "यह आगे ब्रह्महीं होता भया," "द्वितीयतैं निश्चयकरि भय होवैहै," "सो द्वितीय तो नहीं है," "जहां तो इसकूं सर्व आत्माहीं होता भया;" इत्यादिक वेदांत (उपनिषदन)-विषै अत्यंत निपुण वस्तुके देखनेवाले इन पंडितरूप विचक्षण पुरुष—नकरि देख्याहै ॥ "मंद अंधकार विषै स्थित रज्जुमैं भूमिछिद्रके तुल्य, औ वर्षा अरु बुद्बुदके तुल्य, नाशसैं ग्रस्त औ सुखसैं रहित, औ नाश भये पीछे अभावकूं प्राप्त होनेवाला विश्व विवेकी जनोंनैं देख्याहै;" इस व्याससमृतितैं द्वैतका वस्तुतैं असद्भाव है ॥ ३१ ॥

टीका:—[148]अब प्रकरणके अर्थकी समाप्ति अर्थ यह श्लोक कहियेहैं:-जब द्वैत मिथ्या है औ आत्माहीं एक परमार्थतैं सत् है, तब यह सिद्ध भया कि:—सर्व यह लौकिक औ वैदिक व्यवहार, अविद्याका विषयहीं है; तब **निरोध** (प्रलय) **नहीं है, औ उत्पत्ति नहीं है;** औ **बद्ध** (संसारी जीव) **नहीं है; औ साधक** (मोक्षके साधन करि संपन्न) **नहीं है,** औ **मुमुक्षु** (बंधतैं छूटनेका अर्थी) **नहीं है,** औ **मुक्त** (बंधनतैं छूट्या) **नहीं है।** उत्पत्ति औ प्रलयके अभावतैं बद्ध आदिक नहीं हैं; **यह परमार्थता है** ॥ [149]उत्पत्ति औ प्रलयका अभाव कैसैं है? तहां कहियेहै:—इस द्वैतके असद्भावतैं उत्पत्ति औ प्रलयका अभाव है। "जहां हीं द्वैतकी न्याई होवै है,"

---

१४८ प्रमाण औ युक्तिसैं द्वैतके मिथ्यापनैके साधनेकरि अद्वैतहीं पारमार्थिक है, ऐसैं सिद्ध भये तिस निर्द्धार किये अर्थकूं या श्लोकविषै संक्षेपसैं कहैहैं।

१४९ उक्त अर्थकूं हीं प्रश्न औ उत्तरकरि विस्तारते हैं।

"जो इहां नानाकी न्याई देखता है," "आत्मा हीं यह सर्व है," "ब्रह्महीं यह सर्व है," "एकहीं अद्वितीय यह सर्व है," जो यह आत्मा है"; इत्यादिक श्रुतिनतैं द्वैतका असद्भाव सिद्ध है। जातैं सत्वस्तुके उत्पत्ति वा प्रलय होवैहैं, शशशृंग आदिक असत्वस्तुके नहीं। औ अद्वैत बी उत्पन्न नहीं होवैहै, वा लीन नहीं होवैहै; जातैं अद्वैत है औ उत्पत्ति प्रलयवाला है; यह कहना विरुद्ध है। यातैं औ जो फेर प्राणादिरूप द्वैतका व्यवहार है, सो रज्जुसर्पकी न्याई आत्माविषै कल्पित है; ऐसैं कहाहै। रज्जुसर्पादिरूप मनकी कल्पनाका रज्जुविषै उत्पत्ति वा प्रलय नहीं है, औ मनविषै रज्जुसर्पकी उत्पत्ति वा प्रलय नहीं है, औ रज्जु अरु मन दोनूंतैं बी नहीं है; तैसैं द्वैतकूं मनकी कार्यताके अविशेषतैं ताकी उत्पत्ति वा प्रलय बनै नहीं। जातैं निरोध किये मनविषै वा सुषुप्तिविषै द्वैत नहीं देखियेहै, यातैं मनकी कल्पनामात्र द्वैत है, यह सिद्ध भया। तातैं द्वैतके असद्भावतैं निरोध आदिकका अभाव परमार्थता है; यह सम्यक् कहा है ॥ ॥ जब ऐसैं द्वैतके अभावविषै शास्त्रका व्यापार है, अद्वैतविषै नहीं; काहेतैं, अभावके बोधनविषै व्याप्त शास्त्रके भावके बोधनविषै व्यापारके विरोधतैं। तैसैं हुये अद्वैतकी वस्तुताविषै प्रमाणके अभावतैं औ द्वैतके अभावतैं शून्यवादका प्रसंग होवैगा? तहां सिद्धांती कहैहैं:—यह कथन बनै नहीं। काहेतैं, जैसैं रज्जुसर्प आदिककी कल्पनाकूं निराश्रयताका असंभव है; तैसैं द्वैतकी कल्पनाकूं अधिष्ठानरहितताका असंभव है। यातैं ताका अधिष्ठान होनेकरि अद्वैत आस्था करनेकूं योग्य है। ऐसैं ॐकारके प्रकरणविषै या शंकाका समाधान हमनैं कियाहै, ताकूं फेर कैसैं उठावताहै? ॥ शून्यवादी कहैहैः— सर्व विकल्पकी आश्रयरूप रज्जु बी तुह्मारे मतविषै कल्पितहीं है, ऐसैं दृष्टांतका असंभव है? सो कथन बनै नहीं:— काहेतैं, कल्पनाके क्षय हुये अ-

वशेष रही अवधिरूप सत्ताकूं रज्जुआदिकविषै देखी होनेतैं, द्वैत भ्रमके बाधका साक्षीहोनेकरि जो स्फुरणरूप चैतन्य है, ताकूं अकल्पित होनेतैंहीं सद्भावके संभवतैं; शून्यभावकी प्राप्ति नहीं है ॥ जो कहै, रज्जुसर्पकी न्याई अद्वैतका असद्भाव है? सो बनै नहीं:—काहेतैं आत्माकूं भ्रमका साक्षी होनैतैं, सर्पके अभावके ज्ञानतैं पूर्व अकल्पित रज्जुके अंशकी न्याई नियमसैं अकल्पित होनेतैं, औ कल्पना कर्ताकूं कल्पनाकी उत्पत्तितैं पूर्व सिद्ध होनैके अंगीकारतैं हीं ताके असद्भावका असंभव है ॥ जो कहै, अद्वैतस्वरूपविषै व्यापारके अभाव हुये फेर शास्त्रकूं द्वैतके ज्ञानकी निवर्त्तकता कैसैं होवैगी? यह दोष नहीं है:—काहेतैं, रज्जुविषै सर्प आदिककी न्याई आत्माविषै द्वैतकूं अविद्याकरि अध्यस्त होनेतैं ॥ आत्माविषै द्वैतका अध्यस्तपना कैसैंहै? तहां कहैहैं:— "मैं सुखी हूं, दुःखी हूं, मूढ हूं, जन्म्या हूं, मऱ्या हूं, जीर्ण भया हूं, देहवान् हूं, देखता हूं, स्थूल औ सूक्ष्मरूप हूं, कर्ता हूं, फलवान् (भोक्ता) हूं, संयोगवान् हूं, वियोगवान् हूं, क्षीण भया हूं, औ वृद्ध हूं, अरु मेरा यह है;" इत्यादिक सर्व विकल्प आत्माविषै अध्यस्त होवैहैं। जैसैं सर्प औ जलधारा आदिक भेदनविषै अव्यभिचारतैं रज्जु अनुगत है, तैसैं सर्वत्र अव्यभिचारतैं आत्मा इनविषै अनुगत है। जब ऐसैं विशेष्यके स्वरूपकी प्रतीतिकूं सिद्ध होनेतैं, शास्त्रसैं कर्तव्यता नहीं है; औ अकृत वस्तुका कर्ता जो शास्त्र है, सो कृत वस्तुके अनुसारीपनैके हुये अप्रमाण होवैगा। जातैं आत्माका अविद्यासैं आरोपित सुखीपनै आदिक विशेष प्रतिबंधके स्वरूपसैं अनवस्थान औ स्वरूपसैं अवस्थान श्रेय है, यातैं सुखीपनै आदिकका निवर्त्तक जो शास्त्र है, सो "नेति नेति औ अस्थूल" आदिक वाक्यनसैं आत्माविषै असुखीपनै आदिककी प्रतीतिके करनेसैं आत्मस्वरूपकी न्याई, असुखीपनै आदिक बी सुखीपनै आदिक भेदनविषै अनुगत धर्म नहीं है; जब अनुगत होवै, तब सो सुखीपना आदिकरूप विशेष आरोपित नहीं होवैगा। जैसैं

भावैरसद्भिरेवायमद्वयेन च कल्पितः ।
भावा अप्यद्वयेनैव तस्मादद्वयता शिवा ॥३३॥

उष्णतारूप गुणविशेषवाले अग्निविषै शीतता है, तैसैं । यातैं तिस निर्विशेषहीं आत्माविषै सुखीपना आदिक विशेष कल्पित है, औ जो आत्माके असुखीपनै आदिकका प्रतिपादक शास्त्र है, सो ताके सुखीपनै आदिक विशेषकी निवृत्ति अर्थहीं है; यह सिद्ध भया । इहां "निवर्त्तक[१५०] होनेतैं सिद्ध है" ऐसा वेदके वेत्ता द्रविडाचार्यका सूत्र प्रमाण है ॥ ३२ ॥

टीकाः—अब[१५१] पूर्वश्लोकके अर्थका हेतु कहैहैं:—जैसैं रज्जुविषै असत्‌रूप सर्प औ जलधाराआदिकसैं औ सत्‌रूप अद्वैत रज्जुद्रव्यसैं यह सर्प है, वा यह जलधारा है, वा यह दंड है; इसप्रकार रज्जुद्रव्यहीं कल्पियेहै । ऐसैं अविद्यमान प्राणआदिक अनंत असत् वस्तुनसैंहीं यह आत्मा कल्पियेहै; परमार्थतैं तिनकी सत्ता नहीं है । जातैं अचल भये मनविषै कोईबी पदार्थ किसीकरि बी जाननेकूं शक्य होवै नहीं, औ आत्माका चलना कल्पना करनेकूं अशक्य है । औ चंचलतासैं रहित आत्माकेहीं प्रतीयमान जे भाव हैं, वे परमार्थतैं सत्‌रूप कल्पनेकूं शक्य नहीं हैं; यातैं असत्‌रूपहीं प्राणादि भाव-

---

१५० इहां यह इस सूत्रका अर्थ है:—ब्रह्मविषै पदनकी प्रवृत्तिके अभाव हुयेबी शास्त्रका प्रमाणिकपना सिद्ध हीं है; काहेतैं अभावके बोधनविषै प्रवृत्त "नञ् (नकार)" पदकरि युक्त स्थूल आदिक अर्थवाले पदनसैं स्वाभाविक द्वैतके अभावके बोधनकरि अध्यस्तका निवृत्तक होनेतैं ।

१५१ निरोध आदिक सर्व विशेषके अभावकरि उपलक्षित जो वस्तु है; सो वास्तवरूप है; ऐसा पूर्व श्लोकका अर्थ है । ताकूं सामान्यविशेष वस्तुविषै विशेषकरि आश्रयकरिके निरोध आदिकका सम्यक् साधनरूप होनेतैं, ताके असत्पनैकी आशंका करियेहै; तिस हेतुकरि ताकी साधनेकी अपेक्षाके हुये ताके दिखावनेके परायण यह श्लोक है ।

नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथञ्चन ।
न पृथङ्नापृथक्किञ्चिदिति तत्त्वविदो विदुः॥३४॥

नसैं, औ रज्जुकी न्याई सर्व विकल्पके आश्रयभूत परमार्थ सत्-रूप आप अद्वैतसैं एक सत्स्वभाववाला हुया बी, यह आत्मा आपहीं कल्पित है । औ वे प्राण आदिक भाव बी सत्‌रूप अद्वैत आत्मासैंहीं कल्पित हैं । जातैं अधिष्ठानरहित कोइबी कल्पना नहीं देखियेहै, तातैं सर्व कल्पनाका अधिष्ठान होनेतैं अपनें स्वरूपसैं अद्वैतके अव्यभिचारतैं कल्पना अवस्थाविषै बी अद्वैतता शिव (कल्याण) रूप है । वे कल्पनाहीं तो जातैं रज्जुसर्प आदिककी न्याई भयकी कारण हैं, यातैं अशिवरूप है; अद्वैतता जातैं अभयरूप है, यातैं सोऽई शिवरूप है ॥ ३३ ॥

टीका:—अद्वैततौ[१५२] शिवरूप कहांसैं होवैगी? जहां अन्यतैं अन्यका नानारूप भिन्नपना देख्याहै, तहां अशिव होवैहै । जातैं इस अद्वैत परमार्थसैं सत्‌रूप आत्माविषै प्राण आदिक संसारका समूहरूप **यह जगत् आत्मभावसैं** (परमार्थस्वरूपसैं) **नाना** (आत्मातैं अन्य वस्तुरूप) **नहीं** होवैहै । जैसैं रज्जु स्वरूपसैं प्रकाशकरि निरूपण किया कल्पित सर्प नानारूप नहीं है, ताकी न्याई **अपने** प्राण आदिक **स्वरूप-सैं बी यह जगत् कदाचित् बी** विद्यमान **न**हीं है । काहेतैं, रज्जुसर्पकी न्याई कल्पित होनैतैं, औ जैसैं अश्वतैं भैंसा भिन्न हीं है, तैसैं प्राण आदिक वस्तु परस्पर भिन्न नहीं है;

---

१५२ किंवा यह नानारूप द्वैत; क्या आत्माके तादात्म्यसैं सिद्ध होवैहै, वा स्वतंत्र सिद्ध होवैहै; यह विवेचन करनेकूं योग्य है ॥ तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहीं । इहां यह अर्थ है:—यह नानारूप द्वैत आत्माके तादात्म्यसैं सिद्ध होनेकूं योग्य नहीं है; काहेतैं, परस्परविरुद्धस्वभाववाले जड औ अजडके तादात्म्यके असंभवतैं । औ भेद आदिकसैं रहित आत्मासैं तादात्म्यके हुये द्वैतके नानापनैकी असिद्धितैं ।

वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ।
निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपंचोपशमोऽद्वयः ॥ ३५ ॥
तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम् ।
अद्वैतं समनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत् ॥ ३६ ॥

यातैं असत् होनेतैं परस्पर वा अन्यसैं कछुबी भिन्न नहीं है, ऐसैं परमार्थ-तत्त्वके वेत्ता ब्राह्मण जानतेहैं । यातैं अशिवकी हेतुताके अभावतैं अद्वैतताहीं शिवरूप है, यह अभिप्राय है ॥ ३४ ॥

टीकाः—अब जो यह सम्यक् दर्शन कहा, ताकी स्तुति करियेहैः—राग भय द्वेष अरु क्रोध आदिक सर्व दोषन-सैं रहित, औ सर्वदा मनन करनेके स्वभाववाले विवेकी मुनि औ वेदके पारकूं प्राप्त भये वेदार्थतत्त्वके ज्ञाता अरु वेदांतके अर्थविषै तत्पर ज्ञानी पुरुषन-करिहीं सर्व विकल्पसैं रहित द्वैतभेदके विस्ताररूप प्रपंचके अभाववाला, याहींतैं अद्वैतरूप यह आत्मा देख्या (जान्या) है । अभिप्राय यह जोः—द्वेषादिरहित वेदांतके अर्थविषै तत्पर पंडित संन्यासीकरिहीं परमात्मा देखनेकूं शक्य है, अन्य रागादिकसैं मलिन चित्तवाले औ अपने पक्षपातके देखनेवाले तार्किक आदिकनसैं नहीं ॥ ३५ ॥

टीकाः—जातैं सर्व अनर्थकी निवृत्तिरूप होनेतैं अद्वैत, शिव औ अभयरूप है; तातैं ऐसैं शास्त्रतैं, जानिके अद्वैतविषै स्मृतिकूं जोडना; कहिये, अद्वैतके ज्ञान अर्थ हीं स्मृतिकूं करना । इस अद्वैतकूं "मैं क्षुधा तृषा आदिकसैं रहित साक्षात् अपरोक्ष अजन्मा आत्मा परब्रह्म हूं," ऐसैं सम्यक् जानिके सर्व लोकके व्यवहारसैं रहित हुया जडकी न्याई लोकके तांई विचरे । अभिप्राय यह जोः—"मैं इस प्रकारका हूं" ऐसैं आपकूं विद्या औ कुल आदिकसैं अप्रख्यात् करता हुया विद्वान् लोकके तांई विचरे ॥ ३६ ॥

निस्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च ।
चलाचलनिकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत् ॥३७॥
तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा दृष्ट्वा तत्त्वं तु बाह्यतः
तत्त्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ॥३८॥

इति वैतथ्याख्यं द्वितीयं प्रकरणम् ॥ २ ॥

टीकाः—किस आचरणसैं लोकके तांई विचरे? तहां कहैहैंः—अन्य देवनकी स्तुतिसैं रहित, नमस्कारसैं रहित औ पितरनके तांई स्वधाकारसैं रहितहीं यति होवै। अभिप्राय यह है किः—स्तुति नमस्कार आदिक सर्व कर्मसैं रहित, औ सर्व बाह्य एषणाके त्यागवाला, औ परमहंस परिव्राट् आश्रमकूं प्राप्त होवै। "इस प्रसिद्ध ता आत्माकूं जानिके" इत्यादि श्रुतितैं, औ "तिसविषै बुद्धिवाले तिसरूप तिसविषै निष्ठावाले ताके परायण हुये" इत्यादि स्मृतितैं। औ चल अचल निकेतवाला होवै। क्षणक्षणविषै अन्यथाभावतैं चल शरीर है, औ अचल आत्मतत्व है। जब कदाचित् भोजन आदिक व्यवहारके निमित्त आकाशकी न्याई अचल स्वरूपभूत आत्मतत्वरूप अपनै आश्रय (आत्मस्थिति)कूं विसरण करिके; "मैं हूं" ऐसैं मानताहै, तब विद्वान् देहरूप चल निकेत(आश्रय)वाला होवैहै; तातैं अन्यकालविषै आत्मतत्त्वरूप अचल निकेतवाला है। ऐसैं यह विद्वान् चल अचल निकेतवाला है; परंतु बाह्य विषयनके आश्रयवाला नहीं। औ सो विद्वान् यादृच्छिक होवै; कहिये यदृच्छा जो दैवगति; तासैं प्राप्त भये कौपीन आच्छादन औ ग्रासमात्रसैं देहकी स्थितिवाला होवै ॥ ३७ ॥

टीकाः—"[१५३] वाणीका आरंभण (विषय) विकार नाममात्र है" इत्यादि

---

१५३ "मैंहीं परब्रह्म हूं, मेरेतैं अन्य कछुबी नहीं है" ऐसी स्मृतिका संतान (प्रवाह)का करना बी कोइक कालविषै नियमित नहीं है; किंतु निरंतर करनेकूं योग्यहै, ऐसैं कहैहैं। या श्लोकका यह अर्थ हैः—शरीर आदिक कल्पित अध्यात्मिक (आंतर) वस्तुकूं अधिष्ठानमात्र देखिके औ

श्रुतितैं रज्जुसर्प आदिककी न्याई औ स्वप्न माया आदिककी न्याई, असत् शरीरादिरूप अध्यात्म (आंतरवस्तु)कूं तत्व (अधिष्ठानमात्र) स्वरूप देखिके, औ पृथिवी आदिरूप शरीर आदिककी अपेक्षासैं बाह्य वस्तु-कूं तत्व (अधिष्ठानमात्र) स्वरूप देखिके; आत्मा बाहिर भीतर सहित है, अजन्मा है, अपूर्व है, अनपर है, अनंतर है, अबाह्य है, संपूर्ण है, आकाशकी न्याई सर्वगत है, सूक्ष्म है, अचल है, निर्गुण है, निष्कल है, निष्क्रिय है; "सो सत्य है, सो आत्मा है, सो तूं हैं" इस श्रुतितैं। ऐसैं तत्त्वकी दृष्टिसैं तत्वरूप औ तिस तत्वविषै रमणवाला औ बाह्य विषयनविषै रमणवाला नहीं; ऐसा हुया तत्वतैं अचलित होवैहै। जैसैं कोईक अतत्वदर्शी चित्तकूं आत्मापनैकरि जानता हुया चित्तके चलनके पीछे चलित भये आत्माकूं मानता हुया कदाचित् "अबी मैं आत्मतत्वतैं चलित भया हूं" ऐसैं देहादिरूप आत्माकूं चलित भया मानता है। औ मनके एकाग्र हुये कदाचित् "अबी मैं तत्त्वरूप भया हूं" ऐसैं प्रसन्न भये चित्तरूप आत्माकूं तत्त्वरूप मानताहै। तैसैं आत्मवेत्ता होवै नहीं; काहेतैं, आत्माकूं एकरूप होनेतैं औ स्वरूपतैं चलनके असंभवतैं। किंतु "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं सदा तत्त्वतैं अचलित होवै। अभिप्राय यह है कि:—सदा अचलित आत्माके दर्शनवाला होवै। "कूकरविषै औ चांडालविषै पंडित समदर्शी है" औ "सर्व भूतनविषै समवस्थित होनेवाले परमेश्वरकूं" इत्यादि गीता स्मृतितैं ॥ ३८ ॥

इति श्री गौडपादाचार्यकृतमांडूक्योपनिषत्कारिकायां वैतथ्याख्यद्वितीयप्रकरणभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ २ ॥

शरीरतैं बाहिरकी न्याई स्थित भये पृथिवी आदिककूं कल्पितपनैकरि अवस्तुरूप होनेतैं अधिष्ठानहीं है, ऐसैं अनुभवकरिके आप द्रष्टा पुरुष बी परमार्थवस्तुके स्वभावकूं प्राप्त भया, तहांहीं आसक्तचित्तवाला औ बाह्यविषयनतैं निवृत्तबुद्धिवाला हुया तिसींहीं परमार्थतत्वविषै स्थितहुया ताके ज्ञानविषै स्थित होवै।

अथाद्वैताख्यं तृतीयं प्रकरणम् ॥ ३ ॥

युक्तिसैं अद्वैतकी परमार्थता

उपासनाश्रितो धर्म्मो जाते ब्रह्मणि वर्त्तते ।
प्रागुत्पत्तेरजं सर्व्वं तेनासौ कृपणः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ गौडपादाचार्यकृतकारिकायामद्वैताख्यतृतीय-
प्रकरणभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

टीकाः—[१५४]प्रथमैं प्रकरणमिषै ॐकारके निर्णयमैं "प्रपंचके अभाववाला शिव अद्वैतरूप है," इन विशेषणन करि आत्मा प्रतिज्ञामात्रसैं अद्वैतरूप कहा; औ तहांहीं प्रथम प्रकरणविषै "जाने हुये द्वैत नहीं है" इस स्थलमैं प्रतिज्ञामात्रसैं द्वैतका अभाव कहा; सो द्वैतका अभाव तो दूसरे वैतथ्यनामक प्रकरणसैं स्वप्न माया गंधर्वनगर आदिक दृष्टांतरूप औ दृश्यपनै आदि अंतवान्पनै आदिक हेतुरूप तर्क (युक्ति)सैं प्रतिपादन किया; इसविषै प्रतिपादन करनेयोग्य अवशेष नहीं है। अद्वैत वस्तु क्या शास्त्रमात्रसैं जानने योग्य है, किंवा तर्कसैं बी जाननेयोग्य है? तहां कहैहैं:-अद्वैत वस्तु तर्कसैं बी जाननेकूं शक्य है। सो अद्वैत वस्तु तर्कसैं कैसैं जाननेकूं शक्य है? तहां कहैहैं:-या अर्थके जानने वास्ते यह अद्वैतनामक द्वितीय प्रकरण आरंभ करियेहैः-पूर्वके द्वितीय प्रकरणविषै जातैं उपास्य औ उपासना आदिक भेदका समूह सर्व मिथ्या है, औ केवल आत्मा अद्वैत परमार्थरूप है; ऐसैं सिद्ध भया। यातैं इहां आरंभविषै उपासककी निंदा करियेहैः-देहके धारणतैं धर्म जो जीव, सो भूतनके समुदायके आकारसैं उत्पन्न भये ब्रह्मविषै ताका अभिमानी होनैकरि वर्तताहै। सो उत्पत्तितैं पूर्व सर्व अज-

---

[१५४] तर्कके आश्रयसैं द्वैतके मिथ्यापनेके निरूपणकूं समाप्त करिके, अब परमार्थरूप अद्वैतकूं बी तर्क (युक्ति)तैं निश्चय करावनेकूं अद्वैतनामक तृतीय प्रकरणकूं आरंभ करनेकूं इच्छतेहुये आचार्य प्रथम उपास्य औ उपासकके भेद दृष्टिकी निंदा करैहैं।

**अतो वक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमताङ्गतम् ।
यथा न जायते किञ्चिज्जायमानं समं ततः ॥२॥**

न्मा था, ऐसैं कालकरि परिछिन्न वस्तुकूं मानताहै । सो फिर उपासनाकूं पुरुषार्थका साधन जानिके आश्रित हुया देहपात भये पीछे तिसीहीं ब्रह्मकूं प्राप्त होऊंगा; ऐसैं जिस कारण-सैं मिथ्याज्ञानवान् होयके स्थित होवैहै, तिस कारण-सैं यह ब्रह्मवेत्ता पुरुषोनै कृपण (अल्प) चिंतन किया है ॥ याका यह अभिप्राय हैः—उपासनाके आश्रित भया, कहिये उपासनाकूं आपके मोक्षका साधन होनैकरि प्राप्त भया ' मैं उपासक हूं, मेरा उपास्य ब्रह्म है, ताकी उपासना करिके अब भूतनके समुदायके आकारसैं उत्पन्न भयें ब्रह्मविषै वर्तमान हूं, शरीरके पतन भये पीछे अजन्मा ब्रह्मकूं प्राप्त होऊंगा, औ उत्पत्तितैं पूर्वअवस्थाविषै सर्व यह अजन्मा था, औ मैं बी तैसा अजन्मा था;" ऐसैं जातैं उपासक मानता है, यातैं पूर्वअवस्थावाले ब्रह्मकूं विषय करनेवाली अजन्मापनैकी श्रुति बनैहै । अब "उत्पत्ति अवस्थाविषै मैं जन्मकूं पायाहूं, औ उत्पन्न भये ब्रह्मविषै स्थितिअवस्थाविषै वर्तमान हूं, औ उत्पत्तितैं पूर्व जिस रूपवाला हुया स्थित था, तिसीहींकूं फिर प्रलयअवस्थाविषै उपासनासैं प्राप्त होऊंगा;" इस रीतिसैं उपासनाके आश्रित भया साधक जीव, सो जिस कारणसैं ऐसैं अल्प ब्रह्मका वेत्ता है तिस कारणसैं यह नित्य अजन्मा ब्रह्मके दर्शी महात्मा पुरुषोनैं कृपण (दीन) जान्या है । "जो वाणीसैं अप्रकाशित है, औ तिसकरि वाणी प्रकाशित होवैहै; ताहीकूं तूं ब्रह्म जान । जाकूं लोक उपासतेहैं, यह ब्रह्म नहीं है" इत्यादि तलवकार शाखावाले ब्राह्मणनकी श्रुतितैं ॥ १ ॥

टीकाः—जातैं बाहिर भीतर सहित अजन्मा आत्माकूं जाननेकूं असमर्थ हुया, अविद्यासैं आपकूं दीन मानता हुया, "मैं जन्म्या हूं, औ उत्पन्न भये ब्रह्मविषै वर्तता हूं औ ताकी उपासनाके आश्रित हुया

आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः
घटादिवच्च सङ्घातैर्जातावेतन्निदर्शनम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मकूं प्राप्त होऊंगा;" ऐसे ज्ञानवाला पुरुष कृपण होवैहै। यातैं अजन्मा ब्रह्मरूप अकृपणभावकूं कहताहूं "जिसविषै अन्य अन्यकूं देखताहै, अन्यकूं सुनताहै, अन्यकूं जानताहै, सो मरनेयोग्य अल्प है;" "वाणीका आलंघन(विषय) विकार नाममात्र है" इत्यादिक श्रुतिनतैं, सो उक्त प्रकारका ब्रह्म कृपणभावका आश्रय है। तिसतैं विपरीत बाहिर भीतर सहित अजन्मा भूमानामक ब्रह्म अकृपणभावरूप है। जाकूं जानिके अविद्याकृत सर्व कृपणभावकी निवृत्ति होवैहै, सो अकृपणभाव कहियेहै; ताकूं अब कहताहूं, यह अर्थ है। सो ब्रह्म कैसा है कि; **अजाति** है, कहिये जाति जो जन्म, तासैं रहित है; औ सर्व **समताकूं प्राप्त** भया है; काहेतैं अवयवनकी विषमताके अभावतैं। जो सावयव वस्तु है, सो अवयवकी विषमतावाला होवैहै; ऐसैं कहियेहै। यह तो निरवयव है, यातैं समताकूं प्राप्त भयाहै। औ किसीबी अवयवनसैं जन्मता नहीं, यातैं सो चारीऔरतैं (पूर्ण) जन्मरहित **अकृपणभाव** है; ताकूं कहताहूं। जैसैं रज्जुविषै सर्प, भ्रांतिसैं जन्मताहै; तैसैं सर्व अविद्याकृत भ्रांतिदृष्टिसैं जन्मकूं प्राप्त होनेकरि भासमान है, तौबी **जिसप्रकारसैं वस्तुतैं कच्छु बी जन्मकूं पावता नहीं,** किंतु सर्व देश काल औ वस्तुतैं पूर्ण कूटस्थहीं वस्तु होवैहै; तैसैं तिसप्रकारकूं श्रवण कर। यह अर्थ है ॥ २ ॥

टीका:—जन्मरहित ब्रह्मरूप अकृपणभावकूं कहताहूं, ऐसैं प्रतिज्ञा किया जो वस्तु, ताकी सिद्धिअर्थ हेतु औ दृष्टांतकूं कहता हूं; ऐसैं कहैहैं:—[१५५] **आत्मा** जो परब्रह्म, सो जातैं आकाशकी न्याई सूक्ष्म

---

१५५ प्रतिज्ञा किये वाक्यविषै ब्रह्मशब्दसैं प्रसंगमैं प्राप्त किया जो परमात्मा, सो कैसा है? इस पूंछनेकी इच्छाके हुये कहैहैं। या श्लोकके पू-

**घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा ।
आकाशे सम्प्रलीयन्ते तद्वज्जीव इहात्मनि ॥४॥**

निरवयव सर्वगत है; यातैं आकाशकी न्याई कहाहै । औ घटाकाशनसैं आकाशके तुल्य क्षेत्रज्ञरूप जीवनसैं कहाहै, सोई आकाशके सम परब्रह्मरूप आत्मा है । अथवा, जैसैं घटाकाशसैं उत्पन्न भया महाकाश है, तैसैं परमात्मा जीवनसैं उत्पन्न भया है । जीवनकी परमात्मातैं जो उत्पत्ति, वेदांतनविषै सुनियेहै; सो परमार्थतैं महाकाशतैं घटाकाशनकी उत्पत्तिके समान है; यह अभिप्राय है । तिसी हीं आकाशतैं जैसैं घटादिक संघात उत्पन्न होवैहैं, ऐसैं आकाशस्थानी परमात्मातैं पृथिवी आदिक भूतनके संघात औ कार्यकारणरूप अध्यात्मिक देहादि संघात, रज्जुसर्पकी न्याई कल्पित हुये उत्पन्न होवैहैं । यातैं घटादिककी न्याई संघातनसैं उत्पन्न भयाहै, ऐसैं कहियेहै । जब मंदबुद्धिवालोंकूं निश्चय करावनेकी इच्छावाली श्रुतिनैं आत्मातैं जीव आदिकनकी उत्पत्ति कहिये है, तब जाननेयोग्य ता उत्पत्तिविषै उत्पन्न भये आकाशकी न्याई, इत्यादिरूप यह दृष्टांत है ॥ ३ ॥

टीकाः—जैसैं घटादिकके लीन हुये घटाकाश आदिक आकाशविषै लीन होवैहैं, तैसैं इस आत्माविषै जीवलीन होवैहैं ॥

[१५६]अर्थ यह जोः—जैसैं घटादिककी उत्पत्तिसैं घटाकाश आदिककी

र्वार्द्धका यह अर्थ हैः—जैसैं आकाश विभुपनै आदिक धर्मवाला हुया अपनेविषै स्थित वास्तव भेदवाला नहीं होवैहै, तैसैं विलक्षणताके अभावतैं परमात्मा बी है । औ जैसैं महाकाश घटाकाशनके आकारसैं प्रतीत होवैहै, तैसैं परमात्मा नानाप्रकारके जीवनके आकारसैं प्रतीत होवैहै ।

१५६ जीवनके उत्पत्ति औ प्रलय उपाधिके कियेहैं, स्वाभाविक नहींहैं । तैसैंहुये उत्पत्तिकी श्रुतिसैं अद्वैतके अभावकी न्याई प्रलयकी श्रुतिसैं

यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते ।
न सर्वे सम्प्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाः सुखादिभिः५

उत्पत्ति होवैहै, औ जैसैं घटादिकके लय हुये घटाकाश आदिकका लय होवैहै, तैसैं देहादि संघातकी उत्पत्तिसैं जीवनकी उत्पत्ति होवैहै, औ तिन देहादि संघातके लय हुये जीवनका इस आत्माविषै लय होवैहै; स्वरूपतैं नहीं ॥ ४ ॥

टीकाः—सर्व देहनविषै आत्माकी एकताके होते, जन्म मरण औ सुख आदिक धर्मवाले एक आत्माके हुये, सर्व आत्माकूं तिन जन्म आदिक धर्मनसैं संबंध होवैगा; औ क्रिया अरु फलका मिश्रभाव होवैगा; ऐसैं जो द्वैतवादी कहैहैं, तिनके प्रति यह उत्तर कहियेहैः— **जैसैं रज औ धूम आदिककरि युक्त एक घटाकाशके हुये, सर्व घटाकाश आदिक तिन रज औ धूम आदिककरि संयोगकूं पावते नहीं; तैसैं** एक आत्मवादविषै सुख आदिककरि युक्त एक जीवके हुये, **सर्व जीव सुखआदिकसैं संयोगकूं पावते नहीं** ॥ ॥ ननु, तब क्या सर्वत्र एकहीं आत्मा है? तहां कहैहैंः—यह तेरा कथन सत्य है ॥ ॥ ननु, तिस आत्माकी एकता युक्ति रहित है, ताकूं कैसैं अंगीकार करते हो? तहां कहैहैंः—आकाशकी न्याई सर्व संघातनविषै एकहीं आत्मा है, ऐसैं जो हमनै पूर्व युक्तिसहित आत्माकी एकता कही, सो तैनैं सुनी नहीं ॥ ॥ ननु, जब एकहीं आत्मा है तब सो सर्वत्र सुखी औ दुःखी होवैगा? तहां कहैहैंः—यह प्रश्न सांख्यवादीका है, किंवा वैशेषिक आदिकका है । तिनमैं यह जब सांख्यका प्रश्न होवै, तब संभवै नहीं । काहेतैं, जातैं सांख्यवादी जो है, सो सुख दुःख आदिकके बुद्धिसैं समवाय संबंधके अंगीकारतैं, आत्माकूं सुख औ दुःख आदिक धर्मवान्‌पना इच्छता नहीं;

बी अद्वैतका विरोध नहींहै; ऐसैं श्लोकके अक्षरनके व्याख्यानसैं प्रकट करैहैं ।

औ ज्ञानस्वरूप आत्माके भेदकी कल्पनाविषै प्रमाण नहीं है, यातैं यह सांख्यका प्रश्न संभवै नहीं ॥ जो कहै, आत्माके भेदके अभाव हुये प्रधानकूं परके अर्थ होनेका असंभव होवैगा ? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं प्रधानके किये भोगमोक्षरूप अर्थके आत्माविषै असमवायतैं, जब प्रधानका किया बंध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुषनविषै भेदकरि समवायकूं प्राप्त होवै; तब आत्माकी एकताकरि प्रधानकूं पर अर्थ (जीवनका शेष) होनैका असंभव होवै । यातैं पुरुषके भेदकी कल्पना युक्त है, परंतु सांख्यवादियोनैं बंध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुषसैं समवायसंबंधवाला अंगीकार नहीं करियेहै; किंतु निर्विशेष चेतनमात्र आत्मा अंगीकार करियेहै; यातैं पुरुषकी सत्तामात्रका कियाहीं प्रधानका परअर्थपना सिद्ध है; परंतु पुरुषके भेदकाकिया नहीं । किंवा प्रधानका जो परअर्थपना है, सो अन्यशेषीकी अपेक्षा करैहै; तिसविषै भेदकी अपेक्षा नहीं । यातैं पुरुषके भेदकी कल्पनाविषै प्रधानका परअर्थपना हेतु नहींहै, औ सांख्यवादीनकूं पुरुषकी कल्पनाविषै अन्य-प्रमाण नहींहै । औ प्रधान जो है, सो इस पर (पुरुष)की सत्तामात्रकूंहीं निमित्त करिके आप बद्ध होवैहै औ मुक्त होवैहै । सेश्वरसांख्यवादीनके (योगके) मतविषै पर जो ईश्वर है, सो ज्ञानमात्र सत्तास्वरूपसैं प्रधानकी प्रवृत्तिविषै हेतु नहीं है, किंतु किसी बी विशेषसैं हेतु होवैगा; यातैं सांख्यवादीकरि केवल मूढतासैंहीं पुरुषके भेदकी कल्पना औ भेदके अर्थका त्याग करियेहै; युक्ति औ प्रमाणसैं नहीं ॥ औ जो वैशेषिक आदिक कहतेहैं कि:—इच्छा आदिक आत्मासैं समवायसंबंधवाले हैं ? सो बी असत् है:—काहेतैं स्मृतिके हेतु संस्कारनके अवयवरूप प्रदेशरहित आत्माविषै समवायके अभावतैं, तिनके सिद्धांतकी असिद्धि होवैगी । औ आत्मा अरु मनके संयोगतैं स्मृतिकी उत्पत्तिके अंगीकार किये स्मृतिके नियमका असंभव होवैगा (आत्म मनके संयोगरूप स्मृतिके कारणके होते अनुभवकालविषै बी स्मृति होवैगी ।

वा एक कालविषै सर्व स्मृतिनकी उत्पत्तिका प्रसंग होवैगा ।) भिन्न[१५७]-जातिवाले स्पर्श आदिक गुणसैं रहित जीवनका मन आदिकसैं संबंध युक्त नहीं है । नैयायिकनके[१५८] मतविषै द्रव्यतैं रूप आदिक गुण कर्म जाति विशेष औ समवाय भिन्न नहीं हैं । जब गुणादिक द्रव्यतैं अत्यंत भिन्नहीं होवैं औ जब इच्छा आदिक आत्मातैं अत्यंत भिन्न होवैं, तब बी तैसैं हीं द्रव्यसैं गुणआदिकके संबंधका औ आत्मासैं इच्छाआदिकके संबंधका असंभव होवैगा। जो कहै, अयुतसिद्ध (मिलितहोयकेसिद्ध) वस्तुनका समवायरूप संबंध विरोधकूं पावता नहीं ? सो[१५९] बनै नहीं—काहेतैं ऐसैं हुये अनित्य

---

१५७ किंवा समानजातिवाले औ स्पर्श आदिक गुणवाले पदार्थनका परस्पर संबंध देख्याहै। जैसैं मल्लनका मेघनका औ रज्जु घटादिकनका संबंध है । तिस समान जाति औ स्पर्श आदिक गुणके अभावतैं आत्माकी मनआदिकसैं संबंधकी असिद्धितैं, उक्त असमवायि कारणतैं, ज्ञान आदिक गुणोकी उत्पत्ति नहीं सिद्ध होवैहै; ऐसैं कहैहैं ।

१५८ गुण आदिकनकी समानजातिके औ स्पर्श आदिक गुणके अभाव हुयेबी द्रव्यसैं संबंधवाले आत्माका मन आदिकसैं संबंध सिद्ध होवैहै, ऐसैं जो वादी कहै; सो बनै नहीं; यह कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—स्वतंत्र जो सत्मात्र वस्तु, सो इहां द्रव्यशब्दसैं कहियेहै। वेदांतिनके मतविषै तिस द्रव्यतैं भेदकरि गुणादिक विद्यमान नहींहैं; काहेतैं, "शुक्ल पट है" औ "खंडा गौ है" इत्यादि स्थलमैं गुण गुणी आदिकके सामानाधिकरण्य(दो पदोंकी एक अर्थवान्ता)के देखनेतैं । औ द्रव्यहीं कल्पनासैं तिस तिस आकारकरि भासताहै, ऐसैं अंगीकार करनेतैं । यातैं दृष्टांतका असंभव नहींहै।

१५९ हे वादी ! तैनैं जो यह गुण आदिकनका अयुतसिद्धपना कहा; सो क्या अभिन्न कालवान्पनैरूप है, किंवा अभिन्न देशवान्पनैरूप है, किंवा अभिन्न स्वभाववान्पनैरूप है, किंवा संयोग औ विभागकी अयोग्यतारूप है ? ये च्यारी पक्ष हैं । तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहीं; काहेतैं, विकल्पकूं असहन करनेतैं; ऐसैं कहैहैं ।

इच्छाआदिकनतैं नित्य आत्माकूं पूर्व सिद्ध होनैतैं, आत्माके अयुतसिद्धपनैका असंभव है ।[१६०] आत्मासैं इच्छाआदिकनके अयुतसिद्धपनैंके हुये इच्छाआदिकनकूं आत्मगत महत्पनैकी न्याई, नित्यताका प्रसंग होवैगा; सो अनिष्ट है; काहेतैं इच्छाआदिकनकी नित्यताके हुये आत्माकूं मोक्षके अभावके प्रसंगतैं ।[१६१] औ समवाय संबंधकूं द्रव्यतैं अन्यपनैके हुये जैसैं द्रव्य औ गुणका समवायसंबंध है, तैसैं ता समवायका द्रव्यसैं अन्य संबंध कहना योग्य है । जो कहै समवाय नित्य संबंधहीं है, यातैं तिनका अन्य संबंध कहना योग्य नहीं? तो तैसैं[१६२] हुये समवायसंबंधवाले द्रव्य गुण आदिकनकूं बी नित्य संबंधके प्रसंगतैं, भिन्नताका असंभव होवैगा । द्रव्य आदिकनकी अत्यंत भिन्नताके हुये स्पर्शवान् औ अस्पर्शवान् द्रव्यके असंबंधकी न्याई तिनके संबंधका असंभव होवैगा । आत्माकूं गुणवान्पनैके हुये इच्छा आदिककी उत्पत्ति औ नाशकी न्याई आत्माकूं अनित्यताका प्रसंग होवैगा । औ देह अरु फल आदिककी न्याई सावयवपना, औ देह आदिककी न्याई हीं विकारवान्पना; ये दोनूं दोष निवारण करनैकूं अयोग्य होवैंगे । जैसैं[१६३] आ-

---

१६० इहां क्या इच्छा आदिककी अपेक्षासैं आत्माका अभिन्नकालवान्पना है, किंवा आत्माकी अपेक्षासैं इच्छा आदिककूं अभिन्नकालवान्पना है? ऐसैं प्रथम पक्षके विकल्पकरिके तांई दूषण दिया है ।

१६१ जब आत्माके साथि इच्छा आदिककूं अभिन्न कालवान्पना है, तब आत्माकूं अनादि होनेतैं तिसविषै स्थित महत्पनैकी न्याई तिस इच्छा आदिकनकूं नित्यताकी प्राप्ति होवैगी; ऐसैं कहैहैं ।

१६२ समवायकूं नित्यसंबंधरूप हुये समवायसंबंधवाले द्रव्य गुण आदिकनकूं वी इस नित्यसंबंधवाले होनेतैं कदाचित्‌बी भेदकी अप्रतीतितैं तिनके भिन्नपनैकी प्रसिद्धिका असंभव होवैगा, ऐसैं दूषण देतेहैं ।

१६३ जब आत्माकूं इच्छा आदिक गुणवान्पना नहींहैं, तब ताकूं

रूपकार्य्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै ।
आकाशस्य न भेदोऽस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः ६

काशकूं अविद्यासैं आरोपित रज धूम औ मलपनै आदिक दोषवानूपना है, तैसैं आत्माकूं अविद्यासैं आरोपित बुद्धि आदिक उपाधिके किये सुख औ दुख आदिक दोषवानूपनैके अंगीकार किये व्यवहारिक बंध औ मोक्ष आदिक विरोधकूं पावते नहीं; काहेतैं सर्व वादिनकरि अविद्याकृत व्यवहारके अंगीकारतैं औ परमार्थ (मोक्ष)विषै व्यवहारके अनंगीकारतैं । तातैं तार्किकनकरि आत्माके भेदकी कल्पना वृथाहीं करियेहै ॥ ५ ॥

टीकाः—ननु, एकहीं आत्माविषै अविद्याका किया आत्माके भेद निमित्तका व्यवहार यद्यपि श्रुति आदिकसैं बनैहै; तथापि अनुमानसैं कैसैं बनैहै ? तहां कहियेहैः—जैसैं इस एकहीं आकाशविषै घट कमंडलु अंतर्ग्रह आदिकके संबंधी आकाशनके अल्पपनै औ महत्पनै आदिक **रूप** औ जलका ल्यावना अरु धारण करना अरु शयन आदिक **कार्य**, औ घटाकाश कमंडलुआकाश औ अंतर्गृहाकाश आदिक तिन उपाधिनके किये **नाम**; ये तिस तिस व्यवहार-विषै **भिन्न देखिये हैं** । सर्व यह आकाशके रूप आदिकके भेदका किया व्यवहार अपरमार्थतैंहीं है, परमार्थतैं तो **आकाशका भेद नहीं है** । जैसैं आकाशके भेद निमित्तका व्यवहार घटादिक उपाधिके किये द्वारविना नहींहै, **तैसैं** देहादिक उपाधिके भेदके किये घटाकाशस्थानी **जीवनविषै** भेदके निरूपणतैं बुद्धिनकरि किया भेद है, स्वरूपतैं नहीं; यह **निर्णय** है ॥ ६ ॥

बंधके अभावतैं मोक्ष नहीं होवैगा; यातैं बंधमोक्षकी व्यवस्थाके असंभवसैं देह देहके प्रति सुखदुःख आदिककरि विशिष्ट आत्माके भेदकी सिद्धि है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ।

**नाकाशस्य घटाकाशो विकारावयवौ यथा ।
नैवात्मनः सदा जीवो विकारावयवौ तथा ॥७॥
यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः ।
तथा भवत्यबुद्धानामात्माऽपि मलिनो मलैः॥८॥**

टीकाः—ननु, तहां घटाकाश आदिकनविषै रूप औ कार्य आदिकके भेदका व्यवहार परमार्थरूप आकाशका कियाहीं है? यह कथन यथार्थ नहीं हैः—काहेतैं जैसैं सुवर्णका कुंडल आदिक विकार है, वा जलका फेन बुद्बुद औ बर्फ आदिक विकार है; तैसैं जातैं परमार्थरूप आकाशका घटाकाश विकार नहीं है; औ जैसैं वृक्षका शाखा आदिक अवयव है, तैसैं आकाशका घटाकाश अवयव बी नहीं। तातैं घटाकाश आदिकविषै जो भेदव्यवहार है, सो परमार्थरूप आकाशका किया नहीं। जैसैं आकाशका घटाकाश विकार औ अवयव नहीं; तैसैं परमार्थतैं सत्रूप महाकाशस्थानी परब्रह्मसैं अभिन्न आत्माका घटाकाशस्थानी जीव, सर्वदा उक्तदृष्टांतकी न्याई विकार नहीं है; औ अवयव बी नहीं है; यातैं आत्माके भेदका किया व्यवहार मिथ्याहीं है। यह अर्थ है ॥ ७ ॥

टीकाः—[१६४] जैसैं घटाकाश आदिक भेदबुद्धिका किया रूप औ कार्य आदिक भेदका व्यवहार है, तैसैं जातैं देह उपाधिवाले जीवके भेदका किया जन्म औ मरण आदिक व्यवहार है; तातैं तिस अविद्या रचित भेदका कियाहीं क्लेश कर्म फल औ राग आदिक मलकरि

१६४ जीव जो है, सो ब्रह्मका अंश नहीं है; औ विकार बी नहींहै; किंतु उपाधिविषै प्रवेशकूं पाया ब्रह्महीं जीवशब्दका वाच्य है, ऐसैं जो तुमनैं कहा; सो अयुक्त है। काहेतैं, ब्रह्मकूं शुद्ध होनेतैं, औ जीवकूं राग आदिक मलवाला होनेतैं, अरु अनेक होनेतैं, तिनकी एकताके असंभवतैं? यह आशंकाकरिके, परमार्थतैं जीवकूं बी मलवान्पना आदिक नहीं है; ऐसैं कहैहैं।

मरणे संभवे चैव गत्यागमनयोरपि ।
स्थितौ सर्व्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः ॥ ९ ॥
सङ्घाताः स्वप्नवत्सर्व्वे आत्ममायाविसर्जिताः
आधिक्ये सर्व्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते१०

युक्तपना है, परमार्थतैं नहीं; इस अर्थकूं दृष्टांतसैं प्रतिपादन करनेकूं इच्छिते हुये कहैहैं:—जैसैं लोकविषै अविवेकीरूप **बालकनकूं** आकाश वादल रज औ धूम आदिक **मलनसैं मलिन** (मलवाला) प्रतीत **होवैहै;** परंतु आकाशके स्वभावके विवेकी पुरुषनकूं आकाश मलवाला प्रतीत होवै नहीं । तैसैं विज्ञाता प्रत्यक् परब्रह्मरूप आत्मा है, सो बी प्रत्यगात्माके विवेकतैं रहित **अबुध** पुरुष—नकूं क्लेश कर्म औ कर्मफल आदिक **मलनसैं मलिन** प्रतीत होवैहै; परंतु जैसैं ऊषरदेश, तृषावान् प्राणीनकरि आरोप किये जल फेन औ तरंग आदिकवाला नहीं होवैहै; तैसैं आत्मा अबुध पुरुषनकरि आरोप किये क्लेश आदिक मलनसैं मलिन नहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥ ८ ॥

टीका:—फेरबी[१६५] उक्त अर्थकूंहीं वर्णन करैहैं:—घटाकाशके जन्म मरण गमन आगमन औ स्थितिकी न्याईं, सर्व **शरीरनविषै** आत्माकूं **जन्म मरण गमन आगमन औ स्थितिकेहुये बी** आत्मा **आकाशसैं अविलक्षण** (आकाशके तुल्य) प्रतीति करनेकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥ ९ ॥

टीका:—घटादिस्थानी **सर्व** देहादिक **संघात** तौ **स्वप्नविषै** दृश्य

---

१६५ ननु, जीव जो है; सो मरणके अनंतर धर्मके अनुसारसैं स्वर्गकूं जाताहै, औ अधर्मके वशतैं नरककूं पावताहै, औ धर्म अधर्म दोनूंके भोगकरि क्षय हुये फेर आयके कोइक योनिविषै जन्मताहै; तहां जहांलगि भोग है तहांलगि स्थित होयके, फेरबी परलोकके अर्थ गमन करताहै ।

रसादयो हि ये कोशा व्याख्यातास्तैत्तिरीयके ।
तेषामात्मा परो जीवः खं यथा संप्रकाशितः ११

देहादिक–की न्याई, औ मायावी पुरुषके किये देहादिककी न्याई, आत्माकी अविद्यारूप मायासैं रचित हैं, परमार्थतैं नहीं हैं, जातैं तिर्यक्के देहादिककी अपेक्षातैं देव आदिकके कार्य औ करणरूप संघातनकी अधिकताके[१६६] हुये वा सर्वकी समताके हुये, इन संघातनके सद्भावका प्रतिपादक हेतु नहीं है; तातैं ये संघात, अविद्याके कियेहीं हैं; परमार्थतैं नहीं हैं । यह अर्थ है १०

टीकाः–अब उत्पत्ति आदिकसैं रहित अद्वैतरूप इस आत्मतत्त्वकूं श्रुतिरूप प्रमाणकरि सिद्धताके दिखावनेअर्थ श्रुतिवाक्यनके कहनेका आरंभ करियेहैः–अन्न–रस–मय प्राणमय आदिक खड्ग आदिकके कोशनकी न्याई जे पांच कोश हैं, वे तैत्तिरीय उपनिषद्–विषै उत्तर[१६७] उत्तरकी अपेक्षासैं पूर्वके बहिरभावतैं व्याख्यान

ऐसैं इसलोक औ परलोकविषै विचरनैरूप व्यवहारसैं विरुद्ध अद्वैत है ? यह आशंका भई, तहां कहैहैं ।

१६६ देव आदिकके देहनकूं अत्यंत पूज्य होनेकरि अधिकताके अंगीकारतैं, तिनके असत्यपनैकी सिद्धि नहीं होवैगी ? यह आशंकाकरिके, देहके भेदनविषै मूढनकी दृष्टिसैं चेतनकी अधिकताकूं कल्पित हुयेबी विवेकिनकी दृष्टिसैं सर्व देह, समान पंचभूतरूप होनेतैं, सर्वकी समताके अंगीकार किये संघातनकी सत्यताविषै कोईबी संभव नहीं है, ऐसैं कहैहैं ।

१६७ जैसैं खड्ग आदिकके कोश (म्याने) जे हैं वे खड्ग आदिककी अपेक्षासैं बाहिर होवैहैं; तैसैं ये पंचकोश [आत्मातैं बाहिर] कहियेहैं। तिसविषै हेतु कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः–पूर्व पूर्वके अन्नमय आदिक कोशकूं पीछले पीछले प्राणमय आदिककी अपेक्षासैं बाहिर होनेतैं, औ सर्वांतर आधाररूप ब्रह्मकी अपेक्षासैं आनंदमयकूं बी तिनके तुल्य बाहिर होनेतैं, इन पांचोंका कोशपना तुल्य है ।

द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परं ब्रह्म प्रकाशितम् ।
पृथिव्यामुदरे चैव यथाऽऽकाशः प्रकाशितः॥१२

किये हैं; तिन कोशन-का पर -ब्रह्म-रूप आत्मा जीव है ॥ सो आत्मा तिनका जीव कैसैं है ? तहां कहैहैं:-जिस अत्यंत आंतर आत्मासैं ये पांच कोश बी आत्मावाले होवैहैं, सो आत्मा जातैं सर्व कोशनके जीवनका निमित्त है; यातैं तिनका जीव है ॥ सो कौंन है ? तहां कहैहैं:-जो परब्रह्मरूप आत्मा पूर्व "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है," ऐसैं प्रसंगविषै प्राप्त कियाहै; औ जिस आत्मातैं स्वप्न औ माया आदिककी न्याईं आकाश आदिकके क्रमसैं अन्नमय आदिक कोशरूप संघात आत्माकी मायासैं रचित हैं; ऐसैं कहाहै, सो आत्मा हमोंकरि जैसैं आकाश है, तैसैं "आत्मा आकाशकी न्याईं" इस [३] आदिक श्लोकनसैं सम्यक् प्रकाश किया है । परंतु नैयायिकनकरि कल्पित आत्माकी न्याईं पुरुषकी बुद्धिकरि कल्पित प्रमाणोका विषयरूप आत्मा प्रकाश किया नहीं । यह अभिप्राय है ॥ ११ ॥

टीका:-किंवा[१६८] "अधिदैव औ अध्यात्म तेजोमय अमृतमय पृथिवी आदिकके अंतर्गत जो विज्ञाता पुरुष है, सो परमात्माहीं हैं; सर्व ब्रह्म है" ऐसैं दोनूं दोनूं स्थानो-विषै द्वैतके क्षयप-

---

१६८ "मैं मनुष्य हूं, प्राणी हूं, प्रमाता हूं, कर्ता हूं, भोक्ता हूं" इन उपाधिविशिष्ट पांचोंका जो एक स्वरूप अनुस्यूत प्रत्यक् चैतन्य है, सो ब्रह्महीं है; ऐसैं जीवब्रह्मकी एकताविषै तैत्तिरीय श्रुतिके तात्पर्यकूं कहिके, तिसीहीं अर्थविषै बृहदारण्यक श्रुतिके बी तात्पर्यकूं कहैहैं । बृहदारण्यक उपनिषद्गत मधुब्राह्मणविषै वहुत पर्यायनमैं अधिदैव औ अध्यात्मरूप भिन्न स्थानोंविषै "यहहीं सो है" ऐसैं परब्रह्मरूप प्रत्यगात्मा प्रकाश कियाहै; यातैं बृहदारण्यक श्रुतिका बी इस ब्रह्म औ आत्माकी एकताविषै तात्पर्यहै । यह श्लोकके पूर्वार्द्धका अर्थ है ।

जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेन प्रशस्यते।
नानात्वं निन्द्यते यच्च तदेवं हि समञ्जसम्॥१३
जीवात्मनोः पृथक्त्वं यत्प्रागुत्पत्तेः प्रकीर्त्तितम्।
भविष्यद्वृत्त्या गौणं तन्मुख्यत्वं हि न युज्यते१४

यैंत परब्रह्म प्रकाश किया है ॥ कहां प्रकाश किया है? तहां कहैहैं:—जिसविषै ब्रह्मविद्या नामक मधु (अमृत) परमानंदका हेतु होनैतैं जानिये है, ऐसा जो मधुज्ञान (मधुब्राह्मण) तिस—विषै प्रकाश किया है॥ किसकि न्याई? तहां कहैहैं:—जैसैं लोकमैं पृथिवीविषै औ उदरविषै एकहीं आकाश अनुमानप्रमाणसैं प्रकाश किया है; तैसैं मधुब्राह्मणमैं पृथिवी आदिकविषै अधिदैवरूप औ शरीर आदिकविषै अध्यात्मरूप परब्रह्महीं प्रकाश किया है ।यह अर्थ है ॥ १२ ॥

टीकाः—जो युक्तितैं औ श्रुतितैं निर्द्धार किया जीव औ परमात्माका अनन्यपना सो व्यासादिकनकरि शास्त्रसैं अभेदकरि स्तुतिका विषय करियेहै, औ जो सर्व प्राणीनकूं साधारण स्वाभाविक (अविद्यारचित) शास्त्रसैं बाहिर किये कुतर्कनके कर्त्ता वादीनकरि रचित नानाभावका दर्शन "सो द्वितीय नहीं है" "द्वितीयतैं निश्चयकरि भय होवैहै;" "अल्प अंतरकूं करता है, पीछे ताकूं भय होवैहै" "जो यह सर्व है, सो यह आत्मा है;" "सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावताहै;" इत्यादि श्रुतिवाक्यनकरि औ अन्य ब्रह्मवेत्ता पुरुषनकरि निंदाका विषय करियेहै! जो यह है सो ऐसैंहीं समीचीन है। औ जो तर्क करनेवाले पुरुषनकरि कल्पना करी कुदृष्टियां हैं वे तो समीचीन नहीं, औ निरूपण करीहुई घटनाकूं नहीं प्रकाशे हैं। यह अभिप्राय है ॥१३॥

टीकाः—ननु, श्रुतिनैं बी सम्यक् ज्ञानतैं पूर्व (तिस सम्यक् ज्ञानरूप अर्थवाली उपनिषद्के वाक्यनतैं पूर्व कर्मकांडविषै) "यह काम है, यह काम है;" ऐसैं अनेकप्रकारके कामनाके भेदतैं जीवनका

भेद कहा है। औ "सो परमात्मा इस पृथिवी औ स्वर्गकूं धारण करता भया;" इत्यादि मंत्रनके कथनतैं तिनतैं भिन्न परमात्मा कहा है? ऐसैं जो जीव औ परमात्माका भिन्नपना कहा है। तहां कर्मकांड औ ज्ञानकांडके वाक्यनके विरोध हुये, ज्ञानकांडके वाक्यनके एकतारूप अर्थकाहीं समीचीनपना कैसैं निश्चय करियेहै? तहां कहियेहैः—"जिसतैं प्रसिद्ध ये भूत उपजते हैं;" "जैसैं अग्नितैं अल्प विस्फुलिंग होवैहैं" "तिस वा इस आत्मातैं आकाश होता भया," "सो ईक्षण करता भया; सो तेजकूं सृजता भया;" इत्यादिक सम्यक् ज्ञानरूप अर्थवाले उपनिषद्के वाक्यनतैं पूर्व कर्मकांडविषै जो जीव औ परमात्माका भिन्नपना कहा है, सो परमार्थरूप नहीं है; किंतु महाकाश औ घटाकाशके भेदकी न्यांई, "चावलकी रसोईकूं पकावता है;" इस वाक्यविषै जैसैं भविष्यप्रवृत्तितैं तंडुलनविषै भोजनपना है, ताकी न्याई गौण है; परंतु भेदवाक्यनका कदाचित् बी मुख्यपना (मुख्यभेदरूप अर्थवान्पना) घटता नहीं; काहेतैं आत्माके भेदके वाक्यनकूं स्वाभाविक (अनादि) अविद्यावाले प्राणीनकी भेदद्दष्टिके अनुवादी होनैतैं। इहां उपनिषदनविषै जातैं उत्पत्ति औ प्रलय आदिकके वाक्यनसैं, औ "सो तूं हैं;" "यह अन्य है, मैं अन्य हूं, ऐसैं जो जानता है; सो नहीं जानता है;" इत्यादिक वाक्यनसैं जीव औ परमात्माका एकपनाहीं प्रतिपादन करनेकूं इच्छित है। यातैं उपनिषदनविषै एकपना श्रुतिकरि प्रतिपादन करनेकूं इच्छित होवैगा; ऐसैं भविष्यवृत्तिवाले उत्पत्ति आदिकके वाक्यनकी मुख्यावृत्तिकूं आश्रय करिके, जो लोकविषै भेदद्दष्टिका अनुवाद है, सो गौणहीं है। यह अभिप्राय है। अथवा, "सो ईक्षण करता भया, सो तेजकूं सृजता भया;" इत्यादिक वाक्यनसैं "उत्पत्तितैं पूर्व एकहीं अद्वितीय था" ऐसैं एकपना कहा है। औ। "सो सत्य है, सो आत्मा है, सो तूं हैं;"

**मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्या चोदिताऽन्यथा ।
उपायः सोऽवताराय नास्ति भेदः कथञ्चन॥१५॥**

ऐसैं सोई एकपना होवैगा; ऐसी जिस भविष्यवृत्तिकी अपेक्षाकरिके, जो जीव औ आत्माका भिन्नपना जहां किसी बी वाक्यविषै जाननेमैं आवता है, सो "चावलकी रसोईकूं पकावता है" इस वाक्यविषै जैसैं भविष्यवृत्तिसैं तंडुलनविषै भोजनपना है, ताकी न्याई गौण है ॥ १४ ॥

टीकाः—ननु, यद्यपि उत्पत्तितैं पूर्व जन्मरहित सर्व एकहीं अद्वितीय था; तथापि उत्पत्तितैं अनंतर यह सर्व उत्पन्न भया है, औ जीव भिन्न है? ऐसैं मति कहोः—काहेतैं, उत्पत्तिकी श्रुतिनके अन्य अर्थके होनैतैं । "संघात स्वप्नकी न्याई आत्माकी मायासैं रचित है, अरु घटाकाशकी उत्पत्ति औ भेद आदिककी न्याई जीवनकी उत्पत्ति औ भेद आदिक है" ऐसैं पूर्व बी हमनैं यह दोष निवारण किया है; यातैं बी यह प्रश्न अवकाशरहित है । याहींतैं उत्पत्ति औ भेद आदिककी श्रुतिनतैं खैंचिके, इहां फेर उत्पत्तिकी श्रुतिनके ब्रह्मात्माकी एकताविषै तात्पर्यके प्रतिपादन करनेकी इच्छासैं यह कहनैका आरंभ हैः—**मृत्तिका सुवर्ण औ विस्फुलिंग आदिक दृष्टांतनके कथन-सैं जो सृष्टि कही है, औ अन्यप्रकारसैं जो सृष्टि कही है; सो सर्व सृष्टिका प्रकार हमारे (ब्रह्मवेत्ताके) मतविषै, जीव औ परमात्माके एकताकी बुद्धिकी उत्पत्तिके अर्थ उपाय है ।** जैसैं प्राण औ इंद्रियनके संवादविषै वाक् आदिकनकी आख्यायिका सुनियेहै, औ देवता अरु असुरनके संग्रामविषै देवताओनैं उद्गातापनैकरि अंगीकार किये वाक् आदिकके पापसैं असुरनकरि वध आदिककी आख्यायिका सुनिये है, सो प्राणकी श्रेष्ठताके बोधकी उत्पत्तिके अर्थ कल्पित है; तैसैं श्रुतिउक्त सृष्टिआदिककी प्रक्रिया बी अद्वैतबोधकी उत्पत्तिके अर्थ

कल्पित है ॥ ॥ जो कहै, संवाद श्रुतिके मुख्य अर्थके होनेतैं सो श्रुतिउक्त उदाहरण वी असिद्ध है? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं, अन्य शाखाविषै अन्य प्रकारसैं प्राण आदिकके संवादके श्रवणतैं जब संवाद परमार्थरूपहीं होता, तब सो संवाद एकरूपहीं सर्व शाखाविषै सुननेमैं आवता; औ विरुद्ध अनेक प्रकारसैं सुननेमैं आवता नहीं। [१६९]जातैं विरुद्ध अनेक प्रकारका सुनियेहै, तातैं संवादकी श्रुतिनका मुख्य अर्थविषै तात्पर्य नहीं है; किंतु अन्य अर्थविषैहीं तात्पर्य है। [१७०]तैसैं उत्पत्तिके वाक्य वी शाखाभेदसैं विरुद्ध अनेक प्रकारके होनेतैं मुख्य अर्थविषै तात्पर्यवाले नहीं हैं, किंतु अन्य अर्थविषै तात्पर्यवाले हैं; ऐसैं प्रतीति करनैकूं योग्य है ॥ जो कहै, कल्पकल्पकी सृष्टिके भेदतैं संवादकी श्रुतिनका सृष्टिसृष्टिके प्रति अन्यथापना होवैहै? सो बनै नहीं; काहेतैं उक्त बुद्धिकी उत्पत्तिरूप प्रयोजनविना संवाद श्रुतिनकूं निष्फल

---

१६९ श्रुतिनविषै कहींक प्राणआदिक (प्राणादिकके अभिमानी देव), विवाद करते हुये आपहीं निर्णय करनेकूं असमर्थ भये, प्रजापतिके पास गये, तब प्रजापतिनैं कहा कि:—जिसके निकसे हुये यह शरीर अमंगलरूप होवै, सो सर्वविषै श्रेष्ठ है। ऐसैं तिनका देहतैं बाहिर गमन सुनियेहै। औ कहींक तो स्वतंत्र होनेकरि जिसके निकसेहुये यह शरीर पतन होवै, सो अपने मध्य श्रेष्ठ है; ऐसैं विचारिके तिनका देहतैं बाहिर गमन कहियेहै। कहींक फेर वाक् चक्षु श्रोत्र औ मन ये च्यारी मुख्य प्राणतैं भिन्न सुनियेहैं। कहींक त्वचा आदिक वी सुनियेहैं। ऐसैं विरुद्ध अनेकप्रकारसैं प्राण औ इंद्रियनके संवादका श्रवण है; या अभिप्रायसैं कहैहैं।

१७० उक्त दृष्टांतके अनुसारतैं जगत्‌की उत्पत्तिके वाक्य वी स्वार्थविषै तात्पर्यवाले नहीं हैं [किंतु जगत्‌केमिथ्यात्वविषै तात्पर्यवाले हैं] काहेतैं, श्रुतिनविषै कहींक आकाश आदिकके क्रमसैं सृष्टि कही है, कहींक अग्नि आदिकके क्रमसैं सृष्टि कहीहै, कहींक प्राण आदिकके क्रमसैं सृष्टि कहीहै, कहींक क्रमविना सृष्टि कहीहै; ऐसैं परस्पर विरोधके देखनेतैं। यह कहैहैं।

आश्रमास्त्रिविधा हीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः ।
उपासनोपदिष्टेयं तदर्थमनुकम्पया ॥ १६ ॥

होनैतैं । संवाद औ उत्पत्तिकी श्रुतिनका उक्त बुद्धिकी उत्पत्ति-विना अन्य प्रयोजनवान्पना कल्पनेकूं शक्य नहीं है । जो कहै, प्राणादि भावकी प्राप्तिके लिये ध्यान अर्थ प्राणादिकका कीर्तन है? सो बनै नहीं:—काहेतैं कलह उत्पत्ति औ प्रलयकी प्राप्तिकूं अनिष्टरूप होनेतैं । तातैं उत्पत्ति आदिककी जे श्रुतियां हैं, वे आत्माके एकताकी बुद्धिकी उत्पत्ति अर्थहीं हैं, अन्य अर्थवाली कल्पनेकूं युक्त नहीं हैं । यातैं उत्पत्ति आदिकका किया भेद, किसी प्रकारसैं वी नहीं है ॥ १५ ॥

टीकाः—ननु, "एकहीं अद्वितीय है" इत्यादिक श्रुतिनतैं जब परब्रह्म रूपहीं आत्मा; नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाववाला; एक परमार्थरूप सत् है; औ अन्य असत् है; तब "अरे मैत्रेयी! आत्मा निश्चयकरि देखनेकूं योग्य है;" "जो आत्मा पापरहित है, सो ध्यावनेकूं योग्य है;" "सो अधिकारी क्रतु (उपास्यके संकल्प)कूं करे;" "आत्मा है, ऐसैंहीं उपासना करना;" इत्यादिक श्रुतिनतैं यह उपासना किस अर्थ उपदेश करी है, औ अग्निहोत्रादिक कर्म किस अर्थ उपदेश किये हैं? तहां सिद्धांती कहैहैं कि:—हे वादी! तहां कारण श्रवण करः—आश्रम (आश्रमवाले अधिकारी) औ आश्रमशब्दकूं दिखावने अर्थ होनैतैं शूद्रसैं भिन्न सन्मार्गगामी वर्ण (वर्णवाले अधिकारी) तीन प्रकारके हैं। कैसैं वे तीन प्रकारके हैं? तहां कहैहैं:—वे मंद (कार्यब्रह्मकूं विषय करनेवाली) मध्यम (कारण ब्रह्मकूं विषय करनेवाली) औ उत्कृष्ट (अद्वैतकूं विषय करनेवाली) दृष्टि (बुद्धिकी सामर्थ्य)करि युक्त हैं। तिन मंद औ मध्यम दृष्टिवाले आश्रमी आदिक—के अर्थ मंद औ मध्यम दृष्टिवाले पुरुष सन्मार्गगामी हुये इस उत्तम एक-

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम् ।
परस्परं विरुध्यन्ते तैरयं न विरुध्यते ॥ १७ ॥

ताकी दृष्टिकूं कैसैं प्राप्त होवैंगे; यह जानिके दयालु वेदनैं दया-करि यह उपासना उपदेश करी है; औ कर्म उपदेश कियेहैं। परंतु "आत्मा एकहीं अद्वितीय है;" इस निश्चयवाली उत्तमदृष्टि-करि युक्त पुरुषनके अर्थ नहीं ॥ काहेतैं, "[१७१]जाकूं मनसैं मनन करता नहीं, औ जिसनैं मनकूं जान्या है, ताहीकूं तूं ब्रह्म जान; जिस इसकूं लोक उपासते हैं, यह ब्रह्म नहीं है;" औ "सो [१७२]तूं हैं;" "आत्माहीं यह सर्व है;" इत्यादि श्रुतिनतैं ॥ १६ ॥

टीकाः—शास्त्र औ युक्तिकरि निश्चित होनैतैं अद्वैत आत्माका दर्शन सम्यक् दर्शन है; तातैं अन्य दर्शन शास्त्र आ युक्तिकरि बाहिर होनैतैं मिथ्या दर्शन है; यह निर्द्धार किया। अब या कहनैके हेतुतैं बी द्वैतवादीनका मिथ्या दर्शन है; काहेतैं, द्वैतवादीनकूं राग द्वेष आदिक दोषकरि युक्त होनेतैं ॥ ॥ कैसैं तिनकूं उक्त दोषकरि युक्तपना है? तहां कहैहैंः—कपिल कणाद औ बुद्धआदिककी दृष्टिके अनुसारी जे द्वैतवादी हैं; वे अपने **सिद्धांतकी रचनाके नियमनविषै,** "यह ऐसैंहीं परमार्थरूप है, अन्यथा नहीं," ऐसैं तहां तहां दृढ **निश्चित** (आसक्त) **हुये** औ अपने प्रतिपक्षीकूं देखते हुये ताके ताईं द्वेष करते हुये, ऐसैं राग द्वेषआदिककरि युक्त होयके अपने सिद्धांतके दर्शनके निमित्तहीं **परस्पर विरोधकूं पावतेहैं।** तिन परस्पर विरोधी वादीन-करि यह हमारा

---

[१७१] उपास्य जो है; सो ब्रह्महीं नहीं है; ऐसैं निषेधतैं उपासनाकूं मंद औ मध्यम दृष्टिवाले पुरुषनकी विषयता भासतीहै; ऐसैं कहैहैं।

[१७२] अद्वैत दृष्टिवाले पुरुषनकूं तो वर्ण औ आश्रमके भेदके अभि-मानके अभावतैंहीं उपासना वा कर्म नहीं संभवैहै; ऐसैं कहैहैं।

अद्वैतं परमार्थो हि द्वैतं तद्भेद उच्यते ।
तेषामुभयथा द्वैतं तेनायं न विरुध्यते १८

वेद उक्त आत्माकी एकताके दर्शनका पक्ष सर्वसैं अनन्य होनेतैं जैसैं अपनै हस्त पाद आदिकनसैं पुरुष विरोधकूं पावता नहीं; तैसैं विरोधकूं पावता नहीं । ऐसैं रागद्वेषकी अनाश्रय होनेतैं, आत्माके एकताकी बुद्धिहीं सम्यक् दर्शन है।यह अभिप्राय है॥ १७॥

टीकाः—किस हेतुकरि यह पक्ष तिनसैं विरोधकूं पावता नहीं? तहां कहियेहैः—जातैं **अद्वैत परमार्थरूप है,** औ **द्वैत** जो नानात्व सो तिस **अद्वैत-का भेद** (कार्य) **कहियेहै** । "एकहीं अद्वितीय है, सो तेजकूं सृजता भया;" इस श्रुतितैं, औ समाधिविषै मूर्छाविषै सुषुप्तिविषै द्वैतके अभावतैं अपनै चित्तके स्फुरणके अभाव हुये द्वैतके अदर्शनरूप युक्तितैं अद्वैत सिद्ध है; यातैं द्वैत ताका कार्य कहियेहै, कारण नहीं औ तिन द्वैतवादीनकूं तौ व्यवहारतैं औ परमार्थतैं **दोनूं प्रकारसैं बी द्वैतहीं है** । जब तिन भ्रांतनकूं द्वैतकी दृष्टि है, औ हम अभ्रांतनकूं अद्वैतकी दृष्टि है; तब **तिस हेतु-तैं यह** हमारा **पक्ष तिनतैं बिरोधकूं पावता नहीं** । "इंद्र मायाकरि बहुरूपकूं पावताहै, सोतो द्वितीय नहीं है;" इस श्रुतितैं । [१७३]जैसैं उन्मत्त, हस्तीपर आरूढ हुया जो पुरुष सो पृथ्वीपर आरूढ भये पुरुषके प्रति "मैं गजारूढ हूं, मेरेकूं वहन कर (लेजा);" ऐसैं कहनेवाले बी उन्मत्त पुरुषकूं देखिके ताके ताईं अविरोध बुद्धिसैं वहन करता नहीं, ताकी न्याईं । तातैं परमार्थतैं ब्रह्म चेतन द्वैतवादीनका आत्माहीं है, तिस हेतुतैं यह हमारा पक्ष तिनतैं विरोधकूं पावता नहीं ॥ १८ ॥

---

१७३ भ्रांतिरूप मूलवाले द्वैतके सिद्धांतनसैं प्रमाणरूप मूलवाला अद्वैत सिद्धांत अविरुद्ध है; इस अर्थकूं इहां दृष्टांतसैं प्रतिपादन करैहैं ।

मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाऽजं कथञ्चन ।
तत्त्वतो भिद्यमाने हि मर्त्यताममृतं व्रजेत् १९
अजातस्यैव भावस्य जातिमिच्छन्तिवादिनः ।
अजातो ह्यमृतो भावो मर्त्यतां कथमेष्यति २०

टीकाः—द्वैत अद्वैतका भेद (कार्य) है, ऐसैं कथन किया द्वैत वी अद्वैतकी न्याई परमार्थतैं सत् होवैगा ? ऐसैं किसीकूं वी आशंका भई, तहां कहैहैंः—परमार्थतैं सत्‌रूप जो अद्वैत है; यह तिमिर दोषकरि युक्त दृष्टिवाले पुरुषकरि कल्पित अनेक चंद्रकी न्याई, औ सर्प अरु जलधारा आदिक भेदनसैं रज्जुकी न्याई, **मायासैं भेदकूं पावता है;** परमार्थतैं[174] नहीं; काहेतैं आत्माकूं निरवयव होनैतैं। जातैं सावयव वस्तु अवयवनके अन्यथा भावसैं भेदकूं पावता है; जैसैं घटादिक भेदनसैं मृत्तिका। तातैं निरवयव औ **अजन्मा** जो अद्वैत, सो किसीवी प्रकारसैं **अन्यथा** (भेदकूं प्राप्त) **होवै नहीं।** यह अभिप्राय है ॥ **जातैं तत्त्वतैं** (परमार्थतैं) **भेदकूं प्राप्त हुये** स्वभावतैं; **अमृत** औ अजन्मा हुया अद्वैत, **मरनैकी योग्यताकूं प्राप्त होवैगा;** जैसैं अग्नि शीतलताकूं प्राप्त होवै तैसैं। सो स्वभावके विपरीतपनैकी प्राप्ति, सर्व प्रमाणोके विरोधतैं अनिष्ट है। यातैं अजन्मा अविनाशी जो आत्मतत्त्व, सो मायासैंहीं भेदकूं पावताहै; परमार्थतैं नहीं; तातैं द्वैत, परमार्थतैं सत् नहीं है ॥ १९ ॥

टीकाः—जो[175] फेर केईक उपनिषद्के व्याख्यान करनेवाले वाचाल

---

१७४ विवादका विषय जो भेद, सो मिथ्या है; भेद होनेतैं, चंद्र आदिकके भेदकी न्याई ॥ विवादका विषय जो आत्मतत्त्व, सो स्वरूपतैं भेदरहित है; निरवयव होनेतैं, नित्य होनेतैं औ अजन्मा होनेतैं, व्यतिरेकसैं मृत्तिका आदिककी न्याईं; ऐसैं कहैहैं।

१७५ ऐसैं अपने पक्षकूं कहिके, अब अपने (वेदांतीनके) यूथविषै परिगणित [वेदांतके एक देशी] वादीनके पक्षकूं अनुवादकरिके दूषण देतेहैं।

**न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतन्तथा ।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ॥ २१ ॥
स्वभावेनामृतो यस्य भावो गच्छति मर्त्यताम् ।
कृतकेनामृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः ॥२२॥**

ब्रह्मवादी (उपासक,) स्वभावतैं अजन्मा औ अमररूपहीं आत्मतत्त्वरूप भावकी परमार्थतैंहीं उत्पत्तिकूं इच्छतेहैं । "जो जन्मकूं पायाहै, सोई अवश्य मरनेकी योग्यताकूं पावैगा" इस न्यायतैं तिनका सो आत्मा, स्वभावतैं अजन्मा औ अमृतभावरूप हुया मरनेकी योग्यताकूं कैसैं पावैगा? किसीप्रकारसैं वी मरनेकी योग्यतारूप स्वभावकी विपरीतताकूं नहीं पावैगा । यह अर्थ है ॥ २० ॥

टीका:–[१७६]जैसैं लोकविषै अमृत वस्तु मरनेकूं योग्य होता नहीं; तैसैं मरनेकूं योग्य वस्तु वी अमृत होता नहीं; तातैं अग्निके[१७७] उष्ण स्वभावकी न्याई स्वभावका अन्यथाभाव (स्वरूपतैं भ्रष्टपना) किसीप्रकारसैं बी नहीं होवैगा ॥ २१ ॥

टीका:–जिसै[१७८] वादी-का स्वभावसैं अमृतरूप भाव मरनेकी योग्यताकूं पावताहै (परमार्थतैं जन्मकूं पावताहै) तिस वादी-की

---

१७६ पदार्थनकूं स्वभावके विपरीतपनैकी प्राप्ति अघटित है; ऐसैं जो कह्या, ताकूं वर्णन करैहैं ।

१७७ इहां यह अर्थ है:– जैसैं अग्निके स्वभावरूप उष्णपनैकूं शीतपनैकी प्राप्तिरूप विपरीतपना अयुक्त है, तैसैं अन्य ठिकानै बी स्वभावका विपरीतपना अयुक्त है काहेतैं, स्वरूपके नाशके प्रसंगतैं ।

१७८ ननु; ब्रह्म, कारणरूपसैं कार्यकी उत्पत्तितैं पूर्व मरणरहित हुया बी कार्यके आकारसैं उत्पत्तिके अनंतरकालविषै मरनेकी योग्यताकूं पावैगा; तातैं रूपके भेदतैं दोनूं अविरुद्ध हैं? यह आशंका भई; तहां कहैहैं ।

भूततोऽभूततो वाऽपि सृज्यमाने समा श्रुतिः ।
निश्चितं युक्तियुक्तञ्च यत्तद्भवति नेतरत् ॥ २३ ॥

"सो भाव, उत्पत्तितैं पूर्व स्वभावतैं अमृत है," ऐसी प्रतिज्ञा मिथ्याहीं होवैगी । तब कैसैं है? तहां कहैहैंः—तिसवादी-का (जन्य होनेकरि) अमृत सो भाव निश्चल हुया (अमृत स्वभावपनैकरि) कैसैं स्थित होवैगा, किसीप्रकारसैं बी स्थित होवै नहीं । याका यह अभिप्राय हैः—आत्माकी उत्पत्ति वादीके मतविषै सर्वदा अजन्मा वस्तु कोउ नहीं है; किंतु सर्व यह वस्तु मरनेकूं योग्य है; यातैं मोक्षके अभावका प्रसंग होवैगा ॥ २२ ॥

टीकाः—ननु, आत्माकी अनुत्पत्तिके वादीकूं सृष्टिकी प्रतिपादक श्रुति प्रमाणिक नहीं होवैगी? तहां कहैहैंः—सृष्टिकी प्रतिपादक श्रुति है, यह तेरा कथन सत्य है; परंतु सो अन्य अर्थके परायण है; यह हमनैं "सो अद्वैत बोधकी उत्पत्ति अर्थ उपाय है" इस [१९] विषै कहाहै । अब समाधानके पूर्व कहे हुये बी फेर प्रश्न औ उत्तर जे कहियेहैं, वे कहनेकूं वांच्छित अर्थके प्रति सृष्टि-प्रतिपादक श्रुतिके अक्षरनके अनुलोमपनैके विरोधकी आशंका-मात्रके निवारण अर्थ हैंः—भूततैं (परमार्थतैं) उत्पन्न होनेवाले वस्तुविषै, वा अभूततैं (मायासैं) बी (मायाविना हीं) उत्पन्न होनेवाले वस्तु-विषै, सृष्टिकी श्रुति तुल्य है ॥ ननु, गौण औ मुख्य दोनूं कार्यनके मध्य मुख्यविषै शब्दके अर्थका निश्चय युक्त है? सो बनै नहींः—काहेतैं, मिथ्यापनैविना अन्यप्रकारसैं सृष्टिकूं

---

१७९ परिणामवादकी सृष्टिप्रतिपादक श्रुतिके अनुसारसैं अंगीकार—करनेकी योग्यताकी आशंकाकरिकें निषेध करैहैं ।

१८० इहां यह भाव हैः—परिणामवादविषै औ विवर्त्तवादविषै सृष्टिप्रतिपादक श्रुतिके अविशेषतैं (तुल्यतातैं) अद्वैतके अनुसारी श्रुति औ युक्तिके वशतैं विवर्त्तवादकीहीं अंगीकार करनेकी योग्यताहै ।

नेह नानेति चाम्नायादिन्द्रो मायाभिरित्यपि ।
अजायमानो बहुधा मायया जायते तु सः ॥ २४ ॥

अप्रसिद्ध होनैतैं, औ निष्प्रयोजन होनैतैं औ "बाहिर भीतर सहित है, औ अजन्मा है" इस श्रुतितैं, अविद्याअवस्थाविषैहीं विद्यमान सर्व गौणी (स्वप्नगत रथादि) औ मुख्या (जाग्रत्‌गत घटादि)रूप सृष्टि परमार्थतैं नहीं है; ऐसैं हम कहते हैं । [181]तातैं श्रुतिकरि निश्चित जो एकहीं अद्वितीय अजन्मा अमृतरूप वस्तु है औ युक्तिकरि युक्त है, सोई श्रुतिका अर्थ होवैहै; अन्य कदाचित्‌वी नहीं, ऐसैं हम पूर्वके ग्रंथनसैं कहतेहैं ॥ २३ ॥

टीकाः—श्रुतिकी[182] निश्चय कैसा है? तहां कहैहैंः—जब भावरूपहीं सृष्टि होवै, तातैं नाना वस्तु सत्यहीं होवैगा, यातैं ताके अभावके दिखावनेअर्थ वेदवाक्य नहीं होवैगा, औ "इसविषै नाना कछुबी नहीं है;" इत्यादिरूप यह द्वैतभावके निषेधरूप अर्थवाला वेदवाक्य है । तातैं प्राणके संवादकी न्याई आत्माकी एकताके निश्चयअर्थ कल्पित जो सृष्टि, सो मिथ्याहीं है । औ 'इंद्र मायाकरि' ऐसैं मिथ्या अर्थके प्रतिपादक मायाशब्दकरि कथनतैं बी ॥ ननु, मायाशब्द प्रज्ञाका वाची है? यह तेरा कथन सत्य है, [183]तथापि

१८१ सृष्टिकी श्रुतिकूं अद्वैतके अनुसारीपनैके हुये प्रमाण औ युक्तिके अनुग्रहसहित अद्वैतहीं अंगीकार करनेकूं योग्य है, ऐसैं फलित अर्थकूं कहैहैं।

१८२ सृष्टिके मिथ्यापनैके स्पष्ट करनेरूप द्वारसैं अद्वैतकूंहीं श्रुतिके अर्थपनैकरि निर्धार करनैकूं श्रुतिके निश्चयकूंहीं वर्णन करैहैं ।

१८३ इहां यह अर्थहैः— जातैं मायाशब्दकी वाच्य जो प्रज्ञा है, सो ब्रह्म चैतन्य नहीं है; काहेतैं "फेर अंतविषै विश्व औ मायाकी निवृत्ति होवैहै" इत्यादि वाक्यविषै मायाकी निवृत्तिके श्रवणतैं । किंतु यह प्रज्ञा इंद्रियजन्य है, औ ताकूं अविद्याके अन्वय औ व्यतिरेककी अनुसारी हो-

सम्भूतेरपवादाच्च सम्भवः प्रतिषिद्ध्यते ।
को न्वेनं जनयेदिति कारणं प्रतिषिद्ध्यते ॥२५॥

इंद्रियजन्य प्रज्ञाकूं अविद्यारूप होनेकरि माया (मिथ्या)पनैके अंगीकारतैं, दोष नहीं है; यातैं इंद्र जो परमात्मा, सो अविद्यारूप इंद्रियजन्य बुद्धिवृत्तिमय मायाकरि बहुरूप हुया प्रतीत होवैहै; ऐसा अर्थ होवैहै । औ "**जन्मरहित हुया बहुतप्रकारसैं** जन्मता है" इस श्रुतितैं । तातैं **सो मायासैंहीं जन्मताहै** । जातैं अग्निविषै शीतलता औ उष्णता, इन दोनूंके असंभवकी न्याई एकहीं आत्माविषै जन्मरहितपना औ बहुत प्रकारसैं जन्म, ये दोनूं संभवते नहीं; यातैं सो मायासैंहीं बहुतप्रकारसैं जन्मता है, यह कहना युक्त है । औ फलवान् होनेतैं आत्माकी एकताका ज्ञानहीं सृष्टिकी श्रुतिनका निश्चित अर्थ है; "तहां एकताके देखनेवालेकूं कौन मोह है, कौन शोक है?" इत्यादिक वेदमंत्रके कथनतैं, औ "सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावताहै" ऐसैं सृष्टिआदिककी भेददृष्टिकूं निंदित होनैतैं ॥ २४ ॥

टीकाः—"जे [१८४]संभूतिकूं उपासते हैं, वे अंधतमके तांई प्रवेश **करते हैं"** इस श्रुतितैं, **संभूतिके** उपास्यपनैकी **निंदातैं संभव** (कार्य) **का निषेध करियेहै** । जातैं परमार्थतैं संभूतिके विद्यमान हुये ताकी निंदा संभवै नहीं, औ निंदा करियेहै; यातैं ताका अवस्तुपना सिद्ध भया ॥ ननु, विनाश (कर्म) सैं **संभूति** (देवताकी उपासना) के समुच्चयअर्थ संभूतिकी निंदा है; जैसैं "जे अविद्या (कर्म) कूं उपासते हैं, वे अंधतमकेताई प्रवेश करतेहैं" इस वाक्यविषै कर्मसैं उपासनाके समुच्चयकी विधिअर्थ कर्मकी निंदा है, तैसैं? तहां कहैहैं:—संभूति (हिरण्यगर्भ) रूप विषय-

---

नेसैं अविद्यारूप होनेकरि मिथ्या होनेतैं मायाशब्दके मिथ्या अर्थवान्पनैविषै असंभव नहीं है ।

१८४ भेददृष्टिके मिथ्यापनैविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ।

वाली देवताकी उपासनाके औ विनाशशब्दके वाच्य कर्मके समुच्चयके विधान अर्थ, संभूतिकी निंदा है; यह तेरा कथन सत्य है; तथापि जैसैं पुरुषके[185] संस्काररूप अर्थवाले विनाश नामवाले कर्मकूं स्वाभाविक अज्ञानसैं जन्य प्रवृत्तिरूप मृत्युका तरणरूप अर्थवान्पना है, तैसैं पुरुषके संस्काररूप अर्थवाले देवताके ज्ञान औ कर्मके समुच्चयकूं कर्मफलविषै रागसैं जन्य प्रवृत्तिरूप साध्य औ साधन दोनूंकी इच्छारूप मृत्युका तरणरूप अर्थवान्पना है। ऐसैं कर्मरूप अविद्यासैं दोनूं एषणारूप मृत्युतैं तरेहुये औ उपनिषद् शास्त्रके विचारविषै तत्पर भये विरक्तकूं परमात्माकी एकताके विद्याकी उत्पत्ति अंतरायवाली नहीं है; ऐसैं पूर्व होनेवाली कर्मरूप अविद्याकी अपेक्षासैं पीछे होनेवाली अमृतभावकी साधनरूप ब्रह्मविद्या, एक पुरुषसैं संबंधकूं प्राप्त हुई कर्मरूप अविद्यासैं समुच्चयकूं पावती है, ऐसैं कहियेहै। यातैं अन्य अर्थके होनेतैं अमृतभावकी साधनरूप ब्रह्मविद्याकी अपेक्षाकरिके संभूतिका जो अपवाद है, सो निंदाके अर्थहीं होवैहै; समुच्चयकी विधिके अर्थ नहीं। यद्यपि उपासना औ कर्मका समुच्चय अशुद्धिके वियोगका हेतु है, यातैं सोई ताका अन्य अर्थ होवैगा, अपवादरूप अन्य अर्थ नहीं; तथापि परमार्थतैं पवित्रतारूप फलके अभावतैं अपवादकी सिद्धि है। याहीतैं संभूतिके अपवादतैं संभूतिका आपेक्षिकहीं सत्पना है, ऐसैं परमार्थ सत्रूप आत्माके एकताकी अपेक्षाकरिके अमृतनामवाले संभव (कार्य)का निषेध करियेहै। ऐसैं मायासैं रचित औ अ-

१८५ इहां यह अर्थ है:—कामचार (यथेच्छाचरण), कामवाद (यथेच्छाकथन), औ कामभक्षण आदिक स्वाभाविक प्रमादमय प्रवृत्तिरूप अशुद्धिका वियोगरूप संस्कार; जैसैं नित्य अग्निहोत्र आदिकका फल है, तैसैं निष्काम पुरुषकरि अनुष्ठान किये कर्म उपासनाके समुच्चयका फलरूप कामनामक अशुद्धिकी निवृत्ति है; सो बी संस्कार है।

स एष नेति नेतीति व्याख्यातं निन्हुते यतः ।
सर्वमग्राह्यभावेन हेतुनाऽजं प्रकाशते ॥ २६ ॥

विद्यासैं स्थित भयेहीं जीवकूं अविद्याके नाश हुये स्वभावरूप होनेतैं परमार्थतैं इसकूं कौन उत्पन्न करैगा ? कोईबी नहीं । जैसैं रज्जुविषै अविद्यासैं आरोपित भये, फेर विवेकतैं नष्ट भये सर्पकूं कोईबी उत्पन्न करता नहीं, तैसैं इसकूं कोईबी उत्पन्न करता नहीं; ऐसैं कारणका निषेध करियेहै । अभिप्राय यह जोः—अविद्यासैं उत्पन्न भये औ नष्ट भये जीवका उपजावनेवाला कारण कछुबी नहीं है; काहेतैं "यह किसीतैं बी नहीं भया है, औ कोईबी नहीं होता भया;" इस श्रुतितैं ॥ २५ ॥

टीकाः—"अब याके पीछे 'नेति नेति' यह आदेश है" ऐसैं सर्व विशेषके निषेधसैं प्रतिपादन किये आत्माके दुःखसैं बोधन करनेकी योग्यताकूं मानती हुई श्रुति, फेरि फेरि अन्य उपायपनैकरि तिसीहीं आत्माके प्रतिपादन करनेकी इच्छासैं जो जो व्याख्यान कियाहै तिस सर्वकूं निषेध करैहै; कहिये, "[१८७]सो यह नेति नेति (ऐसा नहीं ऐसा नहीं)" ऐसैं आत्माकी अदृश्यताकूं दिखावती हुई श्रुति, अर्थतैं उत्पत्तिवाले बुद्धिके विषय ग्राह्य व-

---

१८६ इस कथन करनेके प्रकारसैं बी द्वैत वास्तव नहीं होवैहै; ऐसैं कहैहैं ।

१८७ "सर्वकूं निषेध करैहै" इत्यादिरूप अर्थकूं स्पष्ट करते हुये "सो यह ऐसैं नहीं, ऐसैं नहीं" इस श्रुति वाक्यका व्याख्यान करैहैं । इहां यह अर्थ हैः—"सो यह ऐसैं नहीं, ऐसैं नहीं" इत्यादिरूप श्रुति, विशेषके निषेधरूप द्वारसैं आत्माकी अदृश्यरूपताकूं दिखावती हुई जो दृश्यरूप कार्य, मन औ वाणीका विषय है, तिस सर्वकूं अर्थतैं निषेध करैहै । सोइ श्रुति, परमार्थतैं तो अदृश्य ऐसैं कहती हुई दृश्यका वस्तुपना बनै नहीं; ऐसैं कहतीहै । तैसैं हुये वस्तुपनैके असंभवतैं दृश्यवर्गका अवस्तुपना सिद्ध भया ।

स्तुकूं निषेध करैहै । अर्थतैं उपायकी उपेयविषै स्थितिकूं न जाननेवाले पुरुषकूं उपायपनैकरि व्याख्यान किये वस्तुकी उपेयकी न्याई ग्राह्यता मति होऊ; या अभिप्रायसैं जातैं अग्राह्यभावरूप हेतुसैं व्याख्यान किये सर्वकूं निषेध करैहै । [१८९]तातै ऐसैं उपायकी उपेयविषै स्थितिकूंहीं जाननेवालेकूं औ उपेयकी नित्य एकरूपता है, ऐसैं जाननेवाले तिस पुरुषकूं; बाहिर भीतरसहित अजन्मा आत्मतत्त्व आपहीं प्रकाशता है ॥ २६ ॥

---

१८८ ननु, यह श्रुति प्रपंचके समूहकूं क्यूं निषेध करैहै ? ऐसैं हुये पंकप्रक्षालन (कादवके धोय डालनेके) न्यायकी प्राप्तितैं, व्याख्यान किये अर्थकी व्यर्थता होवैगी ? यह आशंका करिके, "अग्राह्यभावसैं" इत्यादि पदका व्याख्यान करैहैं । इहां यह अर्थहै:—"दोनूं प्रसिद्ध" इत्यादि वाक्यकरि व्याख्यान किये औ ब्रह्म आत्मा मात्र स्वरूपसैं स्थितिपर्यंत अप्रतिपादन किये औ ब्रह्मरूप उपेयकी न्याईंहीं उपायपनैकरि मानेहुये प्रपंचके वास्तवपनैकरि जाननेके योग्यताकी जो शंका है, सो मति होहू; ऐसैं सर्व प्रपंचसैं रहित होनेकरि अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपके निर्द्धार करने अर्थ श्रुति, आरोपित प्रपंचका निषेध करैहै ।

१८९ उपायकूं कल्पित होनेकरि वास्तवपनैके अभावतैं, औ उपेय (उपायकरि प्राप्त होने योग्य ब्रह्म)कूं कैसैं तिसप्रकारके वस्तुकी प्राप्ति होवैगी ? यह आशंका करिके, "अजन्मा" इत्यादि पदका व्याख्यान करैहैं। इहां यह अर्थ है:—आरोपित सर्व प्रपंचके निषेधतैंहीं आरोपित सर्पादिकके अधिष्ठानसैं भिन्न असतूपनैकी न्याई, स्वतंत्रपनैकरि (अधिष्ठानकी सत्ताविना) मूर्तादि प्रपंचरूप उपायके वास्तवपनैके अभावके निश्चयतैं, उपेयरूप अद्वितीय ब्रह्ममात्र स्वरूपताकूंहीं प्राप्त भये औ ब्रह्मकी सदा एकरूपता कूटस्थता नित्य ज्ञान स्वभावता आदिककूं जाननेवाले तिस उत्तम अधिकारीकूं अन्यकी अपेक्षासैं विना उक्त विशेषणवाला आत्मतत्व आपहीं प्रकाशित होवैहै । औ कल्पित प्रपंचका जो उपायपना है, सो प्रतिबिंब आदिककी न्याईं अविरुद्ध है ।

सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः ।
तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते ॥२७

टीकाः–[१९०]ऐसैंहीं सैकडो श्रुतिके वाक्यनसैं, वाहिर भीतर सहित अजन्मा आत्मतत्त्व अद्वैत है, तातैं अन्य नहीं है; ऐसैं निश्चितहीं है, औ सो युक्तितैं बी निश्चितहीं है । अब यहहीं आत्मतत्त्व फेर अन्य युक्तिसैं निर्द्धार करियेहै; ऐसैं कहैहैं:–जो कहै, तहां यह आत्मतत्त्व सदा अग्राह्यहीं है, तौ असत्हीं होवैगा ? सो वनै नहीं:–काहेतैं कार्यरूप लिंगवाले [१९१]अनुमानके वशतैं, आत्मतत्त्वके अकारणपनैकरि सद्भावके निर्णयतैं । जैसैं विद्यमान मायावीका मायासैं जन्मरूप कार्य है, ऐसैं जगत्का जन्मरूप जो कार्य है, सो ग्रहण किया हुया मायावीकी न्याई विद्यमान जगत्के जन्म औ मायाके आश्रयरूपहीं आत्माकूं जनावे है । जातैं विद्यमान कारणतैं माया रचित हस्ती आदिक कार्यकी न्याई मायासैं जगत्का जन्म घटेहै, असत् कारणतैं नहीं; तातैं कारणका सद्भाव विवादसैं रहित है । औ तत्त्वतैं (परमार्थतैं) तौ आत्माका जन्म घटता नहीं । अथवा जैसैं विद्यमान रज्जुआदिक वस्तुका सर्पादिककी न्याई मायासैं जन्म घटेहै, स्वरूपसैं तो नहीं । तैसैं अग्राह्य सत्–रूपहीं आत्माका बी रज्जुसर्पकी न्याई **मायासैं जन्म घटेहै; परंतु तत्त्वतैंहीं** अजन्मा आत्माका जन्म **नहीं है । फेर जिस वादी–के मतविषै जातैं** तत्त्वतैं परमार्थसत्रूपसैं अजन्मा आत्मतत्त्व जगद्रूपसैं ज-

---

१९० आत्मतत्व जो है, सो अजन्मा अद्वितीय परमार्थरूप है; औ द्वैत तो मायासैं कल्पित असत् है, ऐसैं प्रतिपादन किया, तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ।

१९१ इहां यह अनुमानरूप अर्थ है:–विवादका विषय जो जगत्का जन्म, सो सत्रूप अधिष्ठानवाला है; कार्य होनेतैं, प्रसिद्ध कार्यकी न्याईं ।

**असतो मायया जन्म तत्वतो नैव युज्यते ।
वन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वाऽपि जायते२८
यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः ।
तथा जाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः॥२९॥**

न्मता है, तिस वादीके मतविषै अजन्मा जन्मताहै, ऐसैं कहनेकूं शक्य नहीं है; विरोधके होनेतैं। तातैं तिस वादी—के मतविषै अर्थात् जन्मकूं पाया हुया जन्मताहै, ऐसैं प्राप्त भया। तिसतैं जन्मकूं प्राप्त भये आत्माकूं फेर जन्मकूं प्राप्त होनेकरि अनवस्थाकी प्राप्तितैं, अजन्मा एकहीं आत्मतत्त्व है; ऐसैं सिद्ध भया ॥ २७ ॥

टीकाः—[१९२]असत् वादीनके मतविषै असत् पदार्थ—का मायासैं वा तत्त्वतैं किसीबी प्रकारसैं जन्म नहीं घटेहै, ताकूं अदृष्टरूप होनेतैं। जातैं वंध्याका पुत्र मायासैं वा तत्त्वतैं बी जन्मकूं; पावता नहीं; तातैं असत्वाद दूरतैंहीं अघटित है। यह अर्थ है ॥ २८ ॥

टीकाः—[१९३]फेर सत् वस्तुका मायासैंहीं जन्म कैसैं है ? तहां कहिये है;—जैसैं रज्जुविषै कल्पितसर्प रज्जुरूपसैं देख्या हुया सत् है, ऐसैं मन जो है सो परमार्थ ज्ञानस्वरूप आत्मरूपसैं देख्या हुया सत् है। सो मन जैसैं स्वप्नविषै रज्जुमैं सर्पकी न्याई मायासैं ग्राह्य औ ग्राहकरूपसैं द्वैताभासरूप हुया मायासैं स्फुरताहै; तैसैं जाग्रत्विषै मन मायासैं ग्राह्य ग्राहकरूपसैं द्वैताभासरूप हुया मायासैं स्फुरते हुयेकी न्याई स्फुरता है ॥ २९ ॥

---

१९२ कार्य जो है सो सत्रूप कारणपूर्वक है, ऐसी व्याप्ति नहीं है, काहेतैं, असत् वादीनकरि असत्रूप कारणतैं सत्रूप कार्य्यके जन्मके अंगीकारतैं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं।

१९३ सत् वस्तुकाहीं मायासैं जन्म होवैहै, ऐसैं कथन किये अर्थकूंहीं प्रतिपादन करैहैं।

अद्वयश्च द्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः ।
अद्वयश्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः ॥३०॥
मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत् किञ्चित् सचराचरम् ।
मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥ ३१ ॥

टीका:–[194]रज्जुरूपसैं सर्पकी न्याई स्वप्नविषै परमार्थतैं आत्मरूपकरि अद्वैत हुया औ सो मन द्वैताभास (नानारूप) होयके स्फुरता है। जातैं स्वप्नविषै हस्ती आदिक ग्राह्य औ चक्षु आदिक ग्राहक ये दोनूं ज्ञानतैं भिन्न नहीं हैं; यातैं यामैं संशय नहींहै । तैसैंहीं जाग्रत्विषै बी मन, अद्वैतरूप हुया औ द्वैताभासरूप होयके स्फुरता है यामैं संशय नहीं; काहेतैं, परमार्थ सत्रूप विज्ञानमात्ररूपके अविशेषतैं ॥ ३० ॥

टीका:–[195]रज्जुसर्पकी न्याई कल्पनारूप मनहीं द्वैतरूपसैं युक्त है, तहां कौन प्रमाण है ? यह आशंका भई, तातैं अन्वय औ व्यतिरेकरूप अनुमानकूं कहैहैं:–कैसैं सो अनुमान है ? तहां कहैहैं:–तिसीहीं कल्पनारूप मनसैं देखने योग्य जो कछु चराचरसहित यह द्वैत है सो सर्व मनहीं है, यह प्रतिज्ञा है; काहेतैं, तिस मनके भाव हुये द्वैतके भावतैं औ तिस मनके अभाव हुये द्वैतके अभावतैं । जातैं रज्जुविषै लयकूं प्राप्त भये सर्पकी न्याई, विवेकज्ञानके अभ्यास औ वैराग्यकरि समाधिविषै; वा सुषुप्तिविषै मनके अमनभाव (निरोध)–के हुये द्वैत नहीं देखियेहै; [196]यातैं तहां द्वैतके अभावतैं द्वैतका असद्भाव सिद्ध है । यह अर्थ है ॥ ३१ ॥

---

१९४ तब द्वैतका स्वीकार किया ? यह आशंकाकरिके, दृष्टांतसैं निषेध करैहैं ।

१९५ मनोमात्र द्वैत है, इस अर्थविषै प्रमाण कहैहैं ।

१९६ समाधि औ सुषुप्तिविषै द्वैतकी अप्रतीतिके हुये बी ताका अस-

आत्मसत्यानुबोधेन न सङ्कल्पयते यदा ।
अमनस्तां तदा याति ग्राह्याभावे तदग्रहम् ॥३२॥
अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते ।
ब्रह्म ज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुद्ध्यते ॥ ३३ ॥

टीकाः–[१९७]फेर यह मनका अमनीभाव कैसैं होवैहै ? तहां कहियेहैः–"वाणीका विषय विकार नाममात्र है, औ मृत्तिकाहीं सत्य है; इस श्रुतितैं मृतिकाकी न्याई आत्मारूपहीं जो सत्य है, ताका शास्त्र औ आचार्यके उपदेशके अनंतर जो बोध होवैहै; सो सत्यरूप आत्माका अनुबोध कहियेहै। तिस **सत्यरूप आत्माके अनुबोधसैं** संकलपके अभावसैं युक्त होनेकरि **जब** (जिस कालविषै) **मन संकल्पकूं करता नहीं, तब** (तिस कालविषै) जलावने योग्य काष्ठ आदिकके अभाव हुये अग्निके जलनेके अभावकी न्याई, **ग्राह्य वस्तु**-के **अभाव हुये ग्रहण**-की **कल्पनासैं रहित हुया सो** मन **अमनभावकूं पावता है** ॥ ३२ ॥

टीकाः–जब यह मनःप्रधान द्वैत असत् है, तब यह समीचीन आत्मतत्व किसकरि जानियेहै ? तहां कहियेहै ? ब्रह्मवेत्ता जे हैं, वे सर्व **कल्पनासैं रहित** औ याहींतैं **जन्म रहित ज्ञान** (चेतनमात्र)–कूं परमार्थसैं सत् **ब्रह्मरूप ज्ञेयसैं अभिन्न कहतेहैं;** काहेतैं, "अग्निके उष्णताकी न्याई, विज्ञाति (बुद्धि)के विज्ञाताका लोप नहीं है;" "विज्ञान आनंदरूप ब्रह्म है," "सत्य ज्ञान अनंतरूप ब्रह्म है;" इत्यादिक श्रुतिनतैं; सो ज्ञान ब्रह्मरूप ज्ञेयसैं अभिन्न है॥ अब ताही ज्ञानके विशेषण कहैहैंः–सो ज्ञान कैसा है कि, अग्निसैं

तूपना नहीं है ? यह आशंका करिके, प्रमाणके अधीन प्रमेयकी सिद्धि है, या अभिप्रायसैं कहैहै ।

१९७ मनका जो अमनभाव कहा; ताकूं प्रतिपादन करैहैं ।

निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः ।
प्रचारः स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः॥३४॥

अभिन्न उष्णताकी न्याईं औ उष्णतासैं अभिन्न अग्निकी न्याईं, जिस ज्ञानके स्वरूपविषै स्थित ब्रह्मरूप ज्ञेय है, ऐसा ब्रह्मरूप ज्ञेयवाला है॥ फेर कैसा है कि:—अजन्मा है औ नित्य है। तिस आत्मस्वरूप अजन्मा ज्ञान—सैं जन्मरहित ज्ञेय—कूं आत्मतत्व आपहीं जानता है; कहिये नित्यप्रकाश स्वरूप सूर्यकी न्याईं नित्य एकरस ज्ञानघनरूप होनेतैं, अन्य ज्ञानकी अपेक्षा करता नहीं॥३३॥

टीकाः—[१९८]आत्मारूप सत्यके अनुबोधसैं संकल्पकूं न करता हुया बाह्यविषयके अभाव हुये इंधन रहित अग्निकी न्याईं मन, शांत औ निरोधकूं प्राप्त होवैहै; ऐसैं कहा। औ ऐसैं मनके अमनीभावके हुये द्वैतका अभाव कहा। ऐसैं तिस निग्रह किये औ सर्व कल्पनासैं रहित औ विवेकवाले तिस मनका जो प्रचार (प्रत्यगात्मा रूपसैं स्थिति)है, सो तौ कोई प्रकारसैं योगीपुरुषनकरि जाननेकूं योग्य है ॥ ननु, सर्व वृत्तिनके अभाव हुये सुषुप्तिविषै स्थित मनका जैसा प्रचार है, तैसाहीं प्रचार निरोधकूं प्राप्त भये मनका बी होवैगा; वृत्तिनके अभावकी तुल्यतातैं। यातैं तिस निरोधकूं प्राप्त भये मनविषै क्या जानने योग्य है? तहां सो बनै नहीं; ऐसैं कहियेहैः—यातैं सुषुप्तिविषै अविद्या औ मोहरूप अज्ञानसैं ग्रस्त औ भीतर लीन भयी (गुप्त) अनेक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तिनकी बीजरूप वासनावाले मनका प्रचार अन्य है, औ आत्मारूप सत्यके अनुबोधरूप अग्नितैं नाश भयेहैं अविद्या आदिक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तिनकी बीजरूप वासना जिसकी, औ शांत भयेहैं

---

१९८ मुक्त पुरुषकूं ज्ञानका फल जो है, सो स्वर्गकी न्याईं परोक्ष नहीं है; किंतु प्रत्यक्ष है। यातै प्रसंगविषै प्राप्त भये मनके निरोधरूप ज्ञानके फलकी प्रत्यक्षताअर्थ प्रसंगकूं कहैहैं।

लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते ।
तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः ॥३५॥

सर्व क्लेशरूप मल जिसके; ऐसे निरोधकूं प्राप्त भये मनका जो ब्रह्मस्वरूपविषै स्थितिरूप स्वतंत्र प्रचार है, सो अन्य है; यातैं यह सुषुप्तिकूं प्राप्त भये मनका प्रचार ताके तुल्य नहीं । जातैं ऐसैं है, तातैं सो निरोधकूं प्राप्त भये मनका प्रचार जाननेकूं योग्य है, यह अभिप्राय है ॥ ३४ ॥

टीका:–सुषुप्तिकूं प्राप्त भये औ समाधिकूं प्राप्त भये मनके प्रचारका भेद है, ऐसैं पूर्व कहा; तिसविषै हेतु कहेहैं:–जातैं **सुषुप्तिविषै सो मन लीन होवैहै**; कहिये सर्व अविद्या आदिक वृत्तिनकी बीजरूप वासनाकरि सहित अज्ञानमय अविशेषरूप बीजभावकूं पावता है; औ सो मन, विवेकज्ञानपूर्वक **निरोधकूं पायाहुया लीन होता नहीं**; कहिये, अज्ञानरूप बीजभावकूं पावता नहीं । तातैं सुषुप्तिवाले औ समाधिवाले मनके प्रचारका भेद युक्त है । जब समाधिकूं प्राप्तभया मन, ग्राह्य औ ग्राहकरूप अविद्याके किये दोनूं मलसैं रहित होवै; तब सो मन; परम अद्वैतरूप परब्रह्महींकूं प्राप्त भयाहै; यातैं **सोई निर्भय ब्रह्म है**; काहेतैं, भयके निमित्तरूप द्वैतग्रहणके अभावतैं । "याका जाननेवाला किसीतैं बी भयकूं पावता नहीं" इस श्रुतिकरि, ब्रह्म शांत औ अभय है ॥ अब ताही ब्रह्मकूं विशेषण देते हैं:–**सोई ब्रह्म ज्ञानालोक है** । आत्माकी स्वभावभूत चैतन्यस्वरूप ज्ञप्तिरूप ज्ञान है आलोक (प्रकाश) जिसका, ऐसा जो ब्रह्म; सो ज्ञानालोक (एकरस ज्ञानघन) कहियेहै; औ **च्यारी औरतैं है**; कहिये, सर्व ओरतैं आकाशकी न्याई निरंतर व्यापक है ॥ ३५ ॥

अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम् ।
सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथञ्चन॥ ३६ ॥

टीकाः—[१९९]सोई ब्रह्म, जन्मके निमित्तके अभावतैं बाहिर भीतर सहित अजन्मा है । जातैं रज्जुसर्पकी न्याईं अविद्यारूप निमित्त-वाला जन्म है, ऐसैं हम कहतेहैं; औ सो अविद्या आत्मारूप सत्यके अनुबोधसैं निरोधकूं प्राप्त भई है, यातैं सो अजन्मा है । जातैं अ-जन्मा है, याहीतैं निद्रासैं रहित है । जातैं अविद्यारूप अनादि मायामय निद्रातैं अद्वैत स्वरूप आत्मरूपसैं प्रबोधकूं पायाहै, यातैं स्वप्नसैं रहित है । जातैं अप्रबोधके किये जे अपने नामरूप हैं, वे रज्जुके प्रबोधतैं सर्पकी न्याईं अपने प्रबोधतैं नाशकूं प्राप्त भये पीछे यह ब्रह्म नामसैं नहीं कहियेहै; वा किसीबी प्रकारसैं निरूपण नहीं करियेहै, यातैं सो ब्रह्म नामसैं रहित है, औ रूपसैं रहित है । "जिसतैं वाणियां निवृत्त होवैहैं" इत्यादि श्रुतितैं । किंवा, सो सर्वदाहीं प्रकाशरूप है; काहेतैं, अग्रहण अन्यथाग्रहण आवि-र्भाव औ तिरोभावके अभावतैं । ग्रहण औ अग्रहणरूप दिन अरु रात्रि, औ अविद्यारूप अंधकार; ये तीन सदा अप्रकाशपनैविषै कारण हैं, तिनके अभावतैं; औ नित्य चैतन्य प्रकाशरूप होनेतैं ब्रह्म सर्वदाहीं प्रकाशरूप युक्त है । याहीतैं सर्वरूप जो ज्ञानस्व-रूप, सो कहिये सर्वज्ञ, ऐसा है । इसप्रकारके इस ब्रह्म (विद्वान्) विषै किसी प्रकारसैं बी उपचार (कर्तव्य) नहीं है । जैसैं अन्य आनात्मवेत्ताकूं आत्मस्वरूपसैं भिन्न चित्तकी एकाग्रता आदिक कर्तव्य है, तैसैं ब्रह्म (विद्वान्) कूं नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्य

---

१९९ प्रसंगविषै प्राप्त भये अर्थकूंहीं अन्य प्रकारसैं निरूपण करैहैं ।

**सर्व्वाभिलापविगतः सर्व्वचिन्तासमुत्थितः ।
सुप्रशान्तः सकृज्ज्योतिः सामाधिरचलोऽभयः
॥ ३७ ॥**

मुक्त स्वभावतैं अविद्याके नाश भये किसी प्रकारसैं बी कर्तव्यंका संभव नहीं है ॥ ३६ ॥

टीका:—अब नामसैं रहितता आदिक उक्त अर्थकी सिद्धिके लिये कारण कहैहैं:—जिसकरि बोलियेहै, ऐसा जो सर्वप्रकारके कथनका करणरूप वाणी, सो अभिलाप कहियेहै; तिस सर्व अभिलापतैं रहित है। इहां वाक्इंद्रिय उपलक्षणके अर्थ है, यातैं ब्रह्मरूप विद्वान् सर्व बाह्य करणसैं रहित है, यह अर्थ है, तैसैं जिससैं चिंतन करियेहै, ऐसी जो बुद्धि सो चिंता कहियेहै। तिस सर्व चिंतासैं सम्यक् उथ्थानकूं पायाहै, कहिये, अंतःकरणसैं रहित है; काहेतैं, "अप्राण है, अमन है, शुभ्र है;" इस श्रुतितैं। जातैं "कार्यतैं पररूप अक्षरतैं पर है," इस श्रुतिकरि सर्व विषयनतैं रहित है; यातैं निरंतर शांत है, औ आत्मचैतन्य स्वरूपसैं सर्वदाहीं प्रकाशरूप है, औ समाधिरूप निमित्तवाली बुद्धिसैं जाननेयोग्य होनेतैं समाधिरूप है। वा, इस परमात्माविषै जीव वा तिसकी उपाधि स्थापन करियेहै; यातैं यह परमात्मा समाधि है, औ अचल (अक्रिय) है; याहीतैं (क्रियाके अभावतैं) अभय है ॥ ३७ ॥

---

२०० इहां यह अर्थ है:—अविद्यादशाविषैहीं सर्व व्यवहार है, औ विद्यादशाविषै अविद्याकूं असत् होनेतैं कोई बी व्यवहार नहीं है; परंतु बाधित भये व्यवहारकी अनुवृत्तिसैं व्यवहारके आभास (प्रतीति) की सिद्धि है।

२०१ विद्वान्हीं ब्रह्म है, ऐसैं अंगीकार करिके अब प्रसंगविषै प्राप्त भये ब्रह्मकूं पुरुषके वाची लिंगसैं कहैहैं।

ग्रहो न तत्र नौत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते ।
आत्मसंस्थन्तदा ज्ञानमजातिसमतां गतम्॥३८॥

टीका:—[२०२]जांतैं ब्रह्महीं समाधि अचल औ अभय है, ऐसैं कहा; यातैं तिस ब्रह्म-विषै ग्रहण नहीं है; वा त्याग नहीं है। जहां विकार वा विकारका विषयपना होवै, तहां ग्रहण औ त्याग होवैहैं; जातैं अन्य विकार हेतुके अभावतैं औ निरवयव होनेतैं इस ब्रह्म-विषै वे दोनूं नहीं संभवैहैं, यातैं तिसविषै ग्रहण औ त्याग नहीं हैं औ जिस ब्रह्म-विषै चिंता नहीं है, औ जहां सर्वप्रकारकी चिंता नहीं संभवैहै, औ अमनीयभाव है, तहां ग्रहण औ त्याग कहांसैं होवैंगे। यह अर्थ है। जबहीं आत्मारूप सत्यका अनुबोध भया, तबहीं विषयके अभावतैं अग्निके उष्णकी न्याईं आत्माविषैहीं स्थित भया औ जन्मसैं रहित परम समताकूं प्राप्त भया ज्ञान होवैहै। "यातैं जन्मरहित औ समताकूं प्राप्त भये अकृपणभावकूं कहताहूं;" ऐसैं जो इस तृतीय प्रकरणकी आदि विषै (प्रथम १ श्लोकमैं) पूर्व प्रतिज्ञा कियाथा, सो यह युक्तितैं औ शास्त्रतैं कहा, सो इहां "जन्मरहित समताकूं प्राप्त भया होवैहै" ऐसैं समाप्त करियेहै। इस आत्मारूप सत्यके अनुबोधतैं अन्य ज्ञान कृपणताकूं विषय करनेवाला है, काहेतैं, "हे गार्गी! जो इस अक्षरकूं न जानिके इस (मनुष्य देहरूप) लोकतैं मरणकूं पावताहै, सो कृपण है;" इस श्रुतितैं। इस तत्वज्ञानकूं पायके सर्व जन कृतकृत्य ब्राह्मण होवैहैं। यह अभिप्राय है ॥ ३८ ॥

---

२०२ प्रसंगविषै प्राप्त भये अविकारी ब्रह्मविषै विधि औ निषेधके अधीन लौकिकरूप औ वैदिकरूप ग्रहण औ त्यागका अवकाश नहीं है, ऐसैं कहैहैं।

**अस्पर्शयोगो वै नाम दुर्दर्शः सर्व्वयोगिभिः ।
योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः ३९॥
मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्व्वयोगिनाम् ।
दुःखक्षयः प्रबोधश्चाऽप्यक्षया शान्तिरेव च॥४०॥**

टीकाः—[203]यद्यपि यह परमार्थतत्व प्रत्यगात्मारूप कूटस्थ सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म, ऐसैं पूर्वउक्त रीतिसैं तत्वज्ञानतैं प्राप्त होवैहै; तथापि संतोषकूं प्राप्त भये मूढ तिसविषै निष्ठावान् नहीं होवैहैं; ऐसैं कहैहैं:—सर्व (वर्णाश्रमादि धर्म औ पापादि मल)सैं संबंधरूप स्पर्शसैं रहित होनैतैं, औ जीवकूं ब्रह्मभावसैं जोंडनेतैं, यह अद्वैतका अनुभवरूप **अस्पर्शयोग** उपनिषदनविषै **प्रसिद्ध स्मरण** करियेहै । सो वेदांतके विज्ञानसैं रहित बहिर्मुख कर्मनिष्ठरूप **सर्व योगिनसैं** श्रवण मनन आदिरूप **दुःखसैं देखनेकूं योग्य है,** कहिये, आत्मरूप सत्यके अनुबोधरूप श्रमसैं पावनेकूं योग्य है । जातैं **भयरहित इस योग-विषै भय**-के निमित्त आपके नाश-कूं **देखनेके स्वभाववाले** जे अविवेकी हैं, वे आपके नाशरूप इस योगकूं मानते हुये सर्व भयसैं रहित **बी इस योगतैं भयकूं** करतेहैं; तातैं सो सर्व योगीनकरि दुःखसैं देखनेकूं योग्य है; ऐसैं पूर्वार्द्धसैं संबंध है ॥ ३९ ॥

टीकाः—फेरैं[204]जिनकूं ब्रह्मस्वरूपसैं भिन्न, मन औ इंद्रिय आदिक

---

२०३ परमार्थरूप ब्रह्मस्वरूपसैं स्थितिरूप फलवाला जब अद्वैतका ज्ञान है, तब ताका सर्व पुरुष आदर क्यूं नहीं करतेहैं ? यह आशंका भई, तहां कहैहैं ।

२०४ ऐसैं उत्तम दृष्टि (बुद्धि) वाले पुरुषनके अर्थ, अद्वैत ज्ञान औ अद्वैत ज्ञानके फलरूप मनके निरोधकूं कहिके, अब मंद दृष्टिवाले पुरुषनके अर्थ, मनके निरोधके अधीन आत्माके ज्ञानका कहनेका आरंभ करैहैं ।

उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकबिन्दुना ।
मनसो निग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ॥ ४१ ॥
उपायेन निगृहीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः ।
सुप्रसन्नं लये चैव यथा कामो लयस्तथा ॥४२॥

रज्जुसर्पकी न्याई कल्पितहीं है; परमार्थतैं नहीं है; तिन ब्रह्मस्वरूप पुरुषनकूं अभय (तत्वज्ञान) औ मोक्षनामक अक्षय शांति स्वभावतैंहीं सिद्ध है, अन्य साधनके अधीन नहीं; काहेतैं, " किसीप्रकारसैं बी उपचार (कर्तव्य) नहीं है " इस (३६ वें) श्लोक विषे कहनेतैं; ऐसैं हम कहतेहैं । औ जो इनतैं अन्य सन्मार्गगामी मंद औ मध्यम दृष्टिवाले योगी, आत्मातैं भिन्न मन औ अन्य इंद्रिय आदिककूं आत्माका संबंधी देखतेहैं, तिन आत्मारूप सत्यके अनुबोधसैं रहित सर्व योगिनकूं मनके निग्रहतैं अधीन अभय (तत्वज्ञान) है । किंवाः—जातैं अविवेकिनकूं आत्माके संबंधी मनके चंचल हुये दुःखका क्षय नहीं होवैहै, तातैं तिनकूं दुःखका क्षय बी मनके निग्रहके अधीन है । किंवाः—तिनकूं आत्माका प्रबोध बी मनके निग्रहके अधीनहीं है । तैसैं तिनकूं अक्षय मोक्षनामक शांति बी मनके निग्रहके अधीनहीं है ॥ ४० ॥

टीकाः—जैसैं[२०५] कुशके अग्रसैं बाहीर फेंके हुये एक बिंदुकरि समुद्रका उत्सेक (बाहिर फेंकनेका निश्चय) टिट्टिभ नामक पक्षीकूं भया है, तैसैं, निश्चयवाले औ उद्वेगरहित अंतःकरणवाले तिनकूं अनिर्वेदरूप अखेदतैं मनका निग्रह बी होवैहै ॥ ४१ ॥

टीकाः—क्यों खेदरहित निश्चयमात्रहीं मनके निग्रहविषे उपाय है?

---

२०५ मोक्षकी इच्छावाले जिज्ञासु पुरुषकूं मनका निरोध कैसैं सिद्ध होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं ।

२०६ समाधि करनेवाले पुरुषकूं तत्वसाक्षात्कारके प्रतिबंधक (विघ्न) जे लय, विक्षेप, सुख (रसास्वाद) औ राग (कषाय) हैं तिनतैं आगे

**दुःखं सर्व्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत् ।
अजं सर्व्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति॥४३॥**

तहां नहीं; ऐसैं कहियेहैः—खेदरहित निश्चयवान् हुया आगे कहनेके उपायसैं कामभोग औ विषयन-विषै विक्षेपकूं प्राप्त भये मन कूं आत्माविषैहीं निरोध करै । किंवा, जिसविषै मन लीन होवैहै; ऐसी जो सुषुप्ति सो लय कहियेहै । तिस लयविषै प्रसन्न भये (खेद रहित भये बी) मन-कूं निरोध करै ॥ ननु, जब मन प्रसन्न भया तब ताका किस कारणतैं निरोध कहियेहै ? तहां कहियेहैः—जातैं जैसा काम अनर्थका हेतु है, तैसा लय बी है; यातैं कामकूं विषय करनेवाले मनके निग्रहकी न्याई, निद्रारूप लयतैं बी मनका निरोध करनेकूं योग्य है ॥ ४२ ॥

टीकाः—[२०७]सो मनके निग्रहका उपाय कौन है? तहां ज्ञानाभ्यास औ वैराग्य है, ऐसैं कहियेहैः—अविद्या रचित सर्व द्वैत दुःखरूपहीं है, ऐसैं स्मरण करिके कामके भोग (विषय)तैं प्रवृत्त भये मनकूं वैराग्यकी भावनासैं निवारण करै । अजन्मा ब्रह्मरूप सर्व है, ऐसैं शास्त्र औ आचार्यके उपदेशतैं स्मरण करिके, तातैं विपरीत द्वैतके समूहकूं तो अभावतैं नहीं देखताहै ॥ ४३ ॥

कहनेके उपायकरि मनका निग्रह करना; अन्यथा समाधिकी सफलताके असंभवतैं । ऐसैं कहैहैं ।

२०७ ज्ञानके अभ्यास औ वैराग्य, इन दोनूं उपायकरि लयतैं औ विक्षेपतैं निवर्त्त किया जो मन, सो जब रागसैं प्रतिबंधकूं पाया होवै, तब श्रवण मनन औ निदिध्यासनके अभ्याससैं जन्य संप्रज्ञात (सविकल्प) समाधिपर्यंत अभ्याससैं तिस रागरूप प्रतिबंधतैं निवर्त्त करनेकूं योग्य है; ऐसैं कहैहैं ।

लये सम्बोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः ।
सकषायं विजानीयात् समप्राप्तं न चालयेत् ४४
नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसङ्गः प्रज्ञया भवेत् ।
निश्चलं निश्चरत् चित्तं एकीकुर्य्यात् प्रयत्नतः ४५

टीकाः—ऐसैं इन ज्ञानके अभ्यास औ वैराग्यरूप दोनूं उपायनसैं लय (सुषुप्ति—विषै लीन भये चित्तकूं जगावे (आत्माके विवेक ज्ञानसैं जोडे)। फेर कामोके भोगनविषै विक्षेपकूं प्राप्त भये चित्त-कूं शांत करे। ऐसैं वारंवार अभ्यास करनेवाले योगीका चित्त जब लयतैं जगाया, औ विषयनतैं निवृत्त किया, औ समभावकूं बी प्राप्त भया नहीं; किंतु मध्य अवस्थावाला है, तब सो कषाय दोषसहित है, ता कषाय (रागके बीज) सहितकूं जानना। तिस कषायतैं बी सविकल्पसमाधिरून प्रयत्नतैं निर्विकल्पसमाधिरूप समभावकूं प्राप्त करे; परंतु जब समभावकूं प्राप्त (समभावकी प्राप्तिके सन्मुख) होवै, तब ता समप्राप्त चित्त-कूं तातैं चलावै (विषयनके सन्मुख करे) नहीं ॥ ४४ ॥

टीकाः—सैमाधि करनेकी इच्छावाले योगीकूं जो सुख होवैहै, ता-कूं योगी आस्वादन करे नहीं (तिसविषै आसक्त होवै नहीं); किंतु समाधिविषै तिस समाधि—मैं जो सुख प्रतीत होवैहै, सो अविद्यासैं कल्पित मिथ्या है; ऐसी विवेकयुक्त बुद्धिसैं निःसंग (निस्पृह) हुया भावना करे; कहिये, तिस समाधि सुखके रागतैं बी चित्तकूं निरोध करे। जब फेर सुखके रागतैं निवृत्त होयके निश्चल स्वभाववाला हुया चित्त वाहिर जानेवाला होवैहै, तब तिस निश्चल वाहिर जानेवाले चित्तकूं तिस तिस विषयतैं उक्त ज्ञा-

---

२०८ समाधि रनेकी इच्छाविषै जो सुख उपजे है, ता सुखकूं विषय करनेवाली इच्छातैं बी मनकूं रोकना योग्य है, ऐसैं कहैहैं।

यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ।
अनिङ्गनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ॥४६॥
स्वस्थं शान्तं सनिर्वाण मकथ्यं सुखमुत्तमम् ।
अजमजेन ज्ञेयेन सर्वज्ञं परिचक्षते ॥ ४७ ॥

नाभ्यास आदिक उपायसैं रोकिके सविकल्प समाधिरूप प्रयत्नतैं आत्माविषैहीं एकरूप करना, कहिये निर्विकल्प समाधिकरि युक्त चेतनस्वरूप सत्तामात्रहीं संपादन करना ॥ ४९ ॥

टीका:–उक्त[२०९] उपायसैं निरोध किया चित्त, जब सुषुप्तिविषै लीन होवै नहीं औ फेर विषयनविषै विक्षेपकूं पावता नहीं; किंतु वायु रहित दीपककी न्याईं अचल औ अनाभास (किसीबी कल्पित विषयके भावसैं अभासमान) होवै, तब सो चित्त, ब्रह्म (ब्रह्मस्वरूपसैं) संपन्न होवैहै ॥ ४६ ॥

टीका:–उक्त[२१०] प्रकारके योगीके प्रत्यक्ष परमार्थरूप उत्तम सुखकूं ब्रह्मवेत्ता; आत्मारूप सत्यका अनुबोधरूप स्वस्वरूपविषै स्थित, शांत (सर्व अनर्थकी निवृत्तिरूप), निर्वाण (मोक्ष) करि सहित वर्तमान, अत्यंत असाधारण विषयवाला होनेतैं कहनेकूं अशक्य, औ जैसैं विषयजन्य है तैसैं जन्य नहीं; किंतु जन्मसैं रहित औ अनुत्पन्न भये ज्ञेयसैं अभिन्न हुया अपनैं सर्वज्ञरूपसैं सर्वज्ञ ब्रह्महीं कहतेहैं ॥ ४७ ॥

---

२०९ फेर यह चित्त ब्रह्ममात्रकूं कब पावताहै ? यह शंका भई । तहां कहैहैं ।

२१० असंप्रज्ञात (निर्विकल्प) समाधि अवस्थाविषै जिसरूप करि चित्त संपन्न होवैहै, तिस ब्रह्मस्वरूपकूं विशेषण देतेहैं ।

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते ।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ॥ ४८ ॥

इति अद्वैताख्यं तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ अलातशांत्याख्यं चतुर्थं प्रकरणम् ॥ ४ ॥

विरोधि वादनका निराकरण.

ज्ञानेनाकाशकल्पेन धर्म्मान् यो गगनोपमान्
ज्ञेयाभिन्नेन सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदाम्वरम् ॥१॥

टीकाः—[२११] मनके निग्रह आदिक उपाय औ मृत्तिका सुवर्ण आदिककी न्याई सृष्टि औ उपासना, ये सर्व बी परमार्थ स्वरूपकी प्राप्तिके उपाय होनैकरि कहेहैं; परंतु परमार्थसैं सत्य नहीं हैं । परमार्थसैं सत्य तो कोईबी कर्ता भोक्तारूप जीव किसीबी प्रकारसैं उत्पन्न होता नहीं । यातैं स्वभावसैं अजन्मारूप इस एकहीं आत्मा-का कारण नहीं है । जातैं इसका कारण नहीं है, तातैं कोईबी जीव जन्मता नहीं; यह अर्थहै । पूर्वके ग्रंथनविषे उपायपनैकरि कथन किये तिन व्यावहारिक सत्यरूप साधनो-के मध्य यह उत्तम सत्य है, जिस सत्यस्वरूप ब्रह्म-विषे कछु (अणुमात्र) बी उत्पन्न होता नहीं ॥ ४८ ॥

इति श्री गौडपादाचार्यकृत मांडूक्योपनिषत् कारिकाया-मद्वैताख्य तृतीय प्रकरण भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ३ ॥

अथ गौडपादाचार्यकृतकारिकायामलातशांत्याख्य-चतुर्थ प्रकरणभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

टीकाः—[२१२] ॐकारके निर्णयरूप द्वारकरि आगमनामक प्रथम

---

२११ उक्त उपायनकूं परमार्थसैं सत्यताके हुये अद्वैतकी हानि होवैगी, औ अन्यथा तिन उपायनका प्रमाज्ञान नहीं होवैगा ? यह आशंका-करिके कहैहैं ।

२१२ पूर्वके औ पीछले प्रकरणके संबंधकी सिद्धि अर्थ पूर्वके तीन प्रकरणोविषे उक्त अर्थकूं क्रमसैं कथन करैहैं ।

विरोधि वादनका निराकरण.

प्रकरणतैं प्रतिज्ञा किये, औ द्वितीय प्रकरणविषै बाह्य विषयनके भेदके मिथ्यापनैतैं सिद्ध भये, फेर अद्वैतनामक तृतीय प्रकरणविषै शास्त्र औ युक्तिकरि साक्षात् निर्द्धार किये, अद्वैतका "यह उत्तम सत्य है;" इस तृतीयप्रकरणके अंतके श्लोकविषै समाप्ति करी। तिस इस श्रुतिके अर्थरूप अद्वैत सिद्धांतके विरोधी जे भेदवादी औ निरात्मवादी हैं, तिनका परस्पर विरोधतैं राग द्वेष आदिक क्लेशका आश्रय सिद्धांत है। औ हमारा जो सिद्धांत है, सो क्लेशका अनाश्रय होनैतैं सम्यक् ज्ञान है; ऐसैं अद्वैत ज्ञानकी स्तुतिअर्थ तिनके सिद्धांतका मिथ्याज्ञानपना सूचन किया। सो तिनके पक्षनका मिथ्याज्ञानपना इहां परस्पर विरुद्ध होनैकरि विस्तारसैं दिखायके ताके निषेधसैं ज्ञानकी सिद्धि [२१३]आवीत न्यायकरि समाप्ति करनेकूं योग्य है। यातैं यह अलातशांतिनामक चतुर्थप्रकरण आरंभ करिये है॥ तिसविषै अद्वैत ज्ञानके संप्रदायके कर्ता नारायण भगवान्रूप आचार्यके अद्वैतस्वरूपसैंहीं नमस्कार अर्थ, यह प्रथम श्लोक है [२१४]जातैं शास्त्रके आरंभविषै वांछित अर्थकी सिद्धिके लिये आचार्यकी

---

२१३ आवीतन्याय नाम, व्यतिरेक न्यायका है। जैसैं जो क्रियाकरि साध्य है, सो अनित्य है; इस अन्वयतैं अनित्यताके जाने हुये बी जो अनित्य नहीं है, सो क्रियाकरि साध्य बी नहीं है; ऐसा व्यतिरेक बी व्यभिचारकी शंकासैं रहित होनेकरि व्याप्तिके निश्चय अर्थ अंगीकार करियेहै। तैसैं तर्कतैं घटित भये अर्थके ज्ञानसैं जाने हुये बी विरोधि अन्यवादनके निषेधके वर्णनविना अन्य पक्षके सम्यक्पनैकी शंका होवैगी। यातैं अन्यवादनके निषेधसैं अद्वैत सिद्धांतकी सिद्धि समाप्त करनेकूं योग्य है, या अभिप्रायसैं अलातशांति (अर्धदग्ध काष्ठके बुझावने)के दृष्टांतसैं उपलक्षित अलातशांति नामक चतुर्थप्रकरण आरंभ करियेहै। यह अर्थ है।

२१४ आदि अंत औ मध्यविषै मंगलाचरणकरि युक्त जे ग्रंथ हैं, वे प्रवृत्तिवाले होवैहैं; या अभिप्रायसैं श्रीगौडपादाचार्य, आदिविषै ॐकारके

अस्पर्शयोगो वै नाम सर्वसत्त्वसुखो हितः।
अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम् २

पूजा अंगीकार करियेहै, यातैं इहां आचार्यका नमस्काररूप मंगल करियेहैः—जो नारायण नामक परमेश्वर अग्निके उष्णकी न्याई औ सूर्यके प्रकाशकी न्याई, उपाधि कल्पित भेदसैं बहुरूप आत्मस्वरूप धर्मरूप ज्ञेयनसैं अभिन्न [२१५] आकाशके तुल्य ज्ञानसैं आकाशकी उपमावाले आत्माके धर्मनकूं सम्यक् जानता भया, तिस द्विपद (मनुष्यसैं उपलक्षित पुरुष)—नके मध्य श्रेष्ठ (प्रधान) [२१६] पुरुषोत्तम—कूं मैं वंदन करूंहूं; यह अभिप्राय है ॥ उपदेष्टा आचार्यके नमस्काररूपसैं विरोधी पक्षनके निषेधद्वारा, इस चतुर्थ प्रकरणविषै प्रतिपादन करनेकूं इच्छित ज्ञान ज्ञेय औ ज्ञाताके भेदसैं रहित परमार्थतत्वका ज्ञान प्रतिज्ञा किया होवैहै ॥ १ ॥

टीकाः—अब अद्वैतज्ञानकी स्तुतिअर्थ ताके नमस्कारकी स्तुति करैहैंः—जिस योगका किसीसैं बी कदाचित् बी स्पर्श (संबंध)होवै नहीं, ऐसा जो ब्रह्मस्वरूपहीं योग; सो **अस्पर्शयोग** है। सो योग ब्रह्म विदनकूं यह अस्पर्शयोग है ऐसैं प्रसिद्ध है। औ सो योग सर्व जीवनकूं सुखरूप होवैहै । कोइक अत्यंत सुखके साधनकरि युक्त हुयाबी

उच्चारणकी न्याई औ अंतविषै परदेवताके प्रणामकी न्याई, मध्यविषै बी परदेवतारूप उपदेष्टा (आचार्य)कूं प्रणाम करैहैं ।

२१५ यद्यपि आकाशकूं जडताकी अधिकतातैं स्वप्रकाशरूप ज्ञानकूं आकाशकी उपमा अपूर्ण है, तथापि ज्ञानके व्यापकपनै आदिकविषै आकाशकी उपमा संपूर्ण जाननी ।

२१६ गौडपादाचार्य जे हैं; वे पूर्व नरनारायणकरि आश्रित बदरिकाश्रमविषै नारायण भगवान्कूं चित्तमैं ल्यायके बडे तपकूं करते भये; तातैं नारायण भगवान् प्रसन्न होयके तिनके ताईं विद्याकूं देते भये । तातैं ता नारायण भगवान्रूप परमेश्वरविषै वेदांत संप्रदायका परमगुरुपना प्रसिद्ध है । यह भाव है ।

भूतस्य जातिमिच्छंति वादिनः केचिदेव हि ।
अभूतस्यापरे धीरा विवदन्तः परस्परम् ॥ ३ ॥
भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते ।
विवदन्तोऽद्वया ह्येवमजातिं ख्यापयन्ति ते॥४॥

योग दुःखरूप होवैहै; जैसें तप है, यह तो तैसा नहीं है; किंतु सर्व जीवनकूं सुखरूप है । तैसें इस योगविषै हित होवैहै । कोइक विषयका उपभोगरूप सुख है सो हितरूप नहीं; औ यह तो सुखरूप है । औ हितरूप है; काहेतैं, सर्वदा अचल स्वभाववाला होनेतैं । किंवाः–जिसविषै पक्ष औ प्रतिपक्षके ग्रहणसैं विरुद्ध कथनरूप विवाद नहीं है, ऐसा अविवाद है । काहेतैं, जातैं अविरुद्ध है, यातैं जो ऐसा योग जा शास्त्रनैं उपदेश किया है, तिस शास्त्र-कूं मैं नमन करूंहूं ॥ २ ॥

टीकाः–द्वैतवादी[217] कैसैं परस्पर विरोधकूं पावते हैं ? तहां कहिये हैः–जातैं केइकहीं सांख्यके अनुसारी द्वैतवादी विद्यमान वस्तु-की उत्पत्तिकूं इच्छते हैं, सर्व नहीं; औ जातैं पंडितपनैंके अभिमानी अन्य वैशेषिक औ नैयायिक अविद्यमान वस्तु-की उत्पत्तिकूं इच्छते हैं, यातैं परस्पर विवाद करते हैं (जीतनेकूं इच्छते हैं) । यह अभिप्राय है ॥ ३ ॥

टीकाः–ऐसैं तिन विरुद्ध कथनसैं परस्परके पक्षके निषेधके करनेवाले वादीनकरि क्या सिद्ध किया होवैहै ? तहां कहिये हैः– कछुबी विद्यमान वस्तु उपजता नहीं, विद्यमान होनैतैं, आत्माकी न्यांई; ऐसैं कहता हुया असत्वादी सत्के जन्मरूप सांख्यके पक्षका

---

२१७ अद्वैतवादकूं अविरुद्ध होनेकरि तिसविषै विवादके अभावकूं स्पष्ट करनेकूं प्रथम द्वैतवादीनके विवादकूं उदाहरणकरि कहैहैं ।

ख्याप्यमानामजातिन्तैरनुमोदामहे वयम् ।
विवदामो न तैः सार्द्धमविवादं निबोधत ॥ ५ ॥
अजातस्यैव धर्म्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः ।
अजातो ह्यमृतो धर्म्मो मर्त्यतां कथमेष्यति ॥ ६

निषेध करैहै । तैसैं अविद्यमान वस्तु उपजता नहीं, अविद्यमान होनेतैं शशशृंगकी न्यांई; ऐसैं कहता हुया सांख्यवादी बी असत्के जन्मरूप असत्वादीके पक्षका निषेध करैहै । ऐसैं जे अद्वैतवादी हैं वे विवाद करते हुये औ सत् अरु असत्के जन्मरूप इन परस्परके पक्षनकूं निषेध करते हुये, सत् असत्तैं भिन्न वस्तुके अभावकरि अर्थतैं अनुत्पत्तिकूं प्रकाश करैहैं ॥ ४ ॥

टीकाः—[२१८] ऐसैं तिन प्रतिवादीन-करि प्रकाशित करी अनुत्पत्तिकूं हीं इसप्रकार होहु, ऐसैं हम केवल अनुमोदन करैहैं; परंतु जैसैं वे परस्पर विवाद करते हैं, तैसैं हम तिनके साथि पक्ष औ प्रतिपक्षके ग्रहणसैं विवाद करते नहीं । यातैं हे हमारे शिष्य ! हमोंकरि अनुमोदन किये अविवाद (विवादतैं रहित परमार्थ ज्ञान)कूं श्रवण करो ॥ ५ ॥

टीकाः—[२१९] सर्व जो सत् असत् वादी हैं, वे जन्मरहितहीं धर्म (परमात्मा)की उत्पत्तिकूं इच्छते हैं, परंतु अजन्मा औ मरणरहित धर्म, मरनेकी योग्यताकूं कैसैं पावैगा ? किसी प्रकारतैं बी पावै नहीं ॥ ६ ॥

---

२१८ तब वादीनकरि उक्त होनेतैं अनुत्पत्ति बी तुमकरि निषेध करनेकूं योग्य है ? यह आशंका करिके कहैहैं ।

२१९ उत्पन्न भये वस्तुकेहीं जन्मकरि अनर्थकी प्राप्तितैं औ अनवस्था दोषकी प्राप्तितैं अनुत्पन्न भये पदार्थकेहीं जन्मकूं सर्व बी सत्वादी औ असत्वादी स्वीकार करैहैं; ऐसैं अन्यवादीनके पक्षका अनुवाद करैहैं ।

**न भवत्यऽमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतन्तथा ।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ॥ ७ ॥
स्वभावेनामृतो यस्य धर्म्मो गच्छति मर्त्यताम् ।
कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः॥८॥
सांसिद्धिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या ।
प्रकृतिः सेति विज्ञेया स्वभावं न जहाति या॥९॥**

टीका:—मरेणरहित[220] जो ब्रह्म, सो मरनेकूं योग्य होवै नहीं, स्थित रूपके विरोधतैं । तैसैं मरनेकूं योग्य जो कार्य, सो स्वरूपकी स्थितिविषै वा प्रलय अवस्थाविषै मरणरहित (ब्रह्म)कूं पावता नहीं यातैं प्रकृति (स्वभाव)का अन्यथाभाव किसी प्रकारतैं बी नहीं होवैगा ॥ ७ ॥

टीका:—जिसका (जिस परिणाम वादीके मतमैं) स्वभावसैं मरणरहित धर्म (परमात्मा नामक पदार्थ) कार्यभावकी प्राप्तिसैं मरनेकी योग्यताकूं पावता है, ताका (तिस वादीके मतविषै) समुच्चयके अनुष्ठानसैं मरणरहित औ (मुक्त भया) कहनेकूं योग्य है । सो धर्म निश्चल हुया कैसैं स्थित होवैगा ? किसी प्रकारसैं बी स्थित होवै[221] नहीं ॥ ८ ॥

टीका:—जातैं जब लौकिक प्रकृति बी अन्यथाभावकूं पावती नहीं, तातैं यह अजन्मा औ अमृतस्वभाववाली प्रकृति अन्यथाभावकूं पावती नहीं; यामैं क्या कहना है; कछुबी नहीं ॥ कौंन यह

---

२२० परिणामी ब्रह्मके वादविषै जो अब्रह्म वादीनकरि दूषण कहिये है, सो बी हमनैं अनुमोदन किया है; ऐसैं मानिके कहैहैं ।

२२१ पूर्व अद्वैत नामक प्रकरणविषै कथन किया है अर्थ जिनोंका, ऐसै इन (६—८ पर्यंतके) तीन श्लोकनका जो फेर इहां निवेश किया है, सो अन्यवादीनके पक्षनके परस्पर विरोधकरि प्रसिद्ध भये आपके अनुमोदनके दिखावने अर्थ है ।

जरामरणनिर्म्मुक्ताः सर्व्वे धर्म्माः स्वभावतः ।
जरामरणमिच्छन्तश्च्यवन्ते तन्मनीषया ॥ १० ॥

प्रकृति है ? तहां कहैहैंः—सम्यक्[२२३] सिद्धिविषै होनेवाली है, यातैं सांसिद्धिकी है । जैसैं सिद्ध योगीनकी अणिमादिक ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप जो प्रकृति है, सो भूत अरु भविष्यत्कालविषै अन्यथाभावकूं पावती नहीं; तैसैंहीं सो प्रकृति अन्यथाभावकूं पावती नहीं; यातैं सांसिद्धिकी कहिये है । तैसैं स्वभावतैंहीं सिद्ध है, यातैं स्वाभाविकी है । जैसैं अग्नि आदिकनकी उष्ण औ प्रकाश आदिकरूप प्रकृति है सो बी कालांतरविषै औ देशांतरविषै व्यभिचारकूं पावती नहीं; तैसैं यह बी व्यभिचारकूं पावती नहीं, यातैं स्वाभाविकी कहिये है । तैसैं सहजा (आत्माके साथिहीं होनेवाली) है । जैसैं पक्षी आदिकनकी आकाशविषै गमन आदिरूप प्रकृति (स्वभाव) सहज है, तैसैं जातैं यह आत्माके साथिहीं होनेवाली है, यातैं सहज कहिये है । औ अन्य बी जो कोइक किसी निमित्तसैं बी अकृत (अरचित) होवै, जैसैं जलकी नीचे देशविषै गमन आदिरूप प्रकृति है, औ जैसैं घटका घटपना है अरु पटका पटपना है; तैसैं अन्य बी जो कोइक कदाचित् बी स्वभावकूं त्यागै नहीं, सो सर्व प्रकृति है; ऐसैं जाननेकूं योग्य है । जब लोकविषै मिथ्या कल्पित लौकिक वस्तुनविषै बी जो प्रकृति (स्वभाव) हैं, सो अन्यथा नहीं होवैहै, तब अजन्मा स्वभाववाले परमार्थरूप वस्तुनविषै अमृतभावरूप प्रकृति अन्यथा नहीं होवैहै; यामैं क्या कहना है ? यह अभिप्राय है ॥ ९ ॥

टीकाः—फेर जिसका अन्यथाभाव वादीनकरि कल्पिये है, ऐसी जो प्रकृति सो किस विषयवाली है, औ ताके अन्यथाभावकी कल्पनाविषै तिन वादीनकूं क्या दोष (हानि) होवैहै ? तहां कहैहैंः—सर्व

२२२ प्रकृतिका अन्यथाभाव कोईबी प्रकारसैं नहीं होवैगा, ऐसैं [७ वें श्लोकविषै] कहा । तहां प्रकृतिशब्दके अर्थकूं कहैहैं ।

**कारणं यस्य वै कार्य्यं कारणं तस्य जायते ।
जायमानं कथमजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत् ॥ ११**

[२२३] धर्म (आत्मा,) स्वभावतैं जरा मरण आदिक सर्व विकारन-सैं रहित हैं, ऐसे स्वभाववाले हुये जे धर्म हैं, तिनविषै जो रज्जुविषै सर्पकी न्यांई जरांमरणकूं इच्छते हुयेकी न्याई इच्छतेहैं (कल्पतेहैं;) वे तिस-जरामरण-की चिंताकरि स्वभावतैं भ्रष्ट होवैहैं; कहिये सर्व विकाररहित आत्माविषै विकारकी कल्पनाके हुये ताकी वासनासैं तिन वादीनकूं स्वभावकी हानि होवैहै ॥ १० ॥

टीका:—[२२४] सत् (विद्यमान) वस्तुकी उत्पत्तिके वादी सांख्यनकरि अघटित कैसैं कहियेहै? तहां वैशेषिक कहैहैं:— जिस सांख्यवादी-केमतविषै मृत्तिकाकी न्याई उपादानरूप कारणहीं कार्य होवैहै (कार्यके आकारसैं परिणामकूं पावताहै,) तिसके मतविषै जन्म रहितहीं कारण महत्तत्त्वआदिक, कार्यरूपसैं जन्मता है। जब महत्तत्त्व आदिक आकारसैं उत्पन्न होनेवाला प्रधान है, तब सो अजन्मा औ नित्य कैसैं कहियेहै? यातैं जन्मता है औ अजन्मा अरु नित्य है; ऐसैं तिनकरि यह विरुद्ध कहियेहै। औ सो प्रधान एकदेशसैं विदारणकूं प्राप्त हुया कैसैं नित्य[२२५] होवैगा, जातैं लोकविषै सावयव औ एकदेशसैं फूटनेरूप धर्मवाला घटा-

२२३ प्रसंगसैं प्राप्त भईहीं जीवनकी प्रकृति (स्वभाव) के दिखावनेकूं कहनेका आरंभ करैहैं।

२२४ प्रसंगविषै प्राप्त भये अर्थकूं त्यागिके सांख्यवादीके पक्षविषै वैशेषिकआदिककरि कथन किया औ आप अद्वैतवादिनकरि अनुमोदन किया जो दूषण है, ताका अनुवाद करैहैं।

२२५ विवादका विषय जो प्रधान, सो अनित्य है; सावयव होनेतैं, घटादिककी न्याई; या अनुमानके अभिप्रायसैं दृष्टांतकूं साधतेहैं।

कारणाद्यद्यनन्यत्वमतः कार्य्यमजं यदि ।
जायमानाद्धि वै कार्य्यात् कारणं ते कथं ध्रुवम् ॥
॥ १२ ॥

अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै ।
जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते ॥१३

दिक नित्य नहीं देख्याहै; यातैं एकदेशसैं विदारणकूं पाया जो प्रधान, सो अजन्मा है औ नित्य है; ऐसैं जो तिन सांख्यवादीनकरि कहियेहै, सो विरुद्ध कहियेहै । यह अभिप्राय है ॥ ११ ॥

टीकाः—अब पूर्व दिखाये कार्यकारणके अभेदवादके निषेधरूप उक्तअर्थकेहीं स्पष्ट करने अर्थ कहैहैंः—जब जन्मरहित कारणतैं कार्यका अनन्यपना तेरेकू वांच्छित है, तातैं (तब) तिसप्रकारके कारणसैं अभिन्न होनेतैं **कार्य अजन्मा है,** ऐसैं प्राप्त भया । यातैं तेरेकूं प्रधानका अजन्यपना औ जन्यपना यह विरुद्ध भया; औ कार्य है अरु अजन्माहै यह अन्य विरुद्ध भया । किंवा कार्य कारणके अनन्यभावविषै अन्य दोष यह है किः—जब प्रसिद्ध **जायमानकार्यतैं** अनन्य **कारण** है, तब सो **तेरे** मतविषै नित्य औ **ध्रुव** (अचल) **कैसैं** होवैगा ? किसीप्रकारसैं बी होवै नहीं । जातैं मुर्गीका एक अंग पचाइयेहै, औ एक अंग अंडनके जन्मअर्थ कल्पना करियेहै; ऐसैं बनै नहीं । यातैं कार्यतैं अभिन्न कारण नित्य औ ध्रुव है, ऐसी व्यवस्था तेरे मतविषै बनै नहीं; औ अद्वैतवादीनके मायावादविषै कार्यकारणके अभेद हुये बी कार्यकेहीं कारणमात्रपनैके अंगीकारतैं यह दोष नहीं है ॥ १२ ॥

टीकाः—जिस प्रधानवादीके मतविषै **अनुत्पन्न** वस्तु-तैं कार्य उत्पन्न होवै है, तिसके मतविषै **दृष्टांत नहीं है** । दृष्टांतके अभाव हुये, अर्थतैं अनुत्पन्न वस्तुतैं कछुबी उत्पन्न होता नहीं; ऐसैं सिद्ध होवैहै । औ जब फेर उत्पन्न भये कारण-तैं उत्पन्न भये

हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च ।
हेतोः फलस्य चानादिः कथं तैरुपवर्ण्यते ॥१४॥
हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च ।
तथा जन्म भवेत्तेषां पुत्राज्जन्म पितुर्यथा॥१५॥

वस्तु-की अंगीकारता है तब सो बी अन्य उत्पन्न भयेतैं उपजताहै औ सो बी अन्यतैं उपजताहै; ऐसैं व्यवस्था नहीं प्राप्त होवैहै; किंतु अनवस्था होवैगी। यह अर्थ है ॥ १३ ॥

टीकाः–"[226] जँहां तो इस पुरुषकूं सर्व आत्माहीं होता भया" ऐसैं श्रुतिनैं परमार्थतैं द्वैतका अभाव कहा है, ताकूं आश्रयकरिके कार्यकारणरूप द्वैतका दुर्निरूपणपना कहैहैंः–जिन वादीनके मतविषै धर्मादिरूप हेतुका आदि (कारण), देहादि संघातरूप फल है औ देहादि संघातरूप फलका धर्मादिरूप हेतु, आदि (कारण) है; ऐसैं हेतु औ फलके परस्परके कार्य औ कारणभावकरि आदिवानूपनेकूं कहनेवाले तिन वादीन-करि हेतु औ फलका निषेध किया (विरुद्ध) अनादिपना कैसैं वर्णन करियेहै ? जातैं नित्य कूटस्थ (निर्विकार) आत्माकी हेतु औ फलरूपता नहीं संभवैहै, यातैं हेतु औ फलका आत्माके परिणाम होनेतैं आदिमानूपना औ उपादानरूपसैं अनादिपना बी बनै नहीं ॥ १४

टीकाः–तिनैंकरि[227] विरुद्ध कैसैं अंगीकार करियेहै ? तहां कहियेहैः–जिनके मतविषै धर्मादिरूप हेतुका आदि (कारण), फल (दे-

---

२२६ द्वैतवादिनकरि परस्परके पक्षके निषेधद्वारा प्रसिद्ध किया जो वस्तुका जन्यपना, सो अद्वैतवादीनैं अनुमोदन किया। अब श्रुतिप्रतिपादित औ विद्वान्‌के अनुभवका अनुसारी द्वैतका निषेध बी इस अद्वैतवादीनैं अनुमोदन किया हीं है। ऐसैं कहैहैं।

२२७ हेतु (अदृष्ट) औ फल (शरीरादिक)के परस्परकी आदिमानूताकूं कहनेवाले वादीनैं तिस हेतु औ फलरूप संसारका अनादिपना

सम्भवे हेतुफलयोरेषितव्यः क्रमस्त्वया ।
युगपत्सम्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाणवत् ॥१६॥
फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति ।
अप्रसिद्धः कथं हेतुः फलमुत्पादयिष्यति ॥१७॥

हादि संघात) है, औ फलका आदि, हेतु, है; तिन हेतुतैं जन्यहीं फलतैं हेतुके जन्मकूं अंगीकार करनेवाले वादीन-के मतमैं इसप्रकारका विरोध कथन किया होवैहै कि; जैसैं पुत्रतैं पिताका जन्म विरुद्ध होवैहै । तैसैं फलतैं हेतुका जन्म कहना विरुद्ध होवैगा ॥ १५ ॥

टीकाः—[२२८]हे वादी ! जब उक्त प्रकारका विरोध अंगीकार करनेकूं योग्य नहीं है, ऐसैं तूं मानता हैं, तब हेतु औ फलकी उत्पत्तिविषै हेतु पूर्व है औ फल पीछे है, इस प्रकारका जो क्रम है, सो तेरेकरि खोजनेकूं योग्य है । जातैं एककालविषै उत्पत्तिके हुये श्रृंगनकी न्यांई असंबंध होवैगा । जैसैं एककालविषै उत्पन्न होनेवाले वाम दक्षिणरूप गौके श्रृंगनका कार्यकारण भावकरि असंबंध है, तैसैं एक कालविषै उत्पन्न भये हेतु औ फलका कार्य कारण भावसैं असंबंध होवैगा, यातैं तिनका क्रम, खोजनेकूं योग्य है ॥ १६ ॥

टीकाः—कैसैं[२२९]तिनका असंबंध होवैहै? तहां कहैहैं:—जन्य औ

निषेध किया । ऐसैं प्रतिपादन किया । अब तिनका कार्यकारणभाव बी नहीं संभवै है; ऐसैं कहैहैं ।

२२८ प्रतीतितैं हेतु औ फलकी उत्पत्तिकूं स्वीकार करने योग्य होनेतैं ताका निषेध युक्त नहीं है? यह आशंका करिके कहैहैं ।

२२९ अब "पुण्यकर्मसैं निश्चयकरि पुण्यरूप होवैहै" इत्यादि श्रुतितैं धर्म आदिकविषै हेतु औ फल भावकी आशंका करिके श्रुतिकूं अघटित अर्थविषै प्रमाण होनेके असंभवतैं श्रुतिका पूर्व अपरभाव (आगे-पीछेपना) अवश्य कहनेकूं योग्य है; ऐसैं कहैहैं ।

यदि हेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः ।
कतरत्पूर्व्वं निष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया॥ १८ ॥
अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथ वा पुनः ।
एवं हि सर्व्वथा बुद्धैरजातिः परिदीपिता ॥१९॥

स्वरूपतैं अप्रतीतरूपवाले फलतैं उत्पन्न होनेवाला हुया हेतु, शशशृंग आदिक असत् वस्तुकी न्याई नहीं सिद्ध होवैगा (जन्मकूं नहीं पावैगा) औ शशशृंग आदिकके तुल्य अप्रतीतरूपवाला अप्रसिद्ध हुया हेतु, तेरे मतविषै कैसैं फलकूं उत्पन्न करैगा ? परस्परकी अपेक्षाकरि सिद्धिवाले शशशृंगके तुल्य वस्तुनका कार्यकारणभावसैं कहीं बी संबंध देख्या नहीं । यह अभिप्राय है॥१७॥

टीका:—असंबंधपनैरूप दोषसैं हेतु औ फलके कार्यकारणभावके निषेध किये हुये बी जब तेरेकरि फलतैं हेतुकी सिद्धि औ हेतुतैं फलकी सिद्धि अंगीकार करियेहीं है; तव हेतु औ फलके मध्य, पूर्वके सिद्धिकी अपेक्षासैं जिस पीछे होनेवाले-की सिद्धि होवैहै; ऐसा पूर्व उत्पन्न भया कौंनहै ? सो कहो ॥ १८ ॥

टीका:—जब यह क्रम जाननेकूं शक्य नहींहै, ऐसैं मानताहैं; तव सो यह अशक्ति (कहनेका असामर्थ्य) अज्ञान है; कहिये तत्वका अविवेकरूप मूढता है । अथवा फेर जो यह तैंनैं हेतुतैं फलकी सिद्धि होवैहै, औ फलतैं हेतुकी सिद्धि हीवैहैः ऐसैं अन्य अन्यके पीछे होनेरूप क्रम कहा; ताका कोप (अन्यथाभावरूप विपर्यय) होवैगा । यह अभिप्राय है । ऐसैं[२३०] हेतुफलके कार्यकारणभावके असंभवतैं परस्परकी अपेक्षासैं दोषके कहनेवाले वादीरूप

---

२३० परस्परके पक्षके निषेधरूप द्वारसैं सत् औ असत् वस्तुके जन्मके निषेध किये हुये क्रम औ अक्रमकरि उत्पत्तिके असंभवतैं, वादिनकरि दिखाई हुई अनुत्पत्तिहीं हमकूं इष्ट होवैहै; ऐसैं अजातिवादकूं समास करैहैं।

**बीजाङ्कुराख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः।
न हि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते ॥ २० ॥**

पंडितोंनैं सर्व प्रकारसैंहीं (सर्व वस्तुकी) अनुत्पत्ति प्रकाश करीहै ॥ १९ ॥

टीकाः—ननु, हे सिद्धांती ! हेतु औ फलका कार्यकारणभाव है, ऐसैं हमनैं कहाहै, औ तुह्मनैं जैसैं पुत्रतैं पिताका जन्म होवैहै औ गौके शृंगनकी न्यांई असंबंध होवैगा; इत्यादिरूप कहनेकूं इच्छित अर्थतैं रहित शब्दमात्रकूं आश्रय करिके यह छल कहाहै । जातैं हमनैं असिद्ध हेतुतैं फलकी सिद्धि, वा असिद्ध फलतैं हेतुकी सिद्धि अंगीकार करी नहीं; किंतु बीज औ अंकुरकी न्याई हेतु औ फलका कार्यकारणभाव हमोंकरि अंगीकार करियेहै, यातैं हमारे मतविषै कोउ दोष नहींहै ? तहां कहियेहैः—**बीज औ अंकुर नामवाला** जो **दृष्टांत है, सो** मुज मायावादीके मतविषै **सदा साध्यकरि तुल्य है;** काहेतैं कहूं बी वास्तव कार्यकारणभावकी अप्रतीतितैं, यह अभिप्राय है ॥ ननु, बीज औ अंकुरका जो कार्यकारणभाव है, सो प्रत्यक्ष अनादि है ? ऐसैं जब वादीनैं कहा, तब सिद्धांती कहैहैं:— हे वादी ! बीज औ अंकुरकी व्यक्तिका कार्यकारणभाव तेरेकरि अंगीकार करियेहै, किंवा बीज औ अंकुरके संतानका ? तिनमैं प्रथम पक्ष बनै नहीं; काहेतैं, पूर्व पूर्वके, पीछलेकी न्याई आदिमानपनैके अंगीकारतैं । जैसैं अबी उत्पन्न भया बीज आदिकवाला पीछला अंकुर औ पीछला बीज, अन्य अंकुर औ बीजतैं पूर्व है; यातैं क्रमकरि उत्पन्न होनेतैं आदिवाला है । ऐसैं पूर्व पूर्व अंकुर, औ पूर्व पूर्व बीज, आदिवाला हीं है । इस रीतिसैं एक एक सर्वबीज औ अंकुरके समूहकूं आदिवाला होनेतैं किसीके बी अनादिपनैका(परस्पर कारणपनैका) असंभव है; ऐसैं हेतु औ फलनके बी अनादिपनैका

पूर्व्वापरापरिज्ञानमजातेः परिदीपकम् ।
जायमानाद्धि वै धर्म्मात्कथं पूर्व्वं न गृह्यते॥२१॥

औ परस्पर कारणपनैका असंभव है । जो कहै, बीज औ अंकुरकी संतति (संतान) का अनादिपना है ? सो बी बनै नहीं:—काहेतैं तिनके संततिकी एकरूपताके असंभवतैं । जातैं तिन बीज औ अंकुरके अनादिपनैंके वादीनकरि, बीज औ अंकुरसैं भिन्न, बीज औ अंकुरका संताननामक एक व्यक्ति नहीं अंगीकार करीयेहै, तातैं हेतु औ फलका अनादिपना तिन वादीनकरि कैसैं वर्णन करियेहैं ? यह कहो । तैसैं हेतु औ फलके कार्यकारणभावकी कहूं बी प्रतीतिके असंभवतैं अन्यबी जो हमनैं कहाहै, सो छलरूप नहींहै । यह अभिप्राय है । औ लोकमैं प्रमाणविषै कुशल पुरुषनकरि साध्यसैं तुल्य हेतु (दृष्टांत), साध्यकी सिद्धिविषै (सिद्धिके निमित्त) नहीं जोडियेहै । इहां हेतुशब्दके मुख्यअर्थकूं त्यागिके दृष्टांतरूप गौणअर्थ कहनेकूं इच्छित है; काहेतैं, सूचक होनेतैं । जातैं प्रसंगविषै प्राप्त भया दृष्टांत है, हेतु नहीं; यातैं सोई ग्रहण करियेहै ॥ २० ॥

टीका:—पंडितोनैं सर्व वस्तुकी अनुत्पति कैसैं प्रकाश करीहै ? तहां कहैहैं:—जो यह हेतु औ फलके कार्य औ कारणका अज्ञान है, सो यह अनुत्पत्तिका प्रकाशक (अवबोधक) है । जब उत्पन्न होनेवाला धर्म (कार्य)ग्रहण करियेहै, तब उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध कार्यरूप धर्मतैं पूर्व (कारण) कैसैं नहीं ग्रहण करियेहै ? जातैं उत्पन्न होनेवाले कार्यके ग्रहण करनेवाले पुरुषकरि ताका जनक अवश्य ग्रहण करनेकूं योग्य है, जन्य जनकके संबंधकूं अभिन्न होनेतैं; तातैं सो कार्यकारणका अज्ञान अनुत्पत्तिका प्रकाशक है । यह अर्थ है ॥ २१ ॥

स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते ।
सदसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते ॥२२॥

टीकाः—इस कथन करनेके हेतुतैं कछुबी वस्तु जन्मता नहीं, ऐसें सिद्ध होवैहैः—जातैं आपतैं वा परतैं वा दोनूंतैं बी कछुबी वस्तु उपजता नहीं; यातैं सत्, असत्, वा सत्असत्; दोनूंरूप बी कछुकवस्तु उत्पन्न होता नहीं ॥ याका यह भावार्थ हैः—जो उत्पन्न होनेवाला वस्तु आपतैं परतैं वा दोनूंतैं, सत् वा असत् वा उभयरूप उपजताहै; ताका किसीबी प्रकारसैं जन्म संभवै नहीं । जैसें घट आपहीं तिसीहीं घटतैं उपजता नहीं, तैसें प्रथम आपहीं अनुत्पन्न होनेतैं आपके स्वरूपतैं उपजता नहीं, । जैसें घटतैं पट औ पटतैं अन्य पट उपजता नहीं, तैसें अन्यतैं अन्य बी उपजता नहीं । जैसें घट औ पट दोनूंतैं घट वा पट उपजता नहीं, तैसें दोनूंतैं बी कोई वस्तु उपजता नहीं ॥ ननु मृत्तिकातैं घट उपजताहै औ पितातैं पुत्र उपजताहै ? तहां कहे हैंः—मूढनकूं उपजताहै ऐसा ज्ञान औ शब्द है; यह तेरा कथन सत्य है; तथापि सोई शब्द औ ज्ञान विवेकीपुरुषनकरि वे शब्द औ ज्ञान क्या सत्य हैं वा मिथ्याहैं ? जहांलगि ऐसें परीक्षा करियेहैं तहांलगि वे मिथ्या हैं । ऐसें परीक्षा कियेहुये शब्द औ ज्ञानका विषय घट पुत्रादिरूप जो वस्तु है, सो शब्दमात्रहीं है; "वाणीका विषय किया विकार नाममात्रहीं है" इस श्रुतितैं । तातैं शब्द औ ज्ञानकूं असत्य विषयवान्पना माननेकूं योग्य है । जब सत् है, तब नहीं उपजताहै; सत् होनेतैं, मृत्तिका पिंड आदिककी न्यांई । जब असत् है, तौबी जन्मता नहीं (विद्यमान नहींहै); असत् होनेतैंहीं, शशशृंगकी न्यांई । औ जब सत् असत्रूप है, तौबी जन्मता नहीं; विरुद्धरूप एक वस्तुके असंभवतैं, तमःप्रकाशकी न्यांई । यातैं कछुबी वस्तु जन्मता नहीं, ऐसें सिद्ध भया ॥ फेर जिन बौद्धनके मतविषै

**हेतुर्न जायतेऽनादेः फलञ्चापि स्वभावतः ।
आदिर्न विद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते २३
प्रज्ञतेः सनिमित्तत्वमन्यथा द्वयनाशतः ।
सङ्क्लेशस्योपलब्धेश्च परतन्त्राऽस्तिता मता २४**

उत्पत्तिरूप क्रियाहीं उपजती है, ऐसैं क्रिया कारक औ फलकी एकता औ वस्तुका क्षणिकपना अंगीकार करियेहै; यातैं वे वादी दूरतैं हीं युक्तिकरि रहित हैं; काहेतैं, "यह ऐसैं है" इस निश्चयके अन्य क्षणकी स्थितिके अभावतैं, औ अनुभव किये वस्तुकी स्मृतिके असंभवतैं ॥ २२ ॥

टीकाः–किंवाः–हेतु औ फलके अनादिपनैकूं अंगीकार करनेवाले तुज वादीकरि बलतैं हेतु औ फलकी अनुत्पत्तिहीं अंगीकार करी होवैगी ॥ कैसैं होवैगी? तहां कहैहैंः-**आदि रहित-फल-तैं हेतु नहीं जन्मता है, औ आदि रहित हेतु-तैं फल बी स्वभावतैं नहीं जन्मता है,** जातैं अनुत्पन्न भये अनादि फलतैं हेतुका जन्म औ आदिरहित अजन्मा हेतु-तैं फल बी स्वभावतैंहीं (निमित्तविना) उपजताहै; ऐसैं तेरे करि नहीं अंगीकार करियेहै; तातैं हेतु औ फलके अनादिपनैकूं अंगीकार करनेवाले तुजकरि हेतु औ फलकी अनुत्पत्तिहीं अंगीकार करियेहै । जातैं लोकविषै जिसका आदि (कारण) नहींहै, तिसकी आदि (पूर्व उक्त उत्पत्ति) नहीं है; कहिये कारणवाले वस्तुकी हीं उत्पत्ति अंगीकार करियेहै, अकारणवालेकी नहीं; यातैं अनादिरूप इन हेतु औ फलकी अनुत्पत्तिहीं सिद्ध भई ॥ २३ ॥

टीकाः–[२३१] उक्त अर्थकेहीं दृढ करनेकी इच्छासैं फेर आक्षेप करैहैः– शब्द आदिककी प्रतीतिरूप जो ज्ञान, सो प्रज्ञप्ति है; तिस प्रज्ञ-

---

२३१ वस्तुके वास्तव जन्मके असंभवतैं अजन्मा विज्ञानमात्र तत्व है, ऐसैं कहा । अब बाह्य अर्थके वादकूं उठावतेहैं ।

प्तिका विषयरूप निमित्त (करण) करि सहितपना (आपतैं भिन्न विषयवान्पना) है; ऐसैं हम प्रतिज्ञा करैहैं। जातैं शब्दादिककी प्रतीतिरूप प्रज्ञप्ति विषयरहित नहीं होवैहै, ताकूं विषयरूप निमित्तकरि सहित होनेतैं; तातैं इस प्रज्ञप्तिकूं आपतैं भिन्न वस्तुरूप विषयवान्पना युक्त है, अन्यथा (ताकूं विषयरहितपनैके हुये) शब्द स्पर्श नील पीत लाल आदिकके ज्ञानोकी विचित्रतारूप द्वैतके नाशतैं ताका नाश प्राप्त होवैगा; औ ज्ञानोकी विचित्रतारूप द्वैतका नाश (अभाव) नहीं है, ताकूं प्रत्यक्ष होनैतैं। यातैं ज्ञानोकी विचित्रतारूप द्वैतके दर्शनतैं अन्य वादीनका शास्त्र परतंत्र है, ऐसैं अन्योंका जो शास्त्र ताके परतंत्र आश्रयरूप ज्ञानतैं भिन्न बाह्य अर्थकी अस्तिता (विद्यमानता) मानी (हमकूं वांच्छित) है ॥ प्रकाशमात्र स्वरूप प्रज्ञप्तिका नील पीत आदिक बाह्य विषयनकी विचित्रताविना स्वभावके भेदसैंहीं विचित्रपना नहीं संभवै है; जैसैं स्फटिकका नीलआदिक उपाधिरूप आश्रयनसैं विना विचित्रपना नहीं घटताहै; तैसैं, यह अभिप्राय है। ईसैं[२३२] अन्य हेतुतैं बी परतंत्र आश्रयरूप ज्ञानसैं भिन्न बाह्य अर्थकी अस्तिता (सद्भाव) है:—औ क्लेश जो दुःख, ता—की प्रतीतितैं परतंत्रकी अस्तिता मानी है। जातैं अग्नि आदिक निमित्तवाला दुःख प्रतीत होवैहै। जब दाह आदिकका निमित्त अग्नि आदिक बाह्य वस्तु, ज्ञानसैं भिन्न न होवै, तातैं (तब) दाहादिरूप दुःख नहीं प्रतीत हुया चाहिये; परंतु प्रतीत होवैहै; यातैं तिसकरि बाह्य अर्थ है, ऐसैं हम मानतेहैं। जातैं विज्ञानमात्रविषै क्लेश (दुःख) युक्त नहींहै, औ अन्य चंदनलेप आदिकके ठिकाने दुःखके अदर्शनतैं। यातैं ज्ञानतैं भिन्न बाह्य

---

२३२ बाह्य अर्थविना अग्निकरि दाह आदिकके किये दुःखकी प्रतीतिके असंभवतैं, बाह्य अर्थ है, ऐसैं कहैहैं।

प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमिष्यते युक्तिदर्शनात् ।
निमित्तस्यानिमित्तत्वमिष्यते भूतदर्शनात्॥२५॥

अर्थके अभाव हुये दुःखकी प्रतीतिके असंभवतैं, ज्ञानतैं भिन्न बाह्य अर्थ संभवैहै । यह अभिप्राय है ॥ २४ ॥

टीकाः—ऐसैं[२३३] वादीनैं पूर्व श्लोकविषै आक्षेप किया । तहां कहियेहैः—ऐसैं द्वैत औ दुःखकी प्रतीतिरूप युक्तिके देखनेतैं, प्रज्ञप्तिका विषयरूप निमित्तकरि सहितपना तेरेकरि अंगीकार करियेहै, यह सत्य है; परंतु प्रथम बाह्य अर्थरूप वस्तुकी प्रज्ञप्तिकी विषयताके अंगीकारविषै पूर्वउक्त युक्तिका देखना कारण है, इस अर्थविषै तूं स्थित रहना ॥ ॥ मैं विचारदृष्टिकूं हीं आश्रय करिके वर्तताहूं तिसतैं मेरेकूं क्या दूषण है सो कहो? तहां सिद्धांती कहैहैं किः—दूषण कहियेहैः—तेरेकरि प्रज्ञप्तिके आश्रय माने हुये घटादिरूप **निमित्तका अनिमित्तपना** (विचित्रताका अकारण होनेरूप अनाश्रयपना,) हमोंकरि **अंगीकार करियेहै; काहेतैं परमार्थके देखनेतैं।** घट जो है सो परमार्थरूप मृत्तिकाके स्वरूपके देखे हुये जैसैं अश्वतैं भैंसा भिन्न है, तैसैं तातैं भिन्न नहींहै । वा तंतुतैं भिन्न पट औ अंशु (सूक्ष्मतंतु)तैं भिन्न तंतु नहीं है, ऐसैं उत्तरोत्तर परमार्थवस्तुके देखे हुये शब्द औ ज्ञानसैं आरंभकरिके सर्वके निरोधतैं प्रज्ञप्तिका निमित्त हम नहीं देखतेहैं; यह अर्थ है । अथवा रज्जुविषै सर्प आदिककी न्याई अपरमार्थके दर्शनतैं बाह्य अर्थका अनिमित्तपना अंगीकार करियेहै; यह अर्थ है । औ भ्रांतिज्ञानका विषय होनेतैं निमित्तका अनिमित्तपना होवैहै; काहेतैं तिस भ्रांतिके अभाव हुये ताकी अप्रतीतितैं । जातैं सुषुप्तिवान् समाधिवान् औ मुक्त पुरुषनकूं भ्रांतिदर्शनके अभाव हुये, आपतैं भिन्न बाह्य अर्थ नहीं प्रतीत होवैहै;

२३३ दोनूं अर्थापत्ति प्रमाणनसैं बाह्य अर्थके वादके प्राप्त भये विज्ञानवादकूं प्रकट करैहैं ।

चित्तं न संस्पृशत्यर्थं नार्थाभासं तथैव च ।
अभूतो हि यतश्चार्थो नार्थाभासस्ततः पृथक् २६

औ जातैं अनुत्पत्तितैं (उत्पत्तिके अभाव हुये) बी उन्मत्त पुरुषकरि ज्ञातवस्तु, विद्वानोकरि तिस[२३४]प्रकारका नहीं जानियेहै; यातैं भ्रांतिके अभाव हुये बाह्यअर्थका अभाव बनैहै । इसैं[२३५] कथनकरि द्वैतका दर्शन औ दुःखकी प्रतीतिरूप प्रज्ञप्तिके निमित्तसहितपनैविषै कथन किये कारणका निषेध किया ॥ २५ ॥

टीकाः—जातैं[२३६] बाह्य निमित्त नहींहै, यातैं चित्त (चैतन्य) बाहिरके आश्रय औ विषयरूप अर्थकूं स्पर्श करता नहीं औ[२३७] तैसैंहीं मनोराज्यादिक अर्थके आभासकूं बी स्पर्श करता नहीं, चित्त (चैतन्य) होनेतैं, स्वप्नके चित्त (चैतन्य)की न्याईं । जातैं[२३८] (उक्त हेतुतैं) जाग्रत्‌विषै बी बाह्य शब्दादिरूप अर्थ स्वप्नके अ-

---

२३४ देहाभिमानीकूं बाह्य अर्थकी प्रतीतिके निश्चयतैं अद्वैत दर्शीकूं बी ताकी प्रतीति प्रतिबंधरहित होवैगी? यह आशंका करिके कहैहैं ।

२३५ बाह्य अर्थके प्रतिपादन अर्थ कथन किये जे दोनूं अर्थापत्तिप्रमाण, वे कैसैं निषेध करनेकूं योग्य हैं? ऐसैं कहैहैं ।

२३६ ज्ञानके आश्रय (विषय) सहितपनैकी प्रसिद्धितैं वास्तव दृष्टिसैं ज्ञेय (विषय) के अभाव हुये ज्ञान बी नहीं होवैगा? यह आशंका करके कहैहैं ।

२३७ चित्त (चैतन्य)कूं अर्थ (पदार्थ)के तांईं स्पर्श करनेके स्वभावके अभाव हुये बी तिस (पदार्थ)के आभासके तांईं स्पर्श करनेका स्वभाव होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं ।

२३८ अब श्लोकके तृतीयपादका व्याख्यान करैहैं । विवादका विषय जो अर्थ, सो सत्‌रूप नहीं होवैहै; अर्थ होनेतैं, प्रसिद्ध अर्थकी न्याईं; या अनुमानतैं ज्ञानका आश्रय नहींहै । यह अर्थ है ।

निमित्तं न सदा चित्तं संस्पृशत्यध्वसु त्रिषु ।
अनिमितो विपर्यासः कथं तस्य भविष्यति ॥२७॥

र्थकी न्यांई मिथ्या हीं हैं; यातैं अर्थका आभास वी तिस चित्ततैं भिन्न नहींहै; किंतु चित्त (ब्रह्म चेतन) हीं घटादिरूप अर्थकी न्यांई भासता है; जैसैं स्वप्नविषै भासताहै, तैसैं ॥ २६ ॥

टीकाः—[२३९]ननु तब चित्त (चेतन)कूं असत् घटादिकविषै घटादिककी आभासतारूप विपर्यय (भ्रम) होवैगा । तैसैं हुये कहींक अविपर्यय (अभ्रम) कहनेकूं योग्य है ? तहां कहियेहैः—[२४०]**निमित्त** जो विषय, सो भूत भविष्यत् औ वर्तमानरूप इन **तीन मार्गनविषै वी सदा चित्तकूं स्पर्श करता नहीं;** जब कहींक स्पर्श करै तब सो परमार्थतैं अविपर्यय है । यातैं तिस चित्तके स्पर्शकी अपेक्षासैं असत् घटविषै घटकी आभासतारूप विपर्यय होवैहै; परंतु सो चित्तका अर्थसैं स्पर्श कदाचित् वी नहीं है; [२४१]**तातैं निमित्तरहित विपर्यय** (भ्रम) **तिस चित्त–कूं कैसैं होवैगा!** किसीप्रकारसैं वी विपर्यय नहींहै, यह अभिप्राय है ॥

---

२३९ इहां यह अर्थ हैः— जब घटादिक बाह्य अर्थ नहीं ग्रहण करियेहै, तब असत्‌रूप तिस घटादिकविषैहीं तिस घटादिककी प्रतीतिके होनेतैं ज्ञानका विपर्यास (भ्रम) होवैगा; काहेतैं, तिसकरि रहितविषै तिसकी बुद्धिरूप विपर्यासकूं तिस प्रकारका होनेतैं । औ विपर्यासके अंगीकार किये कहींवी अविपर्यास (अभ्रांति) कहनेकूं योग्य है; काहेतैं, अन्यथाख्यातिवादीनकरि भ्रांतिकी अभ्रांति पूर्वकताके अंगीकारतैं ।

२४० ज्ञानकूं विषयरूप आश्रयकरि सहितताके अभाव हुये ताके तिसप्रकार होनेकी प्रतीति भ्रांति होवैगी, औ भ्रांति जो है सो अभ्रांतिरूप प्रतियोगीवाली है; ऐसैं अन्यथाख्यातिके मतकी आशंका करिके कहैहैं ।

२४१ भ्रांति तो अन्यप्रकारसैं बी होवैगी; ऐसैं कहैहैं ।

तस्मान्न जायते चित्तं चित्तदृश्यं न जायते ।
तस्य पश्यन्ति ये जातिं खे वै पश्यन्ति ते पदम् २८

जातैं यहहीं चित्त (ब्रह्मचेतन)का स्वभाव (अविद्या) है किः— जो घटादिरूप निमित्तके अविद्यमान हुये ताकी न्याई भासना । यातैं अभ्रांतिके अभावतैं भ्रांतिके असंभव हुये ज्ञानकी असत्‌घटादिकविषै घटादिककी आभासरूपता निर्वाह करियेहै ॥ २७ ॥

टीकाः—"[२४२]प्रज्ञप्तिका निमित्तसहितपना है" इस (२९)सैं आदिलेके इहांपर्यंत विज्ञानवादी जो बौद्ध, ताका बाह्यअर्थके वादीके पक्षके निषेधके परायण वचन हैं; सो आचार्यनैं अनुमोदन किया । अब ताही वचनकूं हेतुकरिके तिस विज्ञानवादीके पक्षके निषेध अर्थ यह कहियेहैः—जातैं विज्ञानवादीनैं असत्‌हीं घटादिकविषै चित्तकूं घटादिककी आभासरूपता अंगीकार करीहै, सो हमनैं बी परमार्थदृष्टितैं अनुमोदन किया । **तातैं** तिस चित्तकी बी जन्मके अविद्यमान हुयेहीं जाननेमैं आवनेकी वस्तुकी आभासरूपता होनेकूं योग्य है । यातैं **चित्त (चैतन्य) जन्मता नहीं; जैसैं चित्तका दृश्य जन्मता नहीं, तैसैं ।** यातैं तिसीहीं चित्तकरि देखनेकूं अशक्य चित्तस्वरूपताके धर्म, क्षणिकता दुःखरूपता औ अनात्मता आदिककूं देखते हुये, **जो** विज्ञानवादी **तिस चित्त-की उत्पत्तिकूं देखतेहैं, वे आकाशविषै** पक्षी आदिकनके **पादकूं प्रसिद्ध देखतेहैं** । यातैं ये विज्ञानवादी अन्य द्वैतवादीनतैं बी अत्यंत विचार शून्य हैं । यह अर्थ है । औ जे शून्यवादी हैं, वे-बी सर्वकी शून्यताकूं देखते हुयेहीं अपने सिद्धांतके बी शून्यताकी प्रतिज्ञा करतेहैं, वे आकाशकूं मुष्टिसैं बी ग्रहण करनेकूं इच्छतेहैं । यातैं वे तिन विज्ञानवादीनतैं बी अत्यंत विचारशून्य हैं ॥ २८ ॥

---

२४२ ऐसैं बाह्यअर्थवादीके पक्षकूं विज्ञानवादीद्वारा निषेध करिके, अब विज्ञानवादका निषेध करैहैं ।

अजातं जायते यस्मादजातिः प्रकृतिस्ततः ।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ॥ २९ ॥
अनादेरन्तवत्त्वञ्च संसारस्य न सेत्स्यति ।
अनन्तता चादिमतो मोक्षस्य न भविष्यति ३० ॥

टीकाः—"अजन्मा एक ब्रह्म है," ऐसैं जो पूर्व प्रतिज्ञा किया ताके उक्त हेतुनसैं जन्मके अनिरूपणतैं, सो अजन्मा ब्रह्म सिद्ध भया तिस सिद्ध भये अर्थके फलकी समाप्तिअर्थ यह श्लोक हैः—[२४३]अजन्मा हीं जो चित्त (ब्रह्म) है, सो जन्मताहै, ऐसैं वादीनकरि कल्पना करियेहै। जातैं सो अजन्मा जन्मताहै, यातैं ताकी अनुत्पत्ति प्रकृति (स्वभाव) है। तातैं अनुत्पन्नरूप प्रकृतिका अन्यथाभाव (जन्म) किसीप्रकारसैं बी नहीं होवैगा ॥ २९ ॥

टीकाः—औ आत्माके संसार औ मोक्षके परमार्थतैं सद्भावके वादीनकूं यह दूसरा दोष कहियेहैः—पूर्व नहीं था, इस, अवच्छेदसैं रहित अनादि संसारकी अंतवानूता (समाप्ति) युक्तितैं सिद्ध नहीं होवैगी; जातैं लोकविषै कोइबी पदार्थ अनादि हुया अंतवान् नहीं देख्या है, यातैं [२४४]यहीं अर्थ बनैहै ॥ जो कहै, बीज औ अंकुरका हेतु औ फलभावसैं जो संबंध है, ताके संतानके अनादिभावरूप हुये बी ताके अंतके देखनेतैं, संसारकी अनंतताके साधनेविषै "अनादि होनेतैं यह जो हेतु कहा, ताकूं व्यभिचारीपना है? सो कथन बनै

---

२४३ इहां यह अर्थ हैः—जब चेतनरूप स्फुरण अजन्मा इष्ट है, तब सो ब्रह्महीं है; काहेतैं ताकूं एक कूटस्थ स्वभाववाला होनेतैं। सो फेर वस्तुतैं अजन्माहीं है, तौबी मायासैं जन्मवान् होवैहै; ऐसैं जब कल्पना करियेहै, तब ताकूं अजन्मा होनेतैं ताकी अनुत्पत्तिहीं प्रकृति (स्वभाव) होवैहै।

२४४ इहां यह अनुमान हैः—विवादका विषय जो संसार, सो अंतवान् नहीं है; अनादिभावरूप होनेतैं, आत्माकी न्याईं।

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथाइव लक्षिताः॥३१॥
सप्रयोजनता तेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते ।
तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः ॥३२॥

नहीं:—काहेतैं बीज औ अंकुरके संबंधके संतानरूप वस्तुकूं एकरूपताके अभावकरि पूर्व (२१ विषै) निषेध किया होनेतैं । औ तैसैं ज्ञानकी प्राप्तिकालविषै उत्पत्तिरूप **आदिवाले मोक्षकी अनंतता बी नहीं होवैगी;** काहेतैं आदिवाले घटादिकविषै अनंतताके अदर्शनतैं । जो कहै, घटादिक नाशवान् है, अवस्तु होनेतैं; ऐसैं माने हुये दोष नहींहै? तो तैसैं हुये मोक्षके परमार्थतैं सद्भावके प्रतिज्ञाकी हानि होवैगी, औ मोक्षकूं शशशृंगकी न्यांई असत् होनेतैंहीं ताके आदिवान्पनैका (ज्ञानतैं उत्पत्तिका) अभाव होवैगा ॥३०॥

टीका:—तब मोक्षकूं आदि अंतवान्पना होहू? तहां कहैहैं:—**जो** मृगजल आदिक वस्तु **आदिविषै औ अंतविषै नहीं है,** सो वर्त्तमानविषै बी तैसैं (नहीं) है । जैसैं यह दृष्टांत है, तैसैं मोक्ष आदिक पदार्थ **बी मिथ्यावस्तुनके तुल्य हुये बी** मूढोनैं **सत्यकी न्यांई जाने हैं** ॥ ३१ ॥

टीका:—ननु, मृगजल आदिकनके स्नान पानादिरूप प्रयोजनकी अप्रतीतितैं, औ मोक्ष स्वर्ग आदिकनके सुखादिककी प्राप्तिरूप प्रयोजनकी प्रतीतितैं मोक्षआदिकका मिथ्यापना नहीं है? यह अशंकाकरिके कहैहैं:—तिन मोक्ष आदिकन-की **प्रयोजनसहितता स्वप्नविषै विपर्ययकूं पावतीहै;** जैसैं स्वप्नविषै देखेहुये पदार्थनकी विपरीतता जाग्रत्विषै होवैहै, तैसैं जाग्रत्विषै देखेहुये पदार्थनकी विपरीतता स्वप्नविषै होवैहै । यह अर्थ है । **तातैं आदि** औ अंतवान् होनेकरि वे मोक्ष आदिक विवेकी पुरुषोनैं **निश्चय-**

सर्व्वे धर्म्मा मृषा स्वप्ने कायस्यान्तर्निदर्शनात् ।
संवृत्तेऽस्मिन् प्रदेशे वै भूतानां दर्शनं कुतः ॥ ३३ ॥
न युक्तं दर्शनं गत्वा कालस्यानियमाद् गतौ ।
प्रतिबुद्धश्च वै सर्व्वस्तस्मिन् देशे न विद्यते ॥ ३४ ॥

करि मिथ्याहीं जानेहैं । यद्यपि ये दोनूं श्लोक, वैतथ्यनामक द्वितीयप्रकरणविषै व्याख्यान किये हैं, तथापि इहां संसार औ मोक्षके अभावके प्रसंगसैं फेर पठन किये हैं; यातैं पुनरुक्तिरूप दोष नहीं है ॥ ३२ ॥

टीका:—"निमित्तका अनिमित्तपना हमोकरि अंगीकार करियेहैं, परमार्थके दर्शनतैं" इस (२९) विषै कथन किया जो अर्थ, सो अब इन श्लोकनसैं विस्तार करियेहैः—[२४५]जैसैं **स्वप्नविषै सर्व धर्म मिथ्या हैं, शरीरके भीतर देखनेतैं**, तब विराट्के देहविषै सर्व जगत्के देखनेतैं ताका मिथ्यापना निवारण करनेकूं अशक्य है । यह अर्थ है ॥ किंवा, जब योग्य देशके अभावतैं स्वप्नका मिथ्यापना दृष्ट है, तब प्रत्यगात्मासैं अभिन्न अखंड एकरस अवकाशरहित **इस ब्रह्मरूप देशविषै प्रसिद्ध विद्यमान वस्तुका दर्शन कहांसैं होवैगा?** ब्रह्मकूं अवकाशरहित होनैतैं किसीप्रकारसैं बी तिनका दर्शन बनै नहीं । जातैं दर्शन होवैहै, यातैं स्वप्नकी न्यांई जाग्रत् बी मिथ्या है । यह अर्थ है ॥ ३३ ॥

टीका:—अब उक्त अर्थकूंहीं वर्णन करैहैंः—जैसैं स्वप्नविषै **देशांतरकी गतिविषै कालके अनियमतैं जायके दर्शन** (देखना) **युक्त नहीं**, तैसैं जाग्रत्विषै बी मरणके पीछे अर्चि आदिक मार्गसैं जाय-

---

२४५ किंवा, जिस हेतुकरि स्वप्नका मिथ्यापना इष्ट है, तिस हेतुकूं जाग्रत्विषै बी तुल्य होनेतैं जन्मादिरहित ज्ञानमात्रहीं तत्व अंगीकार करनेकूं योग्य है; इस कहनेके अभिप्रायसैं कहैहैं ।

मित्राद्यैः सह सम्मन्त्र्य सम्बुधो न प्रपद्यते ।
गृहीतञ्चापि यत्किञ्चित् प्रतिबुद्धो न पश्यति ३५

के ब्रह्मका दर्शन युक्त नहींहै; ब्रह्मकूं कालके अवच्छेदकरि रहित होनेतैं ॥ किंवा, जैसैं सर्व जन जिस देशविषै स्थित हुया स्वप्नकूं देखताहै, फेर प्रबोध (जागरण)कूं पायाहुया तिस देशविषै स्थित नहींहै, इसप्रकार स्वप्नका मिथ्यापना वांच्छित है । तैसैं जाग्रत्‌विषै बी जिस देहरूप देशविषै स्थित हुया पुरुष, संसारकूं अनुभव करताहै; फेर ब्रह्मभावकूं प्राप्त हुया तिस देहरूप देशविषै स्थित नहींहै; परिपूर्ण ब्रह्मरूपकरि स्थित होनेतैं । यातैं जाग्रत्‌का बी मिथ्यापना अंगीकार करनेकूं योग्य है ॥ या श्लोकका तात्पर्यरूप अर्थ यह है:—जाग्रत्‌विषै गमन औ आगमनके काल जे नियमित हैं, औ जो देश प्रमाणतैं है; ताके अनियमतैं स्वप्नविषै देशांतरमैं गमन नहीं होवैहै; किंतु देहके भीतर देशांतरादिक प्रपंच देखियेहै, तैसैं जाग्रत्‌विषै बी घटे है, यातैं तिन दोनूंकूं तुल्य होनेतैं तिनका मिथ्यापना बी तुल्य है ॥ ३४ ॥

टीका:—[२४६]स्वप्नविषै मित्र आदिकनके साथि गुप्त भाषण करिके प्रबोधकूं पायाहुया पावता नहीं, औ [२४७]ग्रहण किये जिस

---

२४६ किंवा, जैसैं स्वप्नविषै विसंवादतैं (निष्फल प्रवृत्तिके जनक भ्रमरूपतासैं) अप्रमाणपना इच्छित है, तैसैं जाग्रत्‌विषै बी ब्रह्मवादीनके साथि विचारिके अविद्यानिद्रासैं प्रबोधकूं पाया जो पुरुष, सो। "परम श्रेय हमोकरि साधनेकूं योग्य है" ऐसैं विचार किये मोक्षके साध्यभावकूं नहीं जानताहै; काहेतैं, सर्वकी नित्यमुक्तताके निश्चयतैं । यातैं मुमुक्षुपना औ श्रवणादिक साधनकी कर्तव्यता, भ्रांतिसैंहीं है । ऐसैं कहैहैं ।

२४७ किंवा, स्वप्नकी न्यांईहीं अनुभव किये उपदेश आदिककूं विद्वान् नहीं देखताहै; काहेतैं, तिसकरि साध्य फलके अभावतैं; ऐसैं कहैहैं ।

स्वप्ने चावस्तुकः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात् ।
यथा कायस्तथा सर्व्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम् ३६
ग्रहणाज्जागरितवत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते ।
तद्धेतुत्वात्तु तस्यैव सज्जागरितमिष्यते ॥३७॥

किस सुवर्ण आदिक वस्तु-कूं बी देखता (पावता) नहीं; औ गयाहुया देशांतरके तांई जाता नहीं ॥ ३९ ॥

टीकाः—औ [२४८]स्वप्नविषै भ्रमताहुया जो शरीर देखियेहै, सो अवस्तुरूप है; काहेतैं, तिस स्वप्नके शरीर-तैं अन्य जाग्रत्विषै स्थित शरीरके भिन्न देखनेतैं । जैसैं स्वप्नका दृश्य शरीर असत् है, तैसैं जाग्रत्विषै बी सर्व चित्तका दृश्य अवस्तुरूप है; काहेतैं चित्तका दृश्य होनेतैं । स्वप्नके तुल्य होनेतैं जाग्रत् बी असत् है; ऐसा इस प्रकरणका अर्थ है ॥ ३६ ॥

टीकाः—[२४९]ऐसैं कहनेके हेतुतैं बी जाग्रत्के वस्तुका असत्पना है:— जाग्रत्की न्यांईं ग्राह्य ग्राहकरूपसैं स्वप्नके ग्रहणतैं तिस जाग्रत्रूप हेतुवाला (जाग्रत्का कार्य) स्वप्न अंगीकार करियेहै । तिसैं[२५०]

२४८ किंवा, स्वप्न अवस्थाविषै जा देहसैं नदी आदिकविषै विचरता है, सो मिथ्या है; काहेतैं, तिस स्वप्नगत देहसैं भिन्न निश्चल जाग्रत्गत देहके देखनेतैं । तैसैं जाग्रत्विषै बी जा संन्यासी आदिक शरीरसैं लोककूं पूजने योग्य वा द्वेष करने योग्य देखियेहै, सो मिथ्या कहियेहै; काहेतैं, तिस शरीरतैं भिन्न ब्रह्मनामक कूटस्थरूप शरीरके अनुभवतैं; ऐसैं कहैहैं ।

२४९ जैसैं जाग्रत् अनुभव करियेहै, तैसैं स्वप्न बी अनुभव करियेहै, औ स्वप्नकूं जाग्रत्का कार्य होनेतैं जो स्वप्नका द्रष्टा है, ताहीका जाग्रत् सत् (विद्यमान) है; यातैं स्वप्नकी न्यांईं जाग्रत्का मिथ्यापना है; ऐसैं कहैहैं ।

२५० किंवा, जाग्रत्का अनेक पुरुषनकूं साधारण होनेरूप जो विद्य-

उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजं सर्व्वमुदाहृतम् ।
न च भूतादभूतस्य सम्भवोऽस्ति कथञ्चन ३८

हेतुवाला होनेतैं (जाग्रत्का कार्य होनेतैं) तिसीहीं (स्वप्नके द्रष्टा) कूं जाग्रत् सत् अंगीकार करियेहै; [विद्यमान] अन्योका नहीं; जैसैं स्वप्न है। यह[251] अभिप्राय है। जैसैं स्वप्न जो है, सो स्वप्नके द्रष्टाकूंहीं सत् है; कहिये, साधारण विद्यमान वस्तुकी न्याईं भासताहै; तैसैं तिस जाग्रत्रूप कारणवाला होनेतैं तिस स्वप्नका स्वप्नके द्रष्टाकूंहीं साधारण विद्यमान वस्तुकी न्याईं भासता है; परंतु साधारण विद्यमान जो वस्तु है, सो स्वप्नकी न्याईं नहीं है। यह अभिप्राय है ॥ ३७ ॥

टीकाः—ननु[252] जाग्रत्के वस्तुकूं स्वप्नकी कारणताके हुये ताका स्वप्नकी न्याईं अवस्तुपना नहीं होवैगा, जातैं स्वप्न अत्यंत अस्थिर है औ जाग्रत्तो स्थिर देखियेहै; यातैं तिनकी विलक्षणता है? तहां कहैहैं:—हे वादी! अविवेकी पुरुषनकूं तैसैं अनुभव होवैहै, यह तेरा कथन सत्य है, परंतु विवेकी पुरुषनकूं तो किसीवी वस्तुकी उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं है। यातैं उत्पत्तिकूं अप्रसिद्ध होनेतैं, आत्माहीं सर्व है "बाहिर भीतर सहित है औ अजन्मा है" इस श्रुति-

---

मानपना है, सो वस्तुतैं नहीं है; काहेतैं, स्वप्नका कारण होनेतैं, किंतु ताकूं तैसैं अनेककूं साधारण होनेकी न्याईं भासमानपना है; ऐसैं कहैहैं।

२५१ प्रमाताके होते बाध्य होनेरूप स्वप्नका मिथ्यापना है, औ जाग्रत्कूं फेर तिस बाध्य होनेकी अप्रतीतितैं परमार्थतैं सत्पना है औ कार्यके मिथ्यापनैके हुये कारणकूं बी मिथ्यापना है, इसविषै प्रमाणके अभावतैं सर्वकूं साधारण औ विद्यमान जो जाग्रत् सो मिथ्या होनेकूं योग्य नहीं है? यह आशंका करिके कहैहैं।

२५२ स्वप्न औ जाग्रत्के कार्यकारणभावके हुये बी दोनूंका मिथ्यापना-तुल्य नहीं हैं; काहेतैं, अत्यंत विलक्षण होनेतैं? यह आशंका करिके कहैहैं।

असज्जागरिते दृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः ।
असत्स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च प्रतिबुद्धो न पश्यति॥३९॥

तैं। ऐसैं वेदांतनविषै सर्व अजन्मा कहा है। यद्यपि सत् जाग्रत्तैं असत् स्वप्न उपजताहै, ऐसैं तूं मानताहैं; तौबी सो असत् हैः—काहेतैं, विद्यमान वस्तु-तैं अविद्यमान वस्तु-का किसीप्रकारसैं बी संभव नहीं है। लोकविषै असत्‌रूप शशशृंग आदिकका संभव किसी प्रकारसैं बी देख्या नहीं ॥ ३८ ॥

टीकाः—ननु, हे सिद्धांती! तुमनैं हीं [३७ विषै] स्वप्न जाग्रत्का कार्य है, ऐसैं कहा; तब उत्पत्ति अप्रसिद्ध कैसैंहै? तहां जैसैं कार्य कारणभाव हमोंकरि कहनेकूं इच्छित है, तैसैं कहियेहै; सो श्रवण करः—जागृत्‌विषै असत् (रज्जुसर्पकी न्यांई कल्पित) वस्तु-कूं देखिके तिसके भावकी भावनाकरि युक्त तन्मय हुया पुरुष, स्वप्नविषै जाग्रत्की न्यांई ग्राह्य (विषय) औ ग्राहक (इंद्रिय) रूपसैं कल्पना करताहुया देखताहै; तैसैं[२५३] स्वप्नविषै बी असत् (अविद्यमान) वस्तु—कूं देखिके जागरणकूं पायाहुया पुरुष कल्पना न करताहुया नहीं देखताहै औ तैसैं कदाचित् जाग्रत् विषै बी देखिके स्वप्नविषै नहीं देखताहै। यह अर्थ चकारसैं जानियेहै। तातैं बहुतकरि स्वप्नकूं जाग्रत्वासनाके अधीन होनेतैं जाग्रत्, स्वप्नका हेतु कहियेहै; परंतु सो परमार्थतैं सत् है, ऐसैं करिके नहीं कहियेहै ॥ ३९ ॥

---

२५३ जैसैं जाग्रत्‌विषै देखे हुये प्रपंचके स्वप्नविषै देखनेतैं जाग्रत्की वासनाके अधीन जो स्वप्न, सो जाग्रत्का कार्य होनेकरि व्यवहार करियेहै; तैसैं स्वप्नविषै देखेहुये प्रपंचके जाग्रत्‌विषै बी देखनेतैं जाग्रत्कूं ता स्वप्नका कार्यपना प्राप्त भया? यह आशंकाकरिके श्लोकके उत्तरार्द्धका व्याख्यान करैहैं।

नास्त्यसद्धेतुकमसत् सदसद्धेतुकन्तथा ।
सच्च सद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकमसत्कुतः ॥ ४० ॥
विपर्य्यासाद्यथा जाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत् ।
तथा स्वप्ने विपर्य्यासाद्धर्म्मांस्तत्रैव पश्यति ॥४१॥

टीका:—[२५४]परमार्थतैं तो किसीका बी किसी बी प्रकारसैं कार्यकारणभाव नहीं संभवैहै ॥ कैसैं नहीं संभवैहै? तहां प्रथम वस्तुके अज्ञानतैं अवस्तुरूपहीं कार्य होवैहै, इस मतके अनुसारिनकूं कहैहैं:—**असत्** जो शशश्रृंगआदिक, सो जिस असत्काहीं कारण है, ऐसा जो आकाशका पुष्प आदिक, सो **असत् हेतुवाला असत्** कहियेहै; सो **नहींहै** ॥ अब शून्यवादी तो शून्यतैं सत्रूपहीं कार्य होवैहै, ऐसैं मानतेहैं, तिनके प्रति कहैहैं कि:—तैसैं **सत्** (विद्यमान) घटादिरूप वस्तु बी **असत् हेतुवाला** (शशश्रृंग आदिकका कार्य) **नहींहै** ॥ अब सांख्य आदिक तो कार्य औ कारण दोनूंके बी सत्भावकूं मानतेहैं, तिनके प्रति कहैहैं कि:—तैसैं **सत्** (विद्यमान) घटादिक **सत् हेतुवाला** (अन्य सत्वस्तुका कार्य) **नहीं है** ॥ अब मिथ्या प्रपंचकी सृष्टिका सत्ब्रह्म कारण है, ऐसैं केईक वर्णन करैहैं, तिनकूं निषेध करै हैं कि:—तैसैं **सत्रूप हेतुवाला** (सत्का कार्य) **असत् कहांतैं** हीं संभवैगा । अन्य प्रकारका कार्य कारणभाव नहीं संभवैहै, वा कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है । यातैं विवेकी पुरुषनकूं किसीबी वस्तुका कार्य कारणभाव असिद्धहीं है । यह अभिप्राय है ॥ ४० ॥

टीका:—फेर बी असत्रूप जाग्रत् औ स्वप्नके वस्तुतैं कार्यकारणभावकी आशंकाकूं अन्य हेतुसैं दूरी करतेहुये कहैहैं:—जैसैं कोईक पु-

२५४ व्यवहारदृष्टिसैं स्वप्न औ जाग्रत्का कार्य कारणपना कहा, औ वास्तवदृष्टिसैं तो कहींबी कार्यकारणपना नहीं है । ऐसैं कहते हुये वस्तुके अज्ञानतैं अवस्तुहीं कार्य होवैहै, या मतका निषेध करैहैं ।

उपलम्भात् समाचारादस्ति वस्तुत्ववादिनाम् ।
जातिस्तु देशिता बुद्धैरजातेस्त्रसतां सदा ॥४२॥

रुष जाग्रत्‌विषै विपर्यास (अविवेक) तैं अचिंत्य (चिंतन करनेकूं अशक्य) रज्जु सर्प आदिक पदार्थ-नकूं परमार्थकी न्यांई स्पर्श करताहै; कहिये, स्पर्श करते हुयेकी न्यांई विकल्प करताहै। तैसैं स्वप्नविषै विपर्यासतैं हस्ती आदिक धर्म (पदार्थ) नकूं तहांहीं देखताहै; कहिये, देखते हुयेकी न्यांई कल्पना करताहै; परंतु जाग्रत्‌तैं उत्पन्न होनेवालेकूं देखता नहीं ॥ ४१ ॥

टीका:—[२५५]व्यास आदिक अद्वैतवादी पंडितोनैं, जोबी ब्रह्मतैं जगत्‌की उत्पत्ति उपदेश करीहै, सो तो उपालंभतैं (द्वैतकी प्रतीतितैं) औ वर्ण आश्रम आदिक धर्मके सम्यक् आचरणतैं [इन दोनूं कारणोतैं] "द्वैतका वस्तुभाव है" ऐसैं कहनेके स्वभाववाले, औ जगत्‌की अनुत्पत्तितैं सदा भयकूं पावनेवाले दृढ आग्रहवाले कर्मआदिकविषै श्रद्धावान् मंद विवेकीन—के अर्थ, "[२५६]वे ता उत्पत्तिकूं प्रथम ग्रहण करहु; परंतु पीछे वेदांतके अभ्यासीनकूं अजन्मा अद्वैत आत्माकूं विषय करनेवाला विवेक आपहीं होवैगा" ऐसैं दृढ विवेकका उपाय होनेकरि उपदेश करीहै, परंतु परमार्थबुद्धिसैं नहीं। जातैं वे अविवेकी पंडित स्थूल (वहिर्मुख) बुद्धिवाले होनेतैं, अनुत्पन्न भये वस्तुतैं आपके नाशकूं मानतेहुये सदा भयकूं पावतेहैं, यातैं तिनके अर्थ सूत्रकार आदिक पंडितनकी प्रवृत्ति उचि-

---

२५५ वास्तव दृष्टिसैं कार्यकारणभावकूं अप्रसिद्ध हुये "इस जगत्‌के जन्मआदिक जिसतैं होवैहैं," इत्यादिक सूत्रनसैं जगत्‌का कारण ब्रह्म कैसैं सूचन किया है? यह आशंकाकरिके कहैहैं।

२५६ कार्यकारणभावकूं अंगीकार करिके, जन्मके उपदेश करनेवाले अद्वैतवादिनका उपदेश मंदविवेकीनविषै विवेककी दृढताका उपाय होनेकरि कैसैं होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं।

अजातेस्त्रसतान्तेषामुपलम्भाद्वियन्ति ये ।
जातिदोषा न सेत्स्यन्ति दोषोऽप्यल्पो भविष्यति ॥ ४३ ॥

उपलम्भात् समाचारान्मायाहस्ती यथोच्यते ।
उपलम्भात् समाचारादस्ति वस्तु तथोच्यते ॥४४

त है । यह अर्थ है । यह हीं अर्थ "सो (सृष्टिका प्रकार) अद्वैतविषै बुद्धिकी उत्पत्ति अर्थ उपाय है" ऐसैं पूर्व [३ प्रकरणके १९ विषै] बी कहाहै ॥ ४२ ॥

टीका:—जो[२५७] ऐसैं उपलंभ (प्रतीति) तैं औ सम्यक् आचरणतैं, अनुत्पत्तितैं (अनुत्पन्न भये वस्तुतैं) भयकूं पावतेहुये, द्वैत वस्तु है, ऐसैं अद्वैतआत्मातैं **विरुद्ध जातेहैं** (द्वैतकूं पावतेहैं;) तिन अनुत्पत्तितैं भयकूं पावनेवाले श्रद्धावान् सन्मार्गकूं आश्रय करनेवाले पुरुषन-कूं **जातिके प्रतीतिके किये दोष नहीं होवैहैं** (सिद्धिकूं पावते नहीं;) विवेकमार्गविषै प्रवृत्त होनेतैं ॥ यद्यपि कोईक **दोष होवैहै,** सो बी सम्यक् ज्ञानकी अप्राप्तिरूप कारणका किया गर्भवासादिरूप **अल्पहीं होवैगा** । यह अर्थ है ॥ ४३ ॥

टीका:—ननु, द्वैतकी प्रतीति औ वर्ण आश्रमके धर्मके आचारकूं प्रमाणरूप होनेतैं, द्वैत वस्तु (वास्तव)हीं है? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं प्रतीति (अनुभव) औ आचारके व्यभिचारतैं ॥ कैसैं तिनका व्यभिचार है? तहां कहियेहै:—जैसैं मायाका हस्ती हस्तीकी न्यांई प्रतीत होवैहै, औ जैसैं अन्य हस्तीके तांई आचरतेहैं, तैसैं इस

---

२५७ "जो अल्प बी अंतरकूं करताहै, पीछे ताकूं भय होवै है" इत्यादिक श्रुतिनतैं ब्रह्मविषै विकारके दर्शी पुरुषनकूं भय सुनियेहै । तैसैं हुये श्रुति अर्थके जाननेवाले पंडितनकूं बी भेदज्ञानतैं अनुग्रहकी योग्यता नहीं होवैगी? यह आशंकाकरिके कहैहैं ।

जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च ।
अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानं शान्तमद्वयम् ॥४५॥

मायाके हस्तीविषै बी आचरते हैं। यातैं जैसैं असत् हुयावी मायाका हस्ती प्रतीतितैं औ आचारतैं (हस्तीके संबंधी धर्मनसैं) हस्ती, ऐसैं कहियेहै; तैसैंहीं प्रतीतितैं औ आचारतैं भेदरूप द्वैत वस्तु है, ऐसैं कहियेहै। तातैं[२५८] प्रतीति औ आचार, द्वैत वस्तुके सद्भावविषै हेतु नहीं होवैहै । यह अभिप्राय है ॥ ४४ ॥

टीका:—तब[२५९] फेर जिस आश्रय (अधिष्ठान) वालीयां उत्पत्ति आदिककी मिथ्या बुद्धियां हैं, ऐसा जो परमार्थ वस्तु सो क्या है? तहां कहैहैं:—जैसैं देवदत्त उत्पन्न होताहै, तैसैं सो विज्ञान (विज्ञप्ति) उत्पत्तिरहित हुया उत्पन्न हुयेकी न्याई भासताहै; यातैं जात्याभास है। औ जैसैं सोई देवदत्त चलताहै; तैसैं सो चलनेकी न्यांई भासताहै; यातैं चलाभास है। जैसैं सोई देवदत्त गौर है, दीर्घ है; ऐसैं भासताहै, तैसैं सो वस्तु (द्रव्यरूप धर्मी) की न्यांई भासताहै, यातैं वस्त्वाभास है। जैसैं देवदत्त उपजताहै, चलताहै, दीर्घ है गौर है; ऐसैं यह विज्ञान भासताहै; परंतु परमार्थतैं अजन्माहै, अचल है अवस्तुभाव (अद्रव्य) है, औ जन्मआदिककरि रहित होनेतैं शांत है, औ याहीतैं सो अद्वैतरूप है । यह अर्थ है ॥ ४९ ॥

---

२५८ जैसैं मायामय हस्तीविषै वास्तवताके अभाव हुयेबी प्रतीति औ आचरण होवैहैं, तैसैं द्वैतविषै बी तिन प्रतीति औ वर्ण आश्रय आदिकके आचरणकूं वास्तवताकी साधकता नहीं है; ऐसैं या प्रसंगकूं समाप्त करैहैं ।

२५९ वास्तव दृष्टिके आश्रयसैं निमित्तकूं अनिमित्तपना कहा, यह अनंत श्लोकनसैं वर्णन किया । अब वास्तव दृष्टिकूं समाप्त करैहैं ।

एवं न जायते चित्तमेवं धर्म्मा अजाः स्मृताः ।
एवमेव विजानन्तो न पतन्ति विपर्य्यये ॥४६॥
ऋजुवक्रादिकाभासमलातस्पन्दितं यथा ।
ग्रहणग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा ॥ ४७॥

टीकाः—ऐसैं[२६०] उक्त प्रकारके हेतुनसैं चित्त (ब्रह्म चैतन्य) जन्मता नहीं। ऐसैं ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं धर्म ([२६१]आत्मा) अजन्मा जानेहैं। ऐसैंहीं उक्त प्रकारके जन्म आदिकसैं रहित अद्वैत आत्मतत्वरूप विज्ञान (विज्ञप्तिमात्र ब्रह्म) कूं बाह्य निषयनकी इच्छातैं रहित होयके जानते हुये, फेर, अविद्यामय अंधकारके सागररूप विपर्यय (भ्रांतिज्ञान)—विषै गिरतें नहीं। काहेतैं, "तहां एकताके देखनेवालेकूं कौंन मोह है, कौन शोक है?" इत्यादि मंत्रके वर्णनतैं ॥ ४६ ॥

टीकाः—अब "अजन्मा अचल औ जात्याभास है," ऐसैं पूर्व [४९ विषै] कथन किये परमार्थरूप ज्ञानकूं दृष्टांतसैं वर्णन करते हुये कहैहैं:—जैसैं लोकविषै सरल औ वक्र आदिक प्रकारवाला आभास (प्रकाश) जो है, सो अलात (अर्धदग्ध काष्टरूप उल्का)—का चलना है, तैसैं ग्रहण औ ग्राहक (मय विषय) का जो आभास (भासना) है सो विज्ञानका अविद्यासैं चलनेकी

---

२६० चेतनरूप ब्रह्मका अजन्मापना प्रतिपादन किया, ताकूं समाप्त करै हैं।

२६१ चेतनके प्रतिबिंबरूप जीवनकूं बिंबभूत ब्रह्ममात्र होनेतैं तिनका अजन्मापना तुल्य है, ऐसैं कहैहैं। ईहां जीवके वाचक धर्म शब्दका जो बहुवचन है, सो अद्वैतकूंहीं उपचारतैं (आरोपतैं) देह भेदका अनुसारी होनेतैं है।

अस्पन्दमानमलातमनाभासमजं यथा ।
अस्पन्दमानं विज्ञानमनाभासमजं तथा ॥ ४८ ॥
अलाते स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः ।
न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्नलातम्प्रविशन्ति ते ४९॥

न्यांई चलनाहै[262] । जातैं अचल विज्ञानकूं चलना नहीं है; यातैं यह "अजन्मा अचल है" ऐसैं पूर्व [४१ विषे] कहाहै ॥ ४७ ॥

टीकाः—अब "विज्ञान शांत है" ऐसैं पूर्व (४१विषै) कथन किया ताकूं दृष्टांतसैं स्पष्ट करै हैं:—**जैसैं चलनसैं रहित सोई अलात,** सरल आदिक आकारसैं जन्मरहित हुया **अनाभास औ अजन्मा है; तैसैं** अविद्यासैं चलायमान औ अविद्याकी निवृत्तिके हुये **चलनसैं रहित** (उत्पत्ति आदिक आकारसैं अभासमान) हुया जो **विज्ञान, सो अनाभास** (अचल) **औ अजन्मा होवैगा** । यह अर्थ है ॥ ४८ ॥

टीकाः—किंवा[263]:—तिसीहीं **अलातके चलते हुये सरल औ वक्र आदिक आभास** (प्रकाश), **अलाततैं अन्य किसी देशतैं बी आयके**

---

२६२ पूर्वस्वरूपकूं नहीं त्याग करनेवाले अधिष्ठानका जो असत्य नाना आकारका अवभास (प्रतीति औ ताका विषय), सो विवर्त्त कहियेहै । इहां विज्ञानका जो स्फुरण (जगत् आकारसैं भासना) है, सो विवर्त्त-रूप है ।

२६३ अलातके दृष्टांतविषै सरल औ वक्र आदिक आकारनका असत्-पना कैसैं है ? या आशंकाके हुये, निरूपणके असहन करनेतैं तिनका असत्पना है; ऐसैं कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—जब अलात (अर्धदग्ध काष्ठ) फिरता है, तब तिसविषै अन्य देशतैं आयके प्रकाश होवैहैं; ऐसैं कहनेकूं शक्य नहीं है; काहेतैं, सरल औ वक्र आदिक प्रकाशनके देशांतरतैं आगमनकी अप्रतीतितैं । जब सोई अलात स्थिर होवैहै, तब तिसतैं अन्य ठिकानैं प्रकाश होवैहैं; यह बी कहनेकूं शक्य नहीं है; काहेतैं, तहां बी तिनकी

न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः ।
विज्ञानेऽपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः ॥५०॥
विज्ञाने स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः ।
न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्न विज्ञानं विशन्ति ते५१

अलातविषै नहीं होवैहैं; यातैं अन्यतैं होनेवाने नहीं हैं। औ अचल भये तिस अलात-तैं अन्य ठिकानें निसकते नहीं। औ वे प्रकाश, अचल भये अलातके तांईहीं प्रवेश करते नहीं४९

टीका—किंवाः—वे आभास (प्रकाश) ग्रहतैं निकसे हुयेकी न्यांई अलाततैं निकसे हुये नहीं हैं; काहेतैं द्रव्यभावके अभावके योगतैं (वस्तुताके अभावतैं)। जातैं वस्तुका प्रवेश आदिक संभवै है, अवस्तुका नहीं; तातैं तिन आभासनके निकसनेका औ प्रवेश होनेका असंभव है। तैसैहीं विज्ञानविषै बी उत्पत्ति आदिकके आभास होवैहैं; काहेतैं, सरल वक्र आकारनविषै औ जन्म आदिक आकारनविषै आभासके तुल्य होनेतैं ॥ ५० ॥

टीकाः—कैसैं तिनविषै आभासनकी तुल्यता है? तहां कहैहैंः— तिस विज्ञानके जिस किस प्रकारसैं बी चलते हुये, तिसतैं अन्य किसी-तैं बी आयके जन्म आदिकके आभास, तिसविषै होनेकूं योग्य नहीं हैं; काहेतैं तैसी प्रसिद्धिके अभावतैं। औ अचल होयके

अप्रतीतिकी तुल्यतातैं। औ वे आभास तिसीहीं अलातविषै लीन नहीं होवैहैं; काहेतैं, तिस अलातकूं तिनके उपादान कारण होनेके अभावतैं। जब फिरनेका निमित्त अलात उपादान होवै, तब ताकूं प्रतीतिमात्र निमित्त होनेतैं ता निमित्तसैं भये प्रकाशनके अभावके अदर्शनतैं, सरल औ वक्र आदिक जे आकार हैं; वे फिरनेके अभावके हुये बी अलातविषै होवैंगे। परंतु ऐसैं नहीं है; यातैं सो अलात, सरल, वक्र आदिक प्रकाशनका उपादान नहीं है; तातैं किसी प्रकारसैं बी निरूपणके असहनतैं तिनका असत्पना है।

न निर्गता विज्ञानात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः ।
कार्य्यकारणताभावाद्यतोऽचिन्त्याः सदैव ते ५२
द्रव्यं द्रव्यस्य हेतुः स्यादन्यदन्यस्य चैव हि ।
द्रव्यत्वमन्यभावो वा धर्म्माणां नोपपद्यते॥५३॥

स्थित भये तिस विज्ञान-तैं अन्य ठिकाने आभास होनेकूं योग्य नहीं; काहेतैं, प्रतीतिरूप आभासकूं सर्वत्र तवहीं विज्ञानकी अचलपनेकरि स्थितिविषै तुल्य होनेतैं । औ वे आभास तिसीहीं विज्ञानके ताईं प्रवेश करते नहीं; काहेतैं तिस केवल विज्ञानकूं तिनके उपादान होनेकी अप्रतीतितैं ॥ ५१ ॥

टीकाः—जैसैं वे आभास विज्ञानविषै प्रवेश करते नहीं, तैंसै वे विज्ञानतैं निकसते नहीं; काहेतैं द्रव्यभाव (वस्तुभाव)के अभाव करि युक्त होनेतैं ॥ याका यह तात्पर्य हैः—विज्ञानका अन्य सर्व अलातके तुल्य है, परंतु विज्ञानका सदा अचलपना अलाततैं विशेष है ॥ तब अचल विज्ञानविषै जन्म आदिकके आभास किसके किये हैं ? तहां कहै हैंः—जातैं वे आभास तिन आभास औ विज्ञानके कार्यकारण भावके अभावतैं (जन्म जनक भावके असंभवकरि तिनकूं अभावरूप होनेतैं) सदाहीं अचिंत्य (अनिर्वचनीय) हैं, यातैं मिथ्या होवै हैं ॥ जैसैं अलातमात्रविषै मिथ्या सरल आदिक अलातके आभासनविषै सरल आदिककी बुद्धि देखीहै; तैसैं विज्ञान मात्रमैं मिथ्याहीं जन्म आदिकविषै जो जन्म आदिककी बुद्धि है, सो मिथ्याहीं है । यह समुदायका तात्पर्यार्थ है ॥ ५२ ॥

टीकाः—ईसैंप्रकार "अजन्मा (अवयव अवयवी भावसैं रहित)

---

२६४ "कार्य औ कारणभावके अभावतैं" ऐसैं जो [५२ विषै] कहा, ताकूं अब प्रतिपादन करनेकूं आरंभ करैहैं । इहां यह अर्थ हैः—अवयवरूप जो द्रव्य है, सो अवयवीरूप द्रव्यका उपादान है । औ अव-

एवं न चित्तजा धर्म्माश्चित्तं वाऽपि न धर्म्मजम्।
एवं हेतुफलाजातिं प्रविशन्ति मनीषिणः ॥५४॥

एक (गुणगुणी भावसैं रहित) आत्मतत्त्व है" ऐसैं सिद्ध भया। तिस आत्मतत्त्वविषै जिन वादीनकरि बी जन्मआदिकके आभास औ विज्ञानका कार्य कारणभाव कल्पियेहै, तिनके मतविषै द्रव्य द्रव्यका औ अन्य अन्यका कारण होवैहै; परंतु तिसीहींका (आपका आप)सो कारण होवै नहीं। जातैं लोकविषै अद्रव्य (रूपादि गुण) जो है, सो स्वतंत्र किसीका बी कारण देख्या नहीं औ जिसकरि आत्माकूं अन्यका कारणपना वा कार्यपना प्राप्त होवै ऐसा आत्मारूप धर्मनका द्रव्यभाव वा किसीतैं वी अन्यभाव बनता नहीं; यातैं अद्रव्यरूप होनतैं औ अनन्य (सर्वसैं अभिन्न) होनेतैं, आत्मा किसीका वी कार्य वा कारण नहीं है। यह अर्थ है ॥ ९३ ॥

टीकाः— [२६५]ऐसैं उक्तप्रकारके हेतुनसैं आत्मारूप विज्ञानस्वरूपहीं चित्त (ब्रह्मचैतन्य) है, यातैं घटादिरूप बाह्य धर्म, चित्त (चैतन्य)तैं जन्य नहीं हैं। वा चित्त वी बाह्य धर्मनतैं जन्य नहीं है। औ जीवरूप धर्मनका परमात्मारूप चित्ततैं जन्म युक्त नहीं है; काहेतैं सर्व धर्मन (जीवन)कूं विज्ञान स्वरूपके आभास (प्रतिबिंब)

यवके गुण जे हैं, वे अपने समान जातिवाले अवयवीके गुणोंविषै असमवायी कारण देखे हैं। ऐसैं आत्माकूं द्रव्यपना नहीं है, जिसकरि उपादानपना होवै औ तिसरूपवाले गुणनका कहींवी असमवायी कारणपना नहीं है; काहेतैं, तिस आत्माविषै भेदरूप गुणगुणीभावके कथनके असंभवतैं।

२६५ करनेकूं इच्छित घटके ज्ञानके अनंतर घट उत्पन्न होवैहै, औ उपज्याहुया यह घट विषयरूप होनेकरि अपने ज्ञानकूं उपजावताहै, ऐसा व्यवहार वी नहीं संभवहै; काहेतैं, किसीवी वस्तुकूं विद्वान्की दृष्टिके अनुसार अभिन्नरूप होनेतैं, ऐसैं कहैहैं।

यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतुफलोद्भवः ।
क्षीणे हेतुफलावेशे नास्ति हेतुफलोद्भवः ॥५५॥

मात्र होनेतैं। ऐसैं[२६६] हेतुतैं फल उपजता नहीं, औ फलतैं हेतु बी उपजता नहीं। ऐसैं पंडित जन हेतु औ फलकी अनुत्पत्तिकूं निश्चय करतेहैं। अर्थ यह जोः—ब्रह्मवेत्ता जे हैं वे आत्माविषै हेतु औ फलके अभावकूंहीं जानते हैं ॥ ९४ ॥

टीकाः—जो[२६७] फेर हेतु औ फलविषै आग्रहकूं प्राप्त भये हैं, तिनकूं क्या फल होवैहै? तहां कहियेहैः—धर्म औ अधर्म नामक हेतुका मैं कर्ता हूं; मेरे धर्म अधर्म हैं, तिनका फल कालांतरविषै कोईक देशमैं प्राणीनके समूहविषै उत्पन्न हूया मैं भोगूंगा। ऐसा जहांलगि हेतु औ फलविषै आग्रह है; कहिये तिनविषै तत्पर चित्तवाले पुरुषकरि आत्माविषै हेतु औ फलका आरोप करियेहै; तहांलगि धर्म अधर्म रूप हेतुका औ तिनके फलका उद्भव (उच्छेद रहित प्रवृत्ति) होवैहै। जब फेर मंत्र अरु औषधिके बलसैं भूतके आवेशकी न्यांई, उक्त प्रकारके अद्वैतके दर्शनसैं अविद्याकरि उद्भूत हेतु औ फलका आवेश दूरी होवैहै; तब तिस हेतु औ फलविषै आग्रहके क्षीण भये हेतु औ फलका उद्भव नहींहै ॥ ९९ ॥

---

२६६ धर्म आदिकका औ शरीर आदिकका जो कार्यकारणभाव विद्वान्‌की दृष्टिसैं पूर्व [१४ सैं] निषेध किया, सोबी भेदके अभावसैंहीं सिद्ध होवै है, ऐसैं कहैहैं।

२६७ फल (देहादिक) तैं हेतु (धर्म आदिक) नहीं होवै है; औ हेतुतैं फल बी नहीं होवैहै। ऐसैं वास्तव दृष्टिसैं उपदेश किया। अब तिसविषै मुमुक्षुनके आग्रहकी निवृत्ति अर्थ तिसविषै आग्रहके अभाव औ भावके हुये तिनकी अनुत्पत्ति औ उत्पत्तिकूं दिखावैहैं।

यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः ।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते ॥ ५६ ॥
संवृत्या जायते सर्व्वं शाश्वतं नास्ति तेन वै ।
सद्भावेन ह्यजं सर्व्वमुच्छेदस्तेन नास्ति वै ॥५७॥

टीकाः—जब हेतु औ फलका उद्भव होवै, तब कौन दोष है ? तहां कहियेहैः—जहांलगि सम्यक् ज्ञानसैं हेतु औ फलका आग्रह निवृत्त होता नहीं, किंतु होवैहै तहांलगि अक्षीण भया संसार दीर्घ (लंबा) होवैहै । फेर हेतु औ फलविषै आग्रहके क्षीण भये कारणके अभावतैं संसारकूं पावता नहीं ॥ ९६ ॥

टीकाः—ननु, "अजन्मा आत्मातैं अन्य नहीं है" ऐसैं कूटस्थ अद्वितीय आत्मतत्वकूं इच्छनेवाले तुमकरि हेतु अरु फलकी औ संसारकी उत्पत्ति अरु विनाश कैसैं कहियेहै ? तहां श्रवणकरः—अविद्याके अधीन लौकिक व्यवहाररूप ढांपनेसैं सर्व उपजताहै, तिस हेतुकरि उत्पन्न भये अविद्याके अधीन वस्तुविषै नित्य नहीं है; यातैं उत्पत्ति औ विनाशरूप संसार उपजताहै, ऐसैं कहियेहै । जातैं परमार्थ सद्भाव (परमार्थसत्ता) सैं तो जन्मरहित सर्व आत्माहीं है, यातैं तिस जन्मके अभावरूप कारणकरि हेतु औ फलआदिक किसीका बी उच्छेद (विनाश) [२६८]नहींहै ॥ ९७ ॥

---

२६८ इहां यह भाव हैः—जैसैं सन्मुखवर्ति रज्जुविषै सर्पके अभावका अनुभव करताहुया विवेकी पुरुष, "सर्प नहीं है" यह रज्जु है; वृथाहीं भयकूं कैसैं पावताहैं ?" ऐसैं भ्रांत पुरुषकूं कहताहै; औ भ्रांत पुरुष तो अपने अपराधतैंहीं सर्पकूं कल्पिके भयकूं पावता हुया भागताहै । तहां विवेकीका वचन मूढकी दृष्टिसैं विरोधकूं पावता नहीं, तैसैं परमार्थरूप कूटस्थ आत्माका दर्शन व्यावहारिक जन्म आदिकके वचनसैं अविरुद्ध है ।

धर्म्मा य इति जायन्ते जायन्ते ते न तत्त्वतः ।
जन्म मायोपमन्तेषां सा च माया न विद्यते ५८
यथा मायामयाद्बीजाज्जायते तन्मयोऽङ्कुरः ।
नाऽसौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्म्मेषु योजना ५९

टीकाः—जोवी आत्मा[२६९] औ अन्य (अनात्मारूप) धर्म (पदार्थ) जन्मतेहैं, ऐसैं कल्पना करियेहैं; वे धर्म इस प्रकारके हैं, ऐसा पूर्वउक्त लौकिक व्यवहाररूप ढांपना (पडदा) कहियेहै किः—ढांपने (गुप्तपनै) सैंहीं वे धर्म जन्मतेहैं, तत्व (परमार्थ)-तैं जन्मते नहीं । जो फेर ढांपनेसैं तिन उक्तप्रकारके धर्मनका जो जन्म है, सो जैसैं मायाका जन्म होवैहै, तैसैं है; यातैं सो तिनका जन्म मायाकी उपमावाला प्रतीति करनेकूं योग्य है ॥ तब मायानाम कछु वस्तु होवैगी? तहां कहैहैंः—औ सो माया विद्यमान नहीं है । अभिप्राय यह है किः—अविद्यमान वस्तुका नाम माया है॥५८॥

टीकाः—तिन धर्म (पदार्थ)नका जन्म, मायाकी उपमावाला कैसैं है? तहां कहैहैंः—जैसैं मायामय आम्र आदिक वृक्षके बीजतैं मायामय अंकुर होवैहै । यह अंकुर नित्य नहींहै, वा विनाशी नहीं है, मिथ्या होनैतैं । तैसैं धर्म (पदार्थ)—नविषै जन्म औ नाश आदिककी योजना (युक्ति) है । अर्थ यह जोः—परमार्थतैं धर्मनका जन्म वा नाश नहीं घटताहै ॥ ५९ ॥

---

२६९ "लौकिक व्यवहारसैं सर्व होवै है" ऐसैं जो [५७ विषै] कहा, ताकूं अब वर्णन करैहैं ।

नाजेषु सर्व्वधर्म्मेषु शाश्वताशाश्वताभिधा ।
यत्र वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते ॥ ६० ॥
यथा स्वप्ने द्वयाभासं चित्तं चलति मायया ।
तथा जाग्रद्द्वयाभासं चित्तं चलति मायया ॥६१॥
अद्वयश्च द्वयाभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः ।
अद्वयश्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः ॥६२॥

टीका:—परमार्थतैं तौ नित्य एकरस विज्ञप्तिमात्र सत्तारूप अजन्मा सर्व धर्म (आत्मा)—न विषै नित्य है, वा अनित्य है; ऐसा नाम प्रवर्त होता नहीं । जिनोंकरि अर्थोंका वर्णन करियेहै, ऐसे जे शब्द वे वर्ण कहियेहैं । जिन (आत्मा)—विषै वर्ण " यह ऐसा है" ऐसैं कहनेकूं प्रवर्त होते नहीं, तिनविषै नित्य है वा अनित्य है; ऐसा विवेक नहीं कहियेहै; काहेतैं, " जिसतैं वाणीयां निवृत्त होवैहैं" इस श्रुतितैं ॥ ६० ॥

टीका:—आत्माकूं शब्दकी अगोचरताके हुये यह आत्मा व्याख्याकारोंकरि शब्दनसैंहीं प्रतिपादन करनैकी योग्यताकूं कैसैं पावताहै ? यह आशंकाकरिके, चित्तका स्फुरणमात्र अविचारसैं सुंदर प्रतिपाद्य औ प्रतिपादकरूप द्वैत है, ऐसैं दृष्टांतसहित कहैहैं:— जैसैं स्वप्नविषै द्वैताभासरूप चित्त (मन) मायासैं चलताहै, तैसैं जाग्रत्विषै द्वैताभासरूप चित्त मायासैं चलताहै ॥ ६१ ॥

टीका:—ननु, स्वप्नविषै प्रतिपाद्य औ प्रतिपादकरूप द्वैतकूं मनके चलन (स्फुरण)मात्र रूपके हुयेबी जाग्रत्विषै किसप्रकार तैसैं होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं:—जैसैं स्वप्नविषै अद्वैतरूप हुया चित्त (मन) द्वैताभासरूप होवैहै, यामैं संशय नहीं; तैसैं जाग्रत्विषै

---

२७० " सद्भावसैं सर्व अजन्मा है " ऐसैं जो [५७ विषै] कहा, ताकूं वर्णन करैहैं ।

स्वप्नदृक् प्रचरन् स्वप्ने दिक्षु वै दशसु स्थितान् ।
अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा ॥ ६३ ॥
स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक् ।
तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते ॥ ६४ ॥

अद्वैतरूप हुया चित्त (मन) द्वैताभासरूप होवैहै; यामैं संशय नहीं ॥ जो फेर परमार्थतैं अद्वैतरूप विज्ञानमात्र वस्तुकूं वाणीका विषयपना है, सो मनका स्फुरणमात्र है, परमार्थतैं नहीं । यह पूर्व अद्वैत नामक तृतीयप्रकरणविषै व्याख्यान किये इन (६१ ६२ रूप) दो श्लोकनका तात्पर्य है ॥ ६२ ॥

टीकाः—इस कहनेके हेतुतैं बी वाणीके विषय द्वैतका अभाव हैः— जैसैं **स्वप्नरूप स्थानविषै** स्वप्नोकूं देखताहै, ऐसा जो **स्वप्नका द्रष्टा,** सो **विचरता हुया दशहीं दिशाविषै स्थित** (वर्तमान) **अंडज वा स्वेदजरूप बी** (जरायुज औ उद्भिज्जरूप) **जिन जीव** (प्राणी)—**नकूं सदा देखताहै;** [वे तिसतैं भिन्न नहींहैं । ऐसैं आगिले श्लोकसैं संबंध है] ॥ ६३ ॥

टीकाः—जब ऐसैं है, तब तिसतैं क्या भया ? तहां कहियेहैः—**स्वप्नद्रष्टाके चित्त** (मन)करि **देखने योग्य वे जीव,** तिस स्वप्नद्रष्टाके **चित्त-तैं भिन्न नहींहैं ।** तब चित्तहीं जीवआदिक भेदके (द्रष्टा औ चित्तके) आकारसैं विकल्पकूं पावताहै ? सो बनै नहीं, यह कहैहैंः—**तैसैं यह स्वप्नके द्रष्टाका चित्त, तिस स्वप्नके द्रष्टाकरि देखनेकूं योग्यहीं अंगीकार करियेहै ।** यातैं स्वप्नके द्रष्टासैं भिन्न चित्त नाम कोई वस्तु नहीं है । यह अर्थ है ॥ ६४ ॥

चरन् जागरिते जाग्रद्दिक्षु वै दशसु स्थितान् ।
अंडजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान्॥
सदा ॥ ६५ ॥
जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक् ।
तथा तद्दृश्यमेवेदं जाग्रतश्चित्तमिष्यते ॥ ६६ ॥
उभे ह्यन्योन्यदृश्ये ते किन्तदस्तीति चोच्यते ।
लक्षणाशून्यमुभयं तन्मते नैव गृह्यते ॥ ६७ ॥

टीकाः—अब दृष्टांतविषै स्थित अर्थकूं दार्ष्टांतविषै जोडतेहैं:—तैसैं जाग्रत्‌विषै जाग्रत्-अवस्थावाला पुरुष दशहीं दिशाविषै स्थित अंडज वा स्वेदजरूप बी (जरायुज औ उद्भिज्जरूप) जिन जीवन (कार्य अरु कारणके संघातन)—कूं सदा देखताहै॥६५॥

टीकाः—जाग्रत्-अवस्थावाले पुरुष-के चित्तसैं देखनेकूं योग्य वे जीव, तिस जाग्रत् अवस्थावाले पुरुषके चित्त तैं भिन्न नहीं हैं । तैसैं यह जाग्रत्-अवस्थावाले पुरुष-का चित्त; तिस जाग्रत्‌के द्रष्टा-करि देखनेकूं योग्यहीं अंगीकार करियेहै ॥ इन (६५-६६ रूप) दो श्लोकनके भावार्थरूप ये दो अनुमान हैं:—जाग्रत् अवस्थावाले पुरुषके दृश्य जे जीव, वे तिसके चित्ततैं अभिन्न हैं, चित्तकरि देखनेकूं योग्य होनेतैं; स्वप्नद्रष्टाके चित्तकरि देखने योग्य जीवनकी न्याईं ॥ औ वे जीवनके, देखनेरूप चित्त, द्रष्टातैं अभिन्न हैं, द्रष्टाका दृश्य होनेतैं; स्वप्नके चित्तकी न्याईं ॥ ६६ ॥

टीकाः—वे[२७१] जीव औ चित्त, दोनूं परस्परके दृश्य (विषय) होवैहैं।

---

२७१ दृश्य औ दर्शनके भेदके ग्राहक प्रमाणसैं बाधित भये ये दोनूं हेतु हैं? यह आशंकाकरिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—दृश्य औ दर्शन परस्परकी अपेक्षासैं सिद्ध होनेवाले हैं । दृश्यके सिद्ध भये तिसकरि अव-च्छिन्न (विशिष्ट) दर्शन (ज्ञान) सिद्ध होवै है, औ तिस दर्शनके सिद्ध

जीव आदिक विषयकी अपेक्षावाला चित्त प्रसिद्ध होवैहै औ जातैं चित्तकी अपेक्षावाला जीव आदिक दृश्य है; यातैं वे जीव औ चित्त दोनूं परस्परके दृश्य हैं (परस्परकरि देखनेकूं योग्यहैं) जातैं वे दोनूं परस्परकरि दृश्य हैं, तातैं (अन्योन्याश्रयरूप दोषके सद्भावतैं) चित्त वा चित्तकरि देखनेकूं योग्य जो दृश्य वस्तु सो क्याहै ? ऐसैं पूंछेहुये विवेकी पुरुषकरि यह कछुबी नहींहै, ऐसैं कहियेहै । जैसैं स्वप्नविषै हस्ती वा हस्तीका चित्त विद्यमान नहींहै; तैसैं इहां जाग्रत्‌विषै बी विवेकी पुरुषनकूं कछुबी वस्तु विद्यमान प्रतीत होता नहीं । यह अभिप्राय है ॥ जाग्रत्‌विषै चित्त वा चित्तका दृश्य, ये दोनूं कैसैं विद्यमान नहींहैं ? तहां कहैहैं:—जिसकरि लखिये (जानिये) है, ऐसा जो प्रमाण; सो इहां लक्षणा कहियेहै । जातैं चित्त औ चैत्य (चित्तका दृश्य) ये दोनूं लक्षणा (प्रमाण)-सैं रहित हैं, तातैं तिनके भेदका प्रामाणिकपना नहीं है । वादियोंनैं तौ तिनके मतकरि (तिन दृश्य औ ज्ञानविषै तत्पर चित्तवानूतारूप दोषकरि), सो दृश्य औ दर्शन ग्रहण करियेहै, तातैं [272] घटकी बुद्धिकूं दूरी करिके घट नहीं ग्रहण करियेहै, औ घटकूं दूरी करिके घटकी बुद्धि (ज्ञान) बी नहीं ग्रहण करियेहै, तातैं तिन ज्ञान औ ज्ञेयरूप चित्त औ चित्तके दृश्यविषै प्रमाण औ प्रमेयका भेद, कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है । यह अभिप्राय है ॥ ६७ ॥

भये तिसकरि अवच्छिन्न दृश्य (विषय) सिद्ध होवैहै । ऐसैं अन्योन्याश्रयरूप दोषतैं दृश्य वा दर्शन नहीं सिद्ध होवैहैं । यातैं तिनके भेदके ग्राहक प्रमाणके अभावतैं तिन दोनूं हेतुनका बाध नहीं है ।

२७२ इहां यह अर्थ है:—घटविषै क्या प्रमाण है ? ऐसैं कहे हुये ज्ञान प्रमाण है; ऐसा उत्तर नहीं बनैहै; काहेतैं, अन्य वस्तुनके ज्ञानविषै अतिप्रसंग (अतिव्याप्ति) तैं । औ घटका ज्ञान प्रमाण है, ऐसा उत्तर बी नहीं बनै है; काहेतैं, अन्योन्याश्रयदोषके प्रसंगतैं । यातैं घट औ ताके ज्ञानका प्रमाण औ प्रमेयभाव नहीं संभवैहै ।

यथा स्वप्नमयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च ।
तथा जीवा अमी सर्व्वे भवन्ति न भवन्ति च ६८
यथा मायामयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च ।
तथा जीवा अमी सर्व्वे भवन्ति न भवन्ति च ६९
यथा निर्मितको जीवो जायते म्रियतेऽपि वा ।
तथा जीवा अमी सर्व्वे भवन्ति न भवन्ति च ७०

टीकाः—जैसें[२७३] स्वप्नमय जीव जन्मताहै औ मरता बी है, तैसें ये सर्व जीव होवैहैं, औ नहीं होवैहैं ॥ ६८ ॥

टीकाः—जैसें[२७४] मायामय (मायावी पुरुषकरि किया) जीव, जन्मता है औ मरता वी है; तैसें ये सर्व जीव, होवैहैं औ नहीं होवैहैं ॥ ६९ ॥

टीकाः—जैसें मंत्र औ औषधि आदिकनकरि उत्पादन किया जीव जन्मताहै वा मरता बी है; तैसें ये सर्व होवैहैं औ नहीं होवैहैं। इन (६८-७० पर्यंतके) तीन श्लोकनका तात्पर्यरूप अर्थ यह है:—जैसें[२७५] स्वप्नमय मायामय औ औषधी आदिककरि र-

---

२७३ दर्शन (ज्ञान)सैं भिन्न अंडज आदिक दृश्य पदार्थनके असद्भावके, अनुमानके भेदके ग्राहक प्रमाणकरि बाधकूं निवारण करिके, अब दर्शनसैं भिन्न तिन अंडज आदिकनके असद्भावके हुये जन्म आदिककी प्रतीतिका बाध होवैगा; इस आशंकाकूं दूरी करै हैं ।

२७४ मायामय जीवके औ निर्मितक जीवके भेदके जाननेकी इच्छावालेके प्रति कहैहैं ।

२७५ संवित् (चेतनरूप ज्ञान)सैं भिन्न अंडज आदिकनके परमार्थतैं सद्भावके अभावके अनुमानका जन्मादिककी प्रतीतितैं बाध नहीं होवै है; काहेतैं, सद्भावके अभाव हुये बी स्वप्न आदिकविषै जन्मादिक विकल्पके बहुलताकी प्रतीतितैं। ऐसैं [६८—७० पर्यंत] तीन श्लोकनके तात्पर्यकूं कहैहैं ।

**न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते ।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ॥ ७१ ॥
चित्तस्पन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम् ।
चित्तं निर्विषयं नित्यमसङ्गन्तेन कीर्तितम् ७२**

चित अंडज आदिक जीव जन्मतेहैं औ मरतेहैं; तैसें ये मनुष्यादि-रूप जीव अविद्यमानहीं हुये चित्तकी कल्पनामात्र हैं ॥ ७० ॥

टीकाः—जातैं[२७६] **इसका कारण नहींहै, तातैं कोईबी जीव जन्मता नहीं । जिस सत्यस्वरूप ब्रह्म-विषै कछुबी जन्मता नहीं, यह तिन पूर्वके ग्रंथनविषै उपायपनैकरि उक्त सत्यनके मध्य उत्तम सत्य है ।** याका यह भावार्थ हैः—व्यवहारविषै सत्य विषय औ जीवनका जन्म मरण आदिक, स्वप्नआदिकके जीवकी न्यांई है, ऐसें पूर्वके तीन श्लोकनविषै कहा; परंतु "कोई बी जीव जन्मता नहीं" यह परमार्थतैं जो सत्य है सो उत्तम है । या श्लोकका अर्थ पूर्व (३ प्रकरणके ४८ वे श्लोकविषै) कहाहै ॥ ७१ ॥

टीकाः—चित्त[२७७] **(मन)—का स्फुरणरूपहीं यह ग्राह्य (विषय) औ ग्राहक (इंद्रिय) वाला द्वैत, विषयरहित चित्त (आत्मचैतन्य) है । तिस हेतु-करि सो चित्त (आत्मचैतन्य) नित्य असंग कहाहै ॥** याका यह तात्पर्यार्थ हैः—सर्व ग्राह्य औ ग्राहकवाला चित्तका स्फुरणरूपहीं द्वैत परमार्थतैं चित्त (आत्मा)हीं है, यातैं सो चित्त (आत्मचैतन्य) निर्विषय है । तिस निर्विषय होनेरूप हेतु-

---

२७६ जो वादी जन्म आदिक सत्य है, ऐसे मानताहै, ताके प्रति पूर्व [४८ विषै] उक्त अर्थकूं स्मरण करावै हैं ।

२७७ ज्ञानकूं कल्पित दृश्यकरि उपहित (उपाधिवाले) रूपकरि दृश्य होनेतैं, तांका देखेहुये पदार्थतैं भिन्न सद्भाव नहीं है; ऐसैं स्वप्नके दृष्टांतसैं कहा, अब वास्तवतैं ज्ञानकूं विषयसैं संबंधके अभावतैं आत्माहीं ज्ञान है; ऐसैं कहैहैं ।

योऽस्ति कल्पितसंवृत्या परमार्थेन नास्त्यऽसौ ।
परतन्त्राभिसंवृत्या स्यान्नास्ति परमार्थतः ॥७३॥
अजः कल्पितसंवृत्या परमार्थेन नाप्यजः ।
परतन्त्रोऽभिनिष्पत्या संवृत्या जायते तु सः ७४

करि सो नित्य असंग कहाहै; "असंग यह पुरुष है" इस श्रुतितैं । विषयसहित वस्तुका विषयविषै संग (आसक्ति) होवैहै, चित्त (आत्मा) जातैं निर्विषय है, यातैं असंग है । इस युक्तितैं इस आत्माका असंगपना सिद्ध है ॥ ७२ ॥

टीकाः—ननु, जब निर्विषय होनेकरि चित्त (ब्रह्मचैतन्य)का असंगपना है, तब सो असंगपना सिद्ध नहीं होवैहै; काहेतैं शास्ता (शिक्षाका कर्त्ता गुरु) शास्त्र औ शिष्य इत्यादि (प्रमाता प्रमाण आदिक) विषयके विद्यमान होनेतैं ? यह दोष बनै नहीं:—काहेतैं, जो शास्त्र आदिक पदार्थ विद्यमान है, सो परमार्थकी प्राप्तिका उपाय होनेकरि **कल्पित** जो पडदा (व्यवहार) **तिसकरि है** । **यह** शास्त्र आदिक पदार्थ **परमार्थसैं नहींहै** । यामैं "जानेहुये द्वैत नहींहै" यह पूर्व (१ प्रकरणके १८ वें श्लोकविषै) उक्त वाक्य अनुकूल है । औ[२७८] जो पदार्थ वैशेषिक आदिक अन्य वादीनके **शास्त्रके व्यवहारसैं होवै, सो परमार्थतैं** निरूपण कियाहुया **नहींहै** । तातैं "तिसकरि असंग कहाहै" ऐसै जो हमनैं कहा सो युक्त है ॥ ७३ ॥

टीकाः—ननु, शास्त्रआदिकनकूं व्यवहाररूपताके हुये "अजन्मा

---

२७८ ननु, वैशेषिक जे हैं, वे द्रव्यसैं आदिलेके समवाय पर्यंत षट्पदार्थनकूं परमार्थतैं मानते हैं; तैसैं हुये चेतनकूं कैसैं असंगपना है ? तहां कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—वैशेषिकनकी परिभाषासैं कल्पित व्यवहारके अनुसारसैं जो द्रव्यसैं आदिलेके समवायपर्यंत पदार्थ है सो परमार्थतैं नहीं है; किंतु व्यवहारसैं भासताहै; तातैं चेतनका असंगपना अविरुद्ध है ।

**अभूताभिनिवेशोऽस्ति द्वयं तत्र न विद्यते ।
द्वयाभावं स बुद्ध्वैव निर्निमित्तो न जायते ॥७५॥**

है" यह कल्पना वी व्यवहाररूप होवैगी? तहां यह ऐसैंहीं सत्य है यह कहै हैंः—शास्त्रआदिककरि कल्पित व्यवहारसैं हीं अजन्मा है, ऐसैं कहियेहै; परमार्थसैं अजन्मा वी नहींहै। जातैं अन्य[२७९] परिणामवादीनके शास्त्रकी प्रसिद्धिसैं (अन्योके शास्त्रविषै जो परिणामरूप जन्मकी प्रसिद्धि है ताके निषेधसैं)जो "आत्मा अजन्मा है" ऐसैं कहाहै; सो तो व्यवहारसैं है। जातैं जन्मताहै, तातैं जन्मरूप प्रतियोगीकूं व्यवहारकरि सिद्ध होनेतैं ताका निषेधरूप अजन्मापना वी तैसाहीं है, यह अर्थ है । यातैं "अजन्मा है" इसप्रकारकी यह कल्पना वी परमार्थरूप विषयविषै प्रवृत्त होती नहीं । येहं[२८०] अर्थ है ॥७४॥

टीकाः— [२८१]जातैं असत् (मिथ्या ज्ञान)का विषय संसार है, तातैं असत्य-रूप द्वैत विषै केवल अभिनिवेश (आग्रह) है । जातैं तिस

---

२७९ इहां यह अर्थ हैः—द्रव्यका औ गुणआदिक पांचका लक्षण जो है, सो तिसतैं व्यावर्त्तक आपके लक्षणके संभवविना नहीं कल्पियेहै । तैसैं हुये तिस तिसके लक्षणतैं तिसकी प्रतीतिके हुये तिसतैं भिन्नकी प्रतीति होवै है, तिस भिन्न पदार्थके औ लक्षणतैं तिसकी प्रतीतिके हुये तिसतैं व्यावृत्त (भिन्न किये) पदार्थकी प्रतीति होवै है । ऐसैं परस्परके आश्रयरूप दोषतैं कछु वी वस्तु वास्तवतैं नहीं सिद्ध होवै है ।

२८० अजन्मापनै आदिक व्यवहारकरि उपलक्षित जो स्वरूप है, ताका अकल्पितपना है; काहेतैं, ताकूं कल्पनाका अधिष्ठान होनेतैं । औ कल्पित शास्त्रादिककूं अकल्पित वस्तुके प्रमाज्ञानकी अहेतुता नहीं है; काहेतैं, प्रतिबिंब आदिककूं बिंबआदिकके प्रमाकी हेतुताकूं सिद्ध होनेतैं; ऐसैं जानना ।

२८१ ननु, ज्ञानकूं कल्पित शास्त्र आदिकसैं अन्यताके हुये मिथ्या होनेतैं अपुनरावृत्ति (मोक्ष)रूप फलकी साधनता नहीं होवैगी? तहां कहैहैं।

यदा न लभते हेतूनुत्तमाधममध्यमान्।
तदा न जायते चित्तं हेत्वभावे फलं कुतः ७६॥

आत्मा-विषै मिथ्या आग्रहमात्र औ जन्मका कारण द्वैत, विद्यमान नहीं है, तातैं जो पुरुष द्वैतके अभावकूं जानिके हीं मिथ्या द्वैतके आग्रहरूप निमित्तसैं रहित होवैहै, सो जन्मता नहीं ॥ ७९ ॥

टीकाः–[२८२]जाति(वर्ण) औ आश्रमकूं विधान किये जे कर्मरूप हेतु, वे फलकी तृष्णासैं रहित अधिकारीनकरि अनुष्ठान किये धर्मतैं, देवभाव आदिक (उत्कृष्ट जन्म)की प्राप्तिके प्रयोजन अर्थ केवल उत्तम हैं, औ धर्म अधर्म अरु मिश्रितरूप मनुष्यभाव आदिक (मध्यम योनि)की प्राप्तिअर्थ मध्यम हैं, औ तिर्यक् आदिक (अधम जन्म)की प्राप्तिके निमित्त अधर्मरूप प्रवृत्ति विशेष अधम हैं। जब चित्त (चैतन्य), तिन अविद्याकरि कल्पित तिन उत्तम मध्यम औ अधम हेतुनकूं सर्व कल्पनासैं रहित एकहीं अद्वितीय आत्मतत्वकूं जानता हुया नहीं देखता है। जैसैं बालकनकरि आकाशविषै देखेहुये मलकूं विवेकी पुरुष नहीं देखता है, ताकी न्यांईं। तब देव आदिक आकारनकरि उत्तम मध्यम औ अधम कर्मके फलरूपसैं जन्मता नहीं। जातैं बीज आदिकके अभाव हुये धान्यके वृक्ष आदिककी न्यांईं, हेतुके अविद्यमान हुये फल उपजता नहीं; यातैं हेतुके अभाव हुये फल कहांतैं होवैगा? ॥ ७६ ॥

---

२८२ " निमित्तसैं रहित हुया नहीं जन्मताहै " ऐसैं जो पूर्व [७५ विषै] कहा, तिस इसअर्थकूं वर्णन करैहैं।

**अनिमित्तस्य चित्तस्य याऽनुत्पत्तिः समाऽद्वया ।
अजातस्यैव सर्व्वस्य चित्तदृश्यं हि तद्यतः ॥७७**

टीकाः—"हेतुके[२८३] अभाव हुये चित्त उपजता नहीं," ऐसैं पूर्वश्लोकविषै कहा। फेर सो चित्तकी अनुत्पत्ति किस प्रकारकी है? सो अब कहियेहैः—परमार्थके ज्ञानसैं निवृत्त भया है धर्म अधर्म नामक उत्पत्तिका निमित्त जिसका, ऐसा जो चित्त; सो अनिमित्त कहियेहै। तिस अनिमित्त चित्त (चैतन्य)की जो मोक्षनामक अनुत्पत्ति है, सो [२८४]सर्वदा सर्व अवस्थाविषै सम (विशेषरहित) औ अद्वैतरूप है। [२८५]जातैं ज्ञानतैं पूर्व बी सो द्वैत औ जन्म चित्तका दृश्य हीं है, तातैं निमित्तरहित सर्वदा (ज्ञानतैं पूर्वबी) जन्मरहित सर्व (अद्वैतरूप) चित्त (चैतन्य)की जो अनुत्पत्ति है सो सम औ अद्वैतहीं है। सो अनुत्पत्ति फेर कदाचित्

२८३ "तब चित्त जन्मता नहीं है" ऐसैं [७६ विषै उक्त अर्थमैं] कालपरिच्छेदकी प्रतीतितैं आगंतुकताकी आशंकाकरिके निवारण करैहैं।

२८४ जैसैं रूपेकी कल्पनाकालविषै बी सीपीका अरूपापना स्वाभाविक है; तैसैं जन्मकी कल्पनाकालविषै बी चेतनरूप ज्ञानकी निष्प्रपंच अद्वितीय ब्रह्मरूपता स्वाभाविक है। जन्मके भ्रमकी निवृत्तिकी अपेक्षासैं तौ, "तब नहीं जन्मताहै" ऐसैं कहा। यह सर्वदा इस पदकरि सूचन करैहैं। केवल मोक्ष अवस्थावाले चैतन्यकाहीं अजन्मापना है ऐसैं नहीं; किंतु घटादि उपहित चैतन्यकूं बी अजन्मापना है, या अभिप्रायसैं इहां सर्व अवस्थाविषै ऐसैं कहा। सर्वहीं चेतनके प्रतिबिंबकूं बिंबके तुल्य ब्रह्मरूप होनेतैं। इस हेतुके अभिप्रायसैं यह अनुत्पत्ति अद्वैतरूप कही है।

२८५ सर्व द्वैतकूं चेतनका दृश्य होनेकरि मिथ्या होनेतैं, औ नित्य सिद्ध परिपूर्ण चेतननामक स्फुरणकूं जन्मके असंभवतैं, ताकी जो अनुत्पत्ति है; सो उक्तलक्षणवाली युक्त है।

बुद्ध्वानिमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगनाप्नुवन् ।
वीतशोकं तथा काममभयं पदमश्नुते ॥ ७८ ॥
अभूताभिनिवेशाद्धि सदृशे तत्प्रवर्त्तते ।
वस्त्वभावं स बुद्ध्वैव निःसङ्गं विनिवर्त्तते ॥ ७९ ॥

होवैहै, ऐसैं नहीं; वा कदाचित् नहीं होवैहै, ऐसैं नहीं; किंतु सर्वदा एकरूप हीं है। यह अर्थ है ॥ ७७ ॥

टीकाः—[२८६]उक्त प्रकारकी युक्तिसैं जन्मके निमित्त द्वैतके अभावतैं निमित्तरहित परमार्थरूप सत्ताकूं जानिके धर्म आदिक कारणरूप हेतुकूं देव आदिक योनिकी प्राप्ति अर्थ भिन्न अग्रहण करता (बाह्य विषयकी इच्छासैं रहित) हुया, कामसैं रहित औ शोकसैं रहित (अविद्या आदिकसैं रहित) अभय पदकूं पावता है। फेर जन्मकूं पावता नहीं। यह अर्थ है ॥ ७८ ॥

टीकाः—[२८७]जातैं मिथ्या द्वैतविषै द्वैतके सद्भावका निश्चयरूप जो मिथ्या आग्रह है, तिस अविद्याके व्यामोहरूप मिथ्या अभिनिवेश (आग्रह) तैं सदृश (ताके अनुसारी) वस्तु-विषै सो चित्त प्रवर्त्त होवैहै। तातैं सो पुरुष, तिस द्वैतरूप वस्तुके अभावकूं जानिकेहीं (जब जानता है, तब) अपना चित्त, जैसैं तिस मिथ्या अभिनिवेशके विषयतैं निःसंग (निरपेक्ष) हुया निवृत्त होवैहै; तैसैं ताकी निवृत्तिके अनुसारी होवैहै ॥ ७९ ॥

---

२८६ “सो द्वैतके अभावकूं जानिके निमित्तसैं रहित हुया जन्मता नहीं है” ऐसैं [७५ विषै] कहा; ताकूं अब वर्णन करै हैं।

२८७ उक्तप्रकारके पदकी प्राप्ति सदा है? यह आशंकाकरिके कहैहैं।

निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला हि तदा स्थितिः ।
विषयः स हि बुद्धानां तत् स्वाम्यमजमद्वयम् ८०
अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम् ।
सकृद्विभातो ह्येवैष धर्म्मो धातुः स्वभावतः ८१
सुखमाव्रियते नित्यं दुःखं विव्रियते सदा ।
यस्य कस्य च धर्म्मस्य ग्रहेण भगवानसौ ॥ ८२ ॥

टीकाः—जब ऐसैं होवैहै तब द्वैतरूप विषयतैं निवृत्त भये औ अन्य विषयविषै अभावके ज्ञानसैं अप्रवर्त्त भये चित्त-की यह चलनसैं रहित स्वरूप हीं अद्वैत एकरस ज्ञानघन ब्रह्मरूप स्थिति होवैहै । जातैं सो मोक्षरूप आत्मा, परमार्थदर्शी पंडितनका विषय है; तातैं सो समभाव (परम निर्विशेष वस्तु) अजन्मा औ अद्वैतरूप है ॥ ८० ॥

टीकाः—फेर बी यह पंडितनका विषय ब्रह्मस्वरूपसैं स्थितिरूप मोक्ष कैसा है? तहां कहैहैंः—सो समभाव अजन्मा है, निद्रारहित है, स्वप्नरहित है, औ आपहीं प्रकाशरूप होवैहै, अन्य सूर्य आदिककी अपेक्षावाला नहीं है। अर्थ यह जो स्वप्रकाश स्वभाववाला है, औ सर्वदा प्रकाशरूप हीं यह इस लक्षणवाला आत्मानामक धर्म स्वभावतैं धातु (सर्वका धारण करनेहारा) है; वा धातु (वस्तु) के स्वभावतैं युक्त प्रकारका है ॥ ८१ ॥

टीकाः—ऐसैं कथन किया बी परमार्थतत्त्व, लौकिक जनोंकरि काहेतैं नहीं ग्रहण करियेहै? तहां कहियेहैः—जातैं जिस किस बी द्वैतवस्तुरूप धर्म (पदार्थ)-के ग्रहणसैं (ग्रहणके आग्रहसैं) सुख जो है, सो सदा श्रमविना आच्छादन करियेहै। तिस सुख-विषै आवरण जो है, सो अपनी निवृत्तिअर्थ अद्वैतके ज्ञानके निमित्तकूंहीं चाहताहै; अन्य यत्नकी अपेक्षा करता नहीं। औ

अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्तीति नास्ति वा पुनः । चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येव बालिशः ॥ ८३ ॥

दुःख जो है, सो सदा प्रकट करियेहै; काहेतैं, परमार्थके ज्ञानकूं दुर्लभ होनेतैं । तिस हेतुकरि यह भगवान् (अद्वैतरूप आत्मदेव), वेदांतशास्त्र औ आचार्यनकरि वहुत प्रकारसैं कथन किया हुया वी जाननेकूं शक्य नहीं है, काहेतैं, "इस (आत्मा) का वक्ता आश्चर्यरूप है, औ लब्धा (प्राप्त होनेवाला) कुशल है" इस श्रुतितैं ॥ ८२ ॥

टीकाः—"है वा नहीं है" ? इत्यादिक सूक्ष्मविषयवाले पंडितनके आग्रह वी जब भगवान् परमात्माके आवरणहीं हैं, तब मूढ जनोकी बुद्धिरूप आवरण है यामैं क्या कहना है ? इस प्रकारके अर्थकूं दिखावते हुये कहैहैं:—"आत्मा, देहादिकसैं भिन्न है" ऐसैं कोईक वैशेषिक आदिक वादी जानताहै । आत्मा, देहादिकतैं भिन्न है, तौ वी बुद्धितैं भिन्न नहीं है; ऐसैं अन्य क्षणिकवादी जानता है । आत्मा, है औ नहीं है; ऐसैं अन्य अर्धक्षणिकवादी जो सत् औ असत्का कहनेवाला दिगंवर सो जानता है । आत्मा, नहीं है, वा फेर नहीं है, ऐसैं अत्यंत शून्यवादी जानता है । तिनम अस्तिभाव जो है, सो चल (अस्थिर) है; घटादिक अनित्य वस्तुकरि विलक्षण होनेतैं । औ नास्तिभाव जो है, सो स्थिर है; सदा अविशेषरूप होनैतैं । औ सत् असत् भाव जो है, सो दोनूं (स्थिर अरु अस्थिर) रूप है; स्थिर औ अस्थिर विषयवाला होनैतैं । औ इन उक्त च्यारी प्रकारनका वी अत्यंत अभाव

---

२८८ इहां यह अर्थ है:—अनित्य घटादिकनतैं सुखादिआकार परिणामवाला होनेकरि विलक्षण होनेतैं अस्तिभावरूप जो यह प्रमाता कहा, सो चल औ सविशेष (सोपाधिक) हुया परिणामी है ।

कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्य्यासां सदावृतः ।
भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्व्वदृक् ॥८४॥
प्राप्य सर्व्वज्ञतां कृत्स्नां ब्राह्मण्यं पदमद्वयम् ।
अनापन्नादिमध्यान्तं किमतः परमीहते ॥ ८५ ॥

जो है, सो अभाव है। तिन इन चल स्थिर उभयरूप औ अभावनकरि सर्व बी सत् औ असत् आदिकका वादीरूप बालक (अविवेकी), भगवान्कूं ढांपताहीं है। यद्यपि, सो पंडित है; तथापि परमार्थतत्वके अबोधतैं बालकहीं है; तब स्वभावसैं मूढ जो जन, सो बालक है, यामैं क्या कहना है। यह अभिप्राय है॥८३॥

टीकाः—फेर जिसके बोधतैं अबालक (विवेकी) पंडित होवैहै, ऐसा जो परमार्थतत्व सो कैसा है? तहां कहैहैं:—जिन कोटिन-के प्राप्तिके निश्चयरूप ग्रहणोसैं (आग्रह विशेषनसैं) आत्मा सदा आवृत (ढांप्या) है, वे प्रसिद्ध "है" औ "नहीं है" इत्यादिक रूपसैं कथन करी वादीनके कल्पित शास्त्रके निर्णयसैं निरूपण करने योग्य च्यारी कोटियां (पक्ष) हैं,। तिन वादीनकी इन "है" "नहीं है" इत्यादिक च्यारी कोटिनसैं जो भगवान् स्पर्शरहित (अस्तिभाव आदिककी कल्पनासैं रहित) है, सो जिस मुनि (वेदांतनविषै कुशल पुरुष)—नैं देख्या (जान्या) है, सो उपनिषद्का वेत्ता पुरुष सर्वदृक् (सर्वज्ञ) कहिये परमार्थविषै पंडित होवैहै ॥ ८४ ॥

टीकाः—सो ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता), इस उक्तप्रकारकी संपूर्ण सर्वज्ञताकूं पायके अद्वैत औ उत्पत्ति स्थिति अरु लयकूं अप्राप्त भये औ "यह नित्य महिमा ब्राह्मणका है" इस श्रुतिकरि प्रतिपादित ब्रह्मभावरूप पदकूं पायके, इस उत्कृष्ट आत्माके लाभ—तैं पीछे क्या निष्प्रयोजन चेष्टा करताहै; कछुबी करता नहीं। "ताका कर्मसैं अर्थ नहीं है" इत्यादिरूप गीतास्मृतिके वाक्यतैं ॥ ८५ ॥

विप्राणां विनयो ह्येषः शमः प्राकृत उच्यते ।
दमः प्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वाञ्छमं व्रजेत् ८६
सवस्तु सोपलम्भञ्च द्वयं लौकिकमिष्यते ।
अवस्तु सोपलम्भञ्च शुद्धं लौकिकमिष्यते ८७

टीका–[२८९]ब्राह्मणनका जो यह स्वाभाविक आत्मस्वरूपसैं स्थितिरूप विनय है, यह विनय है । औ यह हीं विनय स्वाभाविक (अवनावटका) शम कहियेहै । औ दम बी यहहीं है; स्वभावसैं शांतरूप होनेकरि स्वाभाविक दमकरि युक्त होनेतैं । ऐसैं उक्तप्रकारका स्वभावसैं शांत ब्रह्मका जाननेवाला विद्वान् ब्रह्मस्वरूप स्वाभाविक शांतिरूप शमकूं पावताहै (ब्रह्मस्वरूपसैं स्थित होवैहै) ॥ ८६ ॥

टीकाः–[२९०]ऐसैं परस्पर विरुद्ध होनेतैं संसारके कारण औ रागद्वेषरूप दोषके आश्रय वादीनके सिद्धांत हैं; यातैं वे मिथ्या ज्ञानरूप हैं; ऐसैं तिनकी युक्तिनसैंहीं दिखायके, उक्त च्यारी कोटिनसैं रहित होनेतैं राग आदिक दोषनका अनाश्रय स्वभावसैं शांत अद्वैत सिद्धांतहीं सम्यक् ज्ञान है; यह निर्णय इहांपर्यंत समाप्त किया । अब

---

२८९ "जहांलगि जीवे तहांलगि अग्निहोत्रकूं करे" इत्यादि श्रुतिकूं अविद्वान्कूं विषय करनेवाली होनेतैं, विद्वान्कूं अग्निहोत्रादि कर्तव्य नहीं है; ऐसैं कहा । अब तिस विद्वान्कूं बी शमदमआदिककी विधितैं कर्तव्य है? यह आशंकाकरिके कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः–ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणकूं यह विनय स्वभावतैं है, सो श्रुतिकी आज्ञाके अधीन कर्तव्यताकूं संपादन करता नहीं । शम बी स्वाभाविक है श्रुतिकी आज्ञासैं नहीं करियेहै । दम बी स्वभावकरि सिद्ध होनेतैं श्रुतिकी आज्ञाकूं चाहता नहीं । ऐसैं कूटस्थरूप आत्मतत्त्वका जाननेवाला पुरुष सर्व विकारसैं रहित ब्रह्मस्वरूपसैं स्थित होवैहै ।

२९० ऐसैं परमतके निषेधद्वारा आत्मतत्व निर्द्धार किया । अब अपनी प्रक्रियासैं तीनअवस्थाके कथनद्वारा बी तिस आत्मतत्त्वका निर्द्धार करनेकूं प्रथम दोनूं अवस्थाका कथन करैहैं ।

अवस्त्वनुपलम्भञ्च लोकोत्तरमिति स्मृतम् ।
ज्ञानं ज्ञेयञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धैः प्रकीर्तितम् ॥८८॥

[२९१] अपनी प्रक्रियासैं आत्मतत्वके दिखावनेअर्थ अवशेष रहे ग्रंथका आरंभ हैः–[२९२] संत् (स्थूल) वस्तुकरि सहित जो वर्तमान होवै; ऐसा जो व्यवहार; सो सवस्तु कहियेहै । तैसैं उपलंभ (प्रतीति) करि सहित जो वर्तमान होवै, सो सोपलंभ कहियेहै । ऐसा **सवस्तु औ सोपलंभरूप** शास्त्र आदिक सर्व व्यवहारका विषय ग्राह्य अरु ग्राहकरूप द्वैत **लौकिक** (लोकविषै प्रसिद्ध जाग्रत् अवस्था) है । ऐसे लक्षणवाला जाग्रत् वेदांतनविषै **अंगीकार करियेहै** । [२९३] स्थूल व्यवहारके वी अभावतैं अवस्तुरूप, औ प्रतीति सहित वस्तुकी न्यांईं असत् वस्तुविषै वी प्रतीति होवैहै । तिस प्रतीतिकरि सहित वर्तमान है, यातैं सोपलंभ है । ऐसा **अवस्तु औ सोपालंभरूप शुद्ध** (स्थूल जाग्रततैं सूक्ष्म केवल) **लौकिक** (सर्व प्राणीनकूं साधारण होनेतैं लोकविषै प्रसिद्ध स्वप्न) है; **ऐसैं अंगीकार करियेहै** ॥ ८७ ॥

टीकाः–अवस्तु (स्थूल औ सूक्ष्म वस्तुरूप विषयसैं रहित), औ

---

२९१ इहां यह अर्थ हैः–शिष्यकरि साधनेयोग्य आरोपदृष्टिकूं आश्रयकरिके जाग्रत्आदिक पदार्थनके शोधनपूर्वक जो बोधका प्रकार, सो अपनी प्रक्रिया है । तासैं तिसीहीं आत्मतत्वके दिखावनेके परायण शेष ग्रंथ है ।

२९२ जो प्रातिभासिक औ व्यावहारिकरूप स्थूल पदार्थनका समूह, सूर्य आदिक देवताके अनुग्रहकरि युक्त इंद्रियनसैं जानियेहै, सो जाग्रत् अवस्था है ।

२९३ वाह्य इंद्रियनका किया जो व्यवहार, सो संवृत्ति शब्दका अर्थ है । सो बी स्थूल पदार्थकी न्यांईं स्वप्नविषै नहीं होवैहै । तैसैं हुये वाह्य इंद्रियनके विलय हुये जाग्रत्की वासनासैं मनका तिसतिस पदार्थके आभासरूप आकारसैं भासना, सो स्वप्न शब्दका अर्थ है ।

ज्ञाने च त्रिविधे ज्ञेये क्रमेण विदिते स्वयम् ।
सर्व्वज्ञता हि सर्व्वत्र भवतीह महाधियः ॥८९॥

अनुपलंभ (सर्व ज्ञानोंसैं रहित), अर्थ यह जो ग्राह्य औ ग्रहणसैं रहित जो है, सो लोकोत्तर (उक्त जाग्रत् औ स्वप्न लोकतैं पीछे होनेवाली सुषुप्ति अवस्था) है, ऐसैं जान्याहै; याहीतैं लोकातीत कहियेहै । जातैं ग्राह्य औ ग्रहणका विषयहीं लोक है, ताके अभावतैं सर्व प्रवृत्तिका बीज सुषुप्ति अवस्था है; ऐसैं शास्त्रवेत्ता पुरुषनकूं प्रसिद्ध है । उपायसहित परमार्थतत्व; लौकिक, शुद्धलौकिक, औ लोकोत्तर; इस क्रमकरि जिस ज्ञानसैं जानियेहै, सो ज्ञान उक्त इन तीन ज्ञेयरूप है । इस ज्ञानसैं भिन्न ज्ञेयके असंभवतैं, सर्व वादीनकरि कल्पित वस्तुके इसीहींविषै अंतर्भावतैं विशेषकरि जाननेयोग्य परमार्थसत्य तुरीयनामक अद्वैत अजन्मा आत्मतत्व, सदा परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पंडितोंनैं कहाहै ॥ ८८ ॥

टीकाः—लौकिक[२९४] आदिक विषयवाले ज्ञानविषै औ लौकिक आदिक तीनप्रकारके ज्ञेयविषै; प्रथम लौकिक स्थूल है, औ ताके अभावसैं पीछे शुद्धलौकिक है, ताके अभावसैं, लोकोत्तर है । ऐसैंहीं क्रमकरि तीन स्थानके अभावसैं, परमार्थ सत्य तुरीय अद्वैत अजन्मा अभय आत्मतत्वके जानेहुये, सर्व लोकतैं अतिशय वस्तुकूं विषय करनेवाली बुद्धिकरि युक्त होनैतैं; ऐसैं जाननेवाला जो महाबुद्धिमान् पुरुष है, ताकूं इस लोकविषै सर्वत्र (सर्वदा) आत्मस्वरूपभूतहीं सर्वज्ञता (सर्वरूप ज्ञानभाव) होवैहै, काहेतैं, एकवार जानेहुये स्वरूपविषै व्यभिचारके अभावतैं । जातैं अन्यवादीनकी

---

२९४ "आत्माके जाने हुये यह सर्व जान्या जावैहै," इस श्रुतिकरि जो प्रतिज्ञा किया है, सो उक्त वस्तुके ज्ञान हुये सिद्ध होवैहै; ऐसैं कहैहैं ।

हेयज्ञेयाप्यपाक्यानि विज्ञेयान्यग्रयाणतः ।
तेषामन्यत्र विज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषु स्मृतः ॥ ९०॥
प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्व्वे धर्म्मा अनादयः ।
विद्यते नहि नानात्वं तेषां क्वचन किञ्चन ॥९१॥

न्यांई परमार्थके ज्ञाता पुरुषकूं ज्ञानके उद्भव औ तिरस्कार नहीं होवैहैं, यातैं विद्वान्कूं परिपूर्ण ज्ञानरूपता होवैहै; ॥ ८९ ॥

टीकाः—लौकिक[२९५] आदिकनके क्रमकरि ज्ञेयपनैकरि कथनतैं परमार्थतैं अस्तिभावकी आशंका होवैहै ? सो वनै नहीं; ऐसैं कहैहैंः—त्यागने योग्य लौकिकआदिक तीन जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्ति, आत्माविषै असत्पनैकरि रज्जुविषै सर्पकी न्यांई हेय (त्यागनेकूं योग्य) हैं । इहां च्यारी कोटिनसैं रहित परमार्थतत्व ज्ञेय कहियेहै, औ बाह्य तीन एषणासैं रहित संन्यासीकरि प्राप्त होनेयोग्य पांडित्य (श्रवण) बाल्य (मनन) औ मौन (निदिध्यासन) इन नामवाले जे साधन, वे प्राप्त करनेकूं योग्य हैं । राग द्वेष औ मोह आदिक जे कषाय नामवाले दोष हैं वे पाक्य (पकावनेकूं योग्य) कहियेहैं । ये सर्व हेय (त्याज्य,) ज्ञेय (जानने योग्य,) आप्य (पावने योग्य,) पाक्य (पकावने योग्य) जे हैं; वे संन्यासीकरि उपायपनैकरि जाननेकूं योग्य हैं । प्रथमतैं तिन हेय आदिकन-का ज्ञेयतैं (परमार्थ सत्य एक ब्रह्मरूप ज्ञेयकूं छोडिके) अन्यठिकाने जो अविद्याकी कल्पनामात्र उपलंभ (ज्ञान) है, सो हेय आप्य औ पाक्य इन तीनविषै बी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोनैं जान्याहै; । तिनके परमार्थ सत्यतैं नहीं । यह अर्थहै ॥ ९० ॥

टीकाः—परमार्थतैं[२९६] तो सर्व धर्म (आत्मा) स्वभावसैं सूक्ष्म निरं-

---

२९५ तीन अवस्थाके ज्ञेयपनैके कथनसैं तिनका परमार्थतैं सद्भाव होवैगा ? यह आशंकाकरिके निषेध करैहैं ।

२९६ जो पूर्व कहा, "अस्ति आदिक च्यारी कोटिसैं रहित जो ज्ञेय है सो परमार्थतत्व है" ताकूं अब स्पष्ट करैहैं ।

**आदिबुद्धाः प्रकृत्यैव सर्व्वे धर्म्माः सुनिश्चिताः ।
यस्यैवम्भवति क्षान्तिः सोऽमृतत्वाय कल्पते ९२
आदिशान्ता ह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्वृताः ।
सर्व्वे धर्म्माः समाभिन्ना अजं साम्यं विशारदम्
॥ ९३ ॥**

जन औ सर्वगतपनैविषै आकाशकी न्याईं हैं औ अनादि (नित्य) हैं, ऐसैं मुमुक्षुनकरि जाननेकूं योग्यहैं तिनका नानाभाव कहीं (देश काल अवस्थाविषै) बी कछुबी (अणुमात्र बी) विद्यमान नहींहै ॥ ९१ ॥

टीकाः—आत्मारूप धर्मनकी ज्ञेयता (जाननेकी योग्यता) बी व्यवहारसैं हीं है, परमार्थतैं नहीं; ऐसैं कहैहैंः—जातैं **सर्व धर्म** (आत्मा,) **स्वभावसैंहीं आदिविषै बुद्ध हैं**; कहिये; जैसैं नित्य प्रकाश स्वरूप हैं ऐसैं नित्यबोधस्वरूप हैं, औ तिनका निश्चय अब करनेका है, ऐसैं नहीं; औ ऐसैं हैं, ऐसैं नहींहैं, इसप्रकारके संशयकरियुक्त स्वरूपवाले नहींहैं; किंतु नित्य (सदा) **निश्चित स्वरूपवाले हैं**। तातैं **जिस मुमुक्षुकूं ऐसैं** युक्त प्रकारकरि आपके अर्थ वा परके अर्थ सर्वदा बोधरूप निश्चयविषै निरपेक्षतारूप **शांति होवैहै;** कहिये जैसैं सूर्य, आपके अर्थ औ परके अर्थ अन्य प्रकाशकी अपेक्षासैं रहित होवैहै; ऐसैं जिसकूं आत्माविषै सर्वदा बोधके कर्तव्यताकी निरपेक्षतारूप शांति होवैहै, **सो अमृतभाव** (मोक्ष)के **अर्थ समर्थ होवैहै** ॥ ९२ ॥

टीकाः—तैसैं [२९७] आत्माविषै शांतिकी कर्तव्यता बी नहींहै; ऐसैं कहैहैंः—जातैं **सर्व धर्म** (आत्मा) **आदिविषै** (नित्यहीं) **शांत हैं** औ

---

२९७ अब मुमुक्षुकी रुचिअर्थ अविद्वान्‌की निंदाकूं दिखावैहैं ।

वैशारद्यन्तु वै नास्ति भेदे विचरतां सदा ।
भेदनिम्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः ॥ ९४ ॥
अजे साम्ये तु ये केचिद्भविष्यंन्ति सुनिश्चिताः ।
ते हि लोके महाज्ञातास्तच्च लोको न गाहते९५

अनुत्पन्न (अजन्मा) हैं; औ स्वभावसैंहीं सम्यक् सुखरूप (नित्यमुक्त स्वभाववाले) हैं, औ समान हैं, अरु अभिन्न हैं । ऐसैं जातैं अन्मरहित समभाव (आत्मतत्व) विशारद (शुद्ध) है, तातैं शांति वा मोक्ष कर्तव्य नहींहै । जातैं नित्य एक स्वभाववाले आत्माका कछुवी कियाहुया नहीं होवैहै, यातैं आत्माकूं संसारदुःखकी निवृत्ति वा सुखकी उत्पत्ति क्रियाजन्य नहींहै, किंतु नित्य सिद्ध है । यह अर्थहै ॥ ९३ ॥

टीकाः–जे पुरुष[298] उक्तप्रकारके परमार्थ तत्वकूं जानतेहैं, वेई लोकविषै अकृपण हैं, औ अन्य तो कृपण हैं; ऐसैं कहेहैंः–जातैं नानावस्तु है ऐसैं कहनेवाले द्वैतवादी; भेदके अनुयायी (संसारके अनुगामी) हैं; तातैं वे कृपण तुच्छ जानेहैं । जातैं तिन अविद्याकल्पित द्वैतमार्गरूप भेदविषै सर्वदा वर्तमान पुरुषनकी विशुद्धि नहीं है, यातैं तिनका कृपणपना युक्तहीं है । यह अभिप्राय है ॥ ९४ ॥

टीकाः–जो यह परमार्थतत्व है, सो अमहात्मा अपंडित वेदांततैं बाहिर भये तुच्छ अल्पज्ञ पुरुषनकरि जाननेकूं अयोग्य है, ऐसैं कहैहैंः– जो कोईक स्त्रियादिक बी, अजन्मा समभाव (परमार्थतत्व) विषै यह ऐसैंहीं है; इसप्रकार जब सम्यक् निश्चित होवैंगे; तब सोई लोकविषै महाज्ञानी (सर्वसैं अधिकतत्वकूं विषय करनेवाले

---

२९८ ऐसैं अविद्वान्की निंदाकूं दिखायके अब विद्वान्की प्रशंसा (श्लाघा) कूं फैलावते हैं ।

अजेष्वजमसंक्रान्तं धर्म्मेषु ज्ञानमिष्यते ।
यतो न क्रमते ज्ञानमसङ्गं तेन कीर्त्तितम् ॥९६॥
अणुमात्रेऽपि वैधर्म्ये जायमानेऽविपश्चितः ।
असङ्गता सदा नास्ति किमुतावारणच्युतिः॥९७

ज्ञानवान्) हैं औ तिस तिनके जानेहुये परमार्थतत्वरूप मार्ग-कूं अन्य सामान्यबुद्धिवाला लोक विषय करता नहीं; काहेतैं "सर्व भूतनके आत्मारूप औ सर्व भूतनके हितरूप विद्वान्के मार्गविषै पदकूं खोजतेहुये, देव बी मोहकूं पावतेहैं। जैसैं आकाशविषै पक्षी-नकी गति नहीं देखियेहै, [तैसैं पावनेयोग्य पदसैं रहित परिपूर्ण ज्ञानवान् महात्माकी गति जाननेकूं अशक्य है" इत्यादि स्मृ-तितैं] ॥ ९५ ॥

टीका:—कैसैं[२९९] तिनका महाज्ञानीपना है? तहां कहैहैं:—जातैं सूर्यविषै उष्णता औ प्रकाशकी न्यांई, अजन्मा (अचल) धर्मन (आत्मा)विषै अजन्मा (अचल) ज्ञान अंगीकार करियेहै, तातैं सो अजन्मा ज्ञान अन्य अर्थविषै न जानेवाला अंगीकार करियेहै। जातैं ज्ञान, अन्य अर्थविषै गमन करता नहीं; तिस कारण-करि सो आकाशके तुल्य असंग कहाहै ॥ ९६ ॥

टीका:—यातैं[३००] अन्यवादीनके मतविषै अणुमात्र (अल्प)बी वि-

---

२९९ "अजन्मारूप समभाव है," ऐसैं जो [९३ विषै] कहा सो प्रमेय है, ताकूं विषय करनेवाले निश्चयवाला प्रमाता है, औ तिस प्रका-रका निश्चयरूप ज्ञान प्रमाणहै। ऐसैं वस्तुके परिच्छेद (भेद) के हुये तिन ज्ञानी पुरुषनका महाज्ञानवान्पना कैसैं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं।

३०० "कूटस्थरूप ब्रह्महीं तत्व है" ऐसैं अपने मतविषै ज्ञान असंग सिद्ध होवैहै; ऐसैं कहा। मतांतरविषै फेर आपकूं विषय करनेवाला होंनेतैं ज्ञानका असंगपना असंगत होवैहै; ऐसैं कहैहैं।

अलब्धावरणाः सर्व्वे धर्म्माः प्रकृतिनिर्म्मलाः ।
आदौ बुद्धास्तथा मुक्ता बुध्यन्त इति नायकाः ॥ ९८ ॥

क्रमते न हि बुद्धस्य ज्ञानं धर्म्मेषु तायिनः ।
सर्व्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितम्॥९९॥

रुद्ध धर्मवाले, औ बाहिर वा भीतर उत्पन्न होनेवाले वस्तु-विषै अविवेकी पुरुषकूं जब सदा असंगभाव नहींहै; तब बंधरूप आवरणका नाश नहींहै; यामैं क्या कहनाहै ? ॥ ९७ ॥

टीकाः—तिनकूं आवरणका नाश नहीं है, ऐसैं कहनेवाले तुमनैं तब अपने सिद्धांतविषै आत्मारूप धर्मनकूं आवरण अंगीकार किया? सो बनै नहीं, ऐसैं कहियेहैः—सर्व धर्म (आत्मा), अविद्या आदिक बंधनरूप आवरणकूं अप्राप्त (बंधन रहित) हैं; औ स्वभावसैं निर्मल (शुद्ध) हैं, औ आदिविषै (नित्य) बुद्ध (ज्ञानस्वरूप) हैं, तैसैं मुक्त हैं । जातैं नित्य शुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त स्वभाववाले हैं, तातैं बंधनरहित हैं; ऐसैं पूर्वके पदसैं संबंध है । जब ऐसैंहैं, तब कैसैं जानियेहैं ? तहां कहियेहैः—जैसैं नित्य प्रकाशस्वरूप हुया बी सूर्य प्रकाशताहै, ऐसैं कहियेहै । वा जैसैं नित्य गतिसैं रहितहुये बी पर्वत नित्यहीं स्थित होवैहैं, ऐसैं कहियेहैं । तैसै ये आत्मा नामक (जाननेकूं समर्थ होनेतैं स्वामी) हुये बी; कहिये, बोधशक्तियुक्त स्वभाववाले हुये भी जानियेहैं; ऐसैं कहियेहैं ॥ ९८ ॥

टीकाः—जातैं संतापवाले कहिये सूर्यके तापवाले आकाशके तुल्य भेदसैं रहित, वा पूजावान्, बुद्धिमान् परमार्थदर्शी पंडितका ज्ञान अन्यविषयरूप धर्मनविषै जाता नहीं; किंतु सूर्यविषै प्रकाशकीन्यांई आत्मारूप धर्मविषैहीं स्थित है, ऐसैं अंगीकार करियेहै;

दुर्दर्शमतिगम्भीरमजं साम्यं विशारदम् ।
बुद्ध्वा पदमनानात्वं नमस्कुर्मो यथा बलम्॥१००

इति गौडपादीयकारिकायामलातशांत्याख्यं
चतुर्थं प्रकरणम् ॥ ४ ॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृता मांडूक्योपनिषत्कारिका
संपूर्णा ॥ ६ ॥ ॐ तत् सत् ॐ ॥

तातैं इस आत्माविषै मुख्यपना सिद्ध होनेकूं योग्य है । औ सर्व धर्म (आत्मा)बी तैसे हैं; कहिये, ज्ञानकी न्यांईहीं आकाशके तुल्य होनेतैं कोइबी अन्य अर्थविषै जाते नहीं । जो इस चतुर्थप्रकरणकी आदि (प्रथम श्लोक) विषै "आकाशके तुल्य ज्ञानसैं" इत्यादि कहनेकूं आरंभ कियाथा, सो यह आकाशके तुल्य संताप-वाले परमार्थदर्शी पंडितका तासैं अभिन्न होनैतैं, आकाशके तुल्य ज्ञान कोईबी अन्य अर्थविषै जाता नहीं; तैसैं धर्म (आत्मा) हैं । इस रीतिसैं आकाशकी न्यांई अचल, अक्रिय, निरवयव, नित्य, अद्वितीय, असंग, अदृश्य, अग्राह्य, क्षुधा आदिकसैं रहित, ब्रह्म-रूप आत्मतत्व है; काहेतैं, "द्रष्टाकी दृष्टिका लोप विद्यमान नहीं है" इस श्रुतितैं । ज्ञान ज्ञेय औ ज्ञाताके भेदसैं रहित परमार्थतत्व अद्वैत है, यह बुद्धनैं नहीं कहाहै । यद्यपि बाह्य अर्थका निषेध औ ज्ञानमात्रकी कल्पनारूप अद्वैतवस्तुकी समीपता कहीहै, तौबी यह तौ परमार्थतत्वरूप अद्वैत वेदांतनविषै हीं जाननेकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥ ९९ ॥

टीका:—शांस्त्रकी समाप्तिविषै परमार्थतत्वकी स्तुतिअर्थ नमस्कार कहियेहै:— **दुःखसैं देखनेकूं योग्य;** कहिये, "है" "नहीं है" इत्यादि

---

२०१ च्यारी प्रकरणोंकरि युक्त या कारिकारूप शास्त्रकी आदिकी न्यांई अंतविषै बी परदेवताके तत्वकूं स्मरण करते हुये. ताके नमस्काररूप मंगलाचरणकूं संपादन करैहैं ।

भाष्यकारकृत मंगलाचरणम्

अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्य्ययोगादगति च गतिमत्ताम्प्रापदेकं ह्यनेकम् । विविधविषयधर्म्मग्राहि मुग्धेक्षणानां प्रणतभयविहन्तृ ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि १

च्यारी कोटिनसैं रहित होनेतैं दुःखसैं जाननेकूं योग्य, याहीतैं अति गंभीर; कहिये, अल्प बुद्धिवाले पुरुषनकरि महासमुद्रकीन्यांई दुःखसैं प्रवेश करनेकूं योग्य, औ **अजन्मा समभावरूप विशुद्ध नानाभावसैं रहित; ऐसे पदकूं जानिके** तिसरूप हुये हम, तिस पदके तांई परमार्थतैं व्यवहार करनेके अयोग्यकूं बी, मायासैं व्यवहारका विषय संपादन करिके **जैसा बल (शक्ति) है, तैसैं नमस्कार करैहैं॥ १००॥**

भाष्यकारकृत मंगलाचरण.

टीका:—अब भाष्यकार बी भाष्यकी समाप्तिविषै शास्त्रविषै प्रतिपादन किये परदेवताके स्वरूपकूं स्मरण करिके, ताके नमस्काररूप मंगलकूं आचरतेहैं:— **जो ब्रह्म,** जन्म-आदिक सर्व विकार-सैं **रहित हुया बी** (वस्तुतैं कूटस्थ सिद्ध होवैहै, तथापि) सो अनिर्वचनीय अज्ञानके शक्तिरूप **ऐश्वर्यके योगतैं** आकाश आदिक कार्यरूपसैं **जन्मके संबंधकूं प्राप्त होताभया;** कहिये प्राप्त होयके जगत्का उपादान कारण है, ऐसे व्यवहारका भागी होवैहै; तैसैं श्रुति औ सूत्रविषै ब्रह्मकूं जगत्का कारणपना प्रसिद्ध है । औ जो ब्रह्म, यद्यपि कूटस्थपनेकरि औ व्यापकपनेकरि **गति (गमन)-सैं रहित हुया** स्थित होवैहै; तथापि उक्तप्रकारके अज्ञानके माहात्म्यतैं कार्य ब्रह्मरूपताकूं पायके **गतिमान्पनेकूं प्राप्त-होता भया;** औ जो **ब्रह्म, एक हुया;** कहिये, वस्तुतैं सर्व नानाभावसैं रहित एकरस अद्वैतहै, ऐसैं उपनिषदनकरि जानियेहै; तथापि अनादि अनिर्वचनीय अविद्याके वशतैं **विविधप्रकारके विषयरूप धर्मनके ग्रहण करनेवाले** होनेकरि **विवेकरहित दृष्टिवाले पुरुषन-कूं,** जीव जगत् औ ईश्वर; इस भेदकरि **अनेककी न्यांई भासता है;** औ जो

प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्य मग्नान्यविरतजननग्राहघोरे समुद्रे । कारुण्यादुद्दधारामृतमिदममरैर्दुर्लभं भूतहेतोर्यस्तं पूज्याभिपूज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि ॥ २ ॥

यत्प्रज्ञालोकभासा प्रतिहतिमगमत् स्वान्तमोहान्धकारो मज्जोन्मज्जच्च घोरे ह्यसकृदुपजनोदन्वति त्रासने मे । यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्राह्यमोघा तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्व्वभावैर्नमस्ये ॥ ३ ॥

ब्रह्म, आचार्यके उपदेशसैं जनित बुद्धिवृत्तिविषै फलरूपसैं आरूढ हुया प्रणत (ब्रह्मनिष्ठावान्) पुरुष-नके अविद्या औ ताके कार्यरूप भयका नाश करताहै; तिस सर्व उपनिषदनविषै प्रसिद्ध सर्व परिच्छेदसैं रहित प्रत्यगात्मारूप ब्रह्म-के ताँई मैं नमस्कार करूंहूं, कहिये, ताकूं विषयकरनेवाले प्रकटभावकूं करूंहूं ॥ १ ॥

टीकाः—अब ग्रंथरचनाके प्रयोजनके दिखावनेपूर्वक, इस व्याख्यान किये आगमरूप शास्त्रके कर्ता होनेकरि स्थित भये परम गुरुनकूं प्रणाम करैहैः— जो निरंतर जन्मरूप ग्राहन (जलचरन)सैं भयंकर संसाररूप समुद्रविषै परवश भये भूतनकूं देखिके, प्रकट भये करुणाभावतैं बुद्धिरूप मथनकाष्टके डालनेसैं विलोडनकूं प्राप्त भये वेदनामक समुद्रके भीतर स्थित, औ देवनकरि दुःखसैं पावनेकूं योग्य, इस (ज्ञानरूप) अमृतकूं भूतनके हेतुतैं (उपकारअर्थ) उद्धार करताभया (विकास करताभया) । तिस इस पूजने योग्य गुरु-नकरि बी पूजनेकूं योग्य परमगुरुकूं ताके पादनविषै अपने मस्तकके वारंवार नमनभावरूप पातनसैं (डालनेसैं) मैं नम्र भयाहूं ॥ २ ॥

टीकाः—फेर अब अपने गुरुकी भक्तिके विद्याकी प्राप्तिविषै अंतरं-

गपनैकूं अंगीकारकरिके तिस गुरुके पादकमलके युगलकूं प्रणाम करै हैं:— जिनकी बुद्धिरूप प्रकाशकी प्रभासैं, मेरा अनेक देव तिर्यक् आदिक योनिनविषै नानाप्रकारके देहभेदके ग्रहणरूप जन्ममय घोर (क्रूर) अरु भयंकर समुद्रविषै कदाचित् कार्यरूपसैं अनुद्भूत औ कदाचित् कार्यरूपसैं उद्भूत (अनर्थकर) अंतःकरण विषै व्याकुलताके हेतु अविवेकका कारण अनादि अज्ञानमय मोहरूप अंधकार नाशकूं प्राप्त होताभया; औ जिन-गुरुनके दोनूं पादनके ताईं आश्रित भये अन्य शिष्यनकूं वी मनन अरु निदिध्यासन सहित श्रवण ज्ञान औ इंद्रियनकी उपरतिरूप शांति, औ नम्रतारूप विनय (अगर्व-)-की प्राप्ति होवैहै। जातैं सो श्रवण आदिककी प्राप्ति सफल है तातैं श्रेष्ठ है सो होवैहै। सर्व जगत्के बी पवित्र करनेहारे औ अपने संबंधी सर्व जनोके संसारके किये भयकूं कारणसहित नाश करनेहारे तिन हमारे गुरुन-के दोनूं पादनके ताईं मन वाणी औ देह इन सर्वके प्रकट भावनसैं नमस्कार करूहूं ॥ ३ ॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृत-मांडूक्योपनिषत्कारिकायामलातशांत्याख्य चतुर्थप्रकरणभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥४॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापुसरस्वती पूज्यपाद शिष्य पीतांबरशर्मविदुषा श्रीभगवत्पादकृत भाष्यानुसारेण विरचिता मांडूक्योपनिषत्सहित गौडपादीयकारिकाभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ६ ॥

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

॥ श्री ॥

यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् ॥ ७ ॥

भाष्यकारकृत मंगलाचरणम् ॥

ॐ यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव विलीयते।
येनेदं धार्य्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥ १ ॥

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्य भाषादीपिका॥७॥

अथ शिक्षाध्यायरूप प्रथमवल्ली भाष्य भाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अनेकविध शिक्षाका कथन.

भाष्यकारकृत मंगलाचरण.

टीकाः—यजुर्वेदकी शाखाके भेदरूप तैत्तिरीय[1] उपनिषद्का

---

१ वेदव्यासजीके शिष्य वैशंपायन ऋषिके पास याज्ञवल्क्यऋषि आदिक विद्यार्थी, ब्रह्मचर्य धारण करिके यजुर्वेद पढतेथे; तहां कोई निमित्तसैं वैशंपायन ऋषिकूं ब्रह्महत्या प्राप्त भई। ताके निवारणअर्थ सो ऋषि याज्ञवल्क्यसैं भिन्न अल्पवयवाले विद्यार्थिनके तांई नियमाचरणका उपदेश करता भया। तब उत्तम अधिकारी औ परिपक्व वयवाले याज्ञवल्क्य मुनिनैं प्रार्थना करी किः—हे गुरो! यह कठिन प्रकारका नियमका आचरण इन बालकनसैं होना अशक्य है, औ मैं परिपक्व वयवाला हूं, अरु शरीरविषै दृढ हूं, यातैं अकेलाहीं मैं आपकी ब्रह्महत्या दूरी करनेकूं समर्थ हूं; तातैं आप सारे नियम आचरणकी मेरेकूंहीं आज्ञा करो। यह सुनिके ब्रह्महत्याके संबंधतैं जाकी बुद्धि विपरीत भई है, ऐसा जो वैशंपायन ऋषि, सो कहता भयाः—हे याज्ञवल्क्य! तूं जातैं अत्यंत गर्विष्ठ हैं, औ इन ब्राह्मणोके बालकनका तिरस्कार करता भया हैं; यातैं मेरेतैं पठन करी वेदविद्याकूं

व्याख्यान करनेकूं इच्छते हुये भगवान् भाष्यकार, तिस तैत्तिरीय उपनिषद्विषै प्रतिपादन करने योग्य जो ब्रह्म; सो जगत्के जन्म आदिकके कारणपनैरूप तटस्थलक्षणसैं मंदबुद्धिवाले पुरुषनके प्रति सामान्यभावकरि लखायाहै, औ सत्य ज्ञान आदिरूप स्वरूपलक्षणसैं विशेषकरि निश्चय किया है; ता ब्रह्मकूं नमस्कारके मिषकरि संक्षेपतैं दिखावै हैं:–जिसतैं सर्व जगत् जन्म्याहै, औ जिसें-

---

त्याग कर, नहीं तो झटिति मरणका हेतु शाप देऊंगा। तब याज्ञवल्क्य ऋषि, शापके भयतैं तिस अध्ययन करी वेदविद्याकूं गजक्रियाकीन्याईं योगके बलसैं वमन करिके त्यागता भया। ता विद्याकूं अन्य केईक ब्राह्मणोके बालक गुरुकी आज्ञासैं तित्तर नामक पक्षीका स्वरूप धारिके ता विद्याकूं ग्रहण करते भये, यातैं ता विद्याका नाम तैत्तिरीय भया है।-औ ताके ग्राहक वे ब्राह्मण तैत्तिरीय शाखावाले कहियेहैं। तिस शाखाकी उपनिषद् बी तैत्तिरीय कहियेहै।

२ जो लक्षण कदाचित् हुया व्यावर्तक होवै, सो तटस्थ लक्षण कहियेहै। जैसैं देवदत्तके ग्रहविषै कदाचित् स्थित हुया औ देवदत्तके ग्रहका व्यावर्तक (अन्य ग्रहनतैं भिन्न करिके जनावनेवाला) काकपक्षी है, सो देवदत्तके ग्रहका तटस्थ लक्षण है। तैसैं जगत्के जन्मादिकका कारणपना जो है, सो कदाचित् (अज्ञानदशाविषै) हुया ब्रह्मका व्यावर्तक है, यातैं सो ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है।

३ जो लक्षण सर्वदा वर्त्तमान हुया व्यावर्तक होवै, सो स्वरूप लक्षण कहियेहै। जैसैं सर्वदा वर्त्तमान हुया देवदत्तके ग्रहका व्यावर्तक धवलपना (श्वेतरंग) है, सो देवदत्तके ग्रहका स्वरूप लक्षण है। तैसैं सत्य ज्ञानादिरूपपना जो है, सो ब्रह्मविषै सर्वदा वर्त्तमान हुया व्यावर्तक है; यातैं सो ब्रह्मका स्वरूप लक्षण है।

४ निमित्त औ उपादान कारणविषै पंचमी विभक्तिकूं साधारण होनेतैं, इहां दोनूं प्रकारका बी कारणपना कहनेकूं इच्छित है।

५ कार्यके विलयकूं उपादान कारणविषैहीं नियमित होनेतैं विशेषकरि ब्रह्मके उपादानपनैकूं कहैहैं।

यैरिमे गुरुभिः पूर्वं पदवाक्यप्रमाणतः । व्याख्याताः सर्ववेदान्तास्तान् नित्यं प्रणमाम्यहम् २

तैत्तिरीयकसारस्य मयाऽऽचार्य्यप्रसादतः। विस्पष्टार्थरुचीनां हि व्याख्येयं सम्प्रणीयते ॥ ३ ॥

विषैहीं लीन होवै है औ जिसँकरि यह जगत् धारण करिये है; तिस ज्ञानस्वरूप ब्रह्मके ताईं नमस्कार होहू ॥ १ ॥

टीका:—अब गुरुभक्तिकूं विद्याकी प्राप्तिविषै अंतरंग साधनता है, ताकूं प्रसिद्ध करनेकूं गुरुनके प्रति प्रणाम करैहैं:—जिन गुरुनकरि पूर्व, पद (व्याकरण)वाक्य(मीमांसा) औ अनुमानादिरूप प्रमाण(न्याय)—के विवेचन—तैं ये सर्व वेदांत व्याख्यान किये हैं; तिन गुरुन—के ताईं मैं नित्य प्रणाम करू हूं ॥ २ ॥

टीका:—अब करनेकूं इच्छित ग्रंथका कथन करैहैं:—विशेषँकरि स्पष्ट अर्थकी रुचिवाले पुरुषन—के उपकारअर्थ मेरेकरि आचार्यके प्रसादतैं तैत्तिरीय उपनिषद्—के सारका व्याख्यान सम्यक् करीता है ॥ ३ ॥

---

६ साधारण कार्यके निमित्त धर्म आदिकविषै बी प्रसिद्ध होनेतै साधारण कारणपनैकूं कहैहैं ।

७ शास्त्रके बोधवाले पुरुषकूं पदनतैंहीं पदार्थकी स्मृतिके संभवतैं, औ पदनकरि स्मरण किये पदार्थनके संबंधकूंहीं वाक्यार्थरूप होनेतैं, औ सूत्रकारकरि उपनिषदनके तात्पर्यकूं निरूपण किया होनेतैं, भिन्न व्याख्यानका आरंभ व्यर्थ है; यह आशंकाकरिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—मंदबुद्धिवाले पुरुषनकूं आपहीतैं सर्व पदार्थनकी स्मृतिके असंभवतैं, उपनिषद्गत सर्व पदार्थनके विशेषकरि निःसंशय ज्ञानकूं जे चाहतेहैं, तिनके उपकारअर्थ भिन्न व्याख्यानका आरंभ है ।

॥ तैत्तिरीयोपनिषदारम्भः ॥

अथ शिक्षाध्यायरूप प्रथमवल्ली ॥ १ ॥

हरिः ॥ ॐ ॥ शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्य्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

टीकाः—⁸यजुर्वेदविषै या तैत्तिरीय उपनिषद्तैं पूर्वग्रंथविषै संचित् पापके क्षय अर्थ नित्यरूप औ फलार्थी पुरुषनके काम्यरूप कर्म समाप्त कियेहैं; ⁹अब या तैत्तिरीय उपनिषद्विषै कर्म अनुष्ठानके हेतुकी निवृत्तिअर्थ ब्रह्मविद्याका आरंभ करियेहै । कर्मकौं¹⁰ हेतु काम

---

८ कर्मके विचारसैंहीं उपनिषदकूं प्राप्त अर्थवाली होनेतैं, औ उपनिषद्के प्रयोजन मोक्षके कर्मकरिहीं संभवतैं या उपनिषद्की भिन्न व्याख्याका आरंभ युक्त नहींहै, या आशंकाके दूरी करनेकूं इहां कर्मकांडके अर्थकूं कहैहैं ।

९ कर्मकांडके अर्थकूं कहिके, तहां अविचार किये उपनिषद्के अर्थकूं कहैहैं ।

१० कर्मके अनुष्ठानका हेतु नियोग (नियम) है, ताकूं प्रमाणकरि सिद्ध होनेतैं विद्यासैं विरोध नहीं है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं । इहां यह अभिप्राय हैः—याका यह साधन है, ऐसैं प्रथम शास्त्रकरि बोधन करियेहै, । जाकी जहां अभिलाषा है, सो तहां कामनातैं प्रवृत्त होवैहै, यातैं नियोगकूं प्रवृत्ति करावनेकी संभावना बी नहीं है ।

होवैहै, पुरुषका प्रवर्तक होनेतैं । पूर्णकाम पुरुषनकूं कामके अभाव हुये अपने आत्माविषै स्थितितैं, कर्मविषै प्रवृत्तिका असंभव है । [11] आत्माकी कामनाके हुवे पूर्ण कामना होवैहै । [12] आत्माहीं ब्रह्म है, ताके वेत्ताकूं परब्रह्मकी प्राप्ति आगे कहियेगी । यातैं अविद्याकी निवृत्तिके हुये अपने आत्माविषै स्थितिरूप परब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै; काहेतैं "शंकाकूं दूरी करिके इस आनंदमय अभय प्रतिष्ठा (आश्रय)रूप आत्माकूं पावताहै" इस श्रुतितैं ॥ जो [13] कहै, काम्य औ

---

११ वांच्छित विषयकी प्राप्तिके कामकी निवृत्तिविषै हेतु विद्या नहीं है, यातैं कर्मके हेतुकी निवृत्तिअर्थ विद्याका आरंभ कैसैं करते हो ? यह आशंकाकरिके कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—वांच्छित विषयकी प्राप्तिसैं कामकी तिसकालविषै शांतिमात्र होवै है, परंतु नाश नहीं होवै है; काहेतैं फेर विषयकी आकांक्षा आदिकके देखनेतैं । औ निरंकुश "अरु आत्माहीं वस्तु है, तातैं अन्य नहीं है;" इसरूपवाली आत्माकी कामना बी आत्मकामपनैके हुये होवै है; काहेतैं, वांच्छित वस्तुकी इच्छाके अभावतैं । जातैं आत्माके अद्वैत आनंदरूपकूं न जाननेवालाहीं पुरुष भिन्न विषयकूं देखताहुया कामना करताहै, तातैं कामकूं आत्माकी अविद्यारूप मूलवाला होनेतैं, आत्मविद्याहीं ताकी निवृत्तिका हेतु है ।

१२ आत्मविद्या कामकी विरोधिनी होहू, परंतु कर्मके हेतुकी निवृत्ति अर्थ ब्रह्मविद्याका आरंभ करियेहै; ऐसैं तुमनैं काहेकूं कहा ? तहां कहैहैं । इहां यह सिद्ध भयाः—आनंदमयरूप परमात्माकूं लेके यह श्रुति कहीहै । ऐसैं प्रथम कर्मकांडकरि अप्राप्त अर्थवाली होनेतैं, औ कर्मनतैं अघटित मोक्षरूप प्रयोजनवाली होनेतैं, उपनिषद्के व्याख्याका आरंभ घटित है ।

१३ फेर आरंभवादीके अभिप्रायकूं कथन करैहैं । इहां यह अर्थ है:—आत्यंतिक आगामी शरीरकी अनुत्पत्तिके हुये स्वरूपसैं स्थितिका नाम मोक्ष है । औ शरीरकी अनुत्पत्ति जो है, सो हेतुके अभावतैंहीं होवैगी, ज्ञानके अर्थ उपनिषद्के आरंभसैं क्या प्रयोजन है ?

निषिद्ध कर्मके अनारंभतैं, औ प्रारब्ध कर्मके भोगकरि क्षयतैं, औ नित्य कर्मके अनुष्ठानकरि पापके अभावतैं, अप्रयत्नकरिहीं स्व-स्वरूपसैं स्थितिरूप मोक्ष होवैहै; अथवा स्वर्गशब्दकी वाच्य नि-रतिशय प्रीतिकूं कर्मरूप हेतुवाली होनेतैं कर्मतैंहीं मोक्ष होवैहै? सो कथन बनै नहीं:[१५]—काहेतैं, कर्मकूं अनेकरूप होनेतैं। जातैं फ-लके आरंभक औ अनेक जन्मांतरविषै किये विरुद्ध[१६] फलवाले अ-नेक कर्म संभवैहैं, यातैं तिन कर्मनविषै फलके आरंभसैं रहित कर्मनके एक जन्मविषै उपभोगसैं क्षयके असंभवतैं, शेष कर्मरूप निमित्तसैं शरीरके आरंभका संभव औ शेषकर्मके सद्भावकी सिद्धि होवैहै। काहेतैं, "जो इहां रमणीय (शुभ) आचरणवाले हैं, वे रमणीय योनिकूं पावते हैं" औ "तिसतैं पीछे कर्म शेषकरि [मर-

१४ अन्य मतकूं कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—जो स्वर्गका साधन ज्यो-तिष्टोमादिक कर्म है, सोई मोक्षका साधन है; काहेतैं, स्वर्गपदके अर्थरूप निरतिशय प्रीतिके मोक्षतैं अन्य ठिकानैं असंभवतैं, शरीरके होते क्लेशके अवश्य होनेतैं।

१५ अब एकभविकवादीके पक्षरूप प्रथम मतकूं निषेध करै हैं। इहां यह अर्थ है:—यद्यपि मुमुक्षु, वर्तमान देहविषै काम्य औ निषिद्ध कर्मकूं नहीं आरंभ करैगा, तथापि अनेकप्रकारके संचित कर्मके संभवतैं, उत्पत्तिके हेतुका अभाव असिद्ध है।

१६ बहुतकरि सर्वहीं संचित कर्म मिलिके एक शरीरकूं आरंभ करैहैं, तहां सर्व कर्मनकूं उपभोगसैं क्षय किये होनेतैं संचितकर्महीं नहीं है; इस शंकाके निवारण अर्थ, इहां "विरुद्ध फलवाले" ऐसैं कहा है। इहां यह अर्थ है:—स्वर्ग नरकरूप फलवाले ज्योतिष्टोम औ ब्रह्महत्या आदिक कर्मनके एकहीं देहविषै भोगकरि क्षयके असंभवतैं, औ बहुतकरि इस जीवकूं एक शरीरमैं सर्व कर्म फलके अनुभवविषै प्रमाणके अभावतैं, बलवान् कर्मकरि प्रतिबंधकूं प्राप्त भये दुर्बल कर्मकी स्थिति संभवैहै।

णकूं पायके अपने कर्मका अनुभव करिके पीछे कर्मशेषतैं जन्मकूं पावताहै]" इत्यादि सैकडो स्मृतिनतैं ॥ जो कहै, इष्ट अनिष्ट फलवाले औ फलके आरंभसैं रहित कर्मनके क्षयअर्थ नित्यकर्म है? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं, ताके न करनेविषै पापके श्रवणतैं। पापशब्द जो है सो अनिष्टका वाची है। नित्य कर्मके न करनेरूप निमित्तवाले दुःखरूप आगामी पापके निवारणअर्थ नित्यकर्म हैं, परंतु फलके आरंभसैं रहित कर्मके क्षयअर्थ नहीं; ऐसैं अंगीकारतैं ॥ यद्यपि फलके आरंभसैं रहित कर्मके क्षयअर्थ नित्यकर्म मानिये, तथापि वे अशुभकर्मकूंहीं क्षय करेंगे शुभकूं नहीं; विरोधके अभावतैं। इष्ट फलवाले कर्मकूं शुभरूप होनेतैं ताका नित्य कर्मनसैं विरोध नहीं संभवैहै, शुभ औ अशुभकाहीं विरोध युक्त है; औ कर्मरूप हेतुवाले भोगनकी ज्ञानके अभाव हुये निवृत्तिके असंभवतैं सर्व कर्मके क्षयका संभव नहीं है। जातैं अनात्मवेत्ता पुरुषकूंहीं काम है, अनात्मारूप फलकूं विषय करनेवाला होनेतैं। औ अपनै आत्माविषै कामका असंभव है, आत्माकूं नित्य प्राप्त होनेतैं; यातैं आप आत्मा परब्रह्म है ऐसैं कहा। औ नित्य कर्मनका जो न करना सो अभावरूप है, ता अभावतैं भावरूप पापका असंभव है। [१७]यातैं पूर्व संचित पापनतैं प्राप्त होनेवाली पाप-

---

१७ "विहित कर्मकूं न करताहुया, औ निंदित कर्मकूं आचरता हुया, औ इंद्रियनके विषयनविषै आसक्त हुया मनुष्य पतनकूं पावता है;" ऐसैं पावता है इस क्रियापदविषै स्थित शत्रप्रत्ययतैं कर्मके न करनेकूं बी पापका निमित्तपना जान्या है? यह आशंकाकरिके कहै हैं। इहां यह अर्थ है:— जब यथावत् नित्य औ नैमित्तिक कर्मका अनुष्ठान होता तो. तब संचित कर्मका क्षय होता, औ यह पुरुष विहित कर्मकूं न करता भया यातैं पाप होवैगा; ऐसैं शिष्ट पुरुषनकरि लखियेहै। तातैं शत्रप्रत्ययकूं, अन्यथा अर्थवाला होनेतैं, ताके बलतैं कर्मके न करनेविषै पापकी हेतुता जाननेकूं शक्य होवै नहीं।

रूप क्रियाका नित्यकर्मका न करना लक्षण है, ऐसैं " विहित कर्मकूं न करता हुया " इस वाक्यविषै उक्त शत्रप्रत्ययका असंभव नहीं है। [१८] अन्यथा अभावतैं भावकी उत्पत्तिके कथनतैं सर्व प्रमाणोंका विरोध होवैगा। [१९] यातैं अप्रयत्नतैं अपनैं आत्माविषै स्थिति-

---

१८ " क्रियाके लक्षण औ हेतुविषै " ऐसैं शत्रप्रत्ययके दोनूं ठिकाने विधानके हुये तिनमैं क्रियाकी हेतुताकूंहीं तुम क्यूं नहीं ग्रहण करतेहो ? तहां कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—अभावरूप कार्यका भावरूपहीं कारण है, ऐसैं प्रत्यक्षादिक प्रमाणनसैं जान्या है। औ शत्रप्रत्ययतैं अभावकूं हेतुभावके कथन हुये सर्व प्रमाणोका विरोध होवैगा।

१९ ननु, तुमकूं बी शुभ कर्मके न करनेकूं पापका लक्षणपना इष्ट है, औ भट्टके अनुसारिनकरि अप्रतीतिकूं अभावप्रमाका हेतुपना अंगीकार करियेहै। नैयायिकनकरि प्रतिबंधकके अभावकूं औ तिस तिस कार्यके प्रागभावकूं तिस तिस कार्यकी स्थितिकी हेतुता अंगीकार करियेहै, तातैं भावरूप वस्तुकूंहीं कारणपना कैसैं है। सो अन्य शास्त्रविषै कहा है " जैसैं भाव है, तैसैं अभाव बी कार्यकी न्याई कारण मान्या है ? " तहां कहियेहै:—हम वेदांतिनकूं प्रथम अभावकी स्वरूपसैं कारणता इष्ट नहीं, किंतु ताके भानकूं पापकी सूचकता इष्ट है; औ तिसरूपकरि पापकी जनकता नहीं अंगीकार करियेहै; काहेतैं, नित्य कर्मके न करनेके ज्ञानविषै पापपनैके अप्रसंगतैं। औ भट्टके अनुसारिनकूं बी केईक पुरुषनकूं ज्ञात हुयी योग्य अप्रतीतिकूं अभावप्रमाकी हेतुता है, परंतु ध्वंसरूप होनेकरि प्रमाकी हेतुताके हुये अभावप्रमाकूं प्रत्यक्षपनैकी प्राप्ति होवैगी। औ नैयायिकनकूं बी प्रतिबंधकके अभावकूं कारणताके हुये अन्योन्याश्रयरूप दोषकी प्राप्तितैं प्रामाणिकपना नहीं है। प्रागभावकूं बी जातैं यह कार्य पूर्व नहींथा, तातैं अबी उपज्या है; ऐसैं ज्ञातरूपसैं जन्य वस्तुका ज्ञापकपनाहीं है, परंतु प्रागभावकूं जनकपना नहीं है। औ पूर्व कालकूं नियमित प्रागभाववाला होने-

रूप मोक्ष बनै नहीं ॥ औ जो कंहा, स्वर्गशब्दकी वाच्य निरतिशय प्रीतिकूं कर्मरूप निमित्तवाली होनेतैं कर्मसैं आरंभ कियाहीं मोक्ष है? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं, मोक्षकूं नित्य होनेतैं । जातैं कछुबी नित्य वस्तु आरंभ नहीं करियेहै; लोकविषै जो आरंभ किया वस्तु है सो अनित्य है; यातैं कर्मसैं आरंभ किया मोक्ष नहीं है । जो कहै, विद्यासहित कर्मनकूं नित्य वस्तुके आरंभ करनेका सामर्थ्य है? सो बनै नहीं:— काहेतैं, विरोधतैं । नित्य है औ आरंभ करियेहै, यह कहना विरुद्ध है । जो कहै, जो वस्तु विनाशकूं पायाहै, सोई उत्पन्न होवै नहीं; यातैं प्रध्वंसाभावकी न्याईं नित्य हुया बी मोक्ष आरंभ करियेहीं है? सो बनै नहीं:— काहेतैं, मोक्षकूं भावरूप होनेतैं । [२१]अभावकी विलक्षणताके अभावतैं प्रध्वंसाभाव बी आरंभ करियेहै; यह कथन, कल्पना-

---

करि जो कारणपना है, सो अपनेविषै कार्यके वर्तमानपनैकी प्राप्तिरूप है, औ ताकूं प्राग्भावकरि युक्तपना बी अन्यथा सिद्ध है; ऐसैं तत्वालोकनामक ग्रंथविषै कहाहै । जातैं कर्मके न करनेरूप निमित्तवाले पापके निवारण अर्थ नित्यकर्म नहींहै, किंतु "कर्मसैं पितृलोक होवैहै," सर्व ये पुण्यरूपलोकवाले होवैहैं" इस श्रुतितैं नित्यकर्मका पितृलोककी प्राप्ति फल है, तातैं उक्त आचरणवाले मुमुक्षुकूं शरीरकी अनुत्पत्ति नहीं होवैहै, ऐसैं कहैहैं ।

२० अब दूसरे मतका अनुवाद करिके दूषण देतेहैं ।

२१ वास्तवतैं तो प्रध्वंसकूं कार्यपना बी नहीं है, ऐसैं कहै हैं । इहां यह भाव है:—प्रध्वंसकूं प्रथम, जन्मका आश्रयपना है कार्यपना नहींहै; काहेतैं, ताकूं जन्यरूप कहेहुये भावविकारवान्पनैके अंगीकारतैं, औ पूर्व अविद्यमान वस्तुका सत्ता समवाय आदिरूप धर्म नहीं होवैहै; काहेतैं, ताके अंगीकारतैं; औ ताकूं उत्तरकालसैं योग बी नहीं होवैहै; काहेतैं, कालसैं संबंधके अभावतैं; औ अवच्छेद अरु अवच्छेदक भावरूप संबंधकूं समवायसंबंधरूप मूलवाला होनेतैं; औ अन्य संबंधरूप मूलकरि युक्तताके अदर्शनतैं।जो कहै,उत्तरकालका प्रध्वंसकी अवच्छेदकतारूप स्वभावहै,तो अ-

मात्र है । जातैं अभाव जो है, सो भावरूप प्रतियोगीवाला है; जैसैं अभिन्न (एकरूप) हुयाबी भाव, घट पट आदिककरि भेदकूं पावताहै; परंतु घटका भाव औ पटका भाव अभिन्नहीं है । ऐसैं अभिन्न (एकरूप) हुयाबी अभाव, भाव अभाव (उत्पत्तिनाश)रूप क्रिया औ गुणके योगतैं द्रव्य आदिककी न्याई भेदकूं पावताहै । अभाव जो है सो कमल आदिककी न्याई विशेषणवाला नहीं है, विशेषणवान्ताके हुये सो भावरूपहीं होवैगा ॥ तातैं प्रतियोगीके भेदतैं अभावका भेद है, यह कल्पनामात्र है ॥ जो [22]कहै, विद्या औ कर्मके कर्ताकूं नित्य होनेतैं, विद्या औ कर्मरूप साधनके प्रवाहसैं जनित मोक्षकी नित्यता है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, ऐसैं मानेहुये गंगाके प्रवाहकी न्याई कर्तापनैकूं दुःखरूप होनेतैं औ कर्तापनैकी निवृत्तिके हुये मोक्षके भंगतैं । जातैं ब्रह्मज्ञानविना मोक्ष दुर्लभ है, तातैं अविद्या काम औ कर्मके अनुष्ठानके हेतुकी निवृत्तिके हुये अपने आत्माविषै स्थितिरूप मोक्ष होवैहै । जातैं आपहीं आत्मा ब्रह्म है, ताके विज्ञानतैं अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवैहै; यातैं ब्रह्मविद्याके अर्थ उपनिषद्का आरंभ करियेहै । [23]ब्रह्मविद्या जो है,

---

न्यकी अवच्छेदकतारूप स्वभाव नहीं होवैगा । तातैं अभावकूं निर्विशेष (एकरस)रूप होनेतैं ताका कार्यपना कल्पनामात्र है ।

२२ ऐसैं प्रध्वंसके दृष्टांतसैं शंकाके विषय किये मोक्षके नित्यपनैकूं निषेध करिके, अन्यप्रकारसैं जो आशंका है, ताका निषेध करैहैं । इहां यह अर्थ है:—विद्या औ कर्मका कर्ता नित्य है, ऐसैं साधनकी नित्यतातैं मोक्षरूप साध्यकी नित्यता कहनेकूं योग्य नहीं है; काहेतैं, कर्तापनैकी अनिवृत्तिके हुये मोक्षके अभावके प्रसंगतैं, औ कर्तापनैकी निवृत्तिके हुये साधनकी नित्यताके अभावतैं, मोक्षका विनाश होवैगा ।

२३ ब्रह्मविद्याविषै उपनिषद् शब्दकी प्रसिद्धि जो है, सो बी विद्याकीहीं मोक्षकी साधनताविषै प्रमाण है, ऐसैं कहै हैं ।

सो जातैं तिसविषै तत्पर मुमुक्षुनके गर्भ जन्म औ जरा आदिककूं शिथिल करैहै; वा तिन गर्भआदिकनकूं विनाश करतीहै; वा ब्रह्मकूं प्राप्त करनेवाली है; वा इसतैं अन्य साधनसैं परम श्रेय नहीं होवैहै; यातैं ब्रह्मविद्या उपनिषद् कहियेहै। औ तिस ब्रह्मविद्यारूप अर्थवाला होनेतैं यह ग्रंथ बी उपनिषद् कहियेहै। ऐसैं उपनिषद्के व्याख्यानके आरंभकी संभावनाकरिके, अब ताके पदपदके व्याख्यानका आरंभ करैहैं:—प्राणवृत्तिका औ दिवसका अभिमानी देवतारूप जो **मित्र** (सूर्य), **सो हमकूं सुखकारी होहू**। तैसैंहीं अपानवृत्तिका औ रात्रिका अभिमानी देवतारूप जो **वरुण, सो हमकूं सुखकारी होहू**। चक्षुविषै वा सूर्यविषै अभिमानी जो **अर्यमा, सो हमकूं सुखकारी होहू**। बलविषै अभिमानी जो **इंद्र**, औ वाणी अरु बुद्धिविषै अभिमानी जो **बृहस्पति, सो हमकूं सुखकारी होहू**। **उरुक्रम** (बलिराजासैं तीनपादनकी याचनासैं सर्व राज्यके ग्रहण अर्थ विश्वरूप धारिके विस्तीर्ण पादके क्रमवाला औ पादनका अभिमानी) वे **विष्णु, सो हमकूं सुखकारी होहू**। इत्यादिक अध्यात्मरूप देवता जे हैं; वे हमकूं सुखकारी होहू; ऐसैं सर्व ठिकाने अनुषंग (पीछले पदका संबंध) है। जातैं[२४] तिन देवताके सुखकारी हुये अप्रतिबंधसैं विद्या श्रवण धारण औ उपयोग होवैहैं, यातैं "हमकूं सुखकारी होहू" ऐसैं तिन पंचदेवताके सुखकारीपनैकी प्रार्थना करियेहै॥ अब ब्रह्मविद्याके जाननेकी इच्छावाले मुमुक्षुकरि ब्रह्मविद्याके विघ्नोकी निवृत्तिअर्थ वायुकूं विषयकरनेवाली नमस्कार औ **वदन** (कथन)रूप क्रिया करियेहै। काहेतैं,

---

२४ अध्यात्मरूप प्राण औ करणके अभिमानी देवताका सुखकारीपना क्यूं प्रार्थना करियेहै? तहां कहैहैं॥ गुरुपादके समीप गमनपूर्वक वेदांतनके तात्पर्यका निश्चय, श्रवण कहियेहै। श्रवण किये अर्थका बी अविस्मरण, धारण कहियेहै। शिष्यनके तांई निवेदन करना, उपयोग कहियेहै।

सर्व क्रियाके फलकूं ताके अधीन होनेतै । ब्रह्म-रूप जो वायु है, ता-के तांई मैं नमस्कार करूहूं । हे वायो ! तेरे तांई मैं नमस्कार करूहूं । इहाँ[25] परोक्ष औ प्रत्यक्षकरि वायुहीं कहियेहै । किंवाः[26]— जातैं तूंहीं चक्षु आदिककी अपेक्षाकरिके बाह्य, समीप औ अंतरा-यसैं रहित प्रत्यक्ष ब्रह्म है, यातैं मैं[27] तेरेकूंहीं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहूं । औ जैसैं शास्त्रविषै कहाहै, अरु जैसैं करनेकूं योग्य है, ऐसा बुद्धिविषै सम्यक् निश्चय किया जो अर्थ सो ऋत कहियेहैः—सो बी तेरे अधीन है, यातैं तेरेकूंहीं ऋत कहताहूं । औ वाणी अरु शरीरकरि संपादन हुवा जो सत्य है, सोबी तेरे अधीनहीं संपादन करियेहै, यातैं तेरेकूंहीं सत्य कहताहूं । सो सर्वात्मा वायुनाम-वाला ब्रह्म मेरेकरिहीं स्तुतिकूं प्राप्त हुया, मुज विद्याके अर्थी-कूं

---

२५ ब्रह्म अन्य है, वायु अन्य है, यह शंका करनेकूं योग्य नहीं; ऐसैं कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः—ब्रह्म ऐसैं परोक्षसैं कहाहै "सो ब्रह्म है, ऐसैं कहते हैं" इस श्रुतितैं; औ वायुशब्दसैं प्रत्यक्षपनैकरि कथन है, प्राणकूं प्रत्यक्ष होनेतैं ।

२६ यद्यपि सूत्रात्मारूपसैं वायु परोक्ष है, तथापि अध्यात्मिक प्राणवा-युरूपसैं ब्रह्मशब्दके वाच्य हुये बी वायुका अपरोक्षपना है, ऐसैं कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः—बाहिरका चक्षुआदिक जो है, सो रूपके दर्शन आदिक लिंगसैं अनुमान करनेयोग्य होनेतैं अंतराय सहित है; औ प्राण तो अंत-रायके अभावसैं साक्षीकरि वेद्य है, औ भोक्ताके समीप है, यातैं चक्षुआ-दिककी अपेक्षासैं प्रत्यक्ष है ।

२७ इहां यह अर्थ हैः—वृद्धि करनेतैं वायु ब्रह्म कहियेहै । प्राणके किये श्वास आदिकसैं वा भोजनआदिकसैं शरीर आदिककी वृद्धि प्रसिद्ध है । जैसैं कोईक राजाके दर्शनकी इच्छावाला पुरुष, राजाके द्वारपालकूं, तूंहीं राजा हैं, ऐसैं कहताहै; तैसैं हृदयगत ब्रह्मके दर्शनकी इच्छावाला मुमुक्षु, हृदयगत ब्रह्मके द्वारपालकूं "तुजकूंहीं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहता हूं" ऐसैं कहता है; ऐसैं ब्रह्मका कथनरूप जो क्रिया है, सो प्राणदेवताकी स्तुति अर्थ है ।

ॐ शीक्षां व्याख्यास्यामः । वर्णः । स्वरः । मात्रा । बलम् । साम । सन्तानः । इत्युक्तः शीक्षाध्यायः ॥ शिक्षां पञ्च ॥ १ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

विद्यासैं जोडनेकरि **रक्षण करहू** । **सोई ब्रह्म, वक्ता** (आचार्य)-कूं वक्तापनैके सामर्थ्यसैं जोडनेकरि **रक्षण करहू** । **मुजकूं रक्षण करहू** । **वक्ताकूं रक्षण करहू** । इहां फेरी जो कथन है, सो आदरके अर्थ है । [**सत्य कहताहूं औ पांच**] **ॐ** (सत्यहीं कहताहूं) **शांति होहू, शांति होहू, शांति होहू** । इहां तीनवार जो कथन है, सो अध्यात्मिक अधिभौतिक औ आधिदैविकरूप जे विद्याकी प्राप्तिविषै विघ्न हैं, तिनकी निवृत्ति अर्थ है ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

टीकाः—अब अर्थके ज्ञानकूं प्रधान होनेतैं उपनिषद्के ग्रंथके पाठविषै स्वर उष्म औ व्यंजनरूप अक्षरनके प्रमादके प्रयत्नकी निवृत्ति मति होहू, या अभिप्रायसैं शिक्षाध्यायका आरंभ करियेहैः—जिसकरि शिक्षा करियेहै, ऐसा जो वर्ण आदिकके उच्चारणका लक्षण (शास्त्र) सो शिक्षा कहियेहै । वा जो शिक्षाकूं प्राप्त करियेहैं, ऐसे वर्ण आदिक, वे शिक्षा कहियेहैं । जो शिक्षा है सोई वेदविषै शीक्षा ऐसैं कहियेहै । ता **शिक्षाकूं स्पष्ट** जैसैं होवै तैसैं सर्व ओरतैं **कथन करैहैं** । तहां अकार आदिक **वर्ण**, औ उदात्त (उच्च) आदिक **स्वर**, औ ह्रस्व आदिक **मात्रा**, औ प्रयत्न विशेषरूप **बल**, औ वर्णोंका मध्यमवृत्तिसैं उच्चारणरूप **साम** (समता,) औ संतति (संहिता)रूप, **संतान**, यहहीं शीखनेयोग्य अर्थरूप शिक्षा, जिस अध्यायविषै है, **ऐसा शिक्षाध्याय** है, ऐसैं आगे **कहाहै** । यामैं **पांच** प्रकारकी **शिक्षाकूं** कहैंगे ॥ १ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

सह नौ यशः । सह नौ ब्रह्मवर्चसम् ॥ अथातः सꣳहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः ॥ पञ्चस्वधिकरणेषु । अधिलोकमधिज्योतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम् । ता महासꣳहिता इत्याचक्षते ॥ अथाधिलोकम् । पृथिवी पूर्वरूपम् । द्यौरुत्तररूपम् । आकाशः सन्धिः ॥ १ ॥

टीकाः—अब वर्णोके संबंधरूप संहिताकी उपनिषद् (उपासना) कहियेहैः—तहां संहिता आदिककी उपनिषद् (उपासना)के ज्ञानरूप निमित्तवाला जो यश प्रार्थना करियेहै, सो यश, हम (शिष्य औ आचार्य दोनूं)कूं साथिहीं होहू औ ता यशरूप निमित्तवाला जो ब्रह्मवर्चस (तेज) है, सो हम (शिष्य औ आचार्य दोनूं)कूं साथिहीं होहू । इहां प्रार्थनारूप शिष्यका वचन है । जातैं शिष्यकूंहीं अकृतार्थ होनेतैं प्रार्थना संभवैहै, औ जातैं आचार्य जो है सो प्रसिद्ध कृतार्थ होवैहै; यातैं आचार्यकूं कृतार्थ होनेतैं प्रार्थना संभवै नहीं । अब जातैं पूर्व व्यतीत भये अध्ययनरूप विधानकी अत्यंत ग्रंथसैं निश्चित भई जो बुद्धि, सो तत्काल अर्थके ज्ञानविषै प्रवर्त करनेकूं शक्य नहींहै, यातैं अपनी शाखाकी संहितारूप ग्रंथके समीपवर्त्ती वर्णोके संबंधरूप संहिताकी उपासनाकूं कहैहैं । पांचे[२८] आश्रय (ज्ञानके विषय)नविषै जो अधिलोक[२९], अधिज्योतिष, अधि-

---

२८ इहां "पांचविषै," ऐसी जो सप्तमी है, सो तृतीयाके अर्थ करिकें पलटावनेकूं योग्य है । औ अधिकरण शब्द जो है सो विषयका पर्याय है । यातैं पांच पदार्थनकरि विशिष्ट जो ज्ञान है, सो अक्षरनविषै कहनेकूं योग्य है; जैसैं प्रतिमाविषै विष्णुका ज्ञान है तैसैं । यह अर्थ होवैहै ।

२९ लोकनकूं आश्रय करिके जो ध्यान करनेकी योग्यता है, सो अधिलोक कहियेहै । औ विद्याशब्दकरि विद्यासैं संबंधकूं पाया आचार्य आदिक कह-

वायुः सन्धानम् । इत्यधिलोकम् ॥ अथाधिज्योतिषम् । अग्निः पूर्वरूपम् । आदित्य उत्तररूपम् । आपः सन्धिः । वैद्युतः सन्धानम् । इत्यधिज्योतिषम् ॥ अथाधिविद्यम् । आचार्य्यः पूर्वरूपम् ॥ २ ॥

विद्य, अधिप्रज, औ अध्यात्मरूप उपासना हैं; तिन इन पांच विषयवाली उपासनाकूं, लोकआदिक महावस्तुकूं विषय करनेवाली होनेतैं; औ संहिताकूं विषय करनेवाली होनेतैं, वेदके वेत्ता, महासंहिता, ऐसैं कहतेहैं । अब जिसप्रकार कहनेकूं आरंभ करी है; तिस प्रकार तिन पांच प्रकारकी उपासनाके मध्य **अधिलोकरूप** उपासना कहियेहैः—इहां सर्व ठिकाने अथ (अब) शब्द जो है; सो उपासनाके क्रमके दिखावने अर्थ है । **पृथिवी** जो है सो **पूर्वरूप** (पूर्ववर्ण) है । इहां संहिताके पूर्ववर्णविषै पृथिवीकी दृष्टि-कर्तव्य है, ऐसैं कहा होवैहै । तैसैं **स्वर्गलोक-उत्तररूप** है, औ **आकाश** (अंतरिक्षलोक) **संधि है**, कहिये जिसविषै पूर्व औ उत्तररूप संधान (मिलाप) करियेहैं; ऐसा पूर्व औ उत्तररूपके मध्य रूप है ॥ १ ॥

टीकाः—वायु जो है सो संधान है । जिसकरि संधान (मिलाप) क-

नेकूं इच्छित है, तैसैंहीं प्रजाशब्दकरि प्रजासैं संबंधकूं पाया पिता आदिक कहनेकूं इच्छित है । औ अध्यात्मशब्दसैं भोक्ता आत्माकूं आश्रय करिके वर्तता है, ऐसा जो जिव्हा आदिक सो कहनेकूं इच्छित है । सर्व ठिकाने तिस तिसका अभिमानी देवताहीं ग्रहण करनेकूं योग्य है; काहेतैं, अन्य वस्तुकूं उपास्य होनेके असंभवतैं ।

३० कर्ताकूं एक होनेतैं, औ अनुष्ठान करनेयोग्य उपासनाकूं बहुरूप होनेतैं, अवश्य होनेवाले क्रमविषै विशेषके नियमअर्थ अथ शब्द है ।

अन्तेवास्युत्तररूपम् । विद्यासन्धिः प्रवचनꣳ सन्धानम् इत्यधिविद्यम् ॥ अथाधिप्रजम् । माता पूर्वरूपम् पितोत्तररूपम् । प्रजा सन्धिः । प्रजननꣳसन्धानम् इत्यधिप्रजम् ॥ ३ ॥

अथाध्यात्मम् ॥ अधरा हनुः पूर्वरूपम् । उत्तरा हनुरुत्तररूपम् । वाक् सन्धिः । जिह्वा सन्धानम् । इत्याध्यात्मम् ॥ इतीमा महासꣳहिताः । य एवमेता महासꣳहिता व्याख्याता वेद । सन्धीयते प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन ॥ सन्धिराचार्य्यः पूर्वरूपमित्यधिप्रजं लोकेन ॥ ४ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

रियेहै सो संधान कहियेहै । इसप्रकार अधिलोक-रूप उपासन कहा ॥ अब अधिज्योतिष-रूप उपासन कहियेहैः—अग्नि पूर्वरूप है, सूर्य उत्तररूप है, जल संधि है; बीजलियां संधान हैं । इसप्रकार अधिज्योतिष-रूप उपासन कहा ॥ अब अधिविद्य-रूप उपासन कहियेहैः—आचार्य पूर्वरूप है ॥ २ ॥

टीकाः—अंतेवासी (शिष्य) उत्तररूप है; विद्या संधि है; प्रवचन (प्रश्नोत्तररूप भाषण) संधान है । इसप्रकार अधिविद्य-रूप उपासन कहा ॥ अब अधिप्रज-रूप उपासन कहियेहैः—माता पूर्वरूप है, पिता उत्तररूप है, प्रजा संधि है; प्रजनन (ऋतुविषै भार्याका गमन) संधान है । इसप्रकार अधिप्रज-रूप उपासन कहा ॥ ३

टीकाः—अब अध्यात्म-रूप उपासन कहियेहैः—नीचेका हनु

(हनुवटी) पूर्वरूप है। ऊपरका हनु उत्तररूप है। वाक् संधि है। जिव्हा संधान है। इसप्रकार अध्यात्मरूप उपासना कहा ॥ इसरीतिसैं ये कथन करी महासंहिता, अधिकारीकूं विधिके दिखावनेअर्थ ग्रहण करियेहैं। जो[३१] पुरुष ऐसैं कथन करी इन महासंहिताकूं जानता है, सो प्रजाकरि, पशुनकरि, ब्रह्मवर्चस(तेज) करि, अन्नआदिककरि, औ स्वर्गलोककरि जुडताहै; कहिये प्रजा आदिक फलकूं पावताहै। [संधि आचार्य पूर्वरूप है। ऐसैं अधिप्रज, लोकसैं जुडताहै] इहां जानताहै, या पदका उपासना करताहै; यहहीं अर्थ होवैहै। काहेतैं, "हे प्राचीनयोग्य! उपासना कर" या ६ अनुवाकके द्वितीय वाक्यतैं उपासनाके अधिकारतैं। औ उपासना जो है सो शास्त्रके अनुसार तुल्य वृत्तिनके प्रवाहरूप अमिश्रित (अन्यविषयाकार वृत्तिसैं रहित) है, यातैं तदाकार वृत्तिनकरि शास्त्रउक्त आश्रयकूं विषयकरनेवाली उपासना कहियेहैं। लोकविषै गुरुकूं उपासताहै औ राजाकूं उपासताहै, ऐसैं उपासना शब्दका अर्थ प्रसिद्ध है। जातैं जो गुरु आदिकनकूं, निरंतर समीप वसताहै, सो उपासना करताहै; ऐसैं कहियेहै। औ सो उपासनाके

३१ जैसैं दर्श आदिक षट् याग, समुच्चयवाले हुये फलके साधन हैं, अधिकारके अंशकरि अभेदतैं; तैसैं उक्त पांच उपासना बी समुच्चयवालीहीं हुई प्रजा आदिक फलकी कामनावाले पुरुषकूं अनुष्ठान करनेकूं योग्य हैं, ऐसैं कहे हैं। इहां यह भाव है:—फलकी कामनावाले पुरुषकरि अनुष्ठान किया संहिताका उपासन वांच्छित फलके अर्थ होवैहै, औ फलकी इच्छासैं रहित पुरुषकरि अनुष्ठान किया हुया ब्रह्मविद्याके अर्थ होवैहै; बुद्धिरहित पुरुषकरि ब्रह्मके जाननेकूं अशक्य होनेतैं, बुद्धिकी कामनावाले पुरुषका जप बी ब्रह्मविद्याके अर्थ होवैहै। लक्ष्मीसैं रहित पुरुषकरि चित्तकी शुद्धिअर्थ याग आदिक अनुष्ठान करनेकूं शक्य नहीं है, यातैं लक्ष्मीकी कामनावाले पुरुषका किया होम बी ब्रह्मविद्याविषै उपयोगी है। ऐसैं ब्रह्मविद्याकी संनिधिविषै उपदेश किये साधनोंका महत् तात्पर्य है, सो सर्वत्र देख लेना।

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देवधारणो भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणम् । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः । श्रुतं मे गोपाय । आवहन्ती वितन्वाना ॥ १ ॥

फलकूं पावता है । यातैं इहां वी सो उपासनाशब्दका अर्थ औ तासैं उक्त फलकी प्राप्ति बनै है ॥ ४ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

टीकाः—"सो इंद्र मुजकूं बुद्धिसैं प्रसन्न वा समर्थ करहू," औ "तातैं मेरेतांई लक्ष्मीकूं प्राप्त करहू" इस या मंत्रविषै औ आगिले मंत्रविषै कथन किये लिंगके देखनेतैं । इहां बुद्धिकी कामनावाले औ लक्ष्मीकी कामनावाले पुरुषकूं ताकी प्राप्तिके साधन जप औ होम कहियेहैं:—जो ॐकार वेदनके मध्य प्रधान होनेतैं श्रेष्ठकी न्यांई श्रेष्ठ है, औ "सो जैसैं शंकु (कीले) करि" इत्यादि अन्य श्रुतितैं सर्व वाणीविषै व्याप्त होनेतैं विश्वरूप (सर्वरूप) है; याहीतैं ॐकारका श्रेष्ठपना है । जातैं ॐकार इहां उपासना करनेकूं योग्य है, यातैं ऋषभ आदिक शब्दनसैं ॐकारकी स्तुति, योग्यहीं है । औ जो वेदरूप अमृततैं प्रतीत होताभया; कहिये लोक औ वेदरूप व्याहृतिनतैं सारिष्ट (उत्तम भाग्य)कूं इच्छनेवाले औ याहीतैं तप करनेवाले प्रजापतितैं सारिष्ट (उत्तम भाग्य)-रूप होनेकरि ॐकार प्रतीत होताभया । जातैं नित्यरूप ॐकारकी उत्पत्ति, अनायाससैं नहीं कल्पना करियेहै, यातैं सो प्रतीत होता भया; यह अर्थ बनै है । सो इस प्रकारका ॐकाररूप इंद्र (सर्व कामका स्वामी परमेश्वर), मेरेकूं बुद्धिसैं प्रसन्न करो, वा

कुर्वाणा चीरमात्मनः । वासाꣳसि मम गावश्च । अन्नपाने च सर्वदा । ततो मे श्रियमावह । लोमशां पशुभिः सह स्वाहा । आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ २ ॥

समर्थ करो ॥ अब बुद्धिके बलकी प्रार्थना करिये हैः—हे देव ! तिस बुद्धिके अधिकारतैं मैं अमृत (अमरभावके हेतुरूप ब्रह्मज्ञान)का धारण करनेवाला होउं । किंवा मेरा शरीर विचक्षण (योग्य) होहू । मेरी जिव्हा अतिशयकरि मधुर भाषणवाली होहू । मैं दोनूं कर्ण (श्रोत्रन)करि बहुत श्रोता होउं । किंवा मेरा कार्य औ कारणरूप संघात जो है, सो आत्मज्ञानके योग्य होहू । यह वाक्यका अर्थ है ॥ अब आत्मज्ञानके अर्थहीं बुद्धिकी प्रार्थना (याचना) करिये हैः—हे ॐकार ! तूं ब्रह्म (परमात्मा)का कोश (म्यान) हैं; काहेतैं, खड्गके कोशकी न्यांई ब्रह्मके प्राप्तिका स्थानरूप होनेतैं । जातैं तूं ब्रह्मका प्रतीक (प्रतिमा) हैं, यातैं तेरेविषै ब्रह्म प्राप्त होवैहै । सो तूं (ब्रह्मका कोश) लौकिक बुद्धिसैं ढांप्या है; कहिये मंदबुद्धिवाले पुरुषनकरि तेरा सद्भाव अज्ञात है । सो तूं मेरे श्रुत (श्रवणपूर्वक आत्मज्ञान आदिक)-कूं रक्षण कर; कहिये ताकी प्राप्तिके अविस्मरण आदिककूं कर ॥ ये मंत्र, बुद्धिकी कामनावाले पुरुषकूं जपके अर्थ कहे; अब लक्ष्मीकी कामनावाले पुरुषकूं होमके अर्थ जे मंत्र हैं, वे कहिये हैः—हे ॐकार ! ल्यावनेवाली औ विस्तारनेवाली ॥ १ ॥

टीकाः—औ आत्माके (मेरे) वस्त्रनकूं औ गौवांकूं औ अन्नपानकूं सर्वदा निर्वाह करनेवाली जो लक्ष्मी है, ता अजा

यशो जनेऽसानि स्वाहा । श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा । तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा । स मा भग प्रविश स्वाहा । तस्मिंस्तु सहस्रशाखे निभगाऽहं त्वयि मृजे स्वाहा । यथाऽऽपः प्रवता यन्ति । यथा मासा अहर्जरम् । एवं मां ब्रह्मचारिणः धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा । प्रतिवेशोऽसि प्र मा भाहि प्र मा पद्यस्व ॥ वितन्वाना शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । धारयंतु सर्वतः स्वाहैकञ्च ॥ ३ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

औ भेड आदिककरि युक्त औ अन्य पशुनकरि सहित लक्ष्मीकूं तिस (बुद्धिके बढावनैं)तैं पीछे मेरे तांई ल्याव; स्वाहा। जातैं बुद्धिरहित पुरुषकूं लक्ष्मी जो है, सो अनर्थके वास्तेहीं होवैहै; यातैं इहां बुद्धिके बढनेतैं पीछे लक्ष्मीकूं ल्याव ऐसैं कहा ॥ इहां ल्याव इस अधिकार (क्रियापद)तैं ॐकारहीं च्यारी ओरतैं संबंधकूं पावता है, औ इहां स्वाहाकार जो शब्द है, सो होमके अंतके मंत्ररूप अर्थके जनावने वास्ते है । ब्रह्मचारी जे हैं वे मेरेतांई ल्यावहू, स्वाहा । ब्रह्मचारी जे हैं वे निष्कपट भावकूं करहू, स्वाहा । ब्रह्मचारी जे हैं वे प्रमा (यथार्थ ज्ञान)कूं करहू, स्वाहा । ब्रह्मचारी जे हैं वे दम (इंद्रियनके जय)कूं करहू, स्वाहा । ब्रह्मचारी जे हैं वे शम (मनके निग्रहरूप शांति)कूं करहू, स्वाहा ॥ २ ॥

टीकाः–मैं जन (जनके समूह)विषै यश (यशस्वी) होऊं,

स्वाहा। मैं अतिशय औ श्रेष्ठ अत्यंत धनवान्तैं धनवान् होहूं, स्वाहा ॥ किंवा हे भगवन् (पूजने योग्य)! तिस ब्रह्मके कोश (भंडार)रूप तेरे तांई प्रवेश करूं; कहिये प्रवेश करिके अनन्य (तेरास्वरूपहीं) होऊं, स्वाहा। हे भगवन्! सो तूं बी मेरे तांई प्रवेश कर; कहिये मुज औ तुज दोनूंकी एकताहीं होहू, स्वाहा। हे भगवन्! तिस सहस्रशाखावाले (वहुभेदवाले) तुजविषै मैं पापरूप कृत्यकूं शोधन करूंहूं (धोवताहूं)। जैसैं लोकविषै जल जे हैं, वे नम्र देशसैं जाते हैं। वा जैसैं मास जे हैं वे संवत्सरकूं[३२] जाते हैं। ऐसैं हे धातः (सर्वका विधाता)! ब्रह्मचारी जे हैं वे मेरे तांई सर्व ओरतैं (सर्व दिशातैं) आवहू, स्वाहा। हे भगवन्! जैसैं श्रमके निवारणका स्थान समीपका ग्रह है, ऐसैं जातैं तूं समीपके ग्रहकी न्यांई समीपका ग्रह हैं; कहिये तेरे भक्तनकूं सर्व पाप औ दुःखके निवारणका स्थान हैं। यातैं मेरेकूं प्रकाश कर औ आपके तांई प्राप्त कर; कहिये बाणसैं वेधन किये लोहकी न्यांई मेरेकूं तेरा स्वरूप कर ॥ [हे धातः! विस्तार करने वाले, ब्रह्मचारी जे हैं, वे शमकूं करहु, स्वाहा। औ सर्व ओरतैं आवहु, स्वाहा। यह एक है]। इस विद्याके प्रकरणविषै जो लक्ष्मीकी कामना कथन करी है, सो धनके अर्थ है; औ धन, कर्मके अर्थ है, औ कर्म, संचित पापके क्षयअर्थ है; ता पापके क्षयहुये विद्या प्रकाश करती है। तैसैं स्मृति कहती है:—"पुरुषनकूं पापकर्मके क्षयतैं ज्ञान उपजता है। जैसैं स्वच्छ दर्पणविषै [मुखकूं देखते हैं, तैसैं] आत्माविषै आत्माकूं देखते हैं" या वाक्यसैं ॥ ३ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

---

३२ संवत्सर जो है, सो दिवसनकरि लोकनकूं जरावान् (क्षीण) करता है, यातैं अहर्जर कहिये है। अथवा दिवस जे हैं, वे इस संवत्सरविषै जरते (अंतर्भावकूं पावते) हैं, यातैं वे अहर्जर कहिये हैं।

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः । तासामु ह स्मैतां चतुर्थीम् । माहाचमस्य प्रवेदयते । मह इति तद्ब्रह्म । स आत्मा । अङ्गान्यन्या देवताः ॥ भूरिति वा अयं लोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । सुव इत्यसौ लोकः ॥ १ ॥

टीकाः—ऐसैं [33]वर्णोंके संबंधरूप संहिताकूं विषय करनेवाला उपासन कहा । ताके पीछे बुद्धिकी कामना औ लक्ष्मीकी कामनाके मंत्र कहे । वे मंत्र, परंपरासैं विद्याके उपयोग अर्थहीं हैं । अव याके अनंतर व्याहृतिरूप ब्रह्मका हृदयके मध्य स्वाराज्य फलवाला उपासन कहियेहैः—**भूः भुवः स्वः ये प्रसिद्ध जे तीन व्याहृतियां स्मरण करियेहैं, तिनके मध्य यह चतुर्थ व्याहृति महर्लोक है।** तिस इस चतुर्थ व्याहृति—कूं महाचमसका पुत्र जो **महाचमस्य** ऋषि है, सो जानता (देखता) भया । इहां उपदेशतैं जो यह महाचमस्य ऋषिनैं देखीहुई [34]महर् ऐसी व्याहृति है । **सो ब्रह्म है** ॥

---

३३ पूर्व कहे अर्थके अनुवादपूर्वक आगे कहनेके अनुवादके संबंधकूं कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः— व्याहृतिनकूं श्रद्धासैं ग्रहण करी होनेतैं, तिनके परित्यागकरि उपदेश किया जो ब्रह्म, सो बुद्धिके प्रति आरूढ होता नहीं; यातैं व्याहृतिरूप शरीरवाला हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्म, हृदयके मध्य ध्येय होनेकरि उपदेश करियेहै ।

३४ महर् इस व्याहृतिविषै अंगी ब्रह्मकी दृष्टि करनेकूं योग्य है । तिसविषै क्या तुल्यता है ? तहां कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः—जैसैं देवदत्तके पाद आदिक अंग हैं, औ देहका मध्यभाग अंगी है, सो अन्य अंगनका आत्मा (स्वरूप) कहियेहै; काहेतैं सर्व अंगनविषै व्यापक होनेतैं । तैसैं महर्लोकरूप जो व्याहृति है, सो हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मका मध्यभाग है, यातैं सो आत्मा (स्वरूप) ऐसैं कल्पना करियेहै । औ अन्य व्याहृतियां जे हैं; वे पादआदिक अवयव भावसैं कल्पना करियेहैं । तिनमैं प्रथम

मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते ॥ भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीँ षि महीयन्ते ॥ भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि सुवरिति यजूँ षि ॥ २ ॥

किस तुल्यतातैं ? तहां कहैहैं:—जातैं महत् है औ व्याहृति महर् है, यातैं तिनकी एकता बनैहै। फेर सो महर् क्या है ? सो आत्मा (ब्रह्मका स्वरूप) है। जातैं सो (महर्) व्याप्तिरूप कर्मवाला है यातैं सो आत्मा है। औ अन्य जो व्याहृतिरूप लोक, देव, वेद औ प्राण हैं, वे जातैं "महर् ब्रह्म है" या आगे कहनेके वाक्यकरि कथन किये व्याहृतिरूप ब्रह्मके देव लोक आदिक सर्व अवयवरूप हैं, औ जातैं वे सूर्य चंद्र ब्रह्म औ अन्नरूपकरि व्याप्त होवैहैं; यातैं अन्य देवता जे हैं वे अंग (ब्रह्मके पाद आदिक अवयव) हैं। इहां देवताका ग्रहण जो है; सो उक्त लोकआदिकके ग्रहण अर्थ है। जातैं "महर् ब्रह्म है" इस आगे कहनेके वाक्यकरि कथन किये व्याहृतिरूप ब्रह्मके देव औ लोक आदिक सर्व अवयवरूप हैं, यातैं सूर्य आदिकनकरि लोक आदिक वृद्धिकूं पावतेहैं। ऐसैं आत्माके अंग वृद्धिकूं पावतेहैं, इसप्रकार आगे श्रुति कहती है:—

भूः ऐसा प्रसिद्ध यह लोक है। भुवर् यह अंतरिक्ष है। स्वर् ऐसा वह (स्वर्ग) लोक है ॥ १ ॥

टीका:—महर् यह सूर्य है। सूर्यसैं प्रसिद्ध सर्व लोक वृ-

व्याहृति दोनूं पाद हैं, औ द्वितीय व्याहृति दोनूं बाहु हैं, औ तृतीय व्याहृति शिर है।

३५ व्याहृतिरूप अवयववाले ब्रह्मकी उपासना करना, ऐसैं यह उत्पत्ति विधि कहा; अब अंगविशेषका विधि कहियेहै।

मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते ॥ भूरिति वै प्राणः। भुव इत्यपानः। सुवरिति व्यानः। मह इत्यन्नम्। अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते ॥ ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्द्धा चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः ॥ ता यो वेद स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥ असौ लोको यजूꣳषि वेद द्वे च ॥ ३ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

द्धिकूं पावतेहैं ॥ भूः यह प्रसिद्ध अग्नि है। भुवर् यह वायु है। स्वर् यह सूर्य है। महर् यह चंद्रमा है। चंद्रमासैं प्रसिद्ध सर्व ज्योति (तारा) वृद्धिकूं पावतेहैं ॥ भूः यह प्रसिद्ध ऋचा (ऋग्वेदके वाक्य) हैं। भुवर् यह साम (सामवेदके वाक्य) हैं। स्वर् यह यजुर् (यजुर्वेदके वाक्य) हैं ॥ २ ॥

टीका:—महर् यह ब्रह्म (ॐकार[३६]) है। ब्रह्मसैं प्रसिद्ध सर्व वेद वृद्धिकूं पावतेहैं। भूः यह प्रसिद्ध प्राण है। भुवर् यह अपान है। स्वर् यह व्यान है। महर् यह अन्न हैं। अन्नसैं प्रसिद्ध सर्वप्राण वृद्धिकूं पावतेहैं ॥ वे [३७]प्रसिद्ध ये भूः भुवर् स्वर् औ महर् ऐसी च्यारी व्याहृतियां जे हैं, वे एक एक च्यारी च्यारी हुई च्यारीप्रकारकी होवैहैं ॥ वे व्याहृतियां जैसैं कल्पनाकरी हैं, तैसैंहीं तिनका उपदेश जो है सो उपासनाके नियमअर्थ

---

३६ एक एक व्याहृतियां जब च्यारी प्रकारकी चिंतन करियेहैं; तब षोडश कलावाला पुरुष उपासना किया होवैहै; इस अभिप्राय करि संक्षेपसैं कहेहैं।

३७ इहां ब्रह्म नाम ॐकारका है; काहेतैं, शब्दके अधिकार (मुख्यता) विषै अन्यके असंभवतैं।

है ॥ वे व्याहृतियां जैसें कथन करी हैं तैसें तिनकूं जो जानताहै सो ब्रह्मकूं जानताहै । ब्रह्मभावरूप स्वाराज्यकी प्राप्तिके हुये सर्व देव अंगभूत हुये इस विद्वान्के तांई बलिदानकूं ल्यावतेहैं । [यह लोक औ यजुर्वेद दोनूंकूं जानता है] ॥ ननु, "सो ब्रह्म है, सो आत्मा है" ऐसें ब्रह्मके जानेहुये अज्ञातकी न्यांई "सो ब्रह्मकूं जानता है" ऐसें कहना योग्य नहीं है ? सो[३८] कथन बनै नहीं:—काहेतें, शास्त्रकूं ताके विशेषके कहनेकी इच्छावाला होनेतें, यह दोष नहींहै । यद्यपि चतुर्थ व्याहृतिरूप ब्रह्म है, ऐसें जान्या है, यह सत्य है, परंतु ताका हृदयके भीतर प्राप्त होनेके योग्यपनै औ मनोमयपनैसें आदिलेके "रूप शांतिसें सम्द्धिकूं पाया" इस विशेषण पर्यंत जो विशेष है, सो नहीं जान्या है । यातैं विशेषण औ विशेष्यरूप धर्मका समूह जनाइयेहै । ऐसें ताके कहनेकी इच्छावाला जो शास्त्र, सो अज्ञातकी न्याई, ब्रह्मकूं मानिके "सो ब्रह्मकूं जानताहै" ऐसें कहता है । यातैं यह दोष नहीं है। जातैं जो आगे कहनेके धर्मके समूहकरि युक्त ब्रह्मकूं जानता है, सो ब्रह्मकूं जानता है, यह अभिप्राय है, यातैं आगे कहनेके षष्ठ अनुवाकसैं या पंचम अनुवाककी एकवाक्यता है । औ इन पंचम औ षष्ठ दोनूं अनुवाकनविषै उपासना बी एकहीं है; काहेतें "भूं[३९] यह अग्निविषै स्थित होवैहै" इत्यादि रूप (वाक्यमैं) उपासनाकी एकताविषै जो लिंग आगे कहा है, इस लिंगतैं औ भिन्न[४०] उपासनाके बोधक शब्दके

---

३८ अधिकारकी अवधिरूप वाक्यविषै ब्रह्मका ज्ञान फलपनैकरि नहीं कहियेहै, किंतु आगे कहनेके अनुवाकसैं इसीहीं ब्रह्मके उपासनविषै गुणका विधान होवैगा, ऐसें सूचन करनेकूं यह कहे हैं ।

३९ जब व्याहृतिरूप अवयववालाहीं ब्रह्म आगे उपासना करियेहै, तबहीं उपासककूं प्रथम व्याहृतिरूप अग्निविषै स्थितिका कथन घटताहै । तातैं व्याहृतिरूप देवताकी प्राप्तिके कथनरूप उपासनाकी एकताविषै लिंगकूं कहे हैं ।

४० किंवा एक ठिकाने प्रधानविद्याका विधि है, औ दूसरे ठिकाने गु-

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः । तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः । अमृतो हिरण्मयः । अन्तरेण तालुके य एष स्तन इवावलम्बते । सेन्द्रयोनिः यत्रासौ केशान्तो विवर्तते व्यपोह्य शीर्षकपाले ॥ भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति । भुव इति वायौ ॥ १ ॥

अभावतैं यह उपासनाकी एकताविषै कहा जो लिंग, सो बनै है । जातैं इहां " जानताहै औ उपासना करने योग्य है " ऐसा विधायक (भिन्नउपासनाका बोधक) कोईबी शब्द नहींहै; काहे तैं; व्याहृतिके बोधक पंचम अनुवाकविषै " तिनकूं जो जानताहै " ऐसैं आगे कहनेके अर्थके होनेतैं । यातैं उपासनाका भेदक शब्द नहीं है । औ ता व्याहृतिके बोधक पंचम अनुवाकका आगे कहनेके अर्थकरि युक्तपना जो है, सो " शास्त्रकूं ताके विशेषके कहनेकी इच्छावाला होनेतैं" इत्यादि वाक्यकरि हमनैं पूर्वहीं कहाहै ॥ ३ ॥

इति पंचमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

टीकाः—भूः भुवर् औ स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप जे अन्य देवता हैं, वे "महर् ब्रह्म है;" या वाक्यसैं हिरण्यगर्भ व्याहृतिरूप ब्रह्मके अंग हैं, ऐसैं कहा । अब जिसके वे देवता अंगभूत हैं, तिस इस ब्रह्मके साक्षात् ज्ञानअर्थ औ उपासनाअर्थ, विष्णुके स्थान शालिग्रामकीन्यांई हृदयादि आकाशरूप स्थान कहियेहै । जातैं तिस स्थानविषै उपासन कियाहुया मनोमयपनैंआदिक धर्मकरि युक्त सो ब्रह्म, हस्तविषै आमलक (फलविशेष) वा अमलक(निर्मल जल)-कीन्यांई साक्षात् जानियेहै, यातैं सो स्थान औ सर्वात्मभावकी

णविधि है; ऐसैं अनुवाक भेदके कृतार्थ हुये अन्यप्रकारसैं असिद्ध भेदक प्रमाण प्रतीत होने योग्य नहीं है; ऐसैं कहै हैं ।

प्राप्तिअर्थ मार्ग, कहनेकूं योग्य है ! या अभिप्रायसैं यह षष्ठ अनुवाक आरंभ करियेहैः—सो (प्रसिद्ध) जो यह हृदयके भीतर करक (कमंडलु)के अंतर्गत आकाशकी न्यांई आकाश है, तिसविषै सो यह पुरुष है। पुरीनविषै रहनेतैं वा पृथिवी आदिक लोक इसकरि पूर्ण हैं, यातैं यह पुरुष कहियेहै। सो पुरुष मनोमय है; कहिये, ज्ञानरूप क्रियावाला होनेतैं मन जो विज्ञान (बुद्धि)तिसरूपहै; काहेतैं, तिसविषै प्रतीयमान होनेतैं। वा जिसकरि पुरुष मनन (विचार) करैहैं, ऐसा जो अंतःकरण सो मन है। जातैं पुरुष ताका अभिमानी वा तिस मनरूप लिंगवाला है, यातैं तिसरूप कहियेहै। औ सो पुरुष अमृतरूप (मरण धर्म रहित) है, अरु हिरण्मय (प्रकाशमय) है ।। अब तिस उक्तप्रकारके लक्षणवाले हृदयाकाशविषै साक्षात् किये विद्वान्के आत्मारूप पुरुषके ऐसै स्वरूपके ज्ञानअर्थ मार्ग कहियेहैः—हृदयतैं ऊपर प्रवृत्त भई औ योगशास्त्रनविषै प्रसिद्ध जो सुषुम्ना (नाडीविशेष) है, सो मुखमैं प्रसिद्ध तालुदेशके मध्य प्राप्त भई है, औ जो यह दोनूं तालूनके मध्य स्तनकी न्यांई मांसका खंड स्थित है, ताके मध्य प्राप्त है। जहां यह केशनका अंत (मूल) विभागकरि वर्तता है, ऐसा जो मस्तकदेश, ता देशकूं पायके (तहां निकसीहुई) मस्तकके कपालनकूं भेदनकरिके जो निकसी है, सो सुषुम्ना नाडी इंद्रयोनि है, कहिये, इंद्र जो ब्रह्म, ताकी योनि नाम मार्ग (स्वरूपकी प्राप्तिका द्वार) है । तिसीहीं नाडीसैं मनोमयरूप आत्माका देखनेवाला विद्वान् मस्तकतैं निकसिके या लोकका अधिष्ठाता जो भूः इस व्याहृतिरूप महत् ब्रह्मका अंगरूप अग्नि है, ता अग्निविषै स्थित होवैहै; कहिये,

---

४१ कमलके आकारवाला, प्राणका आश्रय, अनेक नाडीरूप छिद्रवाला, उंच नालवाला, नीचे मुखवाला जो मांसका पिंड; सो हृदय है, ताके भीतर। यह अर्थ है।

सुवरित्यादित्ये । मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः । एतत्तदो भवति । आकाशशरीरं ब्रह्म । सत्यात्मप्राणारामं मनआनन्दम् । शान्तिसमृद्धममृत इति प्राचीनयोग्योपास्व ॥ वायावमृतमेकञ्च ॥ २ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

अग्निरूपसैं इसलोककूं पावताहै । तैसैं भुवर्, इस द्वितीय व्याहृतिरूप वायुविषै स्थित होवैहै ॥ १ ॥

टीकाः—स्वर् इस तृतीय व्याहृतिरूप सूर्यविषै स्थित होवैहै । औ महर्, इस अंगी (ब्रह्मकी स्वरूप) भूत चतुर्थ व्याहृतिरूप ब्रह्मविषै स्थित होवैहै । तिनविषै आत्मभावसैं स्थित होयके ब्रह्मभूत हुया स्वराज्यकूं पावताहै; कहिये,[४२] जैसैं ब्रह्म है तैसैं अंगभूत देवनका आपहीं राजा (अधिपति) होवैहै; औ सर्वदेव अंगभूत हुये जैसैं ब्रह्मकूं देतेहैं, तैसैं इसके ताईं बलिदान देतेहैं । औ ऐसैं जाननेवाला सो विद्वान् मनके पतिकूं पावता है । जातैं ब्रह्मसर्वात्मा है, औ जातैं सो सर्व मनकरि मनन करियेहै, यातैं सो ब्रह्म सर्व मनका पति है; ताकूं विद्वान् पावता है । किंवा, सो सर्व वाणीनका पति होवैहै । तैसैंहीं चक्षुनका पति होवैहै, श्रोत्रनका पति होवैहै, औ विज्ञान (बुद्धिन)का पति होवैहै । अर्थ यह, जो सर्वात्मा होनेतैं सर्व प्राणीनके करणोकरि तिसवाला होवैहै ॥ किंवा तातैं बी यह (आगे कहनेका ब्रह्मका विशेषण) अत्यंत

---

४२ स्वाराज्य जो है सो जगत्‌के स्रष्टापनै आदिकरूप निरंकुश ऐश्वर्य नहीं होवैहै; ऐसैं कहे हैं ।

अधिक होवै है । सो क्या है ? तहां कहिये हैः—आकाश है शरीर जिसका, वा आकाशकी न्याई सूक्ष्म शरीर है जिसका, ऐसा जो आकाश शरीरवाला यह प्रसंगविषै प्राप्त भया ब्रह्म; सो सत्यस्वरूप है । मूर्त औ अमूर्तमय सत्य है स्वरूप (स्वभाव) जिसका ऐसा जो यह ब्रह्म सो सत्यस्वरूप कहियेहै । औ सो **प्राणाराम** है । प्राणोविषै है आराम (रमण) जिसका, ऐसा जो ब्रह्म सो प्राणाराम कहियेहै । वा प्राणोका है आराम जिसविषै, ऐसा जो ब्रह्म सो प्राणाराम कहियेहै । औ सो **मनआनंद** है । मन है आनंदरूप (सुखकारी) जिसकूं, ऐसा जो ब्रह्म सो मनआनंद कहियेहै । औ सो **शांतिसमृद्धहै** । जातैं शांति (उपशम) रूप समृद्धिकूं पाया हुया सो प्राप्त होवै है, यातैं सो शांतिसमृद्ध कहियेहै । वा शांतिसैं समृद्धि (विभूति) कूं पायाहुया प्राप्त होवै है, यातैं शांति समृद्ध कहियेहै । औ सो **अमृतहै** । जातैं सो ब्रह्म मरणधर्मतैं रहित है, यातैं अमृत कहियेहै । इहां अत्यंत अधिक जो विशेषण है, तहांहीं पूर्व वाक्यविषै उक्त मनोमय आदिक पुरुषका विशेषण देखलेना । ऐसैं मनोमयपनैं आदिक धर्मनकरि विशिष्ट उक्तप्रकारका जो ब्रह्म है, ताकूं हे **प्राचीनयोग्य** (शिष्य)! तूं **उपासना कर** । यह जो आचार्यके वचनका कथन है, सो आदरके अर्थ है । [**वायुविषै औ अमृतरूप एक है**] ॥ २ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः । अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि । आप ओषधयो वनस्पतयः । आकाश आत्मा इत्यधिभूतम् ॥ अथाध्यात्मम् । प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानः । चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक्त्वक् । चर्म्म माꣳसꣳ स्नावास्थि मज्जा । एतदधिविधाय ऋषिरवोचत् । पाङ्क्तं वा इदꣳसर्वम् । पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तꣳ स्पृणोतीति ॥ सर्वमेकञ्च ॥ १ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

टीकाः—जो ४३यह उपासना करनेयोग्य व्याहृतिरूप ब्रह्म कहा, ताहीका अब पृथिवी आदिक पांक्त (पांचके समुदाय) स्वरूपसैं उपासन कहियेहै । जातैं पृथिवी आदिकहीं पंचसंख्याके योगतैं पंक्तिनामक छंदका संपादन होवैहै, तातैं पृथिवी आदिक सर्वकूं पांक्तपना है । औ यज्ञ जो है सो पांक्त है "यज्ञ पांक्त है" इस श्रुतितैं । पांच पाद जे हैं वे पंक्तिरूप हैं; तिसवाला जो वेदका कोइ छंद है, सो बी पंक्ति कहियेहै । जातैं यज्ञ जो है सो पत्नी यजमान दैव औ मानुष वित्त इन पांचकरि संपादन करियेहै, यातैं पंक्ति छंदके सादृश्यके संपादनतैं यह पांक्त कहियेहे । तिस हेतुकरि जो यह लोकसैं आदिलेके आत्मापर्यंत जगत् है, ताकूं यज्ञभावरूप पांक्त कल्पते हैं । ता कल्पित यज्ञकरि पांक्तरूप प्रजापतिकूं पावताहै ॥ सो यह सर्व पृथिवी आदिक पांक्त कैसैं है ? तहां कहैहैंः—पृथिवी अंतरिक्ष स्वर्गलोक दिशा औ अवांतर दिशा; इस प्रकारका यह लोकरूप पांक्त है ॥ अग्नि वायु सूर्य चंद्रमा औ नक्षत्र, यह

---

४३ आगिला अनुवाक बी अन्य प्रकारसैं हिरण्यगर्भकी उपासनाकूं विषय करनेवाला है; ऐसैं कहै हैं ।

देवतारूप पांक्त है। **जल औषधियां वनस्पतियां आकाश औ** आत्मा यह भूतरूप पांक्त है। इहां आत्मा जो कहाहै, सो विराट्रूप हुये आत्माके अधिकार (मुख्यता) तैं है। **ऐसैं अधिभूतरूप पांक्त कहा।** इहां अधिभूत जो है सो अधिलोक औ अधिदैवतरूप दोनूं पांक्तनके उपलक्षण अर्थ है; काहेतैं इहां लोक पांक्त औ देवता पांक्तकूं कथन किया होनेतैं ॥ अब याके अनंतर अध्यात्म-रूप तीन पांक्त **कहियेहैंः-प्राण अपान व्यान उदान औ समान, यह** वायुरूप पांक्त है । **चक्षु श्रोत्र मन वाक् औ त्वचा,** यह इंद्रियरूप पांक्त है। **चर्म मांस नाडी अस्थि औ मज्जा, यह** धातुरूप पांक्त है ॥ इतनाहीं यह सर्व अध्यात्म (आंतर) औ बाह्य जगत् पांक्तरूपहीं है। **ऐसैं कल्पना करिके ऋषि** (वेद वा ताके ज्ञानकरि संपन्न कोइक ऋषि) जो है, सो **कहता भया।** क्या कहता भया ? तहां कहैहैंः-**प्रसिद्ध यह सर्व पांक्त है।** अध्यात्मरूप **पांक्तसैंहीं** संख्याकी तुल्यतातैं बाह्य **पांक्तकूं पूरण करैहै;** [44]कहिये, एकरूप होनेकरि जानता है । अर्थ यह जो, यह सर्व पांक्त है, ऐसैं जो जानताहै; सो प्रजापतिरूपहीं होवैहै ॥ **[औ सर्व एक है]** ॥ १ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

---

४४ "निकृष्टविषै उत्कृष्टकी दृष्टि फलवाली है" इस न्यायतैं बाह्य पांक्तरूपसैं आध्यात्मिक तीन पांक्त जाननेकूं योग्य हैं; या अभिप्रायसैं कहे हैं।

अनेकविध शिक्षाका कथन.

ओमिति ब्रह्म । ओमितीद ँ सर्वम् । ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति । ओँ शोमिति शस्त्राणि श ँ सन्ति । ओमित्यध्वर्य्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह । ब्रह्मोपाप्नुवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥ ॐ दश ॥ १ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

टीकाः—ऐसैं प्रथमैं व्याहृतिरूप ब्रह्मका उपासन कहा । अनंतर पांक्तस्वरूपसैं उपासन कहा । अँब सर्व उपासनाके अंगभूत ॐकारका उपासन कहियेहै । जातैं पर औ अपर ब्रह्मकी दृष्टिसैं उपासन करियेहै; ऐसा जो ॐकार सो शब्दमात्र है; तौ बी पर औ अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होवैहै । जातैं विष्णुके प्रतिमाकी न्याई सो ॐकार परब्रह्म औ अपरब्रह्मका आश्रय (उपकारक) है, "इसीहीं आश्रयकरि दोनूंमैसैं एककूं पावताहै" इस श्रुतितैं । यातैं यह ॐकार पर औ अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन संभवैहैः—ॐ इसप्रकारका शब्दरूप ब्रह्म है, ऐसैं मनकरि उपासना करे । जातैं ॐ इसप्रकारका शब्द यह सर्व है; कहिये, शब्दरूप यह सर्व

---

४५ उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक आगिले अष्टम अनुवाककूं प्रकट करैहैं।

४६ इहां यह अर्थ हैः—जातैं वेदवेत्ता पुरुषनकी सर्व क्रिया ॐकारका उच्चारण करिके प्रवर्त होवै हैं; काहेतैं, ता ॐकारकूं श्रद्धासैं ग्रहण किया होनेतैं औ ताकूं छोडिके उपदेश किया ब्रह्मबुद्धिके प्रति आरूढ होता नहीं; यातैं ता ॐकारकूं लेकें उपासनाका निर्द्धार करियेहै ।

प्रपंच ॐकारसैं व्याप्त है, "सो जैसैं शंकु (कीले) करि" इस अन्य श्रुतितैं। औ वाच्य जो है, सो वाचकके अधीन है; यातैं यह सर्व ॐकार है, ऐसैं कहियेहै ॥ अब आगे कहनेका जो ग्रंथ (अष्टम अनुवाकका शेष) है, सो ॐकारकी स्तुति अर्थ है; काहेतैं, तिस ॐकारकूं उपास्य होनेतैं। ॐ इसप्रकारका यह अनुकरण है। जातैं अन्यकरि "करता हूं वा पावता हूं," ऐसैं किये कथनकूं सुनिके अन्य पुरुष ॐ ऐसा अनुकरण करता है। यातैं ॐकार अनुकरण है। यह ॐकारका अनुकरणपना प्रसिद्धहै।औ ॐ ऐसैं सुनाव, इस कथनकूं प्राप्त हुये पुरुष, तिस ॐकारके उच्चारण पूर्वक सुनावतेहैं। तैसैं सामवेदके गायन करनेवाले जे हैं, वे ॐ इसप्रकार सामोकूं गायन करैहैं। औ ऋचाके कथन करनेवाले जे हैं, वे ॐ शों ऐसैं शास्त्र (गायन रहित ऋचा)कूं कथन करैहैं। तैसैं अध्वर्यु (यज्ञविषे यजुर्वेदी ऋत्विज्) जो है, सो ॐ ऐसैं प्रतिगर (वेदके शब्द विशेष)—कूं होम करनेवालेके कथन कथनके प्रति उच्चारता है। ब्रह्मा (यज्ञकर्मकर्त्ता ऋत्विजविशेष) जो है, सो ॐ ऐसैं अनुमोदन करै है, औ ॐ ऐसैं अग्निहोत्रकूं अनुमोदन करैहै; कहिये, होताकरि "होम करूहूं" ऐसैं कथन किये हुये, ॐ ऐसैंहीं अनुमोदन करैहै। औ ब्राह्मण जो है, सो ॐ ऐसैंहीं भाषण करनेकूं इच्छता हुया, अध्ययन करता हुया, ॐ ऐसैंहीं कहता है; कहिये, अध्ययन करनेकूं ॐ ऐसैं ग्रहण करताहै। औ ब्रह्म (वेद)—कूं पावूंगा, ऐसैं इच्छता हुया ब्रह्मकूंहीं पावता है। अथवा ब्रह्म (परमात्मा)कूं पावूंगा, ऐसैं आत्माकूं पावनेकूं इच्छता हुया, ॐ ऐसैंहीं कहताहै। सो चेतनरूप ॐकारसैं ब्रह्मकूं पावताहीं है ॥ जातैं ॐकारपूर्वक प्रवृत्त भई क्रियाकूं फलवान्पना है, तातैं ॐकाररूप ब्रह्मकूं उपासन करै, यह सारे वाक्यका अर्थ है [ॐ दश] ॥ १ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्निहोत्रञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । मानुषञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ षट् च ॥ १ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

टीकाः—"विज्ञानतैंहीं स्वाराज्यकूं पावता है," ऐसैं कथन किया होनेतैं श्रौत (श्रुतिउक्त) औ स्मार्त (स्मृतिउक्त)रूप कर्मनका व्यर्थपना प्राप्त भया; यातैं सो तिनका व्यर्थपना मति प्राप्त होहु । ऐसैं कर्मनके पुरुषार्थके प्रति साधनभावके दिखावनेअर्थ इहां आगिले ग्रंथका (अनुवाकका) आरंभ हैः—ऋत (शास्त्रादिकरि बुद्धिविषै निश्चित अर्थ) औ स्वाध्याय (अध्ययन करना), अरु प्रवचन (अध्ययन करावना वा वेदका पाठरूप ब्रह्मयज्ञ), ये अनुष्ठान करनेकूं योग्य हैं । सत्य (सत्यभाषण वा यथार्थकथन किया अर्थ), औ स्वाध्याय, अरु प्रवचन; ये अनुष्ठान करनेकूं योग्य हैं । तप (कृच्छ्रादि) औ स्वाध्याय अरु प्रवचन, ये करनेकूं योग्य हैं। दम (बाह्य इंद्रियनका निग्रह), औ स्वाध्याय,

अरु प्रवचन; ये करनेकूं योग्य हैं। **शम** (मनका निग्रह), औ **स्वाध्याय, अरु प्रवचन;** ये करनेकूं योग्य हैं। औ अग्नि जे हैं वे धारण करनेकूं योग्य हैं, औ तिनके साथि **स्वाध्याय अरु प्रवचन** ये करनेकूं योग्य हैं। **अग्निहोत्र,** होम करनेकूं योग्य है, औ ताके साथि **स्वाध्याय अरु प्रवचन** ये करनेकूं योग्य हैं। औ **अतिथि** जे हैं वे पूजनेकूं योग्य हैं, औ तिनके साथि **स्वाध्याय अरु प्रवचन** ये करनेकूं योग्य हैं। **मानुष** जो विवाह आदिक लौकिक व्यवहार सो जैसैं प्राप्त होवै तैसैं करनेकूं योग्य है, औ ताके साथि **स्वाध्याय अरु प्रवचन** ये करनेकूं योग्य हैं, **प्रजा** जे हैं वे उत्पन्न करनेकूं योग्य हैं। औ तिनके साथि **स्वाध्याय अरु प्रवचन** ये करनेकूं योग्य हैं। **प्रजन** जो ऋतुविषै भार्याका गमन, औ **स्वाध्याय अरु प्रवचन** ये करनेकूं योग्य हैं। **प्रजाति** (पौत्रकी उत्पत्ति), कहिये पुत्र जो है सो स्थापन करनेकूं योग्य है, औ ताके साथि **स्वाध्याय अरु प्रवचन** ये करनेकूं योग्य हैं ॥ इहां इन सर्व कर्मकरि युक्त पुरुषकूं बी स्वाध्याय अरु प्रवचन यत्नतैं अनुष्ठान करनेकूं योग्य हैं। इस प्रयोजनके लिये सर्व कर्मके साथि स्वाध्याय अरु प्रवचनका ग्रहण है। जातैं स्वाध्यायके अधीन अर्थका ज्ञान है, औ अर्थज्ञानके अधीन परमश्रेय है। औ प्रवचन जो है सो ताके अविसरण अर्थ है, वा धर्मकी वृद्धिअर्थ है। यातैं स्वाध्याय अरु प्रवचनविषै आदर करनेकूं योग्य है ॥ **सत्यहीं** अनुष्ठान करनेकूं योग्य है ॥ **ऐसैं सत्य वचन नामवाला रथीतर** नामक कुलका गोत्र (मूलपुरुष) ऐसा **राथीतर** आचार्य मानताहै ॥ **तपहीं** कर्तव्य है, **ऐसैं तपोनित्य इस नामवाला** पुरुशिष्टका पुत्र **पौरुशिष्टि** आचार्य मानताहै ॥ **स्वाध्याय अरु प्रवचनहीं** अनुष्ठान करनेकूं योग्य हैं; **ऐसैं नाक नामवाला** मुद्गल ऋषिका पुत्र ऐसा **मौद्गल्य** आचार्य मानताहै ॥ जातैं **सोई** (स्वाध्याय अरु प्रवचन) **तप है, सोई तप है;** तातैं वे अनुष्ठान

अहं वृक्षस्य रेरिवा कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणꣳ सुवर्चसम् । सुमेधा अमृतोऽक्षितः । इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनम् ॥ अहꣳ षट् ॥ १ ॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

करनेकूं योग्य हैं ॥ पूर्व कथन किये बी सत्य तप स्वाध्याय औ प्रवचनका फेर जो ग्रहण है, सो आदरके अर्थ है ॥ [प्रजा औ स्वाध्याय अरु प्रवचन औ षट् अनुष्ठान करनेकूं योग्य हैं] ॥ १ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

टीकाः—"मैं वृंक्षका प्रेरक हूं" या मंत्रका उपदेश जो है, सो स्वाध्याय (जप)के अर्थ है; औ स्वाध्याय जो है सो प्रकरणतैं विद्याकी उत्पत्ति अर्थ है । जातैं यह प्रकरण विद्याके अर्थ है औ अन्यके अर्थ नहीं जानिये है, यातैं स्वाध्यायसैं शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषकूं विद्याकी उत्पत्ति कल्पना करिये हैः—मैं उच्छेदरूप संसार-वृक्षका अंतर्यामी रूपसैं प्रेरक हूं । मेरी पर्वतके पृष्ठकी न्यांई कीर्ति (ख्याति) ऊठी है । औ मैं ऊर्ध्वपवित्र हूं । जिस सर्वात्मा मुजका ऊर्ध्व (कारण) पवित्र (ज्ञानस्वरूप परब्रह्म)है, सो मैं उर्ध्वपवित्र हूं । औ सूर्यकी न्यांई शुद्ध अमृत हूं । जैसैं सूर्यविषे सैकडो श्रुति स्मृतिकरि शुद्ध अमृतरूप आत्मतत्व है, ऐसैं मैं शुद्ध आत्मतत्व हूं । औ मैं प्रकाशमान-हीं आत्मतत्वरूप धन हूं । वा आत्मतत्वका प्रकाशक होनेतैं प्रकाशवाला औ मोक्ष सुखका हेतु होनैतैं धनकी न्यांई धन-रूप ब्रह्मज्ञान मुजकूं प्राप्त भया है । औ मैं सर्व लक्षणवाली शोभनिक है मेधा (बुद्धि) जि-

---

४७ "मैं वृक्षका प्रेरक हूं" इस मंत्रका त्रिशंकु ऋषि है । पंक्ति छन्द है । परमात्मा देवता है । ब्रह्मविद्याके अर्थ याके जपका उपयोग है ।

वेदमनूच्याऽऽचार्य्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्म्मञ्चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्म्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १ ॥

सकी, ऐसा सुमेधा हूं । संसारकी उत्पत्ति स्थिति औ संहाररूप कुशलताके योगतैं मुजकूं सुमेधापना है । याहीतैं अमृत (मरणधर्मतैं रहित) हूं । औ अक्षीण (अव्यय) वा अमृतसैं लिप्त (युक्त) ऐसा मैं हूं । इत्यादि ब्राह्मणभाग है । ऐसा ब्रह्मभूत ब्रह्मवेत्ता त्रिशंकु नामक ऋषिका वेदानुवचन है । वेद जो आत्माकी एकताका विज्ञान ताकी प्राप्तिके तांई जो वचन, सो वेदानुवचन कहिये है । आपके कृत्यकृत्यताकी प्रसिद्धिअर्थ वामदेवकी न्यांई त्रिशंकुनैं ऋषिउक्त ज्ञानसैं मंत्रका आम्नाय (आत्मविद्याका प्रकाश) देख्या है, यह अर्थ है ॥ औ याका जप विद्याकी उत्पत्तिअर्थ जानिये है ॥ "औ ऋतं" इत्यादि नवम अनुवाकविषै कर्मके कहनेके आरंभतैं औ अनंतर वेदानुवचनके पठनतैं यह जानिये है किः—ऐसैं श्रौत स्मार्तरूप नित्य कर्मनविषै युक्त भये निष्काम औ परब्रह्मके जाननेकी इच्छावाले पुरुषकूं आत्मा आदिककूं विषय करनेवाले ऋषिउक्तज्ञान प्रकट होवैहैं ॥ [मैं षट्‌रूप हूं] ॥ १ ॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

टीकाः—"वेदकूं पढायके" इत्यादिरूप कर्तव्यताके उपदेशका

---

४८ केवल इसका जपहीं विद्याके अर्थ नहीं है, किंतु पूर्व उक्त कर्मबी विद्याके अर्थ हैं; ऐसैं कहैहैं ।

आरंभ जो है, सो ब्रह्मज्ञानतैं पूर्व श्रौत औ स्मार्तरूप कर्म नियमसैं करनेकूं योग्य हैं, इस नियमके अर्थ है; काहेतैं, अनुशासन (शिक्षा करने)की श्रुतिकूं पुरुषके संस्काररूप अर्थवाली होनेतैं। जातैं संस्कारकरि युक्त शुद्ध चित्तवाले पुरुषकूं अनायाससैंहीं आत्मज्ञान उपजताहै। तहां "तपकरि पापकूं नाश करै है, विद्याकरि अमृतकूं पावताहै" यह स्मृति प्रमाण है। औ इहांबी आगे कहियेगा "तपकरि ब्रह्मकूं जान" इस वाक्यकरि। यातैं विद्याकी उत्पत्तिअर्थ कर्म अनुष्ठान करनेकूं योग्य हैं॥ जातैं "शिक्षाकूं करताहै" ऐसैं अनुशासन शब्दतैं अनुशासन (शिक्षा)के उल्लंघन हुये दोषकी उत्पत्ति होवैहै, काहेतैं, केवल ब्रह्मविद्याके आरंभतैं पूर्व कर्मोंके आरंभतैं औ विद्याके उत्पन्न हुये "अभय स्थितिकूं पावताहै" औ "किसीतैं भयकूं पावता नहीं" औ "क्या मैं शुभकर्मकूं न करताभया" इत्यादि वाक्यकरि जातैं कर्मकी निरपेक्षता आगे दिखाइयेगी, यातैं जानियेहै कि केवल ब्रह्मविद्याकी उत्पत्तितैं पूर्व आरंभ किये जे कर्म हैं, वे पूर्व संचय किये पापके नाशद्वारा विद्याकी उत्पत्तिअर्थ हैं। काहेतैं, जो "अविद्या (कर्म)सैं मृत्युकूं तरिके विद्यासैं अमृतकूं पावताहै" यह ऋग्वेदका मंत्र बी विद्याकी उत्पत्तितैं पूर्वहीं कर्मके अनुष्ठानकूं सूचन करै है। पूर्व ऋत आदिकके उपदेशकी व्यर्थताके निवारणअर्थ कर्मका अनुष्ठान कहा, औ इहांतो ज्ञानकी उत्पत्तिरूप अर्थवाला होनेतैं करनेकी योग्यताके नियमअर्थ कर्मका अनुष्ठान कहियेहैः—वेदकूं पढायके आचार्य जो है सो शिष्यके ताईं ग्रंथके धारणतैं पीछे शिक्षा करै है; कहिये, ताके अर्थकूं ग्रहण करावै है। यातैं जानियेहै कि वेदके अध्ययन-

४९ अध्ययन किये वेदके अर्थका विचार न करिके गुरुके ग्रहतैं पीछे लौटना नहीं, किंतु अध्ययनके विधिकूं अर्थके ज्ञानद्वारा पुरुषार्थके अवधिपनैकी सिद्धिअर्थ अक्षर ग्रहणके अनंतर अर्थके ज्ञानविषै प्रयत्न करनेकूं योग्य है; ऐसैं कहै हैं।

वाले पुरुषकूं धर्मकी जिज्ञासा न करिके गुरुकुलतैं (गुरुके ग्रहतैं) पीछे लौटना नहीं; काहेतैं "जानिके कर्मनकूं आरंभ करै" इस स्मृतितैं ॥ आचार्य कैसें शिक्षा करै है? तहां कहै हैं:—हे शिष्य! **सत्य** (प्रमाण अनुसार जानेहुये अर्थ)**कूं कथन कर**। तैसें **धर्मकूं आचरण कर**। इहां धर्मशब्द, जो है सो अनुष्ठान करनेयोग्य साधनोका तुल्य वाचक है; काहेतैं सत्य आदिककी विलक्षणताके कथनतैं। **स्वाध्याय** (अध्ययन) **तैं प्रमादकूं मति कर**। विद्याके प्रतिउपकार वास्ते **आचार्यके अर्थ प्रिय** (इच्छित) **धन देके** औ आचार्यकरि आज्ञाकूं पायाहुया अपने समान स्त्रीकूं विवाह करिके, **प्रजाकी संततिका उच्छेद मति कर**। अभिप्राय यह है कि पुत्रके अनुत्पन्न हुये बी पुत्रके हेतु काम्य आदिक कर्मसैं ताकी उत्पत्तिविषै प्रयत्न कर्तव्य है। काहेतैं, प्रजा प्रजनन (ऋतुविषै भार्याका गमन) औ प्रजाति (पौत्रकी उत्पत्ति,) इन तीनके उपदेशके सामर्थ्यतैं। अन्यथा "प्रजनन" इस एकहींकूं श्रुति कहती। जातैं इन तीनका श्रुतिविषै कथन किया है, यातैं इस वचनका उक्त अभिप्राय बनै है। औ **सत्यतैं प्रमाद करनेकूं योग्य नहीं है**। औ जातैं सत्यतैं जो प्रमाद है, सो झूठका प्रसंग है; प्रमादशब्दके सामर्थ्यतैं। यातैं विस्मृतिसैं बी झूठ करनेकूं योग्य नहीं है, यह अर्थ है। अन्यथा सत्यके कथनका निषेधहीं होवैगा। औ **धर्मतैं प्रमाद करनेकूं योग्य नहीं है**; काहेतैं, धर्म शब्दकूं अनुष्ठान करनेयोग्य साधनोकूं विषय करनेवाला होनेतैं ॥ साधनोके अनुष्ठानका अभाव प्रमाद है, सो करनेकूं योग्य नहीं है; किंतु अनुष्ठान करनेकूं योग्यहीं है। औ **कुशल** (आपके रक्षणरूप अर्थवाले कर्म) **तैं प्रमाद करनेकूं योग्य नहीं है**। **विभूति** (ऐश्वर्य)**के अर्थ**, कहिये विभूतिरूप अर्थवाले मंगलकरि युक्त कर्मतैं **प्रमाद करनैकूं योग्य नहीं**। **स्वाध्याय अरु प्रवचनतैं प्रमाद करनैकूं योग्य नहीं है**; कहिये, वे दोनूं नियमसैं कर्तव्य हैं ॥ १ ॥

देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्म्माणि तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि । नो इतराणि ॥ २ ॥

टीकाः—देव औ पितृके कार्यनतैं प्रमाद करनेकूं योग्य नहीं है, कहिये देव औ पितृ संबंधी कर्म कर्तव्य हैं । हे शिष्य! तूं मातृदेव (माता है देव जिसका, ऐसा) होहू । पितृदेव (पिता है देव जिसका, ऐसा) होहू । आचार्यदेव (आचार्य है देव जिसका, ऐसा) होहू । अतिथिदेव (अतिथि है देव जिसका, ऐसा) होहू । अर्थ यह जो, माता आदिक ये च्यारी देवताकी न्याई उपासन करनेकूं योग्य हैं । औ जो अन्य शिष्टाचाररूप अनिंदित कर्म हैं, वे तेरेकरि सेवन करनेकूं योग्य हैं । अन्य जे निंदित कर्म हैं, वे शिष्टपुरुषनके कियेहुये बी सेवन करनेकूं योग्य नहीं । औ जो हमारे (आचार्यनके) वेदसैं अविरुद्ध श्रेष्ठ आचरण हैं, वेहीं तेरेकरि उपासन करनैकूं योग्य हैं; कहिये पुण्यकी उत्पत्तिअर्थ नियमसैं करनेकूं योग्य हैं । अन्य आचार्यनके किये बी विपरीत आचरण करनेकूं योग्य नहीं ॥ २ ॥

एके चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् ॥ अथ यदि ते कर्म्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ॥ ३ ॥

टीकाः—औ जे केइक आचार्यपनै आदिक धर्मनकरि विलक्षणताकूं प्राप्त भये हम (आप) तैं अत्यंत श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय आदिक नहीं; तिनका आसनके देने आदिक-सैं तेरेकरि श्रमका निवारण करनेकूं योग्य है। वा तिनके वार्ताके निमित्तरूप आसनके सिद्ध भये श्रमका निवारण बी करनेकूं योग्य नहीं है, किंतु केवल तिनके कथन किये अर्थके सारका ग्राही होना चाहिये। किंवा जो कछु देना है, सो श्रद्धासैं हीं देना योग्य है, अश्रद्धासैं देना योग्य नहीं। औ लक्ष्मीसैं देना योग्य है। औ लज्जासैं देना योग्य है। औ भयसैं देना योग्य है। औ संवित् (मित्रआदिकके कार्य) सैं देना योग्य ॥ अथवा तेरेकूं ऐसैं वर्तमान होते जब (कदाचित्) तुजकूं श्रौत वा स्मार्त कर्मविषै संशय होवै वा आचरणविषै संशय होवै ॥ ३ ॥

ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता अयुक्ताः । अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता अयुक्ताः । अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् । तथा तेषु वर्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ॥ [स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । तानि त्वयोपास्यानि । विचिकित्सा वा स्यात्तेषु वर्तेरन् सप्त च] ॥ ४ ॥

इत्येकादशोऽनुवाकः ॥ ११ ॥

टीकाः—तब जे तिस देशविषै वा काल-विषै विचारमैं समर्थ, औ कर्मविषै वा आचरणविषै जुडे, औ अन्य कार्यविषै जुडे (स्वतंत्र) औ अक्रूर बुद्धिवाले औ पुण्यके अर्थी, (भोगकी कामनासैं रहित) ब्राह्मण होवैं, वे जैसैं तिस कर्मविषै वा आचरण-विषै वर्तमान होवैं, तैसैं तूं बी तहां वर्तमान हो औ किसी बी संशयरहित (आरोपित) दोषकरि युक्त जे पुरुष हैं, तिनविषै जो तहां विचारमैं समर्थ कर्म वा आचरणविषै जुडे, औ अन्य कार्यविषै जुडे, औ अक्रूर बुद्धिवाले, औ पुण्यके अर्थी ब्राह्मण होवैं, वे जैसैं तिनविषै वर्तमान होवैं, तैसैं तूं बी तिनविषै वर्तमान हो ॥ जातैं यह आदेश (विधि) है । यह पुत्रादिकनकूं उपदेश है । यह वेदका रहस्य (वेदार्थ) है । औ यहहीं अनुशासन (ईश्वरका वचन) है, वा आदेशवाक्यरूप विधिकूं कथन किया होनेतैं यह सर्व प्रमाणरूप वाक्यनका अनुशासन

शन्नो मित्रः शं वरुणः । शन्नो भवत्वर्य्यमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् ॥ [सत्यमवादिषं पञ्च च] ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः इति ॥ १ ॥

(आज्ञा) है। यातैं ऐसैं (उक्तप्रकारका) यह सर्व करनेकूं योग्य है। ऐसैं प्रसिद्ध यह करनेकूं योग्य है । इहां फेर जो कथन है, सो यह सर्व करनेकूं अयोग्य नहीं; इस आदरके अर्थ है । [स्वाध्याय औ प्रवचनसैं प्रमाद करनेकूं योग्य नहीं है । वे तेरेकरि करनेकूं योग्य हैं । वा संशय होवै । तिनविषै वर्तमान होवैं । औ सप्त]॥ ४ ॥

इत्येकादशोऽनुवाकः ॥ ११ ॥

टीकाः—अब कथन करी विद्याकी प्राप्तिविषै विघ्नके निवारण-अर्थ शांतिकूं पठन करैं हैं:—प्राणवायु औ दिवसका अभिमानी जो मित्र सो हमकूं सुखकारी होहू । तैसैंहीं वरुण जो है, सो हमकूं सुखकारी होहू । चक्षु औ सूर्यका अभिमानी जो अर्यमा, सो हमकूं सुखकारी होहू । तैसैं इंद्र औ बृहस्पति हमकूं सुखकारी होहू । तैसैं उरुक्रम (प्रथम वामनरूप होयके पीछे विश्वरूप हो-नेवाला) जो विष्णु सो हमकूं सुखकारी होहू । ब्रह्मके तांईं मैं नमस्कार करूंहूं । हे वायो ! तेरे तांईं मैं नमस्कार करूंहूं । जातैं तूंहीं प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, यातैं मैं तेरेकूंहीं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहूं । ऋत कहताहूं । सत्य कहताहूं । सो (अपरब्रह्म)मुज (अपरविद्याके अर्थी)कूं रक्षण करहू । सोई वक्ताकूं रक्षण

अनेकविध शिक्षाका कथन.

शन्नः शीक्षा ५। सह नौ। यश्छन्दसां भूः। स यः पृथिव्योमित्यृतश्चाहं वेदमनूच्य। शन्नो द्वादश॥ शन्नो मह इत्यादित्यो। नो इतराणि। त्रयोविंशतिः॥ हरिः ॐ। शन्नो वक्तारम्॥२॥

इति द्वादशोऽनुवाकः॥ १२॥

इति शिक्षाध्यायः प्रथमावल्ली॥ १॥

करहू। मुजकूं रक्षण करहू। वक्ताकूं रक्षण करहू॥ [सत्य कहताहूं औ पांच] ॐ शांति होहू, शांति होहू, शांति होहू॥१॥

टीकाः–[हमकूं सुख। शिक्षाकूं। हमकूं। साथिहीं। जो वेदनके मध्य। पृथिवी। सो जो पृथिवी ॐ। ऐसैं ऋत औ मैं। वेदकूं पढायके द्वादश अनुवाक हमकूं सुख। हमकूं सुख। महर् ऐसैं सूर्य है। अन्य नहीं। तेवीस मंत्र हैं। हरिः ॐ। हमकूं सुख। वक्ताकूं]

टीकाः–ईहां विद्या औ कर्मके विवेक (भिन्नफलके जनावने) अर्थ यह विचार करियेहैः–क्या केवल कर्मनतैं हीं परम श्रेय होवैहै, किंवा विद्याकी अपेक्षावाले कर्मनतैं परम श्रेय होवैहै, अथवा मिलितभये विद्या औ कर्म दोनूंकरि परम श्रेय होवै है, वा कर्मके अपेक्षावाली विद्यातैं परम श्रेय होवैहै, किंवा केवलहीं विद्यातैं परम श्रेय होवैहै? ये पांच विकल्प हैं। तिनमैं केवलहीं कर्मतैं परम श्रेय होवैहै; काहेतैं संपूर्ण वेदके अर्थके ज्ञानवाले पुरुषकूं कर्मके अधिकारतैं। औ "द्विजाति (त्रिवर्ण) करि रहस्यसहित संपूर्ण वेद अध्ययन करनेकूं योग्य है" इस स्मृतितैं संपूर्ण वेदका अध्य-

---

५० ग्रंथकी आदिमैं प्रथमवादविषै केवल विद्याकूं मोक्षकी हेतुता कही है, तौ बी ताकूं स्पष्ट करनेकूं कर्मविधिकूं जानिके प्रसंगतैं फेर विचार करनेका आरंभ करे हैं।

यन जो है, सो उपनिषद्के अर्थ औ आत्मज्ञान आदिककरि सहित होवैहै। औ "विद्वान् यजन करताहै" अरु "विद्वान् यजन करावताहै" ऐसैं विद्वान्कूंहीं कर्मविषै अधिकार देखियेहै। औ सर्व ठिकाने जानिके अनुष्ठान होवैहै। यातैं संपूर्ण वेद कर्मके अर्थहीं है। ऐसैं केईक मानतेहैं, औ कहते हैं कि, जब कर्मनतैं परम श्रेय नहीं प्राप्त होवै; तब वेद व्यर्थ होवैगा[५१]? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं, मोक्षकूं नित्य होनैतैं, जातैं मोक्ष नित्य अंगीकार करियेहै, औ लोकविषै कर्मके कार्यकूं अनित्यपना प्रसिद्ध है, यातैं जब कर्मनतैं मोक्ष होवै तब सो अनित्य होवैगा; सो अनिष्ट है॥ जो कहै, काम्य औ निषिद्ध कर्मके अनारंभतैं, औ प्रारब्ध कर्मके भोगकरि विनाशतैं, औ नित्यकर्मके अनुष्ठानतैं पापके असंभवतैं ज्ञानकी अपेक्षासैं रहित हीं मोक्ष है? सो[५२] कथन बनै नहीं:—काहेतैं, शेषकर्मके संभवतैं तिस शेष कर्मरूप निमित्तवाली अन्य शरीरनकी उत्पत्ति प्राप्त होवैहै। औ कर्म शेषका नित्यकर्मके अनुष्ठानकरि अविरोधतैं नाशका असंभव है; ऐसैं पूर्व कहा है॥ औ सर्व वेदार्थके

---

५१ "भूत (उक्त) अर्थ जो है सो भव्य (आगे कहनेके अर्थ) के वास्ते उपदेश करिये है" इस न्यायतैं, ज्ञानकूं बी कर्मकर्ताका संस्कार होनेकरि कर्मविधिका साधन होनेतैं, औ श्रवण किये फलकूं बी अर्थवादमात्र होनेतैं, कर्मनतैंहीं परम अर्थ (मोक्ष) होवै है; यह पूर्वपक्ष है। तहां सिद्धांतकूं कहै हैं।

५२ यद्यपि अध्ययन विधिका विषय हुया सर्व वेदका अर्थ एकहीं पुरुषकरि विचार करनेकूं योग्य है, तथापि अध्ययनविधिविषै प्रतिवाक्यका पढावना औ प्रतिवाक्यके अर्थका विचार जो है, सो व्यापारके भेदतैं तिस तिस कर्मके किये फलकी कामनावाले पुरुषकूं कर्मविषै उपयोगी वाक्यके अर्थके ज्ञानवान् होनेमात्रकरि कर्मविषै अधिकारके संभवतैं, औ ब्रह्म साक्षात्कारकूं तिस कर्मविषै अनुपयोगी होनेतैं, समस्त वेदअर्थके ज्ञानवाले पुरुषकूं कर्मके अधिकारविषै प्रमाण नहीं है; ऐसैं कहैहैं।

ज्ञानवाले पुरुषकूं कर्मके अधिकारतैं केवल कर्मतैं मोक्ष होवैगा? इत्यादिक जो कहा, सो[५३] बनै नहीं:—काहेतैं, उपासनाकूं श्रवणसैं जन्य ज्ञानतैं भिन्न होनेतैं! जातैं श्रवण ज्ञानमात्रसैं कर्मविषै अधिकारकूं पावताहै, उपासनाकी अपेक्षा करता नहीं। औ उपासना जो है, सो श्रवण किये अर्थके ज्ञानतैं अन्य अर्थरूप विधान करियेहै। औ मोक्षरूप जो फल है, सो अन्य अर्थरूप प्रसिद्ध होवैहै। औ "श्रवण करने योग्य है" इस कथनकरि, तातैं भिन्न "मनन करने योग्य है," औ "निदिध्यासन करने योग्य है" ऐसैं अन्यप्रयत्नके विधानतैं मनन औ निदिध्यासनकूं श्रवण ज्ञानतैं अन्य अर्थपना प्रसिद्ध है। जैब ऐसैं है, तब विद्याकी अपेक्षावाले कर्मनतैं मोक्ष होवैगा, औ विद्यासहित कर्मनकूं अन्य कार्यके आरंभका सामर्थ्य होवैगा। जैसैं स्वरूपतैं मरण औ ज्वर आदिक कार्यके आरंभके सामर्थ्यवाले हुयेबी विष औ दधि आदिकनकूं मंत्र औ शर्करा आदिककरि सहित भये अन्य कार्यके आरंभका सामर्थ्य है ऐसैं विद्यासहित कर्मनसैं मोक्ष आरंभ करियेहै? ऐसैं जो कहै, सो बनै नहीं:—काहेतैं, आरंभ किये वस्तुकूं अनि-

---

५३ यद्यपि अध्ययनविधिकी प्रेरणासैं भया वेदांतका विचार बी गुरुके ग्रहविषैहीं किया है, तथापि समस्त वेदार्थके ज्ञानवाले पुरुषकूं ताका अधिकार नहीं; काहेतैं, उपासनाकरि साध्य ब्रह्मसाक्षात्कारकूं भिन्न होनेतैं; ऐसैं कहैहैं। इहां यह अर्थ है:— गुरुके ग्रहविषै श्रवण किये औ विचार किये वाक्यतैं अनुष्ठानविषै उपयोगी जो ज्ञान होवैहै, तितनेमात्रकरि कर्मविषै अधिकारकूं पावता है, परंतु सो ज्ञान ब्रह्मसाक्षात्काररूप फलवाली उपासनाकी अपेक्षा करता नहीं; काहेतैं, उपासनातैं आपके भेदके अभावतैं।

५४ केवल कर्म मोक्षका साधन है; इस पक्षका निषेध करिके अब विद्यासहित कर्म मोक्षका साधन है; इस अन्य पक्षकी आशंका करिके ताका निषेध करैहैं।

त्य होनेतैं; यह दोष पूर्व कहा है ॥ जो कहै, वचनतैं आरंभ करने योग्य बी नित्यहीं है? [५५]सो बनै नहीं:—कहेतैं, वचनकूं ज्ञापक (जनावनेवाला) होनेतैं । जातैं वचन जो है सो विद्यमान अर्थका ज्ञापक है, अविद्यमान अर्थका कर्ता नहीं । औ जातैं सैकडो वचनोसैं बी नित्य वस्तु आरंभ नहीं करियेहै, वा आरंभ हुवा वस्तु अविनाशी नहीं होवैहै; या हेतुतैं मिलित हुये विद्या औ कर्मकूं मोक्षका आरंभकपना निषेध किया ॥ जो कहै, विद्या औ कर्म जे हैं वे मोक्षविषै प्रतिबंधके हेतु (अविद्या औ अधर्म आदिक)के निवर्तक हैं? सो बनै नहीं:—काहेतैं, कर्मके अन्य फल के देखनेतैं । जातैं उत्पत्ति संस्कार विकार औ प्राप्तिरूप कर्मका फल देखियेहै, औ मोक्ष जो है सो उत्पत्ति आदिकरूप कर्मके फलतैं विपरीत है; यातैं सो कर्मका फल नहीं है ॥ जो कहै, "सूर्यरूप द्वारसैं तिस (सुषुम्नानाडी) करि ऊपर जाता हुया" इत्यादिक गमनकी श्रुतिनतैं ब्रह्मांडके बाहिर प्राप्त होनेयोग्य मोक्ष है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, ब्रह्मकूं सर्वगत होनेतैं औ गमन करनेवाले पुरुषनसैं अभिन्न होनेतैं । जातैं आकाश आदिकका कारण होनेतैं ब्रह्म सर्वगत है, औ ब्रह्मतैं अभिन्न सर्व जीव हैं, यातैं ब्रह्मांडतैं बाहिर जायके प्राप्त होनेयोग्य मोक्ष नहीं है । गमन करनेवालेकूं आपतैं अन्य विशेषकरि भिन्न देश गमन करने योग्य होवैहै, औ जो जिससैंहीं अभिन्न है सो तिससैंहीं प्राप्त होवै नहीं; इस

---

५५ "सो फेर आवृत्तिकूं पावता नहीं" इस वचनतैं आरंभ किया बी मोक्ष नित्य है, ऐसैं कहनेकूं शक्य नहीं है; काहेतैं, प्रसिद्ध पदार्थकी योग्यताकूं लेके वचनकूं संबंधका ज्ञापक होनेतैं, औ आरंभ किये वस्तुके नित्य होनेकी योग्यता प्रसिद्ध नहीं है अन्यथा वचनकूं कारकताके प्रसंगतैं; औ अंधपुरुष मणिकूं पावता भया, इत्यादि वाक्यनविषै बी योग्यताकी कल्पनाके प्रसंगतैं; ऐसैं कहैहैं ।

अनन्यभावकी प्रसिद्धितैं। औ "तिसकूं सृजिके तिसीके तांईहीं पीछे प्रवेश करता भया" औ "क्षेत्रज्ञ बी मुजकूं जान" इत्यादिक सैकडो श्रुति औ स्मृतिनतैं ब्रह्मांडतैं बाहिर प्राप्त होने योग्य मोक्ष नहीं है ॥ जो कहै, ऐसैं हुये गति औ ऐश्वर्य आदिककी श्रुतिका विरोध होवै है; तौ बी मोक्ष ब्रह्मांडतैं बाहिर प्राप्त होनेकूं योग्य है, यह गतिकी श्रुतिनका तात्पर्य नहीं होवैहै ॥ जो कहै, सो मोक्ष जब एक प्रकारका होवै, तब "पितृलोककी कामनावाला होवै है" औ "स्त्रियनकरि वा वाहनोकरि" इत्यादि श्रुतिनका कोप होवैगा? सो बनै नहीं:—काहेतैं, तिन श्रुतिनकूं कार्यब्रह्मकूं विषय करनेवाली होनेतैं। जातैं कार्यब्रह्मविषै स्त्री आदिक होवैहैं, कारणब्रह्मविषै नहीं। औ "एकहीं अद्वितीय है," "जहां अन्यकूं नहीं देखता है, तहां किसकरि किसकूं देखे;" इत्यादि श्रुतिनतैं विरोध होवैहै, यातैं विद्या औ कर्मके समुच्चयका असंभव है। जातैं कर्ता आदिक कारकनके भेदसैं रहित तत्वकूं विषय करनेवाली जो विद्या है, सो तातैं विपरीत कारककरि साध्य कर्मसैं विरोधकूं पावती है। एकहीं वस्तु परमार्थतैं कर्ता आदिक भेदवाला है, औ तातैं रहित है; ऐसैं दोनूं प्रकारसैं देखनेकूं शक्य नहीं है। अवश्यहीं दोनूंमैसैं अन्य मिथ्या होवैगा, औ दोनूंमैसैं अन्यके मिथ्यापनेके प्रसंगके हुये जो स्वाभाविक अज्ञानके अधीन द्वैतका मिथ्यापना है, सो युक्त होवैगा। काहेतैं, "जहांहीं द्वैतकी न्यांई होवैहै," "सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावता है," "औ जहां अन्यकूं देखता है, सो अल्प है" "यह अन्य है, मैं अन्य हूं;" "जो अल्प बी अंतरकूं करता है, पीछे ताकूं भय होवै है;" इत्यादि सैकडो श्रुतिनतैं। औ एकताका सत्यपना है; काहेतैं "एकप्रकारसैंहीं देखनेकूं योग्य है," "एकहीं अद्वितीय

है," "ब्रह्महीं यह सर्व है, आत्माहीं यह सर्व है;" इत्यादिक श्रुतिनतैं । औ संप्रदान आदिक कारक भेदके अदर्शन हुये कर्म नहीं संभवै है, औ विद्याके विषयविषै अन्यभावकी दृष्टिके निषेध हजारे हजारो सुनियेहैं । यातैं विद्या औ कर्मका विरोध है, औ याहीतैं तिनके समुच्चयका असंभव है" तहां जो कहा, मिले हुये कर्म औ विद्यासैं मोक्ष होवैहै ? सो अघटित हैः—काहेतैं, [५६]कर्मनकूं विधान किये होनेतैं ॥ जो कहै, श्रुतिका विरोध होवैहै ? सो युक्त नहीं हैः—काहेतैं, जब सर्पादिककी भ्रांतिज्ञानके नाशक रज्जु आदिककूं विषय करनेवाले ज्ञानकीन्यांई कर्ताआदिक कारकके भेदकूं नाश करिके आत्माकी एकताका ज्ञान विधान करियेहै, तब कर्म विधिकी श्रुतिनकूं निर्विषय होनेतैं विरोध प्राप्त होवै । जातैं कर्म विधान कियेहैं, यातैं सो विरोधयुक्त नहींहै ॥ जो कहै, श्रुतिनकूं प्रमाणरूप होनेतैं तिनका परस्पर विरोध है ? सो कथन बनै नहींः—काहेतैं, श्रुतिनकूं पुरुषार्थके उपदेशके परायण होनेतैं । जातैं "पुरुष संसारतैं मुक्त करनेकूं योग्य है" यह जो विद्याके उपदेशके परायण श्रुति है, सो प्रथम संसारकी हेतु अविद्याकी निवृत्ति करनेकूं योग्य है । ऐसैं विद्याकी प्रकाशक होनेकरि प्रवृत्त भईहैं, यातैं तिन श्रुतिनका परस्पर विरोध नहीं है ॥ जो कहै, ऐसैं हुये बी कर्त्ता आदिक कारक (कर्म सामग्री)के सद्भावके प्रतिपादनके परायण जो शास्त्र है, सो विरोधकूं पावताहीं है ? यह कथन बनै नहींः—जातैं शास्त्र जो है सो मुमुक्षुनकूं पूर्व सिद्धहीं

---

५६ जब कर्ता आदिक कारकके भेदके सत्यता अंशका बाधक ब्रह्मज्ञान उपदेश करियेहै, तब मिथ्या अर्थवाले होनेतैं कर्मके विधिनकी अप्रमाणता होवैगी; ऐसैं कहैहैं । या शंकाके वर्णनका यह भाव हैः—अध्ययनके विधिसैं ग्रहण करी श्रुतिनकूं पुरुषार्थके उपदेशकी करनेवाली होनेकरि प्रमाणपना कहनेकूं योग्य है ।

कारकके सद्भावकूं लेके, संचित पापके क्षयअर्थ कर्मनकूं विधान करता है, औ फलके अर्थी पुरुषनके तांई फलके साधनकूं विधान करताहै; परंतु कारकके सद्भावविषै प्रवृत्त होता नहीं; यातैं सो विरोधकूं पावता नहीं । जातैं संचित पापरूप प्रतिबंधके होते विद्याकी उत्पत्ति नहीं होवैहै, औ ताके क्षय हुये विद्याकी उत्पत्ति होवैहै, ता विद्याकी उत्पत्तितैं अविद्याकी निवृत्ति होवैहै, तातैं आत्यंतिक संसारकी निवृत्ति होवैहै ॥ किंवा आत्मदर्शी पुरुषकूं अनात्म पदार्थकूं विषय करनेवाली कामना होवै नहीं, औ कामनावाला पुरुष जो है सो कर्मनकूं करताहै, ताकूं ताके फलभोगअर्थ शरीरादिकका ग्रहणरूप संसार होवैहै । औ तातैं भिन्न आत्माके एकताके दर्शीकूं विषयके अभावतैं कामनाकी अनुत्पत्ति होवैहै । औ आत्माविषै अभिन्न होनेतैं कामनाके असंभवतैं, स्वस्वरूपविषै स्थितिरूप मोक्ष होवैहै; यातैं बी विद्या औ कर्मका विरोध है । औ विरोधतैंहीं विद्या जो है सो मोक्षके प्रति कर्मनकी अपेक्षा करै नहीं; परंतु नित्य कर्मजे हैं वे स्वस्वरूपके लाभ हुये पूर्व संचित पापरूप प्रतिबंधके नाशद्वारा विद्याकी हेतुताकूं पावतेहैं । याहीतैं इस प्रकरणविषै कर्मनके कहनेका आरंभ कियाहै, इस प्रकार हम कहतेहैं । ऐसैं हुये कर्म विधिकी श्रुतिनका पुरुषार्थके उपदेशके परायण श्रुतिनतैं अविरोध है; यातैं केवलहीं विद्यातैं परम श्रेय होवैहै, ऐसैं सिद्ध भया ॥ जो कहै, जब ऐसैं है तब अन्य आश्रमोंका असंभव होवैगा; काहेतैं, विद्याकी उत्पत्तिकूं कर्मरूप निमित्तवाली होनेतैं औ कर्म जे हैं वे ग्रहस्थाश्रमविषै विधान कियेहैं । ऐसैं एक ग्रहस्थाश्रमहीं अनुष्ठान करनेकूं योग्य है । औ यातैं "जहांलगि जीवे तहांलगि कर्मकूं करे" इत्यादि श्रुतियां अत्यंत अनुकूल होवैंगी ? सो बनै नहीं:—काहेतै, कर्मकूं अनेकरूप होनेतैं । जातैं अग्निहोत्रादिकहीं

कर्म हैं ऐसैं नहीं, किंतु विद्याकी उत्पत्तिविषै अत्यंत साधक औ अन्य आश्रमविषै प्रसिद्ध जो ब्रह्मचर्य तप सत्यभाषण शम दम औ अहिंसा इत्यादिक हैं, औ ध्यान धारणा आदिक हैं, वे बी कर्म हैं, काहेतैं हिंसा आदिक निषिद्ध कर्मसैं अमिश्रित होनेतैं। ऐसैं इहां-बी आगे कहियेगाः— "तपकरि ब्रह्मकूं जान" इस वाक्यकरि। औ ग्रहस्थाश्रमतैं पूर्व बी जन्मांतरविषै किये कर्मनतैं विद्याकी उत्पत्तिके संभवतैं, औ ग्रहस्थाश्रमकी प्राप्तिकूं कर्मके अर्थ होनेतैं, कर्मकरि साध्य विद्याके हुये ग्रहस्थाश्रमकी प्राप्ति व्यर्थहीं है। औ पुत्रादिकनकूं लोकके अर्थ होनेतैं पुत्रादिककरि साध्य यालोक औ पितृलोक आदिक लोकनतैं निवृत्त भई है कामना जिसकी, औ नित्य सिद्ध आत्माके ज्ञानकरि युक्त औ कर्मविषै प्रयोजनकूं न देखनेवाले पुरुषकी प्रवृत्ति कैसैं संभवै ? सर्वथा संभवै नहीं। किंतु ग्रहस्थाश्रमकूं प्राप्त भये, औ विद्याकी उत्पत्तिके हुये, अविद्याकी निवृत्तितैं विरक्त भये, औ कर्मविषै प्रयोजनकूं न देखनेवाले पुरुषकी कर्मनतैं निवृत्तिहीं होवैहै; काहेतै, "अरे मैं निश्चयकरि इस स्थानतैं प्रवृत्ति करावता हुया हूं" इत्यादिक श्रुतिउक्त लिंगके देखनेतैं ॥ जो कहै, कर्मकी प्रतिश्रुतितैं यत्नकी अधिकताके देखनेतैं अयुक्त है ? तो अग्निहोत्रादि कर्मकी प्रतिश्रुतितैं अधिक यत्नरूप कर्मविषै बडा श्रम है; काहेतैं, अग्निहोत्रादिककूं अनेक साधनकरि साध्य होनेतैं, औ तप अरु ब्रह्मचर्य आदिक अन्य आश्रमनके कर्मनकूं ग्रहस्थाश्रमविषै बी तुल्य होनेतैं, औ अन्य आश्रमनकूं अल्प साधनकी अपेक्षावाले होनेतैं, ता ग्रहस्थाश्रमका विकल्प अन्य आश्रमी पुरुषनसैं तुल्यकी न्याई युक्त नहीं है ? सो बनैं नहींः—काहेतैं, जन्मांतरविषै संपादन किये अनुग्रहतैं "कर्मविषै श्रुतिका अधिक यत्नहै" इत्यादिक जो कहा, यह दोष नहीं है। जातैं जन्मांतरविषै कियाबी अग्नि होत्रादिरूप औ ब्रह्म-

चर्यादिरूप कर्म, विद्याकी उत्पत्तिकेप्रति अनुग्रहका करनेवाला होवैहै। औ जे केईक पुरुष जन्मसैंहीं विरक्त देखियेहैं, औ केईकतौ कर्मविषै प्रवृत्त औ अविरक्त हुये विद्याके द्वेषी देखियेहैं, तातैं जन्मांतरके किये संस्कारनतैं विरक्त भये पुरुषनकूं अन्य आश्रमकी प्राप्तिहीं अंगीकार करियेहै। औ कर्मफलकी बहुलतातैं पुत्र स्वर्ग औ ब्रह्मतेज आदिरूप कर्मके फलकूं असंख्यात होनेतैं, औ सो पुरुष पुरुषके प्रति कामनाकी बहुलतातैं ताके अर्थ श्रुतिका कर्मविषै अधिक यत्न संभवैहै। औ मेरेकूं यह होवै, मेरेकूं यह होवै; ऐसी कामनाकी बहुलताके देखनेतैं, औ ताका उपायरूप होनेतैं कर्म जे हैं, वे विद्याकेप्रति उपायरूप हैं ऐसैं हम कहतेहैं। यातैं उपायविषै अधिक यत्न करनेकूं योग्य है, उपेय (साध्य) विषै नहीं ॥ जो कहै, विद्याकूं कर्मरूप निमित्तवाली होनेतैं अन्य यत्नकी व्यर्थता है; काहेतैं, कर्मनतैंहीं सर्व संचित पापरूप प्रतिबंधके क्षयतैं विद्या उत्पन्न होवैहै, यातैं कर्मनतैं भिन्न उपनिषद्का श्रवण आदिक यत्न व्यर्थ है? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं, ऐसै नियमके अभावतैं। जातैं प्रतिबंधके क्षयतैंहीं विद्यां उत्पन्न होवै नहीं, औ ईश्वरकी प्रसन्नतासैं औ ध्यान आदिकके अनुष्ठानतैं विद्या उत्पन्न होवैहै, ऐसाबी नियम नहींहै; काहेतैं, अहिंसा अरु ब्रह्मचर्य आदिकनकूं विद्याके प्रति उपकारक होनेतैं, औ श्रवण मनन औ निदिध्यासनकूं विद्याके साक्षात्हीं कारण होनेतैं। यातैं अन्य आश्रम सिद्ध भये, औ सर्वकूं विद्याविषै अधिकार सिद्ध भया, औ परमश्रेय केवलविद्यातैंहीं होवैहै; ऐसैं सिद्ध भया ॥ ३ ॥

इति द्वादशोऽनुवाकः ॥ १२ ॥

इति श्रीतैत्तिरीयोपनिषद्गतशिक्षावल्ली नामक
प्रथमाध्याय भाष्य भाषादीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

अथ ब्रह्मानंदवल्ली ॥ २ ॥

हरिः ॐ । सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाऽभ्युक्ता । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां । परमे व्योमन् । सोऽश्नुते सर्वान् कामान् । सह ब्रह्मणा विपश्चितेति । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । तस्येदमेव शिरः । अयं दक्षिणः पक्षः । अयमुत्तरः पक्षः । अयमात्मा । इदं पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अथ तैत्तिरीयोपनिषद्गत ब्रह्मानंदवल्ली नामक द्वितीयाध्याय भाष्य भाषादीपिका प्रारभ्यते २

टीकाः—पूर्व, उक्त विद्याके उत्कर्षताके प्रतिबंधकी निवृत्तिअर्थ शांति पठन करी, अब तो आगे कहनेकी ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिविषै विघ्नकी निवृत्तिअर्थ शांति पठन करियेहैः—सोई परमेश्वर हमकूं (शिष्य औ आचार्यकूं) रक्षण करहू; सोई हमकूं भुगावहू (पालन करहू) सोई विद्यारूप निमित्तवाले सामर्थ्यकूं संपादन करहू । तेजस्वी भये हमारा अध्ययन तेजस्वी (अर्थज्ञानके योग्य) होहू ।

विद्या ग्रहणके निमित्त शिष्यके वा आचार्यके प्रमादके किये अन्यायतैं प्राप्त भया जो द्वेष, ताकी निवृत्तिअर्थ यह प्रार्थना है किः- हम परस्पर द्वेषकूं मति प्राप्त होवैं। ॐ (सत्य कहना है कि) शांति होहु, शांति होहु, शांति होहु। इहां तीनवार जो कथन है, सो आदरके अर्थ है; औ आगे कहनेकी विद्याके विघ्नकी निवृत्तिअर्थ है। यह शांति जो है सो अविघ्नकरि आत्मविद्याके प्राप्तिकी प्रार्थनाके लिये है, तिस विद्याकी प्राप्तिरूप मूलवालाहीं परम श्रेय हैं। पूर्व[५७] अध्यायविषै प्रथम संहिताकूं विषय करनेवाले औ कर्मनसैं अविरुद्ध उपासन कहे। पीछे व्याहृतिरूप द्वारसैं औ स्वाराज्यरूप फलसैं अंतःकरणके भीतर सोपाधिक आत्माका ज्ञान कहा। इतनेकरि संपूर्ण संसारके बीजकी निवृत्तिका साधन कोईक है, यह जानिनेहै। यातैं सर्व अनर्थके बीजरूप अज्ञानकी निवृत्ति अर्थ, सर्व उपाधिके भेदसैं रहित आत्माके ज्ञान वास्ते यह द्वितीय अध्याय आरंभ करियेहै। इस ब्रह्मविद्याका प्रयोजन अविद्याकी निवृत्ति है, तातैं आत्यंतिक संसारका अभाव होवैहै। ऐसैं आगे "विद्वान् किसीतैं बी भयकूं पावता नहीं" या वाक्यकरि यह श्रुति कहैगी। जातै संसाररूप निमित्तके होते "अभय स्थितिकूं पावताहै" औ "याकूं किये अरु न किये पुण्य अरु पाप तपावते नहीं" यह श्रुतिका कथन बनता नहीं, यातैं जानियेहै कि इस सर्वके आत्मारूप ब्रह्मकूं विषय करनेवाले विज्ञानतैं आत्यंतिक संसारका अभाव होवैहै। ऐसैं यैंह श्रुति "ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मकूं पाव-

---

५७ अब उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक दूसरी आनंदवल्लीके तात्पर्यकूं कहैहैं।

५८ अब प्रथम वाक्यके बीचके तात्पर्यकूं कहैहैं। केवल विद्यासैंहीं मोक्ष साधनेकूं शक्य है। औ ब्रह्मवित्, इस विशेषणतैं संबंधके ज्ञानकूं पुरुषके इच्छाका विषय होनेकरि परब्रह्मकी प्राप्ति, विद्याका प्रयोजन है।

ताहै" इत्यादि वाक्यविषैहीं संबंध औ प्रयोजनके जनावनेअर्थ प्रयोजनकूं कहैहैं। जातैं संबंध औ प्रयोजनके जानेहुये, मुमुक्षु विद्याके श्रवण ग्रहण औ धारणके अभ्यास अर्थ प्रवर्त्त होवैहै औ जातैं "आत्मा श्रवण करनें योग्य है, मनन करने योग्य है, औ निदिध्यासन करने योग्य है;" इत्यादि अन्य श्रुतिनतैं श्रवणादि साधन पूर्वक "ब्रह्मवेत्ता ब्रह्महीं होवैहै" इत्यादिरूप आगे कहनेका विद्याका फल होवैहै। यातैं इहां श्रुति, प्रथम विद्याके प्रयोजनकूं कहैहैः—परमात्मा अत्यंत बडा होनेतैं ब्रह्म कहियेहै। ताकूं जो जानताहै सो ब्रह्मवेत्ता है। यह **ब्रह्मवेत्ता** सर्वसैं अधिक तिसीहीं पर ब्रह्म-कूं **पावता है**। जातैं अन्यके विज्ञानतैं अन्यकी प्राप्ति नहीं होवैहै। औ ऐसैं "जो प्रसिद्ध इस परब्रह्मकूं जानताहै, सो ब्रह्महीं होवैहै" इत्यादिरूप अन्य श्रुति, स्पष्ट ब्रह्मवेत्ताकूं परब्रह्मकी प्राप्तिहीं दिखावैहै। यातैं ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मकूं पावताहै, यह कथन योग्य है॥ ननु, सर्वगत (सर्वका आत्मारूप) ब्रह्म है, ऐसैं यह श्रुति आगे कहैगी; यातैं प्राप्त होने योग्य ब्रह्म नहींहै। औ प्राप्ति जो है सो अन्य परिच्छिन्नकी अन्य परिच्छिन्नसैं देखीहै, औ ब्रह्म जो है सो अपरिच्छिन्न औ सर्वका आत्मा है; यातैं परिच्छिन्नकी न्यांई औ अनात्माकी न्याई ताकी प्राप्ति अघटित है? यह दोष बनै नहींः—कैसैंकि, ब्रह्मकी प्राप्ति औ अप्राप्तिकूं ज्ञान औ अज्ञानकी अपेक्षावाली होनेतैं। परमार्थतैं ब्रह्मरूप हुयेबी, औ भूतनके अंशकरि किये बाह्य परिच्छिन्न अन्नमयादिकविषै आत्मभावके देखनेवाले औ तिनविषै आसक्त चित्तवाले इस जीवकूं दशमकी संख्याकूं पूर्ण करनेवाले अंतरायसैं रहित हुये बी, दशमके स्वरूपकूं बाहिरके नवकी संख्यावाले पुरुषनविषै आसक्त चित्तवाला होनेकरि, स्वरूपके अभावके ज्ञानकी न्यांई परमार्थ ब्रह्मस्वरूपके अभावके ज्ञानरूप अविद्यासैं अन्नमयादिक बाहिरके अनात्म पदार्थनकूं आत्मापनैकरि प्राप्त भया होनैतैं, सो जैसैं

अन्नमयादिक अनात्मातैं मैं अन्य नहींहूं, यह मानताहै; ऐसैं इस जीवकूं अविद्यासैं, आत्मारूप हुयाबी ब्रह्म अप्राप्त होवैहै । औ[५९] जैसैं दशकी संख्याकूं पूर्ण करनेवाले दशमके स्वरूपकूं अविद्यासैं अप्राप्त होते किसीबी आप्त पुरुषकरि स्मरण कराये हुये तिसीहीं-की विद्यासैं प्राप्ति होवैहै, तैसैं अविद्यासैं ब्रह्मस्वरूपकी अप्राप्ति-वाले तिसीहीं जीवकूं श्रुतिकरि उपदेश किये सर्वात्मा ब्रह्मके आ-त्मभावके ज्ञानरूप विद्यासैं ताकी प्राप्ति संभवैहीं है ॥ "ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मकूं पावताहै" यह वाक्य सारीवल्लीके अर्थका सूचन कर-नेवाला होनेतैं सूत्ररूप है । "ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मकूं पावताहै" इस वाक्यकरि जाननेयोग्य होनेकरि सूचन किये, औ विशेष स्वरूप-के निर्द्धारसैं रहित ब्रह्मके सर्वतैं भिन्न करि जनाये विशेष स्वरूप-के समर्पणविषै समर्थ लक्षणके कथनसैं स्वरूपके निर्द्धारणकरि, औ [६०]संपूर्ण होनेकरि कथन किये ज्ञानवाले ब्रह्मके आगे कहनेके ल-क्षणके विशेषकरि प्रत्यगात्मा होनेकरि अनन्यरूपसैं जनावनेकी योग्यताअर्थ ब्रह्मवेत्ताकूं जो परब्रह्मकी प्राप्तिरूप ब्रह्मविद्याका फल कहा सो है ॥ सो सर्वात्मभाव सर्व संसारके धर्मतैं रहित ब्रह्मस्वरूप भावहीं है, अन्य नहीं; इस अर्थके दिखावने वास्ते यह ऋचा कहियेहैः— तिसीहीं ब्राह्मण वाक्यकरि उक्तअर्थ-विषै यह ऋचा उपदेश करीहै । सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है । यह वाक्य ब्रह्मके लक्षण अर्थ है । सत्य आदिक जे तीन पद हैं, वे विशेष्यरूप ब्रह्मके विशेषण अर्थ हैं । जानने योग्य होनेकरि कहनेकूं

५९ अदर्शनरूप निमित्तवाली अप्राप्तिका विवेचन करिके, अब दर्शन-रूप निमित्तवाली प्राप्तिका वर्णन करैहैं ।

६० पूर्व "ब्रह्मवित्" इस विशेषणसैं जिस ब्रह्मका ज्ञान क-हाहै, तिस ब्रह्मका "जो गुहाविषै स्थितकूं जानता है" इस वाक्यकरि प्रत्यगात्मरूपसैं ज्ञान कहनेकूं योग्य है, इस अर्थतैं अब ऋचा क-हियेहै ।

इच्छित होनेतैं, ब्रह्म विशेष्य है। जातैं ब्रह्म जाननेयोग्य होनेकरि मुख्यतासैं कहनेकूं इच्छित है, तातैं विशेष्यरूप जाननेकूं योग्य है। जातैं[61] अन्य विशेषण विशेष्य भावके होनेतैंहीं सत्यआदिक एक विभक्तिवाले पद, समान (एक) अधिकरण (अर्थ) वाले हैं, यातैं सत्य आदिक तीन विशेषणोकरि विशेष्य हुया जो ब्रह्म, सो अन्य विशेष्यनतैं निर्द्धार करियेहै। ऐसैंही[62] जो अन्योतैं निर्द्धार कियाहै, ऐसा ताका ज्ञान होवैहै। जैसैं लोकविषै "नील औ बडी सुगंधीवाला कमल है" तैसैं॥ ननु[63], विशेष्य जो है सो अन्य विशेषणके तांई व्यभिचारकूं पावताहुया विशेष्य होवैहै, जैसैं नील औ रक्त कमल है। जब अनेकद्रव्य एक जातिवाले औ अनेक विशेषणोके संबंधी होवैं, तब विशेषणकूं अर्थवान्पना (सफलपना) होवैहै; परंतु एकहीं वस्तुविषै अन्य विशेषणके असंबंधतैं विशेषणकूं अर्थवान्पना नहीं है। जैसैं यह एक सूर्य है, औ तैसैं एकहीं ब्रह्म है, अन्य ब्रह्म नहींहै; जिनतैं नील कमलकी न्यांई यह ब्रह्म विशेष्य (भिन्न किया) होवै? सो[64] कथन बनै नहीं:—काहेतैं,

---

६१ विशेषण औ विशेष्यभावकी प्रतीति काहेतैं होवै है? तहां कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—नील औ बडे सुगंधवाला कमल है, इत्यादि वाक्यविषै विशेषण विशेष्य भावके होतेहीं समानाधिकरणपनेकरि एक विभक्तिरूप अंतवाले प्रसिद्ध हैं, औ यह बी तिसप्रकारके नाना अर्थगत विशेषण औ विशेष्य भावके किये हैं; ऐसैं जानियेहै।

६२ अब विशेषण विशेष्यभावके फलकूं कहैहैं।

६३ अब विशेषण विशेष्य भावके तांई पूर्ववादी आक्षेप करै है। इहां यह अर्थ है:— नीलपनेकूं व्यभिचार पावनेवाला कमल रक्त बी संभवैहै; यातैं नील, कमलका विशेषण घटै है, तैसैं सत्यता आदिककूं व्यभिचार पावनेवाला अन्य ब्रह्म, लोकप्रसिद्ध नहीं है; तातैं सजातीय अवच्छेदके अभावतैं ब्रह्म औ सत्यादिकका विशेषण विशेष्यभाव नहीं घटताहै।

६४ विशेषण विशेष्य भावकूं तात्पर्यसैं प्रतिपादन करनेकूं योग्य

विशेषणकूं लक्षणके अर्थ होनेतैं । जातैं विशेषण जे हैं वे लक्षणरूप अर्थकी मुख्यतावाले हैं, विशेषणकी मुख्यतावालेहीं नहीं; यातैं यह दोष नहीं है ॥ ननु, तब लक्षण औ लक्ष्यका वा विशेषण औ विशेष्यका कौन भेद है ? तहां कहियेहैः– विशेषण जे हैं वे विशेष्यके समान जातिवाले द्रव्यनतैंहीं निवर्तक हैं, औ लक्षण जो है सो लक्ष्यका सर्वतैंहीं निवर्तक है; जैसैं अवकाशका देनेवाला आकाश है; यह आकाशका लक्षण जो है, सो आकाशरूप लक्ष्यका पृथिवी आदिक सर्वतैं निवर्तक (भेदक) है, तैसैं । औ लक्षण अर्थ "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है" यह वाक्य है, ऐसैं हम कहतेहैं ॥ सत्यादिक शब्द जे हैं, वे परस्पर संबंधकूं पावते नहीं, पर (अन्य) अर्थवाले होनेतैं । जातैं वे विशेष्यके अर्थ हैं, यातैं एकएक विशेषणरूप शब्द जो है, सो परस्परकी अपेक्षासैं रहित हुया; "सत्य ब्रह्म है, ज्ञान ब्रह्म है, अनंत ब्रह्म है" ऐसैं ब्रह्मशब्दसैं संबंधकूं पावताहै । जिसरूपसैं जो निश्चित है, औ तिसरूपके तांई व्यभिचारकूं पावता नहीं, सो सत्य है; अरु जिसरूपसैं निश्चित हुया जो तिसरूपके तांई व्यभिचारकूं पावताहै, सो मिथ्या, ऐसैं कहियेहै । यातैं विकार (कार्य) मिथ्या है "वाणीका आलंबन विकार नाममात्र है, औ मृत्तिकाहीं सत्य है" औ ऐसैं सतूहीं सत्य है "इस निश्चयतैं । यातैं "सत्य ब्रह्म है" ऐसैं सत्यशब्द जो है, सो ब्रह्मकूं विकारतैं निवृत्त करैहै ॥ इसतैं ब्रह्मकूं कारणपना प्राप्त भया, औ कारणकूं कारकपना औ वस्तुरूप होनेतैं मृत्तिकाकी न्याई जडरूपपना प्राप्त भया; यातैं "ज्ञान ब्रह्म है" यह कहियेहै । इहां ज्ञानशब्द जो है सो निर्विशेष चेतनमात्ररूप अर्थवाला है; काहेतैं, सत्य औ अनंत शब्दकरि सहित ब्रह्मका

होनेतैं, औ अव्याकृत आदिक शास्त्र उक्त ब्रह्म पदके अर्थके अवच्छेदसैं अनिर्वाच्य विशेषण विशेष्यभावके संभवतैं तिसद्वारा ब्रह्मका लक्षण कहनेकूं इच्छित है, ऐसैं कहे हैं ।

विशेषण होनेतैं । जातैं सत्यता औ अनंतता जो है सो ब्रह्मकूं ज्ञानके कर्तापनैके हुये संभवै नहीं, औ ज्ञानका कर्ता होनेकरि विकारवान् हुया जो ब्रह्म, सो सत्य औ अनंत कैसैं होवै ? जो वस्तु किसीतैं वी विभागकूं पावता नहीं, सो अनंत है । ब्रह्मकूं ज्ञानके कर्तापनैके हुये, सो ब्रह्म, ज्ञेय औ ज्ञान दोनूंकरि विभागकूं प्राप्त होवैगा, यातैं ताकूं अनंतता नहीं होवैगी । काहेतैं, "जहां अन्यकूं नहीं जानताहै सो भूमा है, औ जहां अन्यकूं जानताहै सो अल्प है" इस अन्य श्रुतितैं ॥ जो कहै "अन्यकूं नहीं जानता है" ऐसैं प्रपंचके निषेधतैं आत्माकूं जानता है ? सो बनै नहीं:—काहेतैं, उक्त वाक्यकूं भूमाके लक्षणके प्रकारके परायण होनेतैं । "जहां अन्यकूं नहीं देखताहै" इत्यादि रूप जो वाक्य है, सो भूमाके लक्षणके प्रकारके परायण है । जैसैं "प्रसिद्धहीं अन्यकूं देखता है," याकूं लेके "जहां सो प्रसिद्ध अन्य वस्तु नहीं है, सो भूमा है," ऐसैं भूमाका स्वरूप तिस वाक्यविषै जनाईयेहै; अन्यके ग्रहणकी प्राप्तिके निषेधरूप अर्थवाला होनेतैं स्वस्वरूपविषै ज्ञानरूप क्रिया नहीं है । यातैं यह उक्त श्रुतिवाक्य इसीहीं अर्थके परायण होहु । औ स्वस्वरूपविषै भेदके अभावतैं ज्ञानका असंभव है; औ आत्माकूं ज्ञेयपनैके हुये ज्ञाताके अभावका प्रसंग होवैगा; काहेतैं ताकूं ज्ञेयपनैकरिहीं उपयोगकूं पाया होनेतैं ॥ जो कहै एकहीं आत्मा ज्ञेय होनेकरि औ ज्ञाता होनेकरि दोनूंप्रकारका होवैहै ? सो बनै नहीं:— काहेतैं, ताकूं एककालविषै निरवयव होनेतैं । जातैं निरवयवकूं एककालविषै ज्ञेयपनैका औ ज्ञातापनैका संभव नहींहै, औ आत्माकूं घटादिककीन्यांई ज्ञेयपनैके हुये ज्ञानके उपदेशकी व्यर्थता होवैगी । जातैं घटादिककीन्यांई प्रसिद्धवस्तुके ज्ञानका उपदेश अर्थवान् नहींहै, तातैं ब्रह्मकूं ज्ञातापनैके हुये अनंतताका असंभव होवैगा, औ सत्मात्रपना अघटित होवैगा । ज्ञानके कर्त्तापनै आदिक विशेषणकरि युक्तपनैके हुये सत्मात्रपना संभवै नहीं;

काहेतैं, "सो सत्य है" इस अन्य श्रुतितैं। तातैं सत्य औ अनंतशब्द-करि सहित ब्रह्मका विशेषण होनैकरि ज्ञानशब्दके उच्चारतैं, यह ज्ञानशब्द चेतनमात्ररूप अर्थवाला है। यातैं ज्ञानशब्द जो है, सो "ज्ञान ब्रह्म है" ऐसैं कर्तापनै आदिक कारककी निवृत्ति अर्थ औ मृत्तिका आदिककीन्यांई जडरूपताकी निवृत्ति अर्थ बनताहै ॥ "ज्ञानरूप ब्रह्म है" इस वचनतैं ब्रह्मकूं अंतवान्पना प्राप्त भया; काहेतैं, लौकिक ज्ञानके अंतवान्पनैके देखनेतैं। यातैं ताकी निवृत्ति अर्थ अनंत है, ऐसैं श्रुति कहैहै ॥ जो कहै सत्य आदिक विशेषणनकूं मिथ्या आदिक धर्मकी निवृत्तिके परायण होनेतैं औ विशेष्य ब्रह्मकूं कमल आदिक विशेष्यकी न्यांई अप्रसिद्ध होनेतैं "मृगतृष्णाके जलविषै स्नानकूं प्राप्त हुया, औ आकाशके पुष्पका किया है मुकुट जिसनैं, औ शशशृंगके धनुषका धारण करनेवाला यह वंध्याका पुत्र जाता है," या वाक्यकी न्यांई सत्यादिरूप वाक्यकूं शून्यरूप अर्थवान्पनाहीं प्राप्त होवैगा ? सो[६५] बनै नहीं:– काहेतैं, सत्यादिरूप वाक्यकूं लक्षणरूप अर्थवाला होनेतैं। सत्यादि पदनकूं विशेषणपनैके हुये बी लक्षणरूप अर्थकी मुख्यता है, ऐसैं हम कहतेहैं। जातैं लक्ष्यकूं शून्यरूप हुये लक्षणका वचन व्यर्थ होवैहै, यातैं सत्यादिरूप वाक्यकूं लक्षणरूप अर्थवाला होनेतैं शून्यरूप अर्थवान्पना नहीं है, ऐसैं हम मानते हैं।

---

६५ सिद्धतामात्रकरि विशेष्यताके संभव हुये अन्यप्रमाणका विशेषण व्यर्थ होवैगा; काहेतैं, केवल व्यतिरेकके अभावतैं औ रज्जु सर्पादिरूप मिथ्या अर्थके सत्रूप अधिष्ठानवान्पनैके देखनेतैं, दृश्यता आदिक हेतुनसैं मिथ्यापनैकरि जानेहुये प्रपंचकूं बी सत्रूप अधिष्ठानवान्पना संभवै है। प्रपंचका अधिष्ठान होनेकरि निश्चय किये तिस ब्रह्मके स्वरूपके विशेष लक्षण अर्थ यह वाक्य है, तातैं इस वाक्यकूं असत् अर्थवान्पना नहीं है; ऐसैं कहे हैं।

[66]सत्यादि शब्दनकूं विशेषणरूप अर्थकरि युक्तहुये बी अपने अर्थका अपरित्याग हीं होवैहै। जातैं सत्यादि शब्दनकूं शून्यरूप अर्थकरि युक्त हुये विशेष्यके नियामकपनैका असंभव होवैगा, औ सत्यादिरूप अर्थकरि अर्थवान्पनैके हुये तो तिसतैं विपरीत धर्मवाले विशेष्यनतैं ब्रह्मरूप अपने विशेष्यका नियामकपना संभवै है; यातैं ब्रह्मशब्द बी अपने अर्थकरि अर्थवान्हीं है। तहां अनंत शब्द जो है सो अंतवान्पनैके निषेधद्वारा विशेषण है औ सत्य अरु ज्ञान शब्द तो अपने अर्थके अर्पण करनेसैंहीं विशेषण होवैहैं। "तिसैं[67] (ब्राह्मणभाग करि प्रतिपादित) वा इस (मंत्रभाग करि) प्रतिपादित आत्मातैं," इस वाक्यमैं ब्रह्मविषैहीं आत्मशब्दके जोडनेतैं, ज्ञाताका आत्माहीं ब्रह्म है "औ इस आनंदमय आत्माकूं प्रवेश करावता है" औ "ताकूं सृजिके ताहीकेप्रति पीछे प्रवेश करता भया" ऐसैं ताके प्रवेशतैं। जातैं ताही परब्रह्मके जीवरूपसैं शरीर विषै प्रवेशकूं श्रुति दिखावैहै, यातैं ज्ञाताका स्वरूप ब्रह्म है॥ [68]जब ऐसैं है, तब आत्मा होनैतैं ब्रह्मकूं ज्ञानका कर्तापना होवैगा।

---

६६ सत्यादिशब्दनकी विशेषणरूप अर्थवान्ताकूं अंगीकार करिके कहै हैं। इहां यह अर्थ है:- नील महत्सुगंध, ऐसै विशेषणरूप पद जे हैं, वे अपने अर्थके समर्पणसैं तातैं विरुद्ध अर्थतैं अपने आश्रय (विशेष्य)के व्यावर्तक प्रसिद्ध हैं; तैसैं सत्यशब्द बी अबाधित सत्ताविषै वर्तता है, औ ज्ञानशब्द स्वप्रकाश संवेदनविषै वर्तता है, औ "अनंतकी उपमावाला आकाश है" इत्यादि स्थलमैं अनंतशब्द व्यापकविषै वर्तता है। तातैं अपने अर्थके समर्पणसैं विरोधि अर्थतैं अपने आश्रयके व्यावर्तक होनेतैं सत्यादि शब्दनका व्यावृत्तिमात्ररूप अर्थविषै पर्यवसान (वर्तना) नहीं है।

६७ "अनंत है" इस पदकरि ब्रह्मकी आत्मासैं एकता कही है, इस अभिप्रायसैं एकताविषै शास्त्रके तात्पर्यकूं दिखावैहैं।

६८ जब ब्रह्मकी आत्मासैं एकता कहनेकूं इच्छित है, तब ज्ञान शब्दकी भावरूप साधनताकी व्याख्या भंग होवैगी; ऐसैं पूर्व पक्षी कहैहै।

जातैं आत्मा ज्ञाता है, यह प्रसिद्ध है; औ "सो कामना करता भया" ऐसैं कामनावाले परमेश्वरकूं ज्ञानका कर्तापना प्रसिद्ध है, यातैं ज्ञानका कर्ता होनेतैं चेतनमात्ररूप ब्रह्म है; यह कथन अयुक्त होवैगा। औ ऐसैं मानेहुये अनित्यताके प्रसंगतैं, जब ब्रह्मकूं चेतनमात्र ज्ञानस्वरूपता है, तथापि अनित्यता औ परतंत्रता प्राप्त होवैहै; काहेतैं, धातुके अर्थनकूं कारककी अपेक्षावाले होनेतैं। जातैं ज्ञान धातुका अर्थ है, यातैं इस ज्ञानकूं अनित्यता औ परतंत्रता है? सो[६९] कथन बनै नहीं:—काहेतैं, स्वरूपसैं भिन्न होनेकरि कार्यपनेके उपचारतैं। जातैं चेतनमात्ररूप जो ज्ञान है, सो आत्माका स्वरूप है, तातैं भिन्न नहींहै; यातैं नित्यहीं है; तथापि चक्षु आदिक इंद्रियद्वारा विषयाकार परिणामकूं पावनेवाली बुद्धिरूप उपाधिके जे शब्दादिक विषयाकार प्रकाश हैं, वे आत्मस्वरूप ज्ञानके विषयरूप उत्पन्न हुयेहीं आत्मस्वरूप ज्ञानसैं व्याप्त संभवैहैं, तातैं आत्मस्वरूप विज्ञानके प्रकाश जे हैं, वे विज्ञानशब्दके वाच्य औ धातुके अर्थरूप हुये आत्माकेहीं विकाररूप धर्म हैं; ऐसैं अविवेकी पुरुषनकरि कल्पना करियेहैं। परंतु जो ब्रह्मका विज्ञान है, सो सूर्यके प्रकाशकी न्यांई औ अग्निके उष्णकी न्याई ब्रह्मस्वरूपसैं अभिन्न हुया स्वरूपहीं है, औ सो अन्य सर्व पदार्थनकूं तिसकरि अभिन्न देश काल औ आकाश आदिक कारणवाले होनेतैं औ ताकूं निरतिशय सूक्ष्म होनेतैं तिसकूं अन्य कारणकी अपेक्षावाला नहीं; काहेतैं, नित्य स्वरूप होनेतैं। औ[७०]

---

६९ वृत्तिवाले अंतःकरणसैं उपहित होनेकरि आत्माकूं ज्ञातापना है, स्वरूपतैं नहीं; औ ज्ञानकूं अंतःकरणकी वृत्तिसैं उपहित होनेकरि कार्यपना है, तातैं आत्मासैं अभिन्नताके हुयेबी ब्रह्मकूं ज्ञानका कर्तापना (ज्ञातापना) नहीं है, औ कार्यपना बी नहीं प्राप्त होवैहै, ऐसैं कहैहैं।

७० ज्ञान जब नित्य है तब तिसविषै ब्रह्मके कर्तापनैके अभाव हुये

सूक्ष्म अंतरायसहित दूरी स्थित भूत भविष्यत् वा वर्तमान वस्तु जाननेकूं अयोग्य नहीं है; तातैं सो ब्रह्म सर्वज्ञ है। "हस्तपादसैं रहित हुया, वेगवान्, औ ग्रहण कर्ता है, अरु सो चक्षुरहित हुया देखताहै, कर्णरहित हुया सुनताहै, सो जानने योग्य वस्तुकूं जानताहै, औ ताका जाननेवाला नहीं है, ताकूं मुख्य बडा पुरुष कहते हैं" इस मंत्रके वर्णनतैं। औ "विज्ञाताकी विज्ञप्तिका लोप नहीं है, अविनाशी होनेतैं"। औ "तातैं दूसरा नहीं है" इत्यादि श्रुतितैं। औ विज्ञाताके स्वरूपकरि अभेदतैं करण आदिक निमित्तकी अपेक्षासैं रहित होनेतैं ब्रह्मकूं ज्ञानस्वरूपताके हुये बी नित्यताकी सिद्धि है। यातैं नित्य आत्मस्वरूप होनेतैं ब्रह्मरूप ज्ञानधातुका अर्थ नहीं है, याहीतैं (नित्य होनेतैं) ज्ञानका कर्ता ब्रह्म नहीं है। तातैंहीं ज्ञानशब्दका वाच्य बी सो ब्रह्म नहीं है। तथापि ताके आभासके वाचक बुद्धिके धर्मविशेष जे हैं, वे ज्ञान-

---

ब्रह्मकूं सर्वज्ञपना कैसैं है? तहां कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—ज्ञानके अंतरायसैं विनाहीं बाहिरके विषयकी सिद्धि होवैहै, औ सर्ववस्तु ज्ञानस्वभाववाले ब्रह्मसैं अंतराय रहित है, यातैं ब्रह्म सर्वज्ञ है, ऐसैं आरोपकरि कहियेहै।

७१ ब्रह्म अनित्य है, ज्ञानरूप होनेतैं, लौकिक ज्ञानकी न्याई; इत्यादिरूप जो प्रश्न है; सो कथन करी युक्तिसैं निषेध किया ऐसैं कहैहैं। इहां यह भाव है:—लौकिक ज्ञानकूं करण आदिककी अपेक्षासहित होनेतैं अनित्यपना है, औ आत्मस्वरूप ज्ञान तो करण आदिककी अपेक्षासहित नहीं; काहेतैं, सकल करणके व्यापारके उपराम हुये बी सुषुप्तिविषै ताके सद्भावतैं, अन्यथा सुषुप्तिकी सिद्धिके असंभवतैं, सुषुप्तितैं ऊठे पुरुषकूं सुषुप्तिके स्मरणके असंभवके प्रसंगतैं; यातैं श्रुतितात्पर्यके विषयरूप अर्थविषै सामान्यतैं देखेहुये अर्थका प्रवेश नहींहै।

७२ तब ज्ञानरूप ब्रह्म है, यह प्रयोग कैसैं होवैहै? तहां कहैहैं।

शब्दसैं लखियेहैं, परंतु नहीं कहियेहैं; काहेतैं, शब्दकी प्रवृत्तिके हेतु जाति आदिक धर्मसैं रहित होनेतैं। तैसैं सत्य शब्दसैं वी वाच्य ब्रह्म नहीं है। ब्रह्मकूं सर्व प्रपंचकी निवृत्तिकरि युक्त स्वरूपवाला होनेतैं, बाह्यसत्ताके भेदकूं विषय करनेवाले सत्यशब्दसैं ब्रह्म सत्य है, ऐसैं लखियेहै; परंतु सत्यशब्दका वाच्य ब्रह्म नहीं है। ऐसैं सत्यादिक[७३] शब्द जे हैं वे परस्परकी संन्निधिविषे परस्परकरि नियम करनेयोग्य अर्थके नियामक हुये ब्रह्मकूं सत्य आदिक शब्दके वाच्य होनेतैं, ताके निवर्तक औ लक्षण अर्थ होवैहैं। यातैं[७४] "जिसतैं अप्राप्त होयके मनसहित वाणियां निवृत्त होवैहैं" औ "इस अनिरुक्त (वाणीके अविषय) औ आधारसैं रहित ब्रह्मविषै अभय स्थितिकूं पावताहै" इत्यादि श्रुतिकरि प्रतिपादित ब्रह्मका अवाच्यपना औ नीलकमलकी न्यांई वाक्यका अर्थपना सिद्ध भया॥ ऐसैं कथन किया जो ब्रह्म, सो कार्यमय बुद्धिरूप गुहाविषै अनुस्यूत जो अव्याकृत (माया) नामवाला प-

---

७३ ऐसैं एक एक शब्दके अर्थकूं कहिके अब सारे वाक्यके अर्थकूं कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—यद्यपि सत्यादि शब्दनका ब्रह्मसैं मुख्य अन्वय है, तथापि वे शब्द परस्परकी संनिधिके हुये परस्परकी व्यावृत्तिके नियामक होवैहैं। ज्ञानरूप विशेषणकरि युक्त होनेतैं सत्य शब्द जड कारणविषै वर्तता नहीं, औ सत्यरूप विशेषणकरि युक्त होनेतैं ज्ञानशब्द विषयकी अपेक्षासहित ज्ञानविषै वर्तता नहीं, औ ज्ञानरूप विशेषणकरि युक्त होनेतैं अनंतशब्द ज्ञातासैं भिन्न अर्थविषै वर्तता नहीं। तातैं सत्यादि शब्दसैं लौकिक वाच्य जो है, तिसतैं विलक्षण अर्थ होना चाहिये; ऐसैं निश्चय करावते हुये सकल लौकिक अध्यासनके अधिष्ठानकूं ब्रह्म होनेकरि लखावते हैं।

७४ तातैं क्या सिद्ध भया? तहां कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—वाचककी शक्तिकूं बोधताके अंगीकारतैं ब्रह्मकूं अवाच्यपना है, औ सकल अनिष्टकी निवृत्तिसैं एकहीं वस्तुकी लक्ष्यताके अंगीकारतैं, ब्रह्मकूं गुणगुणी आदिक भेदरूप वाक्यार्थतैं विलक्षणता सिद्ध भई।

रम आकाश है, तिसविषै स्थित है ॥ जातैं इस बुद्धिविषै ज्ञान ज्ञेय औ ज्ञातारूप पदार्थ गूढ वर्त्ततेहैं, यातैं बुद्धि गुहा कहियेहै । वा इस बुद्धिविषै भोग औ मोक्षरूप दोनूं पुरुषार्थ गूढ हैं, यातैं बुद्धि गुहा कहियेहै । वा "हे गार्गी ! इस अक्षर (ब्रह्म)विषै निश्चयकरि आकाश है" इस श्रुतिविषै अव्याकृतकूं ब्रह्मकी संनिधितैं पर (उत्कृष्ट) आकाशरूपता है । सो अव्याकृतरूप आकाशहीं गुहा है; काहेतैं, ताकूं तीन कालविषै कारण होनेतैं, औ सूक्ष्म होनेतैं तिसविषै बी सर्व पदार्थ गूढ वर्त्तते हैं, यातैं सो अव्याकृतरूप आकाश गुहा कहिये है; तिसविषै ब्रह्म स्थित है । ऐसैं अन्योंके अभिप्रायसैं व्याख्यान करिके अब आपके अभिप्रायका व्याख्यान करै हैंः—अथवा हृदय अवच्छिन्न जो भूताकाश, सो परम व्योम है, तिसविषै जो बुद्धिरूप गुहा है, तहां साक्षी होनेकरि ब्रह्म स्थित है, यह व्याख्यान युक्त है,

---

७५ व्योमशब्दकी भूताकाशविषै जो रूढिवृत्ति है, ताकूं परित्याग करिके अव्याकृतकूं विषय करनेपना क्या व्याख्यान किया ? तहां कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः—भूताकाशकूं कार्य होनेकरि अश्रेष्ठ होनेतैं, औ अव्याकृतरूप आकाशकूं कारण होनेकरि परमता (श्रेष्ठता)रूप विशेषणके संभवतैं, औ अन्य शाखाके शतपथ नाम प्रकरणविषै अक्षररूप ब्रह्मसैं ता अव्याकृत आकाशकी समीपताके निश्चयतैं, इहां व्योमशब्दसैं अव्याकृत (माया) लखियेहै ।

७६ हृदयकरि अवच्छिन्न भूताकाशविषै जो बुद्धिरूप गुहा है, तिसविषै साक्षी होनेकरि निहित (प्रकट) ब्रह्म है, ऐसैं व्याख्यान करना युक्त है; काहेतैं, द्रष्टासैं अभेदकरि ब्रह्मकूं अपरोक्षपनैके लाभतैं । अन्यथा समष्टिरूप अव्याकृत मायातत्वविषै स्थित ब्रह्म है, ऐसैं कहेहुये ब्रह्मकूं परोक्षपना प्राप्त होवैगा; औ ब्रह्मका परोक्षपनैसैं जो ज्ञान है सो अपरोक्ष संसारके अध्यासका निवर्तक नहीं होवैगा । तातैं अपरोक्ष द्रष्टा चैतन्यसैं अभेदकरि ब्रह्मकूं अपने हृदयविषै प्रत्यक्षपनैकरि कहनेकूं इच्छित होनेतैं, विज्ञानका साधनरूप हृदयाकाशहीं इहां व्योमशब्दसैं कहनेकूं इच्छित है ।

काहेतैं, इस श्रुतिविषै ज्ञानका साधन होनेकरि आकाशकूं कहनेकूं इच्छित होनेतैं । औ "जो प्रसिद्ध बाहिर पुरुषाकाश है, औ जो प्रसिद्ध सो भीतर पुरुषाकाश है, सो यह भीतर हृदयाकाश है" इस अन्य श्रुतितैं हृदयाकाशका परम (उत्कृष्ट) स्वरूप प्रसिद्ध है । तिस हृदयाकाशविषै जो बुद्धिरूप गुहा है, तिसविषै स्थित जो ब्रह्म है, सो वृत्तिसैं सूक्ष्म होनेकरि जानियेहै । अन्यथा (प्रतीति विना) ब्रह्मकूं विशिष्ट देश औ कालका संबंध नहीं है; काहेतैं, सर्वगत होनेतैं औ सर्व उपाधिसैं रहित होनेतैं ॥ ऐसैं कथन किये बुद्धिरूप गुहाविषै अनुस्यूत अव्याकृत नामवाले परम आकाशविषै वा हृदयकरि अवछिन्न **परम आकाशविषै** वर्तमान बुद्धिरूप **गुहाविषै स्थित ब्रह्म-कूं जो पुरुष जानता है, सो सर्व** भोग-नकूं भोगताहै ॥ क्या अस्मदादिककी न्याई पुत्र औ स्वर्ग आ-दिक भोगनकूं क्रमकरि भोगताहै ? तहां कहियेहैः—एक क्षणविषै आरूढहीं भोगनकूं सूर्यके प्रकाशकी न्यांई नित्य ब्रह्मस्वरूप अ-भिन्न, औ जाकूं सत्य औ ज्ञानरूप कहतेहैं, ऐसैं एकहीं ज्ञानकरि ब्रह्मरूपसैं भोगताहै; कहिये, ब्रह्मभूत जो विद्वान्, सो ज्ञानरूप होनेतैं **सर्वज्ञ ब्रह्मस्वरूपसैंहीं सर्व भोगनकूं एक कालविषै भोगताहै** । परंतु जलगत सूर्य औ आकाश आदिककी न्यांई उ-पाधिकृत प्रतिबिंबभूत संसारी स्वरूपसैं पुण्य आदिक निमित्तकी अपेक्षावाले औ चक्षु आदिक कर्णकी अपेक्षावाले लोकविषै प्रसिद्ध भोगनकूं क्रमकरि भोगता नहीं, किंतु उक्तप्रकारसैं सर्वज्ञ सर्वात्मा नित्य ब्रह्मात्मस्वरूपसैं पुण्यादि निमित्तकी अपेक्षासैं रहित औ चक्षु आदिक करणकी अपेक्षासैं रहित सर्व भोगनकूं साथिहीं भोगताहै,

---

७७ इहां यह अर्थ हैः—अविद्या अवस्थाविषै जो हिरण्यगर्भ आदिक उपाधिनविषै भोग्य होनैकरि मानेहुये सुखके भेद हैं, तिन सर्वकूं ब्रह्मानं-दसैं अभिन्न होनेतैं ब्रह्मभूत तो विद्वान् है, सो इन सर्व आनंदनकूं भोग-ताहै; ऐसैं उपचारसैं बहुवचन है ।

सर्वज्ञ ब्रह्मस्वरूपसैं जो भोगताहै, सो ताका विपश्चित् (पंडित) पना है । इहां मूलशब्दविषै "इति" शब्द जो है सो मंत्रकी समाप्ति अर्थ है । सर्वहीं वल्लीका अर्थ "ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मकूं पावता है" इस ब्राह्मण वाक्यसैं सूचन किया, सो अर्थ संक्षेपतैं मंत्रकरि व्याख्यान किया; फेर तिसीहीं अर्थका विस्तारसैं निर्णय कर्तव्य है, यातैं उक्त मंत्रकी वृत्ति (व्याख्या) स्थानीय, आगिला, ग्रंथ आरंभ करियेहै । तहां मंत्रकी आदिविषै "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है" ऐसैं कहा, सो कैसैं सत्य ज्ञान अनंतरूप है ? तहां पूर्वउक्त अर्थका अनुवाद करते हुये कहैहैं:—अनंतपना जो है सो देशतैं कालतैं औ वस्तुतैं, इस भेदकरि तीन प्रकारका है । जैसैं देशतैं अनंत आकाश है ताका देशतैं परिच्छेद नहीं है, परंतु आकाशका कालतैं औ वस्तुतैं अनंतपना नहीं है; काहेतैं, कार्यरूप होनेतैं । ऐसैं ब्रह्मकूं आकाशकीन्यांई कालतैं बी अंतवान्पना नहीं है; काहेतैं, अकार्यरूप होनेतैं । जातैं कार्यरूप जो वस्तु है सो कालतैं परिच्छेदकूं पावताहै, औ ब्रह्म अकार्यरूप है तातैं कालतैं बी अनंत है । तैसैं ब्रह्मका वस्तुतैं बी अनंतपना है; काहेतैं, सर्व वस्तुनसैं अभिन्न होनेतैं । जातैं भिन्न जो वस्तु है सो अन्य वस्तुका अंत होवैहै, अन्यवस्तुकी बुद्धि प्राप्त हुई अन्य वस्तुतैं निवृत्त होवैहै । जातैं जिसके बुद्धिकी निवृत्ति होवैहै, सो ताका अंत है । जैसैं गौपनैकी बुद्धि अश्वपनेतैं निवृत्त होवैहै, यातैं गौपना जो है सो अश्वपनैका अंत है; ऐसैं सो अंतवान्हीं होवैहै । औ सो अंत आपतैं भिन्न वस्तुनविषै देख्याहै । जातैं ऐसैं ब्रह्मका किसीतैं भेद नहींहै, यातैं ब्रह्मका वस्तुतैं बी अनंतपना है ॥ फेर ब्रह्मकूं सर्व वस्तुनसैं अभिन्नपना कैसैं है ? तहां कहियेहै:—सर्व वस्तुनका कारण होनेतैं ब्रह्मकूं सर्वसैं अभिन्नपना है । जातैं काल औ आकाश आदिक सर्व वस्तुनका कारण ब्रह्म है, यातैं सो घटादिकसैं अभिन्न मृत्तिकाकी न्यांई औ सर्प दंडादिकसैं अभिन्न रज्जुकी न्यांई सर्व वस्तुनसैं अभिन्न है ।

जो कहै, कार्यकी अपेक्षासैं ब्रह्मकूं वस्तुतैं अंतवान्‌पना होवैगा? सो बनै नहीं:—काहेतैं, कार्यरूप वस्तुकूं मिथ्या होनेतैं। जातैं कारणसैं भिन्न कार्य वास्तवतैं नहीं है, औ जातैं कारणतैं कार्यकी बुद्धि निवर्त होवैहै, "वाणीका आलंवन विकार नाममात्र है, मृत्तिकाहीं सत्य है;" "ऐसैं सत्‌रूपहीं सत्य है" इस अन्य श्रुतितैं। तातैं आकाश आदिकका कारण होनेतैं प्रथम देशतैं अनंत ब्रह्म है। जातैं आकाश देशतैं अनंत है, यह प्रसिद्ध है; ताका यह कारण है, तातैं आत्माका देशतैं अनंतपना सिद्ध भया। जातैं व्यापकतैं व्यापक उत्पन्न हुया कछु नहीं देखियेहै। यातैं आत्माका जो देशतैं तथा अकार्यरूप होनेकरि कालतैं औ तिसतैं भिन्न वस्तुके अभावतैं अनंतपना है, सो निरतिशय (सर्वसैं अधिक) है। याहीतैं ताका निरतिशय सत्यपना है॥ ईहां इस कहनेके वाक्यविषै जो "तिस" शब्द है, तिसकरि मूलके वाक्यसैं सूचन किया ब्रह्म ग्रहण करियेहै औ "इस" शब्दकरि जो ब्रह्महीं ब्राह्मण भागसैं सूचन किया। औ जो "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है" इस वाक्यकरि अनंतरहीं लखायाहै, सो ग्रहण करियेहै। **तिस इस आत्मस्वरूप ब्रह्म-तैं आकाश उत्पन्न भया।** सो आकाश शब्द गुणवाला है, औ मूर्त्तरूप द्रव्यनकूं अवकाशका देनेवाला है। तिस आकाशतैं अपनै स्पर्श गुणकरि औ पूर्वके आकाशके गुण शब्दकरि दोगुणवाला वायु उत्पन्न भया। औ वायुतैं अपनै रूपगुणकरि औ पूर्वके शब्द औ स्पर्श गुणकरि तीन गुणवाला अग्नि उत्पन्न भया। अग्नितैं अपनै रस गुणकरि औ

---

७८ ऐसैं सृष्टिवाक्यके तात्पर्यकूं कहिके, अब पदनका विभाग करैहैं। अंतके कार्यपर्यंत सर्वत्र परमात्माके ग्रहण होनेतैं आकाशभावकूं प्राप्त भये परमात्मातैंहीं वायु उत्पन्न भया, याहीतैं ताके गुणकी आगे अनुवृत्ति है। ऐसैं जानना।

पूर्वके शब्द आदिक तीन गुणकरि च्यारी गुणवाले जल उत्पन्न भये। जलोंतैं अपनै गंधगुणकरि औ पूर्वके शब्दआदिक च्यारी गुणनकरि पांच गुणवाली पृथिवी उत्पन्न भई। पृथिवीतैं औषधियां। औषधीनतैं अन्न। अन्नतैं रेत (वीर्य)। रेततैं मस्तक औ हस्त आदिक आकृतिवाला पुरुष उत्पन्न भया। सो[७९] प्रसिद्ध यह पुरुष अन्न रसमय है; कहिये, अन्नके रसका विकार है॥ जातैं सर्व अंगनतैं उत्पन्न भया, औ पुरुषके आकारसैं संभवकूं पाया जो तेज, सो रेत औ बीज कहियेहै। तातैं जो जन्मताहै सोबी तैसा पुरुषके आकारवाला होवैहै; काहेतैं, सर्व जातिनविषै उत्पन्न होनेवाले शरीरनकूं पिताके आकारके नियमके देखनेतैं॥ सर्व शरीरनकूं अन्नके रसकी विकारताके औ ब्रह्मके वंशविषै उत्पत्तिकी तुल्यताके हुये, इहां पुरुष (मनुष्यशरीर) हीं किस कारणतैं ग्रहण करियेहै ? तहां कहियेहैः—प्रधान होनेतैं (विधि औ निषेधके विवेकके सामर्थ्यकरि युक्त होनेतैं) इहां पुरुषहीं ग्रहण करियेहै॥ फेर पुरुषका प्रधानपना क्या है ? तहां कहियेहैः कर्म औ ज्ञानका अधिकार पुरुष शरीरविषैहीं हैः—काहेतै, ताकूं समर्थ होनेतैं, औ अर्थी (इच्छावाला) होनेतैं। जातैं अर्थी विद्वान् औ समर्थ हुया पुरुष कर्म औ ज्ञानविषै अधिकारकूं पावता है, यातैं ताकी प्रधानता है। औ पुरुषपनेविषै (ब्राह्मण आदिक जातिवाले मनुष्य आदिक देहविषै) आत्मा [ज्ञानके अतिशयके देखनेतैं] अतिशयकरि प्रकट है। जातैं सो (पुरुष) विज्ञानकरि अत्यंत संपन्न हुया ज्ञात वस्तुकूं कहताहै; ज्ञात वस्तुकू देखताहै, कल्ह होनेवाले कार्यकूं जानताहै, लोक औ अलोककूं जानताहै, मरने योग्य (ज्ञानकर्मके साधन शरीर)सैं अमृत (अक्षय फल) कूं पावनेकूं इच्छताहै। ऐसैं संपन्न है, औ "अन्य पशुनकूं क्षुधा तृषाकाहीं ज्ञान है" इत्यादिरूप ऐत्तरेयक श्रुति वाक्यके देखनेतैं॥ सोई पुरुष इहां विद्यासैं अत्यंत आंतर ब्रह्मकूं पावनेकूं

---

७९ पंचकोशके आरंभका तात्पर्य कहैहैं।

इच्छताहै। औ जाकी अनात्मारूप बाह्य आकारनके भेदनविषै किसीबी आश्रयके तांई आत्माकी भावनाकूं प्राप्त भई जो बुद्धि, सो तत्काल अत्यंत आंतर प्रत्यगात्माकूं विषय करनेवाली औ निराश्रय करनेकूं अशक्य है; यातैं देखेहुये शरीररूप आत्माकी तुल्यताकी कल्पनासैं शाखाचंद्रके दृष्टांतकी न्यांई भीतर प्रवेश करावते हुये कहैहैं:—**तिस इस अन्नरसमय पुरुष-का यहहीं प्रसिद्ध शिर है**। शिरसैं रहित प्राणमय आदिकविषै शिरभावके देखनेतैं इहां (अन्नमय कोशविषै) बी ताका प्रसंग मति होहू; या अभिप्रायसैं इहां यहहीं शिर है, ऐसैं कहियेहै। इस प्रकार याके पक्ष आदिकविषै बी योजना करनी। **औ यह** पूर्वदिशाके सन्मुख हुये पुरुषका **दक्षिण** बाहु जो है, सो **दक्षिण** (दाहिना) **पक्ष है। औ यह** वाम बाहु **उत्तर** (वाम) **पक्ष है। औ यह** मध्यम देहका भाग अंगनका **आत्मा है** " इन अंगनका मध्य आत्मा है " इस श्रुतितैं। **औ यह** नाभिके नीचे जो अंग है, सो **पुच्छ प्रतिष्ठा** (आधार) **है**। जिसकरि शरीर स्थित होवैहै, ऐसा जो पाद, सो प्रतिष्ठा कहिये है। जैसैं गौका पुच्छ है, तैसैं यह नीचेके आश्रयकी तुल्यतातैं पुच्छकी न्यांई पुच्छ कहिये है। ईसैं कथनकरि आगे कहनेके प्राणमय आदिक कोशनके मूषाविषै गेरेहुये प्रगलित ताम्रके प्रतिमाकी न्याई रूपकपनेकी सिद्धि होवै है। **तिसी हीं** ब्राह्मणवाक्यकरि उक्त अर्थ-विषै (अन्नमयके स्वरूपका प्रकाशक) **यह श्लोक** (मंत्र) **होवैहै** ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

---

८० पक्ष औ पुच्छ शब्दके उच्चारणतैं पक्षीके आकारकी कल्पनाकूं दिखावैहैं। आगे ताकी कल्पनासैं बाह्य विषयकी आसक्तिके निषेधकी हेतु बुद्धिके आत्माविषै स्थिर करनेके अर्थ है; उपासनाका विधान इहां कहनेकूं इच्छित नहीं।

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते । याः काश्च पृथिवीꣳ श्रिताः । अथो अन्नेनैव जीवन्ति । अथैनदपि यन्त्यन्ततः । अन्नꣳ हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वौषधमुच्यते । सर्वं वैतेऽन्नमाप्नुवन्ति । येऽन्नं ब्रह्मोपासते । अन्नꣳ हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वौषधमुच्यते । अन्नाद्भूतानि जायन्ते । जातान्यन्नेन वर्द्धन्ते । अद्यतेऽत्ति च भूतानि । तस्मादन्नं तदुच्यत इति ॥ तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयात् अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्राण एव शिरः । व्यानो दक्षिणः पक्षः । अपानउत्तरः पक्षः । आकाश आत्मा । पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

टीकाः—रस[८१]आदिक सप्त धातुभावसैं परिणामकूं प्राप्त भये अन्नतैं

---

८१ इहां यह रहस्य हैः—उपक्रम औ उपसंहारकी, ब्रह्म औ आत्माकी एकताके प्रतिपादनसैंहीं समाप्तितैं, ग्रंथके मध्यमैं उपासनाकी विधिविषै तात्पर्यके हुये वाक्यभेदके प्रसंगतै, याहीतैं "अंतविषै स्तुतिपर अर्थके होनेतै" इस न्यायकरि जैसैं प्रयाज आदिकके फलका श्रवण अर्थवाद है, तैसैं अन्नमयआदिकके ज्ञानके फलका श्रवण बी अर्थवादहीं है; काहेतैं, तिस तिस कोशविषैं बुद्धिके स्थिरकरनेकूं पूर्व पूर्व कोशगत बुद्धिके विलयसैं आत्माके निश्चयका साधन होनेतैं ।

प्रसिद्ध जे केइक विलक्षण । पृथिवीकूं आश्रय करनेवाली स्थावर जंगमरूप प्रजा हैं, वे सर्व उत्पन्न होवैहैं, औ उत्पन्न हुई अन्नसैंहीं जीवैहैं (प्राणनकूं धारण करे हैं), पीछे अंतविषै (जीवनरूप वृत्तिकी समाप्तिकेहुये) इस अन्नके तांई लीन होवै हैं। काहेतैं कि, जातैं अन्न जो है सो भूतन (प्राणिन) के मध्य ज्येष्ठ है; कहिये, प्रथम उत्पन्न भया है। जातैं अन्न, अन्नमय आदिक अन्यभूतनका कारण है। यातैं सर्व प्रजा अन्नतैं उपजे हैं, औ अन्नतैं जीवैहैं, औ अन्नविषै लय होवैहैं । जातैं ऐसैं है, तातैं अन्न जो है सो सर्व प्राणिन–का देहके दाहकी निवृत्ति करनेवाला औषध कहियेहै ॥ अब अन्नरूप ब्रह्मके जाननेवाले पुरुषकूं फल कहियेहैः–जे पुरुष उक्त प्रकारके अन्नरूप ब्रह्मकूं उपासतेहैं, वे निश्चयकरि सर्व अन्न (अन्नके समूह) कूं पावतेहैं । केसैं कि, जातैं मैं अन्नतैं उपज्याहूं औ अन्नरूप हूं औ अन्नविषै लय होउंगा, तातैं अन्न ब्रह्म है; ऐसैं जानियेहै ॥ फेर अन्नरूप आत्माका उपासन जो है, सो सर्व अन्नकी प्राप्तिरूप फलवाला काहेतैं है? तहां कहिये हैः–जातैं अन्न जो है सो भूतनके मध्य ज्येष्ठ है, प्रथम उपज्या होनेतैं, तातैं सर्वका औषध कहिये है। तातैं सर्व अन्नरूप आत्माके उपासककूं सर्व अन्नकी प्राप्ति बनै है। अन्नतैं भूत (प्राणी) उपजते हैं। औ उपजेहुये अन्नसैं वृद्धिकूं पावतेहैं। यह फेर जो कथन है, सो प्रसंगकी समाप्तिअर्थ है ॥ अब अन्न शब्दका अर्थ कहियेहैः–जातैं जो अन्न (अन्नमय कोशरूप स्थूल शरीर) भूतनकरि भक्षण करिये है; औ आप भूतनकूं भक्षण करैहै, तातैं सो अन्न कहियेहै इहां मूलविषै जो "इति" शब्द है, सो प्रथम कोशकी समाप्तिअर्थ है ॥ अब अन्नमयसैं आदि लेके आनंदमय कोशपर्यंत जे आत्मा हैं, तिनतैं अत्यंत आंतर जो ब्रह्म है, ताकूं अनेक तुषाके दूरी करनेकरि तंडुलनकी न्याई विद्यासैं अविद्याकृत पंचकोशनके दूरी करनेकरि प्रत्य-

गात्मारूपसैं दिखावनेकूं इच्छताहुया शास्त्र, कहनेका आरंभ करैहैः- **तिस इस** कथन किये **अन्न रसमय** पिंड–तैं **अन्य** (भिन्न) **भीतर** पिंडकी न्याईहीं आत्मापनैकरि मिथ्या कल्पित **आत्मा प्राणमय है,** कहिये, प्राण जो वायु तिस रूप है । **तिस** प्राणम-य–**करि** वायुसैं लुहारके ग्रहकी खालकी न्याई **यह** अन्नरसमय आत्मा **पूर्ण है । सो प्रसिद्ध यह** प्राणमयरूप आत्मा, शिर औ पक्ष आदिक अंगनसैं **पुरुषके आकारवालाहीं है** ॥ क्या सो आपहीं पुरुषके आकारवाला है ? तहां नहीं, ऐसैं कहैहैंः–प्रथम अन्नमयरूप आत्माकूं पुरुषके आकारकरि युक्तपना प्रसिद्ध है । **तिस** अन्नरस–**की पुरुष आकारताके पीछे** मूषाविषे गेरेहुये प्रगलित ताम्रके प्रतिमाकी न्यांई **यह** प्राणमय **पुरुषके आकार-वाला है,** स्वरूपतैं नहीं । ऐसैं पूर्व पूर्व कोशकी पुरुष आकारता-के पीछे पीछला पीछला कोश पुरुषके आकारवाला होवैहै, औ पूर्व पूर्व कोश । पीछले पीछले कोशकरि पूर्ण है ॥ इस प्राणमयकूं पुरुषकी आकारता कैसैं हैं ? तहां कहियेहैः–**तिस** प्राणमय कोशरूप पक्षी–**का प्राणहीं शिर है;** कहिये, वायुके विकार प्राणमय को-शका मुख औ नासिकातैं निकस्याहुया वृत्ति विशेषरूप जो प्राण है, सो शिरकी न्यांई कल्पना करियेहै; काहेतैं, श्रुतिविषे कथन किया होनेतैं । ऐसैं सर्व ठिकानैं श्रुतिके कथनतैंहीं पक्ष आदिककी कल्पना है ॥ **औ ताका व्यान** (व्यानरूप प्राणकी वृत्ति) **द-क्षिण पक्ष है । अपान उत्तर** (वाम) **पक्ष है । आकाश आत्मा है;** कहिये, जो आकाशविषे स्थित वृत्तिविशेषरूप समान नामवा-ला वायु है, सो याका आत्माकी न्यांई आत्मा (स्वरूप) है; काहेतैं, ताकूं प्राणकी वृत्तिनविषै श्रेष्ठ होनेतैं, औ नाभिरूप मध्य-देशविषै, स्थित होनेतैं, अन्य अंतविषे स्थित वृत्तिनकी अपेक्षासैं सो आत्मा है । “ इन अंगनका मध्य आत्मा है ” इस श्रुतिविषे मध्यभागमैं स्थित वस्तुका आत्मापना प्रसिद्ध है ॥ **औ याकी पृ-**

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति । मनुष्याः पशवश्च ये । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यते । सर्वमेव त आयुर्यन्ति । ये प्राणं ब्रह्मोपासते । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात् अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः तस्य यजुरेव शिरः । ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः । आदेश आत्मा । अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

थिवी पुच्छरूप प्रतिष्ठा (आधार) है, जातैं अध्यात्मरूप प्राणकी पृथिवीरूप देवता धारण करनेवाली है, स्थितिकी हेतु होनेतैं ॥ औ "सो यह पृथिवी पुरुषके अपानकूं धारण करिके स्थित है" इस अन्य श्रुतितैं । अन्यथा शरीरका उदान वृत्तिसैं उर्ध्व गमन होवैगा; वा भारी होनेतैं पतन होवैगा; तातैं प्राणमयरूप आत्माकी पृथिवी देवता पुच्छरूप प्रतिष्ठा है। तिसीहीं अर्थ-विषै (प्राणमयरूप आत्माकूं विषय करनेवाला) यह श्लोक (मंत्र) होवैहै ॥ १ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

टीकाः—जातैं प्राणके पीछे देव प्राणन (जीवन) कूं करैहैं

८२ आत्मशब्दके असुख्य अर्थताके प्रसंगतैं, औ प्रसंगविषै प्राप्तअर्थके ग्राहक एतत् शब्दके विरोधतैं । यातैं सर्व कोशनके अध्यासका अ-

कहिये, अग्नि आदिक जे देव हैं, वे प्राणन क्रियाकी शक्तिवाले वायुरूप प्राणके पीछे तिसके स्वरूपभूत हुये प्राणनरूप कर्मकूं करैहैं (प्राणनरूप क्रियासैं क्रियावाले होवैहैं)। वा अध्यात्मरूपके अधिकारतैं देव जे इंद्रिय, वे मुख्य प्राणके पीछे चेष्टा करैहैं। तैसैं जे **मनुष्य और पशु हैं,** वे प्राणनरूप क्रियासैंहीं चेष्टावाले होवैहैं। यातैं परिच्छिन्न अन्नमयरूप आत्मासैंहीं प्राणी आत्मावाले नहीं होवैहैं; किंतु ता अन्नमयके अंतर्गत साधारणरूपहीं सर्व पिंडविषै व्यापी प्राणमयसैं बी मनुष्य आदिक प्राणी आत्मावाले होवैहैं। ऐसैं पूर्व पूर्वविषै व्यापी उत्तर उत्तर सूक्ष्मरूप आकाश आदिक भूतनसैं आरंभ किये अविद्या रचित मनोमयसैं आदिलेके आनंदमय पर्यंत आत्मासैं सर्व प्राणी आत्मावाले होवैहैं। तैसैं आकाश आदिकके कारण नित्य अविकारी सर्वगत सत्य ज्ञान अनंतरूप पंचकोशातीत सर्व स्वरूप स्वाभाविक आत्मासैं बी सर्व प्राणी आत्मावाले होवैहैं। जातैं सो परमार्थतैं सर्वका आत्मा है, यातैं यह कथन बनैहै। यह अर्थतैं कथन किया होवैहै ॥ देव जे हैं, वे प्राणके पीछे जीवनरूप क्रियाकूं करैहैं; ऐसैं कहा, तातैं क्या सिद्ध भया? तहां कहैहैं:– **जातैं प्राण भूतनका** (प्राणिनका) **आयु** (जीवन) **है**। "जहांलागि इस शरीरविषै प्राण वसताहै, तहांलागि आयु है" इस अन्य श्रुतितैं। **तातैं प्राण सर्वका आयु कहियेहै**। जातैं लोकविषै प्राणके गमन हुये मरणकी प्रसिद्धितैं प्राणकूं सर्वका आयुपना प्रसिद्ध है, यातैं इस बाह्य असाधारण अन्नमयरूप आत्मातैं निकसिके तिसविषै आत्मबुद्धिकूं त्यागिके, याके भीतर साधारण **प्राण**-मय आत्मारूप ब्रह्मकूं "मैं प्राण हूं, सर्व भूतनका आत्मा औ जीवनका हेतु होनेतैं आयु हूं," ऐसैं

धिष्ठानरूप चिदात्माहीं इहां आत्मशब्दसैं कहनेकूं इच्छित है; इस तात्पर्यकूं कहैहैं। इहां अर्थतैं "इस" शब्दका आत्मशब्दके सामर्थ्यतैं औ कल्पितकूं अधिष्ठानपनेके असंभवतैं यह अर्थ है।

जे उपासते हैं, वे इसलोकविषै सर्वहीं आयुकूं पावतेहैं, कहिये, आयुके क्षयतैं पूर्व अपमृत्युसैं मरते नहीं। "सर्व आयुकूं पावतेहैं" इस श्रुतिकी प्रसिद्धितैं वे सौ (१००) वर्षपर्यंत तो जीवतेहैं, यह युक्त है। तहां क्या कारण है किः—जातैं प्राण भूतनका आयु है, तातैं, सर्वका आयु कहिये है। जो जिस गुणवाले ब्रह्मकूं उपासताहै; सो तिस गुणवाला होवैहै। इहां विद्याके फलकी प्राप्तिके हेतु अर्थ फेर कथन है। जो यह प्राणमय है, यहहीं तिस पूर्वके अन्नमयका शरीर (अन्नमय) विषै होनेवाला आत्मा है॥ तिस प्रसिद्ध इस प्राणमयतैं अन्य अंतर आत्मा मनोमय है, कहिये, संकल्प विकल्पमय वृत्तिरूप अंतःकरण स्वरूप तो मनोमय है, सो यह प्राणमयके भीतर आत्मा है। तिस मनोमय-करि यह प्राणमय पूर्ण है। सो प्रसिद्ध यह मनोमय पुरुषके आकारवाला है। ता प्राणमय-की पुरुष आकारताके पीछे यह मनोमय पुरुषके आकारवाला है। ताका यजुर्वेदहीं शिर है औ ऋग्वेद दक्षिण पक्षहै, सामवेद उत्तर पक्ष है। आदेश (ब्राह्मणभाग) आत्मा है। अथर्वांगिरस (अथर्ववेद) पुच्छरूप प्रतिष्ठा है। अनियमित अक्षरनकरि युक्त अंतके पदवाला मंत्रविशेष यजुर् कहियेहै; ताके समान जातिवाले मंत्रनका वाची यजुः शब्द है, ताकूं मनोमयका शिरपना है, प्रधान होनेतैं। औ जातैं स्वाहाकार आदिक यजुर्वेदके मंत्रसैं हवि देईताहै, तातैं याग आदिकविषै उपकार करनेतैं ताका प्रधानपना है। वा सर्वठिकानें शिर आदिककी जो कल्पना है, सो कथनमात्र है। ईहां[८३] मनकी स्थान

---

८३ इहां "यजुः" शब्दसैं बाहिरका यजुर्वेद कहियेहै। ता यजुर्वेदकूं भीतरके मनोमयकेप्रति शिरपना कैसैं होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं। इहां यह अर्थ हैः—यद्यपि यजुः शब्द बाहिरके शब्दके समूहविषै वर्तता है, तथापि श्रुतिकूं अतिशय शंका करनेके अयोग्य होनेतैं, ताके प्रमाणभावतैं विशिष्ट मनकी वृत्ति यजुके संकेतकी विषयभूत, औ

प्रयत्न नाद औ स्वरकरि पूर्ण पद अरु वाक्यकूं विषय करनेवाली तिनके संकल्परूप तिनकी भावनावाली वृत्ति जो है, सो श्रोत्रादि करणद्वारा यजुर्वेदके संकेतसैं विशिष्ट हुई "यजुर्" ऐसैं कहियेहै। ऐसैं ऋक् है, औ ऐसैं साम है । ऐसैं मंत्रनकूं मनोवृत्तिरूपताके हुये मनकी वृत्तिहीं आवर्तन करियेहै, यातैं मानस जप संभवैहै, अन्यथा विषयरूप होनेतैं घटादिककी न्यांई मंत्र, आवृत्ति करनेकूं शक्य नहीं-है; यातैं मानस जप संभवै नहीं, औ मंत्रकी आवृत्ति संभवैहै ॥ जो कहै, वहुलताकरि कर्मनविषै अक्षरनकी स्मृतिकी आवृत्तिसैं मंत्र की आवृत्ति होवैहै ? सो वनै नहीं:—काहेतैं, मुख्य अर्थके असंभव-तैं । "तीन वार प्रथमकी ऋचाकूं पीछे कहैहै, तीन वार पीछली ऋचाकूं पीछे कहैहै" ऐसैं ऋचाकी आवृत्ति सुनियेहै । तहां ऋ-चाकी विषयताके हुये ताकी स्मृतिकी आवृत्तिसैं मंत्रकी आवृत्तिके कियेहुये "तीनवार प्रथमकी ऋचाकूं पीछे कहैहै" ऐसैं विधान किया जो ऋचाकी आवृत्तिरूप मुख्यअर्थ, ताका परित्याग होवै-गा । ⁸⁴तातैं मनोवृत्तिरूप उपाधिकरि परिच्छिन्न मनोवृत्तिविषै स्थित आदिअंतसैं रहित आत्मचैतन्य यजुःशब्दका वाच्य है, औ आ-त्माके विज्ञानरूप मंत्र हैं । ऐसैं हुये वेदनकूं नित्यताकी प्राप्ति हो-वैहै, अन्यथा विषयरूपताके हुये रूपादिककी न्यांई अनित्यता हो-वैगी, यह युक्त नहीं है । औ "सर्व वेद जहां एक होवै हैं, सो मनविषै स्थित आत्मा है" यह श्रुति, नित्य आत्मासैं ऋगादिक वेदनकी एकताकूं कहतीहुई तिनकी नित्यताविषै अनुकूल होवैगी औ "विश्वके आधार अक्षर (ब्रह्म) रूप इस परम आकाशविषै विधि

"यजुर्वेदकूं हम पढतेहैं," औ इस क्रमवाले अक्षर यजुर्वेदपनैकरि अध्ययन करनेकूं योग्य हैं, इस संकल्परूप ग्रहण करनेकूं योग्य है।

८४ मंत्रनकी मनोवृत्तिरूपताकूं कहिके, अब मनोवृत्तिनकी सदा चेत-नसैं व्याप्त होनेकरिहीं सिद्धितैं चेतनरूपताकूं कहैहैं ।

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कदाचनेति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य श्रद्धेव शिरः । ऋतं दक्षिणः पक्षः । सत्यमुत्तरः पक्षः । योग आत्मा । महः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

निषेधमय ऋचारूप वेद तादात्म्यकरि स्थित हैं" यह मंत्रका वर्णन नित्य आत्मासैं तिनकी एकता दिखावैहै । इहां आदेश नाम ब्राह्मणभागका है। जातैं सो कर्तव्यके भेदनकूं उपदेश करैहै, तातैं आदेश कहियेहै । औ अथर्वांगिरा ऋषिनैं देखे जे मंत्र औ ब्राह्मण, वे आंगिरस कहियेहैं । वे शांतिक औ पौष्टिक आदिक प्रतिष्ठाके हेतु कर्मकी प्रधानतातैं पुच्छरूप प्रतिष्ठा है । तिसींहीं अर्थ–विषै (मनोमयरूप आत्माका प्रकाशक) यह श्लोक होवैहै ॥ १ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

टीकाः–जिसतैं मनसहित वाणियां अप्राप्त होयके निवर्त होवैहैं । ब्रह्मके आनंदकूं जाननेवाला कदाचित् भयकूं पावता नहीं।

---

८५ इहां यह अर्थ हैः–ब्रह्मकूं वाणी औ मनका विषयपना नहीं संभवै है; काहेतैं, अपने स्वरूपविषै वर्तनेके विरोधतैं । यातैं वाणी औ मनकरि विशिष्ट मनोमयतैं मनसहित वाणीयां निवृत्त होवैहैं ।

८६ इहां यह अर्थ हैः–तिस मनोमयरूप ब्रह्मकी उपासनाका फलभूत-

जो यह मनोमय है यहहीं तिस पूर्वले प्राणमय-का शरीर (प्राणमय) विषै स्थित आत्मा है। तिस प्रसिद्ध इस मनोमयतैं अन्य अंतर आत्मा विज्ञानमय है। मनोमय जो है सो वेदरूप कहा, औ वेदके[८७] अर्थकूं विषय करनेवाली जो निश्चयरूप बुद्धि सो विज्ञान है, सो विज्ञान निश्चयरूप अंतःकरणका धर्म है। तिसरूप हुया प्रमाणस्वरूप निश्चयरूप ज्ञानोसैं निर्वाह किया जो आत्मा, सो विज्ञानमय है। जातैं प्रमाणके ज्ञानपूर्वक यज्ञादिक करिये है, औ तिस विज्ञानकूं जो यज्ञादिककी हेतुता है, सो आगे मंत्रसैं कहियेगी। ऐसैं कहा जो विज्ञानमय, तिसकरि यह मनोमय पूर्ण है। सो प्रसिद्ध यह विज्ञानमय पुरुषके आकारवालाहीं है। ता मनोमय-की पुरुष आकारताके पीछे यह विज्ञानमय पुरुषके आकारवाला होवैहै। ताका श्रद्धाहीं शिर है। जातैं निश्चयरूप विज्ञानवाले पुरुषकूं करनेयोग्य अर्थनविषै पूर्व श्रद्धा संभवैहै, यातैं सो सर्व कर्तव्यनके मध्य प्रथम होनेतैं शिरकी न्यांई शिर है। औ ताका ऋत दक्षिणपक्ष है। सत्य उत्तरपक्ष है। योग जो चित्तकी एकाग्रता, सो आत्माकी न्यांई आत्मा है। जातैं समाधानवाले युक्त पुरुषकूं श्रद्धा आदिक अंगकी न्यांई यथार्थ निश्चयविषै समर्थ होवैहैं, तातैं समाधानरूप योग विज्ञानमयका आत्मा है औ प्रथम उत्पन्न भया महत्पना है, सो पुच्छरूप प्रतिष्ठा है। "महान् यक्ष (प्रकाश) प्रथमजन्य है" इस अन्य श्रुतितैं सो महत्पना प्रथम उपज्या है, यह कारण होनेतैं पुच्छरूप प्रतिष्ठा है। जातैं कारण जो है सो कार्यनकी प्रतिष्ठा है, जैसैं वृक्ष औ वेलिनकी प्रतिष्ठा (आ-

---

अधिदैविक आनंदका जाननेवाला, गर्भवास आदिक दुःखतैं भयकूं पावता नहीं।

८७ तैसैं व्यवसायरूप लौकिक ज्ञान बी ग्रहण करनेकूं योग्य है, यह अर्थ है। "यह घट है" यह ज्ञान, व्यवसायरूप है।

विज्ञानं यज्ञं तनुते । कर्म्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवाः सर्वे । ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते । विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद । तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति । शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्वान् कामान् समश्नुत इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति॥१॥

इति पंचमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

धार) पृथिवी है । तैसैं सर्व बुद्धिरूप विज्ञानोंका महत्पना कारण है । तिस हेतुकरि सो महत्तत्व तिस विज्ञानमयरूप आत्माकी प्रतिष्ठा है । तिसीहीं अर्थ-विषै (विज्ञानमयरूप आत्माका प्रकाशक) यह श्लोक होवैहै । जैसैं ब्राह्मणविषै उक्त अन्नमय आदिकनके प्रकाशक श्लोक हैं, तैसैं । ऐसैं सर्वमयकूं (सर्व वस्तुकूं) बी विज्ञानका कर्तापना है ॥ १ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

टीकाः–विज्ञान यज्ञकूं विस्तारता है । जातैं विज्ञानवान् पुरुष श्रद्धा आदिपूर्वक यज्ञकूं करता है, यातैं विज्ञानकूं यज्ञका कर्तापना है । औ कर्मनकूं बी विस्तारता है । जातैं सर्व विज्ञानका कर्तापना है, तातैं विज्ञानमयरूप आत्मा ब्रह्म है; यह युक्त है । किंवा सर्व इंद्र आदिक देव विज्ञानरूप ज्येष्ठ (प्रथम उत्पन्न)

ब्रह्मकूं उपासते हैं (ध्यावते हैं) । सर्वतैं प्रथम उत्पन्न होनेतैं, वा सर्व वृत्तिनकूं ताके पूर्वक होनेतैं, विज्ञान प्रथम उत्पन्न भया कहिये है । जातैं तिस विज्ञानमय ब्रह्मविषै अभिमान करिके देव उपासते हैं, तातैं वे देव महत् ब्रह्मकी उपासनातैं ज्ञान औ ऐश्वर्यवाले होवैहैं । तिस विज्ञानरूप ब्रह्मकूं जब जानता है । औ केवल जानताहीं है ऐसैं नहीं, किंतु तिसँ ब्रह्म-तैं जब प्रमादकूं पावता नहीं, तब शरीरविषै पापनकूं छोडिके सर्व भोगनकूं भोगता है । जातैं सर्व पाप शरीरके अभिमानरूप निमित्तवाले हैं; औ तिनका छत्रके नाश हुये छायाके नाशकी न्यांई विज्ञानमय ब्रह्मविषै आत्माके अभिमानतैं शरीरके अभिमानरूप निमित्तके नाश भये नाश संभवै है, तातैं शरीरके अभिमानरूप निमित्तवाले औ शरीरविषै होनेवाले सर्व पापनकूं शरीरविषैहीं छोडिके विज्ञानमय ब्रह्मस्वरूपकूं प्राप्त हुया, तिसविषै स्थित सर्व भोगनकूं विज्ञानमय स्वरूपसैंहीं सम्यक् भोगताहै । जो यह विज्ञानमय है, यहहीं तिस पूर्वले मनोमय-का शरीर (मनोमय)विषै होनेवाला आत्मा है । तिस प्रसिद्ध इस विज्ञानमयतैं अन्य अंतर आत्मा आनंदमय है । मुँख्यतातैं औ विकारके वाची "मय" शब्दतैं यह आनंदमय कार्यरूपसैं प्रतीतिवाला है । जातैं अन्नमयादिक कार्यरूप भौतिक इहां मुख्यताकूं पायेहैं, औ तिस मुख्यताकूं प्राप्त हुया आनंदमय है, औ इहां "मय" शब्द जो है, सो अन्नमयकी न्यांई

---

८८ बाहिरके अनात्माविषैहीं आत्माकी भावनाके होनेतैं विज्ञानरूप ब्रह्मविषै आत्माकी भावनातैं प्राप्त जो प्रमाद है, ताकी निवृत्तिअर्थ "तिसतैं जब प्रमादकूं पावता नहीं" कहिये जब अन्नमय आदिकविषै आत्मभावकूं छोडिके केवल विज्ञानमय ब्रह्मविषै आत्मापनैकूं भावना करताहुया स्थित होवैहै, ऐसैं कहिये है ।

८९ आनंदमयकोश परमात्मा है, ऐसैं वृत्तिकारोनैं कहा है; ताके निषेधसैं व्याख्यान करैहैं ।

विकाररूप अर्थविषै देख्याहै । तातैं औ संक्रमणतैं (इस आनंद-मयकूं लंघिके जानेतैं) यह आनंदमय कार्यरूप प्रतीति करनेकूं योग्य है । औ "आनंदमयरूप आत्माकूं लंघिके जाता है" ऐसैं आगे अष्टम अनुवाकविषै कहियेगा । औ कार्यरूप अनात्माका लंघना देख्याहै । जैसैं "अन्नमयरूप आत्माकूं लंघिके जाताहै" इस वाक्यविषै उल्लंघन करनेरूप क्रियाका विषय होनेकरि अन्न-मयरूप आत्मा सुनिये है; तैसैं "आनंदमयरूप आत्माकूं लंघिके जा-ताहै" इस वाक्यविषै उल्लंघन करनेरूप क्रियाका विषय होने-करि आनंदमयरूप आत्मा सुनिये है। यातैं यह आनंदमय कार्यरूप प्रतीति करनेकूं योग्य है । औ आत्माकाहीं उल्लंघन करना नहीं होवैहै; काहेतैं, अधिकारके विरोधतैं औ असंभवतैं । जातैं आत्मा-सैंहीं आत्माका उल्लंघन संभवै नहीं; काहेतैं, स्वस्वरूपविषै भेद-के अभावतैं । औ तिस उल्लंघन करनेवालेका आत्मारूप ब्रह्म है, ताकूं शिरं आदिककी कल्पनाके असंभवतैं । जातैं उक्त लक्षणवाले आ-काश आदिकके कारण औ कार्यनविषै अप्राप्त ब्रह्मविषै शिर आदिक अवयवरूपकी कल्पना नहीं संभवैहै; काहेतैं, "अदृश्य औ अनात्म्य (अशरीर) औ अवाच्य औ अनाधार इस ब्रह्मवि-षै" "स्थूल नहीं अणु नहीं," "ऐसैं नहीं ऐसैं नहीं," इत्यादि प्रपंचके निषेधकी श्रुतिनतैं, औ[९१] मंत्रके उदाहरणके असंभवतैं, औ जातैं प्रिय वृत्तिरूप शिर आदिक अवयवकरि विशिष्ट प्रत्यक्ष अ-नुभूयमान आनंदमय आत्मारूप ब्रह्मविषै, ब्रह्म नहीं है, ऐसी

---

९० आनंदमयके परमात्मभावके असंभवविषै अन्य हेतुनकूं कहैहैं ।

९१ जब आनंदमयके परमात्मभावके कहनेकी इच्छा होवै तब मंत्रतैं ताहीके असद्भावकी आशंका कहनेकूं योग्य है । ताके असंभवतैं आनंद-मय जो है सो परमात्मभावकरि नहीं प्राप्त होवै है; ऐसैं कहे हैं ।

आशंकाके अभावतैं । "जब असत् ब्रह्म है, ऐसैं जानता है; तब असत्हीं होवैहै" यह मंत्रका उदाहरण नहीं संभवैहै । औ "ब्रह्म पुच्छरूप प्रतिष्ठा है" ऐसैं आनंदमयतैं भिन्न ब्रह्मका प्रतिष्ठापनैकरि ग्रहण अघटित होवैगा; तातैं कार्यनविषै प्राप्त भया यह आनंदमय जो है, सो परमात्मारूप आनंद नहीं है । ऐसैं विद्या औ कर्मका फलरूप तिस परमात्मारूप आनंदका विकार (कार्य) आनंदमय है । औ सो[९२] विज्ञानमयतैं भीतर है; काहेतैं यज्ञादिकके हेतु विज्ञानमयके अंतरपनेकी श्रुतितैं कर्ताकी अपेक्षासैं भोक्ताकूं अनंतरपना प्रसिद्ध है । जातैं ज्ञान[९३] औ कर्मका फल जो है सो भोक्ताके अर्थ होनेतैं अत्यंत आंतर होवैहै, यातैं आनंदमयरूप आत्मा पूर्वले अन्नमय आदिकनतैं अत्यंत आंतर है । औ जातैं विद्या अरु कर्मकूं प्रियआदिक फलके लिये क्रियमाण विद्या अरु कर्मता है, तातैं फलरूप प्रिय आदिक वृत्तिनकूं आत्माके संबंधतैं विज्ञानमयकूं आंतरपना संभवैहै । जातैं स्वप्नविषै प्रियआदिककी वासनाकरि निर्वाह किया आनंदमय, विज्ञानमयके आश्रित देखियेहै; तातैं तिस आनंदमयकूं मुख्य आत्मापना नहींहै । ऐसैं कथन किया जो आनंदमयरूप आत्मा,

---

९२ विशिष्ट वस्तुकूं विशेषणका कार्य होनेतैं "मैं सुखी हूं" ऐसैं प्रतीयमान हुया भोक्ता आनंदमय है, ऐसैं कहा । तिस आनंदमयका विज्ञानमयतैं आंतरपना कैसैं है ? इहां यह अर्थ है:—कर्ताकी अपेक्षासैं भोक्तापनैका पीछे होनेपना प्रसिद्धहीं श्रुतिनैं कहा है ।

९३ अब याहीकूं स्पष्ट करै हैं । इहां यह अर्थ है:—आनंदके साधन शरीरादिकतैं, साध्य आनंदकरि विशिष्ट आनंदमय अत्यंत आंतर सिद्ध होवै है । किंवा प्रिय औ प्रियके साधनका उद्देशकरिके कर्ता (विज्ञानमय) जो है, सो उपासना औ कर्मका अनुष्ठान करताहै । तातैं उद्देशके योग्य होनेतैं इस आनंदमयका अनंतरपना (आंतरपना) सिद्ध है, ऐसैं कहैहैं ।

तिसकरि यह विज्ञानमय पूर्ण है। सो प्रसिद्ध यह आनंदमय पुरुषके आकारवालाहीं है। तिस विज्ञानमय-की पुरुष आकारताके पीछे यह आनंदमय पुरुषके आकारवाला है। तिस आनंदमयरूप आत्मा-का बी इष्ट पुत्र आदिकके दर्शनसैं जन्य प्रियवृत्ति शिरकी न्यांई शिर है, मुख्य होनेतैं। प्रियवस्तुके लाभरूप निमित्तसैं भया जो हर्ष, सो मोद कहियेहै। सो मोद दक्षिण पक्ष है औ सोई मोदरूप हर्ष अतिशय हुया प्रमोद कहियेहै, सो प्रमोद उत्तरपक्ष है। प्रिय आदिक सुखके अवयवनके मध्य सामान्य सुखरूप जो आनंद, सो आत्मा है। तिन प्रिय आदिकनविषे अनुस्यूत होनेतैं ब्रह्म, आनंद औ पर (सर्वोत्कृष्ट) कहियेहै। जातैं सो ब्रह्म, शुभ कर्मकरि पुत्र औ मित्र आदिक विषय विशेषरूप उपाधिके समीप स्थित हुये अज्ञानकरि आवृत औ प्रसन्न (एकाग्र) भई अंतःकरणकी वृत्तिविशेषविषै प्रकट होवैहै, यातैं सो विषयसुख है; ऐसैं लोकविषै प्रसिद्ध है। तिस वृत्तिविशेषके कारण कर्मकूं अस्थिर होनेतैं, तिस विषय सुखकूं क्षणिकपना है। सो जो अंतःकरण, अज्ञानके नाशक तपकरि विद्याकरि ब्रह्मचर्यकरि श्रद्धाकरि जहांलगि निर्मलताकूं पावता नहीं तहांलगि अंतर्मुख औ प्रसन्न (एकाग्र) भये अंतःकरणके वृत्तिविशेषविषै आनंद बहुत होवै है। सो[९४] आगे सप्तम अनुवाकविषै कहियेगाः—"रसहीं सो है, जातैं यह रसकूंहीं पायके आनंदी होवै है। यहहीं आनंद करावता है" ऐसैं। औ "इसीहीं आनंदकी मात्रा (लेश)के तांई अन्य भूत उपजीविकाकूं करैहैं." इस अन्य श्रुतितैं। ऐसैं[९५] हुये इच्छाकी निवृत्तिकी अधिकताकी अपेक्षासैं आ-

९४ ब्रह्मकी आनंदस्वभावताविषैहीं क्या प्रमाण है? तहां कहैहैं।

९५ अंतःकरणकी वृत्तिके उत्कर्षतैंहीं आनंदका सातिशयपनाहै, यामैं लिंग कहै हैं। इहां यह अर्थ हैः—जब कोईक विषयसैं जन्य होनेकरि आनंदका उत्कर्ष होवै, तब निष्काम पुरुषकूं किसी विषयके उपभो-

नंदका शतगुण (सौगुन) अधिक अधिक उत्कर्ष आगे कहियेगा। ऐसैं[९६] हुये सातिशयकरियुक्त आनंदमयरूप आत्माका परमार्थरूप ब्रह्मके विज्ञानकी अपेक्षासैं जो प्रसंगविषै प्राप्त भया सत्य ज्ञान आनंदरूप परब्रह्महीं है, औ जाकी प्राप्ति अर्थ अन्नमय आदिक पंचकोश कहनेंकूं आरंभ कियेहैं। औ जो तिन कोशनतैं भीतर है, औ जिसकरि वे सर्व कोश आत्मावाले होवै हैं, सो **ब्रह्म पुच्छरूप है,** औ सोई ब्रह्म अविद्या कल्पित सर्व द्वैतका अवसानरूप अद्वैतस्वरूप **प्रतिष्ठा** है, आनंदमयकी एकताका अवसान होनेतैं। ऐसैं अविद्याकल्पित द्वैतका अवसानरूप सो अद्वैत ब्रह्म प्रतिष्ठारूप पुच्छ है। **तिसीहीं अर्थविषै** (आनंदमयकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मके प्रकाशनविषै तत्पर) **सो यह श्लोक होवैहै** ॥ १ ॥

इति पंचमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

गके असंभवतैं आनंदके उत्कर्षका श्रवण नहीं होवैगा; परंतु आत्मस्वभावरूपहीं आनंदके आविर्भाव करनेवाले अंतःकरणकी शुद्धिके उत्कर्ष होवै हैं, ऐसैं हुये निष्कामताका उत्कर्ष संभवै है।

९६ उक्तप्रकारसैं विषयानंदकी सातिशयताके हुये तिसकरि विशिष्ट आनंदमयका अब्रह्मपना सिद्ध होवै है; काहेतैं, सातिशय होनेकरि प्रतिशरीरके तांई भिन्न होनेतैं। ब्रह्म तो ताके अध्यासका अधिष्ठान अद्वैतरूप है, ऐसैं कहे हैं। इहां "इस अर्थविषै" या पदका आनंदमयकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मके प्रकाश करनेमैं तत्पर अर्थविषै। यह अर्थ है।

असन्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद । सन्तमेनं ततो विदुरिति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ॥ अथातोऽनुप्रश्नाः ॥ उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य । कश्चन गच्छति ३ ॥ आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य । कश्चित्समश्नुता ३ उ । सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा । इदꣳसर्वमसृजत । यदिदं किञ्च । तत् सृष्ट्वा । तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् । निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च । निलयनञ्चानिलयनञ्च । विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च । सत्यञ्चानृतञ्च । सत्यमभवत् । यदिदं किञ्च । तत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

टीकाः—जो पुरुष ब्रह्म असत् (अविद्यामान) है, ऐसैं जब जानताहै, तब सो असत्हीं (असत्के तुल्यहीं) होवै है, कहिये, जैसैं असत् पदार्थ पुरुषार्थका संबंधी नहीं होवै है, ऐसैं सो अपुरुषार्थका संबंधी होवै है । औ जब तातैं विपरीत जो सर्व विकल्पका आश्रय, सर्व वृत्तिनका बीज, औ सर्व प्रपंचतैं रहित बी सो ब्रह्महै, ऐसैं जानताहै । फेर तहां कौन शंका है? तिस अस्तिभावविषै ब्रह्मकूं व्यवहारसैं रहितपना है, ऐसैं हम कहते हैं-। जातैं वाणीसैं उच्चारण किये व्यवहारमात्रके विषयविषै अस्तिपनेके भावनाकरि युक्त बुद्धि प्राप्त होवै है, औ तातैं विपरीत व्यवहारसैं रहित वस्तुविषै नास्तिपना बी प्राप्त होवै है । जैसैं घटादि व्यवहारका विषय होनेकरि प्राप्त हुया वस्तु सत् है, औ तातैं विपरीत वस्तु असत्

है, यह प्रसिद्ध है, ऐसैं इहां बी ताके तुल्य होनैतैं ब्रह्मके नास्तिपनैकी शंका होवै है । तातैं "ब्रह्महै, ऐसैं जब जानता है" ऐसैं आशंकासहित वचन कहिये है । "सो ब्रह्म है" ऐसैं जाननेवाले पुरुषकूं क्या फल होवै है? तहां कहैहैं:—इस ऐसैं जाननेवाले पुरुषकूं विद्यमान ब्रह्मस्वरूपसैं परमार्थ सत्रूप—कूं प्राप्त हुया ब्रह्मवेत्ता जानतेहैं । तिस (अस्तिभावके ज्ञान) तैं सो अन्योंकूं ब्रह्मकी न्यांई जाननेयोग्य होवै है, यह अर्थ है ॥ अथवा, जो ब्रह्म नहीं है, ऐसैं मानता है, सो वर्ण आश्रम आदिककी व्यवस्थारूप सर्वहीं सन्मार्गके नास्तिपनैकूं पावताहै; काहेतैं, तिस सत्मार्गकूं ब्रह्मकी प्राप्तिअर्थ होनेतैं । यातैं सो नास्तिक पुरुष लोकविषै असत् (असाधु) कहियेहै । तातैं विपरीत हुया, जो पुरुष, ब्रह्म है, ऐसैं जब जानता है; तब सो श्रद्धावान् होनेकरि तिस ब्रह्मकी प्राप्तिके हेतु वर्णाश्रम आदिककी व्यवस्थारूप सत्मार्गकूं ज्यूंका त्यूं पावता है । जातैं ऐसैं है, तातैं इसकूं साधु पुरुष सत्मार्गविषै स्थित जानते हैं । तातैं, ब्रह्म है, ऐसैंहीं प्रतीति करनेकूं योग्य है, यह वाक्यार्थ है॥ जो यह आनंदमय है, यह हीं तिसपूर्वले विज्ञानमय—का शरीर (विज्ञानमय)—विषै होनेवाला आत्मा है । ताँके प्रति आशंका नहीं है; काहेतैं, पूर्वले वस्तुके सद्भावके हुये अंतके वस्तुका निषेध नहीं होवै है । परंतु ब्रह्मकूं सर्व विशेषवाला होनेकरि प्रत्यक्ष होनेतैं, औ सर्वके प्रति साधारण होनेतैं ब्रह्मकूं नास्तिपनैकी आशंका युक्त है । जातैं ऐसैं है, यातैं अनंतर श्रवण करनैकूं शिष्यके आचार्यकी उक्तिके पीछे ये प्रश्न हैं । जातैं ब्रह्म आकाश आदिकका (भूतसहित सर्व जीवनका) कारण हो-

---

९७ आनंदमयका प्रकाशक यह श्लोक है, ऐसैं केइक कहते हैं; तिनकेप्रति कहे हैं ।

९८ इहां यह अर्थ है:—सर्वकूं साधारण होनेतैं ब्रह्मके व्यवहार करनेकी योग्यता सर्वके प्रति होवैगी औ नहीं देखिये है; तातैं बी नास्तिपनैकी आशंका होवै है ।

नेतैं, विद्वान् औ अविद्वान्कूं साधारण है; तातैं अविद्वान्कूं बी ब्रह्मके प्राप्तिकी आशंका करिये हैः–**कोइक अविद्वान् बी इहांतैं मरणकूं पायके इस** परमात्मारूप **लोककूं पावता है,** किंवा नहीं पावताहै ? इहां "किंवा नहीं पावताहै?" ऐसा जो द्वितीय प्रश्न है, सो "पीछे प्रश्न हैं" इस बहु वचनतैं जानना ॥ अब विद्वान्के प्रति अन्य दोनूं प्रश्न कहिये हैं । जब अविद्वान् सामान्य कारणरूप बी ब्रह्मकूं नहीं पावता है, तातैं विद्वान्कूं बी ब्रह्मके अप्राप्तिकी आशंका करिये है । यातैं ता विद्वान्के प्रति यह प्रश्न हैः–**कोईक बी विद्वान्** (ब्रह्मवेत्ता) **इहांतैं मरणकूं पायके इस** परमात्मारूप **लोककूं पावता है,** किंवा जैसैं अविद्वान् है ऐसैं विद्वान् बी नहीं **पावता है ?** यह दूसरा प्रश्न है । वा विद्वान् अरु अविद्वान्कूं विषय करनेवाले दोनूं हीं प्रश्न हैं । औ बहुवचन तो सामर्थ्यतैं प्राप्त भये अन्य प्रश्नकी अपेक्षासैं घॅटताहै । "ब्रह्म असत् है, ऐसैं जब जानताहै" औ "ब्रह्म है, ऐसैं जब जानताहै" इस श्रवणतैं, है वा नहीं है, ऐसा संशय होवै है । तातैं, क्या है वा नहीं है ? ऐसा प्रथम प्रश्न अर्थतैं प्राप्त भया । औ ब्रह्मकूं अपक्षपाती (साधारण) होनेतैं अविद्वान् पावता है वा नहीं पावता है, ऐसा द्वितीय प्रश्न प्राप्त भया। ब्रह्मकूं समभावके हुये बी अविद्वान्की न्यांई विद्वान्कूं बी अप्राप्तिकी आशंका करिये है किः–विद्वान्, क्या पावता है वा नहीं पावता है ? ऐसा तृतीय प्रश्न प्राप्त भया है । इन तीन प्रश्नोंके समाधान अर्थ आगिला ग्रंथ आरंभ करियेहै । तहां प्रथम अस्तिपनाहीं कहिये है ॥ जो पूर्व "सत्यज्ञान अनंतरूप ब्रह्म है" ऐसैं कहा, सो ब्रह्मका सत्यपना कैसैं कहिये है, यह कहनेकूं योग्य है ? तहां यह कहियेहै किः–सद्भावके कथनसैं हीं ब्रह्मका सत्यपना कहिये है । यातैं

---

९९ किसके सामर्थ्यतैं अन्य प्रश्न प्राप्त भया है ? तहां कहै हैं । इहां "चेतशब्दसैं" या पदका पक्षतैं प्राप्त भये सद्भावके ज्ञानके सामर्थ्यतैं । यह अर्थ है ।

"सतहीं सत्य है" ऐसैं श्रुतिविषै कहाहै, तातैं सद्भावके कथनसैंहीं ब्रह्मका सत्यपना कहिये है। या ग्रंथकूं इस प्रकारके अर्थकरियुक्तता (सत्पनैके प्रतिपादनसैं सत्य वस्तुकी विषयता) है, सो कैसैं जानियेहै? तहां कहै हैंः—जातैं शब्दकी सूचनासैं इसीहीं अर्थकरि युक्त "जो यह आकाशविषै आनंद न होवै" इत्यादिक आगिले वाक्य "सो सत्य है" ऐसैं कहतेहैं; यातैं जानियेहै कि, या ग्रंथकूं इस प्रकारके अर्थकरि युक्तता है। [१००]तंहां वादी, असत् हीं ब्रह्म है; ऐसैं आशंका करै हैः—काहेतैं कि, जो है सो विशेषकरि ग्रहण करिये है (जानियेहै), जैसैं घटादिक हैं; औ जो नहीं है सो नहीं जानियेहै, जैसैं शशश्रृंग आदिक हैं। तैसैं, ब्रह्म नहीं प्रतीत होवै है, तातैं विशेषकरि अग्रहणतैं, नहीं है? ऐसैं आशंका करिये है। तहां ब्रह्मकूं आकाश आदिकका कारण होनेतैं, ब्रह्म है, ऐसैं जानियेहैः—काहेतैं, जातैं आकाश आदिक सर्व कार्य, ब्रह्मतैं उत्पन्न हुया ग्रहण करियेहै। औ जिसतैं कछुक उपजता है, सो है, ऐसैं लोकविषै देख्या है; जैसैं घट औ अंकुर आदिकका कारण मृत्तिका औ बीज आदिक है। तातैं आकाश आदिकका कारण होनेतैं, ब्रह्म है, ऐसैं जानिये है। औ[१०१]लोकविषै असत् वस्तुसैं कछु वी कार्य

---

१०० ब्रह्मके सत्यका साधन नाम असद्भावकी निवृत्तिहीं है, या अभिप्रायसैं असद्भावकी शंकाकूं प्रकट करैहैं। इहां यह भाव हैः—विवादका विषय जो आकाश आदिक सो सत्पूर्वक है, कार्य होनेतैं घटकी न्याईं; ऐसैं लौकिक व्याप्तिके आश्रयकरि सत्रूप कारण प्रथम सिद्ध होवै है। औ ताकूं देश आदिकका कारण होनेकरि देश आदिकसैं अपरिच्छिन्न होनेतैं ब्रह्मपदका वाच्यपना सिद्ध होवैहै। ताकी विशेषतैं अप्रतीतिकरि असद्भावकी शंका होवै है सो शंका कारनपनैकरि निवारण करिये है; परंतु कारण होनेतैं असद्भाव सिद्ध होवै नहीं; काहेतैं, कार्यके आश्रयकी असिद्धिके प्रसंगतैं।

१०१ इस कथन करनेके हेतुतैं बी जगत्के उपादानविषै असत्पनैकी आशंका करनेकूं योग्य नहीं है; ऐसैं कहै हैं।

उत्पन्न हुया नहीं देखिये है । जब असत्‌तैं नाम रूप आदिक कार्य उत्पन्न होवै, तब सो कार्य निःस्वरूप होनेतैं प्रतीत हुया न चाहिये; औ प्रतीत होवैहै, तातैं, ब्रह्म है; ऐसैं जानिये है । जब असत्‌का कार्य ग्रहण होवै, तब बी सो असत्‌करि युक्तहीं होवैगा; औ ऐसैं नहीं है, तातैं, ब्रह्म है; ऐसैं जानिये है । औ "असत्‌तैं सो सत् कैसैं उपजता है" यह जो अन्य श्रुति है, सो युक्तितैं असत्‌तैं सत्‌के जन्मके असंभवकूं कहैहै । तातैं सत्‌हीं ब्रह्म है, ऐसैं कहना युक्त है ॥ जो[१०२] कहै, सो ब्रह्म, जब मृत्तिका औ बीज आदिककी न्यांई कारण होवै, तब अचेतन होवैगा? सो बनै नहीं:—काहेतैं, ब्रह्मकूं इच्छावाला होनेतैं । जातैं लोकविषै इच्छावाला वस्तु अचेतन नहीं है, औ ब्रह्म सर्वज्ञहीं है, ऐसैं हम श्रुतिके वेत्ता कहते हैं, यातैं ब्रह्मकूं इच्छावान्‌पनैका संभव है ॥ जो कहै, ब्रह्म इच्छावाला होनेतैं अस्मदादिककी न्यांई अपूर्ण काम होवैगा? सो बनै नहीं:—काहेतैं ब्रह्मकूं स्वतंत्र होनेतैं । जैसैं काम आदिक दोष जीवनकूं परवशकरिके प्रवृत्त करैहैं, तैसैं काम आदिक ब्रह्मके प्रवर्तक नहीं हैं ॥ तब ब्रह्मके काम कैसे हैं? तहां कहैहैं:—सत्य ज्ञान स्वरूपवाले ब्रह्मके काम हैं । वे जातैं ब्रह्मके स्वरूपभूत होनेतैं शुद्ध हैं, तातैं तिनकरि ब्रह्म प्रवर्त होता[१०३] नहीं; किंतु प्राणिनके कर्मनकी अपेक्षासैं सो ब्रह्म तिनका प्रवर्तक है । तातैं कामोविषै ब्रह्मकी स्वतं-

१०२ ऐसैं ब्रह्मके असद्भावकी शंकाकूं निषेध करिके अब प्रसंगतैं प्राप्त प्रधानवादीकी अचेतपनैकी आशंकाकूं निषेध करैहैं ।

१०३ इहां यह कथन किया होवैहै:—मायाविषै प्रतिबिंबित हुया ब्रह्म जगत्‌का कारण है, सो मायाके परिमाणरूपहीं कामनासैं कामनाका कर्ता होवैहै औ तिन मायाके परिणामनकूं अविद्याआदिकसैं तिरस्कारकूं अप्राप्त भये चेतनकरि व्याप्त होनेतैं सत्यज्ञानरूपता है, औ ब्रह्मकूं तिसरूप होनेतैं पुण्य आदिककरि अस्पर्शके हुये शुद्धपना है । तातैं ब्रह्मकी कामनाकूं जीवनकी कामनातैं विलक्षणता सिद्ध भई ।

त्रता है । यातैं ब्रह्म अपूर्णकाम नहीं है, औ अन्य[१०४] साधनकी अपेक्षासैं रहित होनेतैं बी, ब्रह्म अपूर्ण काम नहीं है । किंवा जैसैं जीवनके आपतैं भिन्न कार्य औ करणरूप अन्य साधनकी अपेक्षावाले होनेतैं अनात्मारूप औ धर्मादिक निमित्तके अपेक्षावाले काम हैं, तैसैं ब्रह्मके कामोकूं निमित्त आदिककी अपेक्षावान्-पना नहीं है; किंतु अपनै स्वरूपसैं अभिन्न ब्रह्मके काम हैं, सो यह श्रुतिवाक्य कहैहै:—जिसतैं आकाश उत्पन्न भया, ऐसा जो आत्मा, **सो कामना करता भया** ॥ कैसैं कामना करता भया ? कि **बहु होवों ऐसैं** ॥ एककूं अन्य अर्थविषै अप्रवेश हुये बहुतपना कैसैं होवै ? तहां कहिये है:—**प्रजाकूं उत्पन्न करूं** । जातैं पुत्रकी उत्पत्तिसैंहीं अन्य अर्थकूं विषय करनेवाला बहु होना नहीं होवैहै, यातैं प्रजाकी उत्पत्तिके लिये अद्वैतकी हानि नहीं होवैहै ॥ तब आपविषै स्थित अप्रकट हुया जगत् नामरूपकी प्रकटतासैं कैसैं होवैहै ? जब आपविषै स्थित अप्रकट हुये नामरूप प्रकट करिये हैं, तब नामरूपके अपरित्यागसैंहीं ब्रह्मतैं अविभागकूं प्राप्त भये वे नामरूप देशकाल आदिक सर्व अवस्थाविषै प्रकट करियें हैं; तब सो नामरूपका प्रकट करना ब्रह्मका बहु होना संभवै, अन्यथा निरवयव ब्रह्मकूं बहुपनैकी प्राप्ति वा अल्पपना नहीं संभवै है । जैसैं आकाशका अल्पपना औ बहुपना अन्य वस्तुका कियाहीं है, तैसैं । यातैं तिस नामरूपकी शक्तिरूप मायाके परिणामद्वाराहीं आत्मा बहु होवैहै । जातैं[१०५] आत्मातैं अन्य

---

१०४ कामनाकूं शरीर आदिकके संबंधतैं जन्य होनेकी प्रसिद्धितैं ब्रह्मकूं शरीरादिकवान्पनैका प्रसंग होवैगा, यह शंका करनेकूं योग्य नहीं; ऐसैं कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—कामनाके संस्कारवाली मायासैं ब्रह्मके तादात्म्यतैं ता मायाके परिणामनकूं ब्रह्मके तादात्म्यतैं शरीररूप निमित्तकी अपेक्षा नहीं है ।

१०५ जब नामरूपकी शक्तिरूप माया अंगीकार करी, तब सो

अनात्मरूप औ तिसतैं भिन्न देशकालवाला सूक्ष्म अंतरायसहित दूर स्थित भूत भविष्यत् वर्तमानरूप वस्तु नहींहै, [१०६]यातैं सर्व अवस्थावाले नामरूप ब्रह्मसैंहीं स्वरूपवाले हैं, औ [१०७]ब्रह्म, तिसरूप नहींहै। वे[१०८] नामरूप ताके निषेधसैं "सोइ" इस वाक्यकरि तिसरूप कहिये हैं। औ तिन नामरूप उपाधिकरि ज्ञाता ज्ञेय औ ज्ञानरूप शब्द औ अर्थ आदिक सर्व विद्यमान व्यवहारका भजनेवाला

प्रधानकी न्यांई ब्रह्मतैं भिन्न सत्‌रूप भयी; यातैं अद्वैतकी हानि होवैगी! यह आशंकाकरिके कहै हैं। इहां यह भाव है:— आत्मातैं भिन्न जो वस्तुहै, सो क्या आपतैं सिद्ध होवै है वा परतैं। तिनमैं प्रथम पक्ष बनै नहीं; काहेतैं, ताकूं जडताकी हानितैं, आत्मासैं भिन्नताकी हानितैं। औ दूसरा पक्ष बी बनै नहीं; काहेतैं, तिससैं ज्ञान(चेतन)के संबंधके अनिरूपणतैं; जातैं भिन्न देश कालवाले वस्तुनका संयोग आदिक संबंध संभवै नहीं। वा विषयविषयीभाव संबंध बनै नहीं; काहेतैं, नियामकके खोजनेतैं औ तिनका स्वभावरूपहीं संबंध बनै नहीं; काहेतैं, दोनूं स्वभावनकूं संबंधरूप होनेकरिहीं कृतार्थ हुये संबंधीके अभावके प्रसंगतैं। औ आपके प्रति आपकाहीं संबंधीपना बनै नहीं; काहेतैं, आत्माश्रयरूप दोषकी प्राप्तितैं। तिस प्रकारके अर्थके अभाव हुये औ व्यवहारमात्रकी प्रवर्तकताके हुये मिथ्या व्यवहारकी प्राप्तितैं अनिर्वचनीय वादहीं सिद्ध होवै है।

१०६ जातैं आत्मातैं भिन्न वस्तु संभवै नहीं, तातैं आत्माके तादात्म्यसैंहीं नामरूपकी सिद्धि होवै है, ऐसैं कहै हैं।

१०७ तब ब्रह्मकूं प्रपंचसहितताका प्रसंग होवैगा, यह कहनेकूं योग्य नहीं; ऐसैं कहै हैं। इहां यह अर्थ है:—ब्रह्म, तिस प्रपंचरूप नहीं है; काहेतैं अजडरूप होनेतैं, औ सुषुप्ति आदिकविषै ता प्रपंचकी निवृत्तिसैं बी ब्रह्मकी सिद्धिके संभवतैं।

१०८ तब नामरूपकूं ब्रह्मरूपता कैसैं है? तहां कहै हैं॥ इहां यह अर्थ है:—स्वप्नविषै आकाशके भक्षणकी न्यांई आरोपितकी अनुभवके अनंगीकारसैं सिद्धिके असंभवतैं, अनुभवके विषय जे नामरूप, वे अनुभवरूप ब्रह्मस्वरूप कहिये हैं परंतु एकताके अभिप्रायसैं नहीं।

ब्रह्म, सो आत्मा है । **सो आत्मा, ऐसैं सृष्टिकी कामनावाला हुया तपकूं तपता भया ।** इहां तप शब्दकरि ज्ञान कहिये है; काहेतैं, "जिसका ज्ञानमय तप है" इस अन्य श्रुतितैं, औ ताकूं पूर्ण काम होनैतैं अन्य लोकप्रसिद्ध तपका असंभवहीं है । यातैं सो आत्मा उत्पन्न करने योग्य जगत्की रचना आदिककूं विषय करनेवाले विचारकूं करता भया, यह अर्थ होवै है । **सोई आत्मा, तपकूं तपिके** (अवलोकन करिके) प्राणिनके कर्म आदिक निमित्तके अनुसार, देशतैं कालतैं नामसैं रूपसैं जैसैं अनुभव किया है, तैसैं सर्व अवस्थावाले सर्व प्राणिनकरि अनुभव करियेहै; ऐसै **इस सब जगत्-कूं सृजता भया । जो यह कछु विलक्षण है, ताकूं सृजिके तिसीहीं सृजेहुये जगत्-के तांई पीछे प्रवेश करता भया ॥**

अब प्रवेशकी अनिर्वचनीयताके प्रकाशनेसैं जीवकूं ब्रह्मस्वरूप होनेकरि प्रवेश वाक्यके तात्पर्यके दिखावनेकूं विचारका आरंभ करै हैः—तहां कैसैं पीछे प्रवेश करता भया ? यह विचार करनेकूं योग्य है । किंवा, सो स्रष्टा (सृष्टिकर्ता) तिसीहीं स्वरूपसैं प्रवेश करता भया, किंवा, अन्य स्वरूपसैं ? ये दो विकल्प हैं । तिनमैं प्रथम क्या युक्त है ? तहां श्रुतिके अनुसार जो स्रष्टा है, सोई पीछे प्रवेश करता भया; यह युक्त है । ऐसैं जब सिद्धांतीनैं कहा, तब पूर्ववादी कहैहैः—ननुं[१०९], जब ब्रह्म मृत्तिकाकी न्यांई कारण है, तब कार्यकूं तिस ब्रह्मरूप होनेतैं ताकेविषै ताका प्रवेश युक्त नहीं है । जातैं कारणहीं कार्यरूपसैं परिणामकूं पावताहै, यातैं सो प्रविष्टकी न्यांई है; परंतु कार्यकी उत्पत्तिके पीछे कार्यतैं

---

१०९ पूर्ववादी कहै है । इहां यह अर्थ हैः—सृष्टिक्रिया औ प्रवेशक्रियाके पूर्व औ पीछेके कालविषै होनेके असंभव हुये तिनके कर्ताकी एकता उक्त श्रुतिकरि बोधन करिये है; परंतु प्रवेशकी पीछले कालविषै होनेकी योग्यता संभवै नहीं; काहेतैं, सृष्टिके कालविषैहीं उपादानकूं कार्यरूपसैं स्थित होनेतैं ।

भिन्न कारणका फेर प्रवेश अघटित है। औ जातैं घटके परिणामसैं भिन्न मृत्तिकाका घटविषै प्रवेश नहीं है, यातैं जगत्‌के परिणामसैं भिन्न ब्रह्मका जगत्‌विषै प्रवेश अघटित है ॥ जो सिद्धांतका एकदेशी कहै किः— "इस जीवरूपसैं अनुप्रवेश करिके" इस अन्य श्रुतितैं जैसैं घटविषै चूर्णरूपसैं मृत्तिकाका अनुप्रवेश होवै है, ऐसैं आत्माका अन्यरूपसैं नामरूप कार्यविषै अनुप्रवेश होवै है ? यह कथन युक्त नहीं हैः—काहेतैं, ब्रह्मकूं एकरूप होनेतैं। औ मृत्तिकाके स्वरूपकूं तो अनेकरूप होनेतैं, औ सावयव होनेतैं, औ मृत्तिकाके चूर्णकूं प्रवेश रहित देशवाला होनेतैं, मृत्तिकाका चूर्णरूपसैं घटविषै अनुप्रवेश युक्त है; परंतु आत्माकूं एकताके हुये निरवयव होनेतैं, औ प्रवेशरहित देशके अभावतैं ताका प्रवेश नहीं संभवै है ॥ जो सिद्धांतका एकदेशी कहै, तब[110] कैसा प्रवेश युक्त है ? औ प्रवेश नहीं है, ऐसा नहीं कहना चाहिये; किंतु "तिसीहींके ताईं अनुप्रवेश करता भया" इस श्रुतिविषै सुन्या होनेतैं, प्रवेश कहना युक्त है। यातैं तब सावयवरूपहीं ब्रह्म होहु, औ ताकूं सावयव होनेतैं मुखविषै हस्तके प्रवेशकी न्याईं ताका जीवरूपसैं नामरूप कार्यविषै प्रवेश युक्तहीं होवैगा ? सो कथन बनै नहींः—काहेतैं, शून्यदेशके अभावतैं। जातैं कार्यरूपसैं परिणामकूं प्राप्त भये ब्रह्मका नामरूप कार्यहीं देश है, तातैं भिन्न आपकरि शून्य अन्यप्रदेश नहीं है, जा प्रदेशके ताईं जीवरूपसैं प्रवेश करै ॥ जो[111] कहै कारणहीं प्रवेशकूं पावैगा, जीवरूपताकूं त्यागैगा। जैसैं घट, मृत्तिकाके प्रवेश हुये घटभावकूं त्यागताहै, तैसैं ? तो

---

११० सृष्टिकर्तातैं अन्यका प्रवेश जब नहीं संभवै है, तब कैसैं प्रवेश कहनेकूं योग्य है ? ऐसैं सिद्धांतका एकदेशी कहै है।

१११ जो कारणहीं अन्यकार्यरूपसैं परिणामकूं पाया है, ताके प्रति कोइक कार्य जीवरूपसैं प्रवेशकूं पावैगा ? यह शंका करनेकूं योग्य नहीं है, ऐसैं कहै हैं।

“ [112]तिसीहींके ताईं पीछे प्रवेश करता भया ” इस श्रुतितैं, सो कारणका पीछे प्रवेश युक्त नहीं है ॥ [113]जो कहै, अन्य कार्यहीं होवै है; कहिये “ताहीके तांई पीछे प्रवेश करता भया” इस श्रुतिकरि जो जीवरूप कार्य सो नामरूपसैं परिणामकूं प्राप्त भये अन्य कार्यकूंहीं पावताहै ? सो बनै नहीं:—काहेतैं, श्रुतिके विरोधतैं । जातैं घट अन्य घटकूं पावता नहीं, औ व्यतिरेक श्रुतिनके विरोधतैं । जातैं नामरूप कार्यसैं जीवके भेदकी अनुवाद करनेवाली श्रुतियां विरोधकूं पावैगी । औ जीवकूं अन्यकार्यकी प्राप्तिके हुये मोक्षके असंभवतैं । जातैं जिसकरि मुक्त होवैहै ताहीकूं नहीं पावताहै । जातैं बांधेहुये चौर आदिककूं श्रृंखलाकी प्राप्ति नहीं होवैहै, यातैं जीव अन्यकार्यकूं पावताहै, यह कथन युक्त नहीं है ॥ जो [114]कहै, बाहिर औ भीतरके भेदसैं परिणामकूं पायाहै; कहिये सोई कारणरूप ब्रह्म, शरीर आदिकका आधार होनेकरि औ ताके भीतर ध्येय होनेकरि परिणामकूं पावताहै ? सो बनै नहीं:—काहेतैं, बाहिर स्थित वस्तुके प्रवेशके संभवतैं । जातैं जो ताके भीतर स्थित है, सोई प्रवेशकूं पाया नहीं कहिये है; यातैं बाहिर स्थित वस्तुका भीतर प्रवेश होवै है । औ प्रवेश शब्दके अर्थकूं ऐसैं देख्या होनेतैं, जैसैं ग्रहकूं करिके प्रवेशकूं करता भया; तैसैं ॥ जो अन्य

---

११२ कोइक कार्यके प्रवेशकूं अंगीकार करिके जो दूषण कहा, सो संभवै नहीं; काहेतैं, श्रुतिके विरोधतैं; ऐसैं कहै हैं ।

११३ कारणके स्मरण करावनेवाले तत्शब्दसैं कार्यकूं लक्षणासैं जानिके तिसविषै अन्य कार्यका प्रवेश कहिये है; काहेतैं, प्राप्त देशके संभवतैं । यातैं श्रुतिका विरोध नहीं है; ऐसैं सिद्धांतके एकदेशीके मतकूं प्रकट करिके दूषण देते हैं ।

११४ कारणके वाचक तच्छब्दसैं कार्यकी लक्षणाविषै कहनेकूं अनिच्छित लक्षणा जब प्राप्त होवै, तब तच्छब्द कारणपरहीं होहु; ऐसैं अन्य सिद्धांतका एकदेशी कहै है ।

वेदांती कहै, जलविषै सूर्य आदिकके प्रतिबिंबकी न्यांई ब्रह्मका प्रवेश होवैगा ? सो बनै नहीं:-काहेतैं, ब्रह्मकूं पूर्ण होनेतैं, औ अमूर्त (निरवयव) होनेतैं । परिच्छिन्न औ मूर्तरूप अन्य सूर्य आदिकका प्रसन्नताके स्वभाववाले अन्य जलआदिकविषै प्रतिबिंबका उदय होवै है, परंतु आत्माकूं अमूर्त होनेतैं, औ आकाश आदिकके कारण आत्माकूं व्यापक होनेतैं, औ तातैं दूर देशवाले प्रतिबिंबके आधारवस्तुके अभावतैं, ताका प्रतिबिंबकी न्यांई प्रवेश युक्त नहीं है ॥ इस प्रकार सिद्धांतके एकदेशीके मतकूं निषेध करिके, पूर्ववादी शंकाकी समाप्ति करैहै:-जब ऐसैं है, तब ब्रह्मका प्रवेश नहीं है । औ "ताहीके तांई पीछे प्रवेश करता भया" इस श्रुतिके अन्य अर्थकूं हम नहीं पावते हैं । औ श्रुति जो है, सो हमकूं इंद्रिय अगोचर वस्तुके ज्ञानकी उत्पत्तिविषै निमित्त है, औ यत्न करनेवाले बी हमकूं इस श्रुतिवाक्यतैं ज्ञान नहीं संभवै है, बडा खेद हे ! तब व्यर्थ होनेतैं, "ताकूं सृजिके ताहीके तांई फेर प्रवेश करता भया" यह वाक्य, अंधपुरुष मणिकूं प्राप्त भया, यां वाक्यकी न्यांई [115]अर्थतैं शून्य है ? सो[116]कथन बनै नहीं:-काहेतैं,

---

१५ औ सो श्रुति सृष्टिकर्ताके प्रवेशकूं कहै है । इहां यह भाव है:-सो श्रुति हम मीमांसकनकूं प्रमाण है, ताके विरोध हुये अन्यके प्रवेशकी कल्पना युक्त नहीं है ।

११६ शक्तिके विषयरूप अर्थके असंभवतैं अर्थकरि शून्यता है, वा तात्पर्यके विषयके असंभवतैं अर्थकरि शून्यता है ? तिनमैं प्रथम पक्ष बनै नहीं; काहेतैं, समीप देशवाले बी जलविषै आकाश आदिक मूर्त वस्तुके प्रतिबिंबके होनेकी न्यांई, अमूर्त ब्रह्मके बी अनिर्वचनीय अविद्या आदिकविषै प्रतिबिंब होनेकी उत्पत्तिके अनंतर कालके तांई अंतःकरण आदिकविषै प्रतिबिंबके अभावके असंभवतैं, ऐसैं कहै हैं । "नहीं इति" औ द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं, ऐसैं कहै हैं ।

या श्रुतिवाक्यकूं अन्य अर्थवाला होनेतैं । अस्थानविषै किस अर्थ चर्चा करतेहो ? इस वाक्यका प्रसंगविषै प्राप्त भया यह अर्थ है, तोबी कहनेकूं इच्छित अन्य अर्थ है; सो स्मरण करनैकूं योग्य है । "औ ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मकूं पावताहै । सत्य ज्ञान अनंतरूप ब्रह्म है । जो गुहाविषै स्थित ब्रह्मकूं जानताहै" ऐसैं प्रसंगविषै प्राप्त भया तिस ब्रह्मका ज्ञान कहनैकूं इच्छित है । औ सो ब्रह्मस्वरूपके जनावने अर्थ आकाशसैं आदिलेके अन्नमयपर्यंत कार्य दिखाया । औ ब्रह्मका जाननेका उपाय आरंभ किया है । तहां "अन्नमयरूप आत्मातैं अन्य भीतर आत्मा प्राणमय है; औ ताके भीतर मनोमय है, औ ताके भीतर विज्ञानमय है" । ऐसैं तिस विज्ञान (बुद्धि)रूप गुहाविषै प्रवेशकूं पाया आनंदमयरूप विशिष्ट आत्मा दिखाया । [117]यातैं पीछे आनंदमयरूप लिंगके ज्ञानद्वारा आनंदकी वृद्धिका अवधिरूप ब्रह्म पुच्छ प्रतिष्ठा, सर्व विकल्पका आश्रय, औ निर्विकल्परूप जो आत्मा है, सो इसीहीं बुद्धिरूप गुहाविषै जाननेकूं योग्य है । इस रीतिसैं ताका प्रवेश कल्पना करियेहै ॥ [118]जातैं ब्रह्म निर्विशेष होनेतैं अन्य ठिकानैं नहीं जानियेहै, औ [119]विशेषसैं संबंध ज्ञानका हेतु देख्याहै । जैसैं राहुका

---

११७ बुद्धिरूप गुहाविषै प्रवेशतैं अनंतर आनंदमयहीं विशिष्ट अर्थ है; काहेतैं, लिंगकरि चेतनरूप विशेष्यके विशेष्यपनैके अव्यभिचारके देखनेतैं । ताके ज्ञानद्वारा आनंदके वृद्धिका अवधि आत्मब्रह्मरूपी जो है, सो इसीहीं गुहाविषै जाननेकूं योग्य है; या अभिप्रायसैं जलविषै सूर्यके प्रवेशकीन्यांई अनिर्वचनीय प्रवेश कहिये है । यह अर्थ है ।

११८ बुद्धिरूप गुहाविषैहीं ब्रह्मके ज्ञानके संभवतैं तहांहीं प्रवेश कहनेकूं इच्छित है, ऐसैं कहै हैं ।

११९ ननु, अन्य ठिकाने प्रतीतिके अयोग्य जो ब्रह्म, सो बुद्धिविषैहीं कैसैं प्रतीत होवै है ? यह आशंकाकरिके उपाधिकी कोई योग्यताके संभवतैं बुद्धिविषैहीं ब्रह्म प्रतीत होवै है, ऐसैं कहै हैं । इहां यह अर्थ है:—

चंद्र औ सूर्यकरि विशिष्ट संबंध है, ऐसैं अंतःकरणरूप गुहा औ आत्माका संबंध ब्रह्मके ज्ञानका हेतु है; काहेतैं, अंतःकरणकूं समीपवर्ति होनेतैं औ [१२०]प्रकाशरूप होनेतैं । औ [१२१]जैसें प्रकाशकरि विशिष्ट घटादिकका ज्ञान होवैहै, ऐसैं बुद्धिवृत्तिरूप प्रकाशकरि विशिष्ट आत्माका ज्ञान होवैहै; तातैं ज्ञानकी हेतु बुद्धिरूप गुहाविषै स्थित, ऐसैं प्रसंगविषै प्राप्त भया सो बुद्धि वृत्तिरूप स्थानवाला ब्रह्महीं, इहां फेर "ताकूं सृजिके ताहीके तांई पीछे प्रवेश करता भया" ऐसैं कहिये है । सोई यह आकाश आदिकका कारण ब्रह्म, कार्यकूं सृजिके ताके तांई पीछे प्रवेश हुयेकी न्यांई बुद्धिरूप गुहाके भीतर द्रष्टा श्रोता मंता औ विज्ञाता, ऐसैं विशेषकी न्यांई प्रतीत होवैहै; सोई ताका प्रवेश है । तातैं सो कारणरूप ब्रह्म है, यातैं सो अस्तिभावके होनेतैं है; ऐसैं हीं जाननेकूं योग्य है । सो तिस कार्य—के तांई पीछे प्रवेशकरिके सच्च (मूर्त) औ त्यच (अमूर्त) रूप होता भया । जातैं अप्रकट नामरूपमय आत्मा-

---

अंतःकरणके संबंधतैंहीं देह औ घट आदिकविषै चैतन्यका आविर्भाव होवै है आपहींतैं नहीं । औ अंतःकरण जो है, सो अंतरायसैं विनाहीं अन्वय अरु व्यतिरेकसैं चैतन्यके आविर्भावका करनेवाला है ।

१२० जैसें अस्वच्छ स्वभाववाले घटादिकविषै मुख प्रतिबिंबकूं पावता नहीं, औ स्वच्छ स्वभाववाले जलआदिकविषै प्रतिबिंबकूं पावता है; तैसैं सत्वगुण प्रधान अंतःकरणके प्रसाद (एकाग्रता)के स्वभावतैं तहां ब्रह्मका ज्ञान घटे है; ऐसैं कहैहैं ।

१२१ किंवा जैसें किरण आकारसैं विकासकूं प्राप्त भये जड सूर्य आदिकका अंधकाररूप आवरणके तिरस्कारविषै समर्थ प्रकाश अंगीकार करिये है; तैसैं जडताके तुल्य हुये वृत्तिआकारसैं परिणामकूं प्राप्त भये अंतःकरणकाहीं अज्ञानरूप आवरणके तिरस्कारका सामर्थ्य अंगीकार करनेकूं योग्य है; ऐसैं कहै हैं ।

विषै स्थित मूर्त औ अमूर्त, ये दोनूं आपके अंतर्गत आत्मासैं प्रकट करिये हैं; यातैं वे मूर्त औ अमूर्त शब्दके वाच्य हैं। औ वे आत्मासैं विभागरहित देशकालवाले हैं; यातैं तिन दोनूं रूप आत्मा होताभया, ऐसैं कहिये है। किंवा, समान औ असमान जातिवाले पदार्थनतैं निकृष्ट हुया देश औ कालकरि विशिष्ट होनेकरि, "यह औ सो" ऐसैं कथन किया जो **निरुक्त**, औ तातैं विपरीत **अनिरुक्त**, [इहां निरुक्त औ अनिरुक्त बी मूर्त औ अमूर्तकेहीं विशेषण हैं। जैसैं प्रत्यक्ष औ परोक्षरूप अर्थवाले सच्च औ त्यच्चरूप विशेषण हैं;] तैसैं **निलयन** औ **अनिलयन** [निलयन जो आश्रय सो मूर्तकाहीं धर्म है। औ तातैं विपरीत जो अनिलयन सो अमूर्तकाहीं धर्म है, [122]यातैं, अनिरुक्त, अनिलयन; ये अमूर्तरूपताके हुये बी व्याकृतकूं विषय करनेवालेहीं हैं; काहेतैं, सृष्टिके उत्तरकालविषै तिनके होनेके श्रवणतैं। यातैं त्यत् जो प्राणआदिक अनिरुक्त है सोई अनिलयन है, यातैं ये अमूर्तके विशेषण व्याकृत (कार्य)कूं विषय करनेवालेहीं हैं] औ **विज्ञान** (चेतन,) औ तातैं भिन्न अचेतनरूप **अविज्ञान**, औ पाषाण आदिरूप **सत्य** [इहां सत्य जो कहा सो अधिकारतैं व्यवहारकूं विषय करनेवाला है, परंतु परमार्थतैं सत्य नहीं, जातैं परमार्थतैं सत्यरूप एकहीं ब्रह्म है, औ व्यवहारकूं विषय करनेवाला जो सत्य है, सो आपेक्षिक है। यातैं मृगजल आदिक असत्यकी अपेक्षासैं व्यावहारिक जल आदिक सत्य कहिये है]। औ तिस सत्यतैं विपरीत झूठ, यह सर्व सो परमार्थतैं **सत्यरूप** सो ब्रह्म होता भया ॥ सो ब्रह्म क्या रूप है? सो ब्रह्म "सत्यज्ञान अनंत ब्रह्म है" ऐसैं प्रसंगविषै प्राप्त भया होनेतैं,

---

१२२ निलयन; कहिये, ग्रह औ अट्टालिका आदिक मूर्तिमान् स्थानविशेष औ अनिलयन कहिये अवयवरूप देशविशेषसैं रहितपना, सो अनिरुक्तता आदिक अमूर्तके धर्मकी न्यांई ब्रह्मकूंहीं क्यूं नहीं होवैंगे? तहां कहैहैं।

सत्यादिरूप है। जातैं सत् औ त्यत् आदिक मूर्त औ अमूर्तरूप धर्मनका समूह जो कछु यह सर्व विलक्षण विकारका समूह है, सो एकहीं सत् शब्दका वाच्य ब्रह्म होता भया, तातैं भिन्न नामरूपमय विकार (कार्य)के अभावतैं। तातैं तिस ब्रह्म—कूं ब्रह्मवेत्ता, सत्य ऐसैं कहते हैं। ब्रह्म[123] है वा नहीं है, ऐसा प्रसंगविषै प्राप्त भया प्रश्न है, ताके समाधानविषै यह कहा किः—"आत्मा बहु होवों," ऐसैं कामना करता भया। औ सो कामनाके अनुसार सत् औ त्यत् आदिक लक्षणवाले आकाश आदिक कार्यकूं सृजिके ताके तांई पीछे प्रवेश करिके, देखता हुया सुनता हुया मनन करता हुया जानता हुया बहुरूप होता भया। तातैं सो यह आकाश आदिक कार्यका कारण परम व्योमविषै अनुगत, हृदयरूप गुहाविषै स्थित, औ ता गुहाके अहं कर्ता भोक्ता इत्यादिक वृत्तिरूप प्रकाश विशेषनसैं प्रतीयमान ब्रह्मकूं "है," ऐसैं जानना; यह कथन किया होवैहै। तिस इस ब्राह्मण भागउक्त अर्थ-विषै यह श्लोक (मंत्र) होवैहै; कहिये, जैसैं पूर्वले पांच अनुवाकनविषै बी अन्नमय आदिक आत्माके प्रकाशक मंत्र हैं, ऐसैं कार्यद्वारा अत्यंत सर्वांतर आत्माके सद्भावका प्रकाशक बी मंत्र होवैहै ॥ १ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

---

१२३ पदनका व्याख्यान करिके प्रसंगविषै प्राप्त प्रश्नके निषेध हुये "सो कामना करता भया" इत्यादिरूप प्रकरणके तात्पर्यकूं दिखावै हैं।

असद्वा इदमग्र आसीत् । ततो वै सदजायत । तदात्मानꣳ स्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति । यद्वै तत्सुकृतम् । रसो वै सः । रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति । को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् । यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । एष ह्येवानन्दयाति । यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते । अथ सोऽभयं गतो भवति ॥ यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति । तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

टीकाः—यह (जगत्) आगे **असत्**हीं होता भया । इहां असत् शब्द करि प्रकट नामरूप प्रपंचतैं विपरीतरूपवाला अविकारी ब्रह्म कहिये है । फेर सो अत्यंतहीं असत् है, ऐसैं नही, जातैं असत्तैं सत् (विद्यमान) जन्मतैं रहित ऐसा नामरूप विशेषवाला व्याकृतरूप जगत् उत्पत्तितैं पूर्व नहीं भया है, किंतु असत् शब्दका वाच्य ब्रह्म होता भया । **तिस असत् (ब्रह्म)तैं निश्चयकरि** नामरूपके विभागवाला प्रपंचरूप **सत् उत्पन्न भया** ॥ तिसतैं विभागवाला कार्य क्या पितातैं पुत्रकी न्यांई उत्पन्न भया ? तहां नहीं, ऐसैं कहैहैंः—**सो** असत् शब्दका वाच्य ब्रह्म, **आपहीं आपकूंहीं करता भया** । जातैं ऐसैं है, **तातैं सो** ब्रह्महीं **सुकृत** (आपहीं कर्ता) **कहिये है** । लोकविषै ब्रह्म सर्वका कारण होनेतैं, आपहीं कर्ता प्रसिद्ध है । जातैं निश्चयकरि सर्वरूपसैं सर्वकूं आप करता

भया, तातैं सो आपहीं कर्ता कहिये है । वा पुण्यरूपसैं वी सोई ब्रह्मरूप कारण सुकृत कहिये है । लोकविषै सर्वथा वी फलका संबंध आदिक कारण सुकृत शब्दका वाच्य प्रसिद्ध है । जब पुण्य है वा अन्य है, सो प्रसिद्धि चेतनकी न्याई नित्य कारणके होते संभवै है; तातैं सुकृतकी प्रसिद्धितैं सो ब्रह्म सुकृतरूप है । औ या आगे कहनेकी रसरूपताकी प्रसिद्धिरूप हेतुतैं बी यह ब्रह्म सुकृतरूप है । ब्रह्मकूं रसपनैकी प्रसिद्धि काहेतैं है? तहां कहै हैं:—यद्वा यह सुकृत; निश्चयकरि सो रसरूप है । लोकविषै तृप्तिका हेतु आनंदकारी मधुर आम्र आदिकरूप रस प्रसिद्ध है । यह पुरुष रसकूंहीं पायके आनंदी (सुखी) होवै है । लोकविषै असत् वस्तुकूं आनंदका हेतुपना देख्या नहीं । जातैं बाह्य आनंदके साधनतैं रहित हुये बी इच्छा औ एषणासैं रहित विद्वान् ब्राह्मण, बाह्य रसके लाभ आदिकसैं रहित रसरूप आनंदवाले देखिये हैं, तिनका ब्रह्महीं रस है । तातैं तिन विद्वानोंकूं आनंदका कारण रसकी न्यांई ब्रह्म है । औ प्राणआदिक क्रियाके देखनेरूप हेतुतैं बी ब्रह्म है, ऐसैं जानिये है । जातैं यह पिंड वी जीवतेके प्राणसैं प्राणन क्रियाकूं करता है, औ अपानसैं अपानन क्रियाकूं करता है, ऐसैं वायुसंबंधी औ इंद्रियसंबंधी जे चेष्टा हैं, वे मिलित हुयी कार्य औ कारणकरि निर्वाह करी हुई देखिये हैं । औ सो एक प्रयोजनका साधन होनेकरि परस्परकें अधीन अचेतनरूप कार्य कारणका संघात चेतनकरि युक्त संभवै है; काहेतैं, [१२४] अन्य ठिकानें

१२४ ग्रह औ अट्टालिका आदिकविषै स्वतंत्र औ ग्रहादिकसैं आरंभ करनेकूं अयोग्य स्वामीविना मिलावनेके अदर्शनतैं, कार्य कारणके संघातविषै बी विलक्षण औ शरीरवाला औ अवयव आदिकसैं औ वृद्धि आदिकसैं रहित स्वामी जानियेहै, औ सो चेतनपनैकरि भेदके अभावतैं ब्रह्महीं है, ऐसैं ताके सद्भावकी सिद्धि है । यह अर्थ है ।

स्वामीसैं रहित ताके अदर्शनतैं। सो कहै हैंः—**जब यह आकाशविषै** (परम व्योमगत हृदय गुहाविषै स्थित) **आनंद न होवै,** तब लोकविषै **कौंनहीं अपानरूप चेष्टाकूं करेगा, औ कौंन प्राणनरूप चेष्टाकूं करेगा?** कोइ बी नहीं। तातैं सो ब्रह्म है, यह जानिये है॥ जिसके अर्थ कार्य औ करण आदिककी प्राणन आदिक चेष्टा होवैहै, ताका कियाहीं आनंद लोककूं होवैहै। यह काहेतैं जानियेहै? तहां कहैहैंः— **जातैं यहहीं** परमात्मा लोककूं पुण्यके अनुसार **आनंद करावै हैं,** औ सोई आनंदरूप आत्मा प्राणिनकूं अविद्यासैं परिच्छिन्न भासता है; यातैं अविद्वान्कूं औ विद्वान्कूं भय औ अभयका हेतु होनेतैं, सो ब्रह्म है, ऐसैं जानिये है॥ ननु, सत् अवस्थावाले वस्तुके आश्रयसैं अभय होवै है, असत् वस्तुके आश्रयसैं भयकी निवृत्ति संभवै नहीं; यातैं ब्रह्मकूं अभयका हेतुपना कैसैं है? तहां कहिये हैः—**जब जातैं यह साधक इस अदृश्य**[125] (अविकारी औ अविषयरूप), औ जातैं अदृश्य है तातैं **अनात्म्य** (अशरीर), औ जातैं अनात्म्य है तातैं **अनिरुक्त**[126] (अवाच्य), औ जातैं अनिरुक्त है तातैं **अनिलयन** (अनाधार) **विषै;** कहिये, सर्व कार्यके धर्मसैं विलक्षण ब्रह्मविषै **अभय स्थिति** (आत्मभाव)**कूं पावता है, तब सो** तिस ब्रह्मविषै भयके हेतु अविद्याकृत नानाभावके अदर्शनतैं **अभयकूं प्राप्त होवै है।** जातैं यह साधक जब स्वरूपविषै स्थित होवैहै, तब

---

१२५ दृश्य नाम देखने योग्य विकारका है; काहेतैं, विकार (कार्य) कूं दर्शनके अर्थ होनेतैं। ब्रह्म जातैं दृश्य नहीं, यातैं अदृश्य (अविकार) है। यह अर्थ है।

१२६ जों विशेष है सो कहियेहै औ वह विशेष विकाररूप है; ब्रह्म जातैं सर्व विकारनका हेतु होनेतैं अविकाररूप है, तातैं अनिरुक्त (अवाच्य) है।

अन्यकूं नहीं देखताहै, अन्यकूं नहीं सुनता है, अन्यकूं नहीं जानता है। औ जातैं अन्यतैं अन्यकूं भय होवै है। आत्मा (आप)तैं हीं नहीं; यातैं आत्मातैं जो अभय कहा सो युक्त है; तातैं आत्माहीं आत्माके अभयका कारण है। जातैं भय हेतुके होते ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण सर्व औरतैं निर्भय देखिये हैं, औ भयतैं रक्षक ब्रह्मके अविद्यमान हुये सो अभय अयुक्त है; तातैं तिन ब्राह्मणनकूं अभयके दर्शनतैं तिस अभयका कारण ब्रह्म है, ऐसैं जानिये है। यह साधक कब अभयकूं प्राप्त होवै है? जब यह साधक अन्यकूं नहीं देखता है, औ आत्माविषै भेदकूं न करताहै, तब अभयकूं प्राप्त होवै है। यह अभिप्राय है ॥ जब (अविद्या अवस्थाविषै) जातैं यह अविद्यावान्, अविद्याकरि आरोपित वस्तुकूं तिमिर दोषकरि आरोपित द्वितीय चंद्रकी न्यांई आत्माविषै देखताहै, औ इस ब्रह्म-विषै अल्प बी अंतर (भेददर्शन) कूं करता है; कहिये, अंतःकरणविषै अल्प भेदकूं देखता है, तब तिस भेददर्शिनरूप हेतुतैं तिस भेददर्शी आत्मा-कूं भय होवै है। तातैं आत्माहीं आत्माकूं भयका कारण होवै है; कहिये, ईश्वर मुजतैं अन्य है, औ मैं अन्य संसारी हूं; ऐसैं जाननेवाले, औ अल्प बी अंतर-कूं करनेवाले पुरुषकूं भय होवै है; यह जानिके एकताकरि न माननेवाले भेददर्शी-कूं भेद दृष्टिका विषय किया सोई ब्रह्म तो भय (भयका हेतु) होवै है। [१२७]जातैं जो यह एक अभिन्न आत्मतत्वकूं नहीं देखता है, तातैं यह विद्वान् बी अविद्वान्हीं है। औ [१२८]नाश करने योग्य मानेहुये वस्तुके विनाशके हेतुके देखनेतैं, ताकूं

१२७ "मैं तिस देवका दास हूं, औ मेरा आराध्य परमेश्वर है" ऐसैं भेदका जाननेवाला कैसैं अज्ञानी कहिये है? तहां कहै हैं। इहां यह अर्थ है:—जैसैं चंद्रके भेदकूं देखता हुया बी पुरुष अयथार्थदर्शी होनेतैं, अज्ञानी कहिये है; तैसैं।

१२८ तब तिस भेददर्शीकूं भयकी संभावना कैसैं होवै है? तहां कहै

भय होवै है। [१२९]जातैं अन्योंके नाशका हेतु जो ब्रह्म है, सो नाश करनेकूं अयोग्य है; तातैं तिस भेददर्शीके चित्तविषै तिस नाशके कारण, औ नाश करनेकूं अयोग्य ब्रह्मके अविद्यमान हुये तिस नाशके हेतु भेदके दर्शनका कार्यरूप भय युक्त है। औ सर्व जगत् भयवाला देखिये है, तातैं जगत्के भयके देखनेतैं जानिये है कि; जिसतैं जगत् भयकूं पावता है, ऐसा भयका कारण विनाशका हेतु अविनाशीरूप सो ब्रह्म निश्चयकरि है। तिस इस अर्थविषै बी यह आगे कहनेका **श्लोक (मंत्र) प्रमाण होवैहै ॥ १ ॥**

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

हैं। इहां यह अर्थ है:—संहारका कर्ता परमेश्वर मुजकूं संहार करैगा, वा नरकविषै डालेगा; ऐसैं देखनेवाले पुरुषकूं भय होवै है।

१२९ ब्रह्महीं उच्छेदका हेतु काहेतैं है? तहां कहै हैं। इहां यह अर्थ है:—उच्छेद (नाश) के हेतुके बी उच्छेदके हुये अनवस्थाके प्रसंगतैं ताकी नित्यका कहनेकूं योग्य है; सो उच्छेदका हेतु ब्रह्मतैं अन्य नहीं संभवै।

भीषाऽस्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥ सैषाऽऽनन्दस्य मीमाꣳसा भवति । युवा स्यात्साधुयुवाऽध्यायकः । आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः । तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः । ते ये शतं मानुषा आनन्दाः । स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः । स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दः । स एकः पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दाः । स एक आजानजानां देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः । स एकः कर्मदेवानामानन्दः । ये कर्मणा देवानपि यन्ति । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः । स एको देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं देवानामानन्दाः । स एक इन्द्रस्यानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतमिन्द्रस्या-

नन्दाः । स एको बृहस्पतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः । स एको ब्रह्मण आनन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये । स एकः । स य एवंवित् । अस्माँल्लोकात्प्रेत्य एतमन्नमयमात्मानमुपसङ्क्रामति । एतं प्राणमयमात्मानमुपसङ्क्रामति । एतं मनोमयमात्मानमुपसङ्क्रामति । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसङ्क्रामति । एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रामति । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

टीकाः—इस ब्रह्म-तैं भयकरि वायु चलता है । भयकरि सूर्य उदय होता है । इसतैं भयकरि अग्नि इंद्र औ पांचवां मृत्यु धावता है । जातैं वायु आदिक आप ईश्वर हुये भयके योग्य होयके बहुत श्रमवाले चलने आदिक कार्यनविषै नियमित भये प्रवृत्त होवै हैं, सो भयका कारण आनंदरूप ब्रह्म है । तिस इस आनंदरूप ब्रह्मकूं यह युक्त है कि, जिस नियामकके होते नियमकरि तिनका प्रवर्तन होवै है । जातैं राजातैं किंकरकी न्याई, वे वायु आदिक इस ब्रह्मतैं भयकरि प्रवर्त होवै हैं; तातैं भयका कारण तिनका नियामक ब्रह्म है । औ सो भयका कारण ब्रह्म आनंदरूप है । तिस[१३०] इस ब्रह्मके आनंदका सो यह विचार होवै

१३० सो भयका कारण ब्रह्म, “ जो यह आकाशविषै आनंद

है ॥ आनंदका क्या विचार करनेकूं योग्य है? तहां कहिये है:- ब्रह्मका आनंद, क्या लौकिक आनंदकी न्याई विषय औ विषयीके संबंधसैं जन्य है अथवा स्वाभाविक है? ऐसा यह आनंदका विचार है। [131]तहाँ लौकिक आनंद जो है सो बाह्य औ भीतरके साधनकी संपत्तिरूप निमित्तवाला उत्कृष्ट है, सो यह ब्रह्मानंदके निश्चयअर्थ कहिये है। जातैं इस प्रसिद्ध आनंदसैं विषयरहित ब्रह्म औ आत्माकी एकताके दर्शी पुरुषनकी बुद्धिका विषय ब्रह्मानंद जाननेकूं शक्य है, यातैं यह लौकिक आनंद कहिये है। [132]लौकिक आनंद बी ब्रह्मानंदकाहीं लेश (प्रतिबिंब) है। जातैं अविद्यासैं तिरस्कारकूं पायाहुया अज्ञात सो ब्रह्मानंद, अविद्याके उत्कर्ष हुये ब्रह्मादिक प्राणिनकरि कर्मके वशतैं बुद्धिके अनुसार विषय आदिक साधनके संबंधके अधीन होवै है, औ सो लोकविषै विपरीत भासमान होनेतैं अस्थिर लौकिक होवै है; सोई ब्रह्मानंद, अविद्या काम औ कर्मकी न्यूनताकरि, मनुष्य गंधर्व आदिककी उत्तरउत्तर भूमिविषै निष्काम विद्वान् श्रोत्रियकूं प्रत्यक्ष हुया शतगुन अधिक अधिक उत्कर्षसैं जहांलगि हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माका आनंद है, तहांलगि भासता है। औ अविद्याकृत विषय विषयीके विभागके विद्यासैं निषेध किये हुये स्वाभाविक परिपूर्ण एक अद्वैत आनंद होवै है

न होवै तो" इस श्रुतिविषै आनंद कहा। औ इहां आनंद जो है सो लोकविषै जन्य प्रसिद्ध है, तातैं विचारका आरंभ करै हैं।

१३१ जब ब्रह्मानंदका विचार प्रसंगविषै प्राप्त भया है, तब इहां श्रुतिविषै सार्वभौमके आनंद आदिकका कहनेका आरंभ किस अर्थ है? तहां कहै हैं। इहां यह अर्थ है:- लौकिक आनंद जो है, सो कहींक अवधिकूं पाया है, सातिशय होनेतैं, परमाणुकी न्याई। ऐसैं ब्रह्मानंदके अनुमानअर्थ लौकिक आनंदनकें कहनेका आरंभ है।

१३२ अब अन्यप्रकारसैं ब्रह्मानंदके ज्ञानकूं कहे हैं।

या अर्थकूं प्रकट करनेकूं इच्छते हुये कहै हैं:– श्रेष्ठ युवा अधीतवेद च्यारी औरतैं माता आदिककी शिक्षाकूं पाया अत्यंत दृढ औ बलिष्ठ, ऐसै भीतरके साधनकरि सपन्न जो पुरुष है, ताकी यह भोगके साधन धन करि औ कर्मके साधन दृष्ट अर्थकरि पूर्ण सर्व पृथिवी होवै; कहिये; सारी पृथिवीका पति चक्रवर्ती राजा होवै। ताका जो आनंद है, सो एक मनुष्यनका उत्कृष्ट आनंद है। वे जो शत मनुष्यनके आनंद हैं सो एक मनुष्य गंधर्वनका आनंद है; कहिये; मनुष्यनके आनंदतैं शतगुन अधिक मनुष्य गंधर्वनका आनंद होवै है। मनुष्य हुये जे कर्म उपासनाके बलसैं गंधर्वपनेकूं प्राप्त भयेहैं, वे मनुष्य गंधर्व कहिये हैं। वे जातैं अंतर्धान आदिक शक्तिकरि संपन्न हैं, औ सूक्ष्म कार्य कारणवाले हैं, तातैं तिनकूं शीतोष्ण आदिक द्वंद्वकी पीडाकी अल्पता है; औ द्वंद्वके निवारणकी सामर्थ्यरूप साधनकी संपत्ति है। तातैं मनुष्यभोगकी कामनासैं रहित मनुष्यगंधर्वकूं चित्तकी प्रसन्नता होवै है। तिस प्रसन्नता विशेषतैं सुख विशेषकी प्रकटता होवै है। ऐसैं पूर्व पूर्व भूमिकातैं उत्तर उत्तर भूमिकाविषै प्रसन्नताके विशेषतैं शतगुन (सौ गुन) आनंदका उत्कर्ष संभवै है। प्रथम[१३३] तो अकामहत (कामनासैं रहित)का अग्रहण है, काहेतैं, मनुष्यनके विषयभोगकी कामनासैं अहत भये श्रोत्रिय (विद्वान्)कूं मनुष्यके आनंदतैं शतगुन आनंदका उत्कर्ष मनुष्यगंधर्वके तुल्य कहनेकूं योग्य है; इस प्रयोजन अर्थ "श्रेष्ठ युवा औ अधीत वेद" इन

---

१३३ प्रथम आकामहत (निष्काम) विशेषणके अग्रहणका तात्पर्य कहै हैं। इहां यह अर्थ है:– जब प्रथम पर्यायविषैहीं अकामहत (निष्काम) ग्रहण करिये, तब ताहीकूं सार्वभौम (चक्रवर्तीराजा)के आनंदसैं तुल्य आनंद होवैगा। औ तब मानुष आनंदकी इच्छासैं रहित पुरुष, मानुष आनंदका भागी है; ऐसैं व्याघात दोष होवैगा। तातैं मनुष्यगंधर्वके आनंदसैं तुल्य ताके आनंदकूं दिखावनेकूं प्रथमपर्यायविषै ताका अग्रहण है।

पदनकरि श्रोत्रियपना औ निष्पापपना ग्रहण करिये हैं। जातैं वे दोनूं विशेषण सर्वठिकानें समान हैं, औ कामनासैं रहितपना तो विषयकी अधिकता औ न्यूनतातैं, सुखकी अधिकता औ न्यूनताके अर्थ विशेष होवैहै। यातैं ताके विशेषतैं शतगुन सुखके अधिकताकी प्रतीतितैं, कामनासैं रहितपनैकूं परमानंदके प्राप्तिकी साधनताके विधानअर्थ प्रथमपर्यायविषै कामनासैं रहितपनैका अग्रहण है। ऐसैं कथन किया जो मनुष्यगंधर्वका आनंद, सो श्रोत्रिय मनुष्यनके विषयभोगकी औ कामनासैं रहित (ज्ञानी)कूं होवैहै। वे जो शत मनुष्य गंधर्वनके आनंद हैं, सो एक देवगंधर्वनका आनंद है, सो श्रोत्रिय औ कामनासैं रहितकूं होवैहै। कल्पकी आदिविषै जे जातितैं गंधर्व होवैहैं, वे देवगंधर्व कहिये हैं। वे जे शत देवगंधर्वनके आनंद हैं, सो एक चिरलोकवासी पितरनका आनंद है; सो श्रोत्रिय औ कामनासैं रहितकूं होवैहै। वे जे शत चिरलोकवासी पितरनके आनंद हैं, सो एक आजानज देवनका आनंद है; सो श्रोत्रिय औ कामनासैं रहितकूं होवैहै। आजान जो देवलोक तिसविषै स्मृति उक्त कर्मसैं उत्पन्न भये जे देव, वे आजानज देव कहिये हैं। वे जे शत आजानज देवनके आनंद हैं, सो एक कर्मदेवनका आनंद है। जे केवल वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्मसैं देव भावनकूं पावते हैं (देवनके स्थानोविषै उपजते हैं) वे कर्मदेव कहिये हैं; सो कर्म देवनका आनंद श्रोत्रिय औ कामनासैं रहितकूं होवैहै। वे जे शत कर्मदेवनके आनंद हैं, सो एक देवनका आनंद है; सो श्रोत्रिय औ कामनासैं रहितकूं होवैहै। अष्टवसु एकादशरुद्र औ द्वादश आदित्य आदिक मिलिके तैंहेंतीस जे हविके भोक्ता मुख्यदेव हैं, वे इहां देव करिये हैं। वे जे शत देवनके आनंद हैं, सो एक देवनके पति इंद्रका आनंद है; सो श्रोत्रिय औ कामनासैं रहि-

तकूं होवैहै । वे जे शत इंद्रके आनंद हैं, सो एक इंद्रके आचार्य बृहस्पतिका आनंद है; सो श्रोत्रिय औ कामनासैं रहितकूं होवैहै । वे जे शत बृहस्पतिके आनंद हैं, सो एक प्रजापति (त्रिलोकरूप शरीरवाले विराट्)का आनंद है; सो श्रोत्रिय औ कामनासैं रहितकूं होवैहै । वे जे शत प्रजापतिके आनंद हैं, सो एक ब्रह्माका आनंद है; कहिये, समष्टि व्यष्टि स्वरूप, औ जन्ममरणरूप अग्निविषै व्यापी, जहां ये आनंदके भेद एकताकूं पावतेहैं, औ जहां तिनका निमित्त धर्म औ तिनकूं विषय करनेवाला ज्ञान अरु कामनासैं रहितपना निरतिशय (सर्वसैं अधिक) है, सो यह हिरण्यगर्भ ब्रह्मा है; ताका यह आनंद है; सो श्रोत्रिय औ कामनासैं रहितकूं होवैहै; कहिये, श्रोत्रिय निष्पाप (शास्त्र मार्गके अनुसार वर्तनेवाला) औ कामनासैं रहित पुरुषकरि सो ब्रह्मदेवका आनंद सर्व ओरतैं प्रत्यक्ष अनुभव करिये है । तातैं ये श्रोत्रियता आदिक तीन आनंदके साधन हैं, ऐसैं जानिये है । तिनमैं श्रोत्रियपना औ निष्पापपना ये दोनूं नियमित हैं, औ निष्कामपना तौ अधिक अधिक होवैहै; यातैं ताकी उत्कृष्ट साधनता जानिये है । तिस[१३४] ब्रह्माकूं निष्कामपनेकी अधिकताकरि प्रतीयमान जो श्रोत्रियकूं प्रत्यक्ष ब्रह्मका आनंद है, सो जिस परमानंदका एक देश (एक अंश) है, काहेतैं, "इसीहीं आनंदके एक देशके तांई अन्य भूत (ब्रह्मादिक) उपजीविकाकूं करैहैं" इस अन्य श्रुतितैं । समुद्र जलके बिंदुकी न्यांई जाका एकदेशरूप सो यह चक्रवर्त्ती आदि-

---

१३४ जिस अर्थ विचारका आरंभ किया है, तिस निरतिशय आनंदकी सिद्धिविषै वाक्यके तात्पर्यके दिखावनेकूं कहैहैं । इहां तिस हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माका जो आनंद है, औ जो ताके उपासककूं प्रत्यक्ष है, सो आनंद जाकी मात्रा (लेश) है, सो यह परमानंद स्वाभाविक है; ऐसैं संबंध है ।

कका आनंद विभाग (नाना भाव)कूं पायाहुया जहां (जिस निष्काम ब्रह्मवेत्ताके प्रत्यक्ष कैवल्य आनंदविषै) एकताकूं पावता है, सो यह परमानंद स्वाभाविक है, औ अद्वैतरूप होनेतैं, इहां आनंद औ आनंदीका अविभाग है ॥ सो यह विचारका फल अब समाप्त करिये हैः—सो जो यह पुरुषविषै है, औ जो यह सूर्यविषै है, सो एक है। "सो जो पुरुषविषै" इहां परम व्योमगत गुहाविषै स्थित हुया आकाशसैं आदिलेके अन्नमयपर्यंत कार्यकूं सृजिके ताहीके तांई पीछे प्रवेशकूं पाया है; ऐसा जो परमात्मा, यह "सो जो" ऐसैं कहिये है, सो एक है। जो यह सूर्यविषै है; कहिये जो श्रोत्रिय (ब्रह्मनिष्ठ)कूं प्रत्यक्ष कथन किया परमानंद है, जाके एक देशके तांई ब्रह्मादिक भूत सुखके योग्य हुये उपजीविकाकूं करैहैं, यह "सो जो यह सूर्यविषै है," ऐसैं कहिये है; सो एक है। ऐसैं तिस[१३५] विचारकरि सिद्ध वस्तुकूं भिन्न देशगत घटाकाश औ महाकाशकी एकताकी न्यांई उपसंहार करिये है ॥ [१३६] ननु, ताके निर्देश हुये "सो जो यह पुरुषविषै है" ऐसैं

---

१३५ विचारसैं "निरतिशय आनंदरूप ब्रह्म मैं हूं" ऐसैं निर्धार किया, ताकी निष्काम पुरुषके प्रत्यक्षके कथनतैं अभेदकी सिद्धि है। जातैं परका आनंद परकूं प्रत्यक्ष नहीं होवैहै, तातैं निरतिशय आनंदरूप ब्रह्महीं तूं हैं। जीवका तत्व "ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मकूं पावता है" ऐसैं कहनेकूं आरंभ किया, औ विचारसैं सिद्ध भया, सो अब समाप्त करिये है।

१३६ सूर्य ग्रहणके अधिदैविक उपाधिरूप अर्थके कहनेकूं अनिश्चितपनैके दिखावनेकूं प्रश्नकूं प्रकट करैहैं। इहां यह अर्थ हैः—"जो यह इस मंडलविषै पुरुष है, औ जो यह दक्षिणनेत्रविषै पुरुष है" इत्यादिरूप अन्य श्रुतिविषै सूर्यमंलविषै स्थित पुरुषकी दक्षिणनेत्रविषै स्थित पुरुषसैं एकताकूं प्रसिद्ध होनेतैं, इहां बी सूर्यविषै स्थित पुरुषसैं एकताके कथन हुये दक्षिणनेत्रका ग्रहण युक्त है।

अविशेषकरि अध्यात्मरूपका कथन युक्त नहीं है, परंतु "जो यह दक्षिण नेत्रविषै पुरुष है" ऐसा कथन युक्त है; काहेतैं, अन्य श्रुतिविषै प्रसिद्ध होनेतैं ? सो[१३७] बनै नहीं:—परमात्माके अधिकारतैं । जातैं "इस अदृश्य औ अनात्म्यविषै" औ "इसतैं भयकरि वायु चलता है" औ "सो यह आनंदका विचार है," इन वाक्यनकरि जातैं इहां परमात्माहीं अधिकारकूं पाया है, औ जातैं अकस्मात् प्रसंगविषै अप्राप्त पदार्थं कहनेकूं युक्त नहीं, औ इहां परमात्माका विज्ञान कहनेकूं इच्छित है; तातैं "सो एक है" या वाक्यकरि परमात्माहीं कहिये है ॥ ननु, इहां आनंदका विचार प्रसंगविषै प्राप्त भया है, ताका बी फल समाप्त करनैकूं योग्य है ? तहां कहैहैं:—अभिन्न स्वाभाविक जो आनंद है, सो परमात्माहीं है, विषय विषयीभावसैं जनित नहीं; ऐसैं सो विचारका फल समाप्त किया है । औ "सो जो यह पुरुषविषै है" औ "जो यह सूर्यविषै है, सो एक है" ऐसैं भिन्न अधिकरणविषै स्थित वस्तुके भेदके निषेधसैं जो यह कथन किया है, सो निश्चयकरि ताके अनुसारहीं है ॥ ननु, ऐसैं हुये बी सूर्यरूप विशेषण (उपाधि)का ग्रहण व्यर्थ है ? सो व्यर्थ बनै नहीं:—काहेतैं, सूर्यके ग्रहणकूं उत्कर्ष औ अपकर्षके निषेधरूप अर्थवाला होनेतैं । जातैं मूर्त औ अमूर्तरूप द्वैतका जो सूर्यके अंतर्गत उत्कर्ष है, सो जब पुरुषगत भेदके निषेधसैं परमानंदकी अपेक्षाकरिके सम होवैहै, तब ता

---

१३७ अध्यात्म औ अधिदैवतरूप लिंगात्मा जो है, सो उपासनाके कहनेकी इच्छाके हुये तैसैं होवैहै । इहां सो उपासना कहनेकूं इच्छित नहीं है; ऐसैं कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—जो उत्कृष्ट उपाधिविषै प्रतिबिंबकूं पाया है, सोई शिर औ हस्त आदिकवाले पुरुषरूप निकृष्ट उपाधिविषै प्रतिबिंबकूं पावता है; ऐसैं परमानंदकी अपेक्षासैं समता है । औ विशिष्ट चेतनोंकी स्वभावसैं एकता कहनेकूं इच्छित है, ऐसैं जानता है; सो निरतिशय आनंदकूं पावता है ।

गतिकूं प्राप्त भये पुरुषकूं कोइबी उत्कर्ष वा अपकर्ष नहीं है; यातैं "अभयस्थितिकूं पावताहै" यह पूर्व उक्त अर्थ घटित होवै है ॥ ऐसैं[१३८] या वल्लीके षष्ठअनुवाकविषै "ब्रह्म है वा नहीं है?" ऐसा कथन कियाथा जो प्रश्न, सो एक कार्य रसलाभ प्राणन अभयस्थिति औ भयदर्शनरूप युक्तिनतैं सो आकाश आदिकका कारण ब्रह्म हीं है; ऐसैं दूरी किया । औ अन्य दोनूं विद्वान् औ अविद्वान्कूं ब्रह्मकी प्राप्ति औ अप्राप्ति होवै है, ताकूं विषय करनेवाले प्रश्न हैं । तहां "विद्वान् मरणकूं पायके इस ब्रह्मरूप लोककूं पावताहै वा नहीं पावता है?" ऐसा अंतका प्रश्न है । ताके दूरी करने अर्थ कहिये है । औ मध्यम जो प्रश्न है, सो अंतके प्रश्नके दूरी करनेसैं हीं दूरी होवैगा, यातैं ताके दूरी करनेअर्थ प्रयत्न नहीं करिये है:-जो कोइक उक्तप्रकारका "उत्कर्ष औ अपकर्षसैं रहित अद्वैत सत्य ज्ञान अनंतरूप ब्रह्म मैं हूं" ऐसैं जानता है, सो दृष्ट औ अदृष्ट विषयका समुदायरूप जो यह लोक है, तिस इस लोकतैं निरपेक्ष होयके इस कथन किये अन्नमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करता है; कहिये, विषयके समूहकूं पिंडरूप अन्नमयतैं भिन्न नहीं देखताहै; किंतु सर्वकूं स्थूलभूत अन्नमयरूप आत्मा देखता है । तातैं भीतर इस सर्व अन्नमयरूप आत्माविषै स्थित अभिन्न प्राणमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करता है, पीछे इस मनोमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करताहै । पीछे इस विज्ञानमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करताहै । पीछे इस आनंदमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करता है । पीछे अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयन ब्रह्मविषै अभय स्थितिकूं पावता है ॥ तहां यह चिंतन (विचार) करनेकूं योग्य है:— यह ऐसैं जाननेवाला कौंन है, वा सो कैसैं उल्लंघन करताहै, औ सो उल्लंघन कर्ता क्या परमात्मातैं अन्य (भिन्न) कियाहै, अथवा

१३८. उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक उत्तर ग्रंथकूं प्रकट करै हैं ।

सोइ सो है, औ तिसतैं[१३९] क्या है? जो कहोगे, सो परमात्मातैं अन्य है; तब "ताकूं सृजिके ताहीके तांई पीछे प्रवेश करता भया," "यह अन्य है, मैं अन्य हूं; ऐसैं जो जानताहै, सो सम्यक् जानता नहीं," "एकहीं अद्वितीय है," "सो तूं हैं;" इत्यादि श्रुतिनतैं विरोध होवैगा। औ जो कहोगे सोई है; तब "आनंदमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करता है," ऐसैं एकहींकूं कर्म (विषय) भाव औ कर्ता (विषयी) भावका असंभव होवैगा, औ परमात्माकूंहीं संसारीपना वा पराभव होवैगा? यद्यपि दोनूं प्रकारसैं प्राप्त भया जो दोष, सो निवारण करनेकूं अशक्य है; यातैं चिंता (विचार) व्यर्थ है; तथापि तिन दोनूंमैंसैं एक पक्षविषै दोषकी अप्राप्ति है, वा तीसरे अदृष्ट पक्षविषै दोषकी अप्राप्ति है; सोइ शास्त्रका अर्थ है, यातैं चिंता व्यर्थ नहीं है, किंतु तिस शास्त्रार्थके निर्द्धारण अर्थ होनेतैं यह चिंता प्रयोजनवालीहीं है? ऐसैं जब वादीनैं कहा, तब सिद्धांती कहै हैंः—प्राप्त भया जो दोष, सो निवारण करनेकूं अशक्य है। औ दोनूंमैंसैं अन्य पक्षके वा तीसरे अदृष्ट पक्षके निश्चय किये हुये चिंता व्यर्थ होवैगी, यह तेरा कथन सत्य है; परंतु सो अबतलकि निश्चय किया नहीं, यातैं ताके निश्चयरूप अर्थवाली होनेतैं, यह चिंता सफल है॥ यद्यपि शास्त्रके निश्चयरूप अर्थवाली होनेतैं, यह चिंता अर्थवाली है, औ तुम चिंतन करतेहो यह कथन सत्य है; परंतु ताकूं क्यूं निर्णय नहीं करते हो? औ निर्णय करनेकूं योग्य नहीं, ऐसा वेदवचन नहीं है। तब बहुत प्रतिपक्षनके होनेतैं, औ वेदअर्थके परायण होनेतैं, एकताके वादी तुम कैसैं निर्णय करते नहीं हो? जातैं बहुत नानाभावके वादी वेदतैं बाह्य तुह्मारे प्रतिपक्षी हैं, यातैं मेरी आशंकाकूं नहीं निर्णय करते हो

---

१३९ संशययुक्त औ प्रयोजनसहित वस्तु विचारकूं योग्य होवै है, औ इहां किसपक्षविषै कौंन दोष है वा कौंन लाभ है; यह कहै हैं।

ऐसैं मैं जानता हूं? तहां सिद्धांती कहै हैं:—यहही मेरा कल्याण है कि, जो मुज एकके संबंधीकूं अनेकका संबंधी, औ बहुत प्रतिपक्षवाला कहता हैं, यातैं मैं सर्वकूं जीतूंगा, औ चिंताकूं आरंभ करूं हूं:—सोई[१४१] सो होवै है; काहेतैं, ताके भावकूं कहनेकूं इच्छित होनेतैं। जातैं "ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मकूं पावता है" इस वाक्यकरि ताके विज्ञानसैं इहां परमात्मभाव कहनेकूं इच्छित है। औ जातैं अन्यकूं अन्यभावकी प्राप्ति नहीं संभवै है, यातैं सो उल्लंघन कर्त्ता परमात्मा हीं है ॥ ननु, ताकूं बी ताके भावकी प्राप्ति अघटित है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, ताकूं अविद्याकृत अनात्माके निषेधरूप अर्थवाली होनेतैं। जातैं ब्रह्मविद्याकरि जो स्वस्वरूपकी प्राप्ति उपदेश करियेहै, सो आत्मापनेकरि आरोपित अनात्मारूप अविद्याकृत अन्नमयादि विशेष आत्माके निषेध अर्थ है ॥ जो[१४२] कहै, इस प्रकारके अर्थकरि युक्तता कैसैं जानिये है? इहां श्रवण करः—

१४० यहहीं विचारके आरंभ करनेवाले मेरा कल्याण है, जो तूं मुजकूं "तुम एकत्ववादी हो" ऐसैं कहता हैं। अप्राप्त वस्तुका वादी होनेतैं एकताके वादीकूं बी एक वस्तु संमत होनेतैं औ अनेक वस्तुके वादी बहुत मेरे प्रतिपक्षी हैं। यह अर्थतैं बी मेरा कल्याण है; काहेतैं अनेकताकूं अन्योन्याश्रयआदिक दोषकरि दूषित होनेतैं, औ पूर्वपक्षके निषेधसैं सिद्धांतके संभवतैं। यह अर्थ है।

१४१ विचारके आरंभकूं प्रतिपादन करिके, अब सिद्धांतके कहनेका आरंभ करै हैं। इहां यह अर्थ है:—ऐसैं जाननेवाला पुरुष उपाधिकृत भेदसैं भिन्न हुया बी स्वरूपतैं परमात्माहीं होवैहै।

१४२ अविद्याकरि आरोपित अब्रह्मभावकी निवृत्तिहीं ब्रह्मकी प्राप्ति कहनेकूं इच्छित है। तहां फलवाक्यका ऐसैं अर्थकरि युक्तपना कैसैं जानिये है, औ अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति नहीं होवै है? ऐसैं वादी कहै है।

विद्या[143]मात्रके उपदेशतैं इस प्रकारके अर्थकरि युक्तता जानिये है, औ अविद्याकी निवृत्तिरूप विद्यका कार्य देख्या है, सो आत्माकी प्राप्तिविषै विद्यामात्ररूप साधन इहां उपदेश करिये है ॥ जो कहै, मार्गके विज्ञानके उपदेशकी न्यांई तिसके आत्मभावविषै विद्यामात्ररूप साधनका उपदेश हेतु है; काहेतैं, अन्यदेशकी प्राप्तिविषै मार्गके विज्ञानके उपदेशके देखनेतैं, औ जातैं ग्रामहीं गंता (गमन कर्ता) नहीं है; यातैं सो मार्गके ज्ञानका उपदेश सफल है; तैसैं जीव स्वरूपतैं ब्रह्म नहीं है, तौबी विद्याका उपदेश अभ्यासद्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिका हेतु होनेतैं सफल है? सो[144] कथन बनै नहीं; काहेतैं, दृष्टांत औ सिद्धांतकी विषमतातैं। जातैं तहां ग्रामकूं विषय करनेवाला विज्ञान नहीं उपदेश करिये है; किंतु तिस ग्रामकी प्राप्तिके मार्गकूं विषय करनेवालाहीं विज्ञान उपलेश करिये है। तैसैं इहां ब्रह्मके विज्ञानसैं भिन्न अन्यसाधनकूं विषय करनेवाला विज्ञान नहीं उपदेश करिये है, यातैं उपदेशकी विषमतातैं मार्ग विज्ञानके उपदेका दृष्टांत विषम है ॥ जो कहै, उक्त कर्म आदिक साधनकी अपेक्षावाला ब्रह्मका विज्ञानरूप साधन परब्रकी प्राप्तिविषै उपदेश करिये है? सो बनै नहीं:—काहेतैं "मोक्षकूं नित्य होनैतैं" इत्यादि वाक्यकरि पूर्व निषेध किया होनेतैं। औ "ताकूं सृजिके ताहीके तांई फेर प्रवेश

---

१४३ अब और प्रकारसैं बी असंभवकूं वादी शंका करैहै। इहां यह अर्थ है:—गमन कर्ताकूं स्वरूपतैं ग्रामरूपताके अभाव हुये बी जैसैं मार्गके ज्ञानका उपदेश सार्थक (सफल) है, तैसैं जीवकूं स्वरूपतैं ब्रमरूपताके अभाव हुये बी विद्याका उपदेश सार्थक है; काहेतैं, अभ्यासद्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिका हेतु होनेतैं।

१४४ "तूं ग्राम हैं" ऐसैं तहां (दृष्टांतविषै) उपदेश नहीं है; औ इहां (सिद्धांतविषै) अभेदका उपदेश प्रतीत होवैहै। यातैं उपदेशकी विषमतातैं तैनैं कहा जो दृष्टांत, सो युक्त नहीं है; ऐसैं सिद्धांती कहैहैं।

करता भया" यह श्रुति कार्यकी तिस रूपताकूं दिखावै है। औ अभय स्थितिके संभवतैं, जातैं जब विद्यावान् स्वस्वरूपतैं अन्यकूं नहीं देखता है; तातैं अभय स्थितिकूं पावता हैं ऐसैं होवै; काहेतैं, भयके हेतु अन्यके अभावतैं, औ अन्य[१४५] (ईश्वर) कूं अविद्याकरि रचितताके हुये विद्यासैं ताके अवस्तुभावके दर्शनका संभव है, जैसैं दूसरे चंद्रमाका जो असत्पना है, सो तिमिर दोषसैं रहित नेत्रवाले पुरुषकरि नहीं ग्रहण करिये है, तैसैं ॥ [१४६]जो कहै, ऐसैं नहीं ग्रहण करिये है? [१४७]सो बनै नहीं:— काहेतैं, सुषुप्तिवाले औ समाधिवाले पुरुषकूं ता ईश्वरके अग्रहणतैं। [१४८]जो कहै, सुषुप्तिवाले पुरुषविषै जो अन्यका अग्रहण है, सो

१४५ जब विद्वान्‌तैं अन्य भयका हेतु ईश्वर नहीं है, तब भिन्न ईश्वरके ज्ञानकी कौन गति (व्यवस्था) है? यह आशंका करिके कहै हैं। इहां यह अर्थ है:— कल्पित भेदसहित रूपसैं ईश्वरकूं अविद्यासैं रचिततारूप मिथ्यापनैके हुये विद्यासैं तिसविषै मिथ्यापनैका ज्ञान संभवै है। "मेरा नियामक ईश्वर है" यह ज्ञान जातैं मिथ्या है तातैं तिस ईश्वरकी औ मेरी एकरूपताहीं वास्तव है; ऐसैं विद्वान्‌की दृष्टिसैं उपाधि विशिष्ट चेतनरूप ईश्वरका मिथ्यापना है।

१४६ अब पूर्ववादी दृष्टांतके विषमताकी शंका करै है। इहां यह अर्थ है:— जैसैं चंद्रकी एकताके दर्शनतैं दूसरा चंद्र नहीं जानिये है, ऐसैं इहां नहीं है, किंतु इहां ब्रह्मवेत्ताकरि भिन्न ईश्वर जानिये है; काहेतैं, भोजन आदिककी प्रवृत्तिके असंभवकरि जीवन्मुक्तकूं बी नियमित प्रपंचकी प्रतीतिके अंगीकारतैं, औ प्रपंचके नियमकूं ईश्वरके अधीन होनेके अंगीकारतैं।

१४७ यद्यपि जाग्रत्‌विषै विद्वान्‌कूं भिन्न आभासका दर्शन होवै है, तथापि सो भयका कारण नहीं है। जातैं मायावी पुरुष स्वरचित व्याघ्रके आभासतैं भयकूं पावता नहीं, औ अविद्वान्‌कूं बी भिन्न वस्तुका दर्शन सदा नहीं; ऐसैं कहै हैं।

१४८ सुषुप्तिविषै भिन्नवस्तुके अग्रहणके सद्भावका साधक नहीं है; ऐसैं पूर्ववादी कहै है। इहां यह अर्थ है:— जैसैं बाणका बनावनेवाला बाणविषै

अन्य कार्यविषै आसक्त भये पुरुषकी न्याई है? [१४९]सो बनै नहीं:— काहेतैं, सुषुप्तिविषै सर्वके अग्रहणतैं ॥ [१५०]जो कहै, जाग्रत् औ स्वप्नविषै अन्यके ग्रहणतैं ताका सद्भावहीं है? [१५१]सो बनै नहीं:— काहेतैं ताकूं अविद्यारचित होनेतैं, जाग्रत् औ स्वप्नविषै जो अन्यका ग्रहण होवै है, सो अविद्याकृतहीं है, काहेतैं, अविद्याके अभाव हुये ताके अभावतैं ॥ [१५२]जो कहै, सुषुप्तिविषै जो अग्रहण है, सो बी अविद्याका किया है? [१५३]सो बनै नहीं:— काहेतैं, ताकूं

आसक्त मनवाला होवै है, सो तिस आसक्तिसैं ता घ्राणतैं भिन्न विद्यमान वस्तुकूं बी नहीं देखता है; तैसैं सुषुप्तिविषै बी सुखमैं आसक्त होनैकरि विद्यमान हुये बी द्वितीय वस्तुकूं नहीं देखता है, परंतु ताके अभावतैं नहीं।

१४९ अन्य वस्तुविषै आसक्त पुरुषकूं तातैं भिन्न वस्तुके अदर्शन हुये बी ताका अदर्शनहीं है। सुषुप्तिविषै बी "आज मैं कछुबी न जानता भया" इस प्रतीतितैं सुखकूं बी आत्माके तादात्म्यतैं औ अज्ञानकी भिन्नताके अकथनतैं, वास्तविक द्वितीयवस्तुके अभावतैंहीं द्वितीयवस्तुका अग्रहण है। ऐसैं कहै हैं।

१५० जब सुषुप्तिविषै अप्रतीतितैं द्वैतका असद्भाव है, तब जाग्रत् औ स्वप्नविषै प्रतीतितैं द्वैतका सद्भाव क्यूं नहीं होवैगा? ऐसैं पूर्ववादी कहै है।

१५१ अनात्म आदिकविषै आत्मभाव आदिककी बुद्धि अविद्या है, ताके होतेहीं द्वैतकी प्रतीतितैं प्रतीतिमात्र द्वैतके सद्भावकी साधक नहीं है, अन्यथा शुक्तिगत रूप्य आदिकके बी सद्भावके प्रसंगतैं।

१५२ इहां पूर्ववादी कहै है। याका यह अर्थ है:— सुषुप्तिविषै द्वैतका अग्रहण बी लयरूप अविद्याका किया है, परंतु भेदके अभावका किया नहीं। यातैं सुषुप्तिविषै सर्वात्मा ब्रह्मभूत हुया जीव, अपनेतैं भिन्न वस्तुकूं ताके अभावतैंहीं नहीं देखता है; ऐसैं जो तुमनैं कहा, सो झूठ है।

१५३ विद्यमान हुये बी द्वैतका अविद्याके वशतैं अग्रहण होवै है, इस तेरे वचनका कौन अर्थ है? सो कहो। अग्रहण क्या ग्रहणका प्रागभाव

स्वाभाविक होनेतैं। [१५५]जातैं इष्ट (सत् वस्तु) का स्वरूप अविक्रिया है, अन्यकी अपेक्षासैं रहित होनेतैं। औ विक्रिया जो है सो ताका स्वरूप नहीं, अन्यकी अपेक्षावाला होनेतैं। जातैं कारककी अपेक्षावाला वस्तु परमार्थतैं सत् वस्तुका स्वरूप नहीं, औ विशेष जो है सो कारककी अपेक्षावाला है, औ विशेषहीं विक्रिया है, औ जाग्रत् स्वप्नका जो ग्रहण है, सो विशेष है। जातैं जो जाका अन्यकी अपेक्षासैं रहित स्वरूप है, सो ताका यथार्थ स्वरूप है; औ जो अन्यकी अपेक्षावाला है सो यथार्थस्वरूप नहीं; काहेतैं, अन्यके अभाव हुये ताके अभावतैं। तातैं स्वाभाविक हो-

---

होवै है, अथवा अप्रकाशका आरोप है, किंवा अग्रहणके आकारसैं अविकारकूं प्राप्त हुये स्वरूपकी स्थिति है? तिनमैं प्रथम पक्ष बनै नहीं; काहेतैं प्रागभावके अनादिपनैके अंगीकारतैं। द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं; काहेतैं, अन्य (सांख्य) वादीनकरि द्वितीय (सुषुप्तिगत चेतन) वस्तुके स्वप्रकाशतारूप स्वभावके अंगीकारसैं अप्रकाशके आरोपके अनंगीकारतैं, औ प्रकाशके आरोप हुये सर्वकी स्वप्रकाश ब्रह्मरूपताके अंगीकार करनेकी योग्यतासैं हमारे इष्टकी सिद्धिके प्रसंगतैं। तृतीयपक्ष बी बनै नहीं; ऐसैं अब कहैं हैं। इहां यह अर्थ है:—अविकारकूं प्राप्त भये स्वरूपकी स्थिति जो है, सो अविद्याका कार्य नहीं है; काहेतैं उत्पत्ति अरु नाशकरि रहित होनेतैं।

१५४ इस उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करै हैं। इहां स्वतंत्रताकी सिद्धिके अभिप्रायसैं सन्मात्र वस्तु इष्ट कहिये है, परंतु वैशेषिकके अभिप्रायसैं क्रियावाला गुणवाला समवायी कारण इष्ट नहीं है, प्रमाणके अभावतैं, ऐसैं जानना। औ इहां अविक्रिया जो कही है, सो विक्रियाके अभावकरि लक्षणासैं जाननेयोग्य स्वरूप है; काहेतैं, ताकूं निरपेक्ष सिद्धिवाला होनेतैं। औ ग्रहण आदिक विक्रिया जो है, तो स्वाभाविक नहीं है; काहेतैं, ताकूं स्फटिकके लालरंगकी न्यांई परकी अपेक्षावाली होनेतैं। अब जो निरपेक्ष सिद्ध होनेतैं अविक्रियपना कहा, ताकूं स्पष्ट करै हैं।

नेतैं सुषुप्तिविषै जो अग्रहण है, सो जाग्रत् औ स्वप्नकी न्यांई विशेष नहीं।[१५५]औ फेर जिनके मतमैं ईश्वर, आत्मातैं अन्य है, औ कार्य अन्य है; तिनकूं भयकी अनिवृत्ति होवै है; काहेतैं, भयकूं अन्य वस्तुरूप निमित्तवाला होनेतैं, औ अन्य वस्तुके स्वरूपके स्थित हुये वा नष्ट हुये सत्वस्तुके स्वरूपका नाश नहीं होवै है; काहेतैं व्याघात औ अनवस्थारूप दोषके होनेतैं। औ [१५६]असत्वस्तुतैं आत्माका लाभ नहीं होवै है ॥ जो[१५७]कहै, अपेक्षासहित अन्य वस्तुकूं भयका हेतुपना है? सो बनै नहीं:— काहेतैं, ताकूं बी तुल्य होनेतैं। जो अधर्म आदिकका अनुयायीरूप नित्य वा अनित्य निमित्तकूं अपेक्षाकरिके अन्य वस्तु भयका कारण होवै, तिसप्रकारके ताकूं बी स्वरूपकी हानिके अभावतैं भयकी अनिवृत्ति होवै है, वा आत्माकी हानि होवै है। औ [१५८]सत् औ असत्कूं परस्परकी

---

१५५ ऐसैं सिद्धांती, अपने मतविषै चेतनकी सत्तासैं भिन्न भयके हेतु ईश्वरके अभावतैं, विद्वान्कूं अभय संभवै है; ऐसैं प्रतिपादन करिके, अव द्वैतवादीनके पक्षविषै तिस अभयके असंभवकूं कहै हैं॥ इहां यह भाव है:— अन्यवस्तुके स्वरूपके स्थित हुये वा नष्ट हुये सत् वस्तुका ध्वंस होवै नहीं; काहेतैं, व्याघाततैं; औ ताकी अनवस्थातैं।

१५६ तब भयकी उत्पत्तिके हुये असत्हीं अभयकी प्राप्ति होवैगी? यह आशंकाकरिके कहै हैं।

१५७ भिन्न ईश्वरकूं सद्भावमात्रसैं भयकी हेतुता नहीं है; किंतु धर्म आदिककी अपेक्षवालेकूं भयकी हेतुता है, यातैं तिस धर्म आदिकके अभावतैं अभय होवैगा? यह आशंकाकरिके; सिद्धांती, यह सांख्यवादीकरि कहनेकूं योग्य नहीं; काहेतैं, सत्रूप अधर्म आदिकके बी अत्यंत असद्भावके अनंगीकारतैं, औ नैयायिक आदिकके मतविषै बी सत् हेतुविषै कार्यके अत्यंत अभावके अनिश्चयतैं तिसकरि बी यह कहनेकूं योग्य नहीं; ऐसैं कहै हैं।

१५८ किंवा:—सत्रूप अधर्म आदिक जब असत्भावकूं प्राप्त होवै है,

प्राप्तिके हुये सर्वत्र अनास्थाहीं होवैगी । औ एकताके पक्षविषै सतूरूप निमित्तवाले संसारकूं अविद्याकरि कल्पित होनेतैं दोष नहीं है, यातैं तिमिर दोषवाले पुरुषकरि देखेहुये द्वितीयचंद्रकूं स्वरूपका लाभ वा नाश नहीं है ॥ [१५९] जो कहै, विद्या औ अविद्याकूं ता आत्माका धर्मपना है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, प्रत्यक्ष होनेतैं । जातैं अंतःकरणविषै स्थित जो विवेक औ अविवेक, वे रूप आदिककी न्यांई प्रत्यक्ष प्रतीत होवै हैं । जातैं प्रत्यक्ष विद्यमान रूपकूं द्रष्टाका धर्मपना नहीं है, औ अविद्या जो है सो अपने अनुभवसैं "मैं मूढ हूं मुजकूं ज्ञान अविचारित है" ऐसैं निरूपण करिये है; तैसैं विद्यारूप विवेक अनुभव करिये है । औ आत्माकी विद्याकूं जानिके अन्योंके तांई उपदेश करै है, औ तैसैं अन्य अधिकारी निश्चय करै हैं; तातैं नाम रूप पक्षवालेकीहीं विद्या औ अविद्या अरु नाम रूप हैं, औ नामरूपविषै निर्वाह करी हुई ये विद्या औ अविद्या, आत्माके धर्म नहीं; काहेतैं, "जो मध्यमैं है, सो ब्रह्म है" इस अन्य श्रुतितैं । औ [१६०] फेर वे विद्या औ अविद्या, ये नाम रूप, सूर्यविषै

तब आत्माविषै बी कौंन विश्वास है ? तातैं स्वभावकी विपरीततारूप जो सत्वस्तुकूं असद्भावकी प्राप्ति है, सो किसीके बी मतविषै नहीं घटै है ।

१५९ अविद्यासैं कल्पित जो भय, सो विद्यासैं निवृत्त होवै है; ऐसैं कहनेवाले तुज सिद्धांतीके मतविषै विद्या अरु अविद्याकूं आत्मांका धर्मपना वांछित है । तातैं धर्मकी उत्पत्ति औ विनाशके हुये आत्माकूं विकारीपना औ अनित्यपना प्राप्त होवैगा; ऐसैं आशंका करियेहै ।

१६० चेतनमात्रके अधीन अनादि अनिर्वचनीय जो अविद्या है, सो अंतःकरणरूपसैं परिणामकूं पावती है । औ सो अंतःकरण, तामस अरु सात्विक अवस्थाके भेदसैं भ्रांतिज्ञान अरु सम्यक्ज्ञानके आकारसैं परिणामकूं पावता है । तिस अंतःकरणविषै प्रतिबिंबकूं पाया चेतन अपने उपा-

दिवस औ रात्रिकी न्यांई कल्पित हैं, परमार्थतैं विद्यमान नहीं ॥ जो पूर्व कहाथा कि अभेदके हुये "इस आनंदमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करिके जाता है," ऐसैं एकहीं परमात्माकूं कर्मभाव औ कर्त्ताभावका असंभव है ? सो बनै नहीं:—काहेतैं, उल्लंघन करनेकूं विज्ञानमात्ररूप होनेतैं । औ जलूका (तृणजंतुविशेष) आदिककी न्यांई उल्लंघन करना इहां नहीं उपदेश करियेहै; किंतु विज्ञानमात्ररूप इहां उल्लंघन करिनेकी श्रुतिका अर्थ है ॥ ननु "उल्लंघन करिके जाता है" ऐसैं मुख्यहीं उल्लंघन करना सुनिये है? ऐसैं जो कहै, तो बनै नहीं:—काहेतैं, अन्नमयविषै तिस उल्लंघन करनेके अदर्शनतैं । जातैं अन्नमयकूं उल्लंघन करनेवालेका जलूकाकी न्यांई इस बाह्यतैं उल्लंघन करिके जाना वा अन्यप्रकारसैं (पक्षीके प्रवेशकी न्यांई) जाना नहीं देखिये है॥ [१६१] जो कहै, बाहिर निकसे मनोमयका वा विज्ञानमयका फेर लौटिके आत्मातैं उल्लंघन करना होवै है? [१६२] सो बनै नहीं:—काहेतैं, स्वस्वरूपविषै विक्रियाके विरोधतैं अ-

---

धिके धर्मसैंहीं भ्रांत औ सम्यक्‌दर्शी ऐसैं व्यवहार करिये है, तत्वतैं ताकूं विद्या औ अविद्यावान्‌पना नहीं है; ऐसैं कहै हैं ।

१६१ उक्तन्यायसैं ब्रह्मवेत्ता तातैं ब्रह्मसैं अभिन्न है, ऐसैं कहा । तहां अन्यवादीके कथनकूं प्रकट करिके निषेध करै हैं । इहां यह अर्थ है:— आनंदमयकोशरूप परमात्मा नहीं, औ तहां ताका प्रवेशरूप उल्लंघन नहीं है; किंतु अविषय ब्रह्मरूपताके ज्ञानसैं भ्रांतिसैं आत्मापनैकरि ग्रहण किये आनंदमयका बाधहीं इहां उल्लंघन कहनेकूं इच्छित है ।

१६२ यद्यपि अन्नमयकोशविषै मुख्य संक्रमण (अन्यकूं लंघिके स्वरूपविषै गमन) संभवै नहीं, तथापि बाहिरके विषयविषै प्रवर्त जो मन औ बुद्धि, तिनविषै बाहिरके विषयनतैं लौटिके स्वरूपविषै स्थितिरूप संक्रमण (गमन) देख्या है । तैसैं दुःखी जो पुरुष है, ताका आनंदमयके स्वरूपविषै स्थितिरूप संक्रमण होवैगा, ऐसैं पूर्ववादी कहै है ।

न्य जो है सो अन्नमयकूं उल्लंघन करिके जाता है, ऐसैं आरंभ करिके मनोमय वा विज्ञानमय आत्माकूं हीं उल्लंघन करिके जाता है; यह विरोध होवैगा। तैसैं आनंदमयका आत्मातैं उल्लंघन नहीं संभवै है। [१६३]तातैं देशांतरकी प्राप्तिरूप उल्लंघन करना नहीं है, औ अन्नमयादिकनमैंसैं एकका किया बी उल्लंघन करना नहीं है, परिशेषतैं अन्नमयसैं आदिलेके आनंदमयपर्यंत जे आरोपित आत्मा हैं, तिनतैं भिन्न जो परमात्मा है; ताका किया, औ ज्ञानमात्ररूप उल्लंघन करिके जाना संभवै है। औ [१६४]ताकी ज्ञानमात्रताके हुये आनंदमयपर्यंत पंचकोशनविषै स्थित, सर्वांतर औ आकाशसैं आदिलेके अन्नमयपर्यंत कार्यकूं सृजिके ताके तांई पीछे प्रवेश भये आत्माकूं हृदयरूप गुहाके संबंधतैं अन्नमयादिक अनात्माविषै आत्माका जो विभ्रम है, सो आत्माके विवेकज्ञानकी उत्पत्तिसैं विनाश होवै है। तिस इस अविद्यारचित विभ्रमके नाश हुये उल्लंघनकरिके गमन करना; यह कथन उपचारसैं करिये है। अन्यथा सर्वगत आत्माका उल्लंघनकरिके गमन संभवै नहीं, औ अन्य वस्तुके अभावतैं सो मुख्य गमन करनाहीं खोजनेकूं योग्य है। औ आत्माकाहीं गमन करना नहीं है, औ जातैं जलूकानामक जो जंतु है सो आपकूंहीं उल्लंघन करिके जाता नहीं। [१६५]तातैं

---

१६३ ताके स्वरूपविषै स्थितिकूं अस्थिर होनेतैं, औ आरंभ किये अर्थके विरोधतैं, सो मुख्य संक्रमण नहीं है; ऐसैं सिद्धांती कहै हैं।

१६४ संक्रमणकूं ज्ञानमात्र रूपताके हुये क्या सिद्ध होवै है? तहां कहै हैं। इहां यह भाव है:–मुख्य अर्थके असंभव हुये गौणअर्थका ग्रहण श्रेष्ठहीं है, यातैं अधिष्ठानके स्वभावके तिरस्कारकरि युक्त अध्यस्तवस्तुका बाध करनाहीं संक्रमण सिद्ध होवै है।

१६५ संक्रमणके कथनमात्रपनैकूं व्याख्यानकरिके प्रकरणके महान् तात्पर्यकी समाप्तिके मिषकरि कहै हैं।

" सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है " इस उक्तप्रकारके लक्षणवाले आत्माके ज्ञानअर्थहीं; बहुरूप होना, सृष्टि, प्रवेश, रस, भय अभय, औ उल्लंघन आदिक जे हैं, वे व्यवहार आदिकके विषय कल्पित, ब्रह्मविषै संभवै हैं; परंतु परमार्थतैं निर्विकल्प ब्रह्मविषै कोई बी विकल्प [१६६] नहीं संभवै है । तिस इस निर्विकल्प आत्माकूं ऐसैं क्रमकरि उल्लंघनकरिके (जानिके) किसीतैं बी भयकूं पावता नहीं, औ अभय स्थितिकूं पावता है । तिस इस अर्थ–विषै बी सर्वहीं इस आनंदवल्लीके अर्थरूप प्रकरणके संक्षेपतैं प्रकाश करने अर्थ यह श्लोक (मंत्र) होवै है ॥ १ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

---

१६६ उपनिषदनविषै तहां तहां प्रकरणकी आदिविषै औ अंतविषै उक्त निर्विकल्प ब्रह्मके कथनतैं उपक्रम औ उपसंहारकी एकरूपता है । यातैं बीचमैं कहे जे बहुरूप होने आदिक अर्थ, तिनविषै प्रकरणका तात्पर्य नहीं है किंतु आदि अंतमैं कथन किये निर्विकल्प वस्तुविषैहीं तात्पर्य है । यह अर्थ है ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कुतश्चनेति। त॰ह वाव न तपति । किमह॰ साधु नाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति । स य एवं विद्वानेते आत्मान॰ स्पृणुते । उभे ह्येवैष एते आत्मान॰ स्पृणुते । य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥ १ ॥

टीकाः–जिस निर्विकल्प उक्त लक्षणवाले अद्वैत आनंदरूप आत्मा-तैं द्रव्य आदिक सविकल्प वस्तुकूं विषय करनेवाले, औ वस्तुकी समानतातैं निर्विकल्प अद्वैत ब्रह्मविषै बी वक्ता पुरुषनकरि प्रकाश करनेअर्थ योजना किये हुये वचनरूप वाणीयां अप्राप्त होयके (अप्रकाशकरिके हीं) निवर्त होवै हैं, अपने सामर्थ्यतैं हीन होवै हैं। औ इहां मन नाम ज्ञानका है, सो ज्ञान जहां इंद्रिय अगोचर आदिक अर्थविषै वचन प्रवर्त होवै है, तहां ताके पीछेहीं प्रकाश करनेअर्थ प्रवर्त होवै है; औ जहां ज्ञान है तहां वाणीकी प्रवृत्ति होवै है । तातैं वचन औ वृत्तिरूप वाणी औ मनकी सर्वत्र साथिहीं प्रवृत्ति होवै हैः तातैं ब्रह्मके प्रकाश करने अर्थ सर्वप्रकारसैं योजना करनेवाले वक्ता पुरुषनकरि योजना करीहुई बी वाणियां जिस, ज्ञान औ शब्दके अविषय अरु अदृश्य आदिक विशेषणवाले आत्मा-तैं सर्वके प्रकाश करनेविषै समर्थ मन (विज्ञान) करि सहितहीं निवर्त होवै हैं । तिस श्रोत्रिय निष्पाप औ निष्काम, औ सर्व एषणातैं रहित पुरुषके आत्मभूत अरु विषय विषयीके संबंधतैं रहित, स्वाभाविक नित्य विभागसैं रहित सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मके आनंदकूं उक्तप्रकारसैं जाननेवाला पुरुष किसीतैं बी भयकूं पावता नहीं; काहेतैं, भयके निमित्तके अभावतैं। जातैं विद्वान्कूं जिसतैं भयकूं पावता है, ऐसा ब्रह्मतैं भिन्न अन्य

वस्तु नहीं है; तातैं ताकूं भयका निमित्त नहीं है, औ अविद्याकरि "जब अल्प बी अंतरकूं करता है, तब ताकूं भय होवै है" ऐसैं जातैं पूर्व कहा है, औ विद्वान्कूं अविद्याके कार्य औ तिमिर दृ-ष्टिवाले पुरुषकरि देखेहुये द्वितीयचंद्रकी न्यांई भयके निमित्त अन्य वस्तुके नाशतैं सो किसीतैं बी भयकूं पावता नहीं, यह कथन घटे है। औ मनोमयविषै उदाहरण किया जो मंत्र, सो मनके ब्रह्मज्ञानका साधन होनेतैं, तिस मनविषै ब्रह्मभावकूं आरोपकरिके ताकी स्तुति अर्थ "किसीकालविषै बी भयकूं पावता नहीं" ऐसैं भयमा-त्रका निषेध किया। इहां अद्वैतविषै "किसीतैं बी भयकूं पावता नहीं" ऐसैं भयके निमित्तका हीं निषेध करियेहै, यातैं पुनरुक्ति-दोष नहीं है ॥ ननु; शुभकर्मका न करना औ पाप क्रियारूप भ-यका निमित्त है? ऐसैं नहीं है ॥ तब कैसैं है? तहां कहियेहै:—इस कथन किये ऐसैं जाननेवाले-कूं **किसकारणतैं मैं शुभकर्मकूं न करता भया,** ऐसैं पीछे मरणके समीपकालविषै जो संताप होवै हैं, तैसैं **किसकारणतैं मैं पापकर्मकूं करता भया,** ऐसैं नरकपात आदिक दुःखके भयतैं ताप होवै है; ये वे शुभकर्मका न करना औ पापक्रिया दोनूं जैसैं अविद्वान्कूं तपावते हैं, **ऐसैं निश्चयकरि त-पावते (उद्वेग करते) नहीं** ॥ विद्वान्कूं वे कैसैं तपावते नहीं? तहां कहिये है:—**जो ऐसैं जाननेवाला है सो इन दोनूं** तापके हेतु शुभ अशुभ कर्म-कूं अपना **आत्मा** जानिके, आच्छादन (ति-रस्कार) करता है, वा परमात्मभावसैं **देखता है। जातैं ऐसैं इन दोनूं** पुण्य पापकूं **यह** विद्वान् [१६७]अपने विशेष स्वरूपसैं शून्यकरिके

---

१६७ शुभ अशुभ जे कर्म हैं, वे अधिष्ठानसैं भिन्न किये नहीं हैं, औ नहीं भासते हैं; यातैं सत् औ प्रकाशमात्र आत्मतत्वहीं तिन दोनूंका स्वरूप है; तिसतैं भिन्न अर्थ औ अनर्थके हेतुपनेरूप जो तिनका विशेषरूप

आत्मरूपसैं देखताहीं[१६८] है, यातैं याकूं पुण्यपाप तपावते नहीं ॥ ऐसा कौंन है कि जो ऐसैं जानता है सो उक्तप्रकारके अद्वैत आनंदरूप ब्रह्मकूं जानता है। ताके आत्मभावसैं देखे हुये पुण्यपाप निष्फल तापवाले हुये जन्मके आरंभक नहीं होवै हैं। ऐसी यह उपनिषद्, जैसैं है तैसैं कथन करी; कहिये इस वल्लीविषै ब्रह्मविद्यारूप उपनिषद् (सर्वविद्यातैं परम रहस्य) जो है, सो दिखाई। इसविषै परम श्रेय स्थित है ॥ १ ॥

है सो वस्तु नहीं है; काहेतैं, तिनकूं सत् अरु प्रकाशसैं अन्य होनेकरि असत् होनेतैं, औ अप्रकाशमान होनेतैं। इस अभिप्रायकरि कहै हैं।

१६८ आत्माहीं अविद्यासैं शुभ अशुभ कर्मरूपसैं प्राप्त होता भया, ऐसैं कहा। अब तो ये शुभ अशुभ कर्म, अर्थ औ अनर्थके हेतु होते भये। "वे आत्माहीं हैं" इस ज्ञानसैं स्वस्वरूपकूं शुभ अशुभ कर्मरूप करनेकरि विद्वान् तिनकूं देखताहीं है। लोकदृष्टिसैं संपादन किये पुण्यपापकूं देखिके विद्वान् पुण्यवान् औ पापवान् देखिये है; परंतु सो तिनतैं भयकूं पावता नहीं; ऐसैं कहै हैं।

ब्रह्मविदिदमयमिदमेकवि॑ँ शतिरन्नादन्नरसमयादन्नात्प्राणो व्यानोऽपान आकाशः पृथिवी पुच्छ॑ँ षड्वि॑ँ शतिः प्राणं यजुर्ऋक् सामाऽऽदेशोऽथर्वाङ्गिरसः पुच्छं। द्वावि॑ँ शतिर्यतः श्रद्धत्त॑ँ सत्यं योगो महोऽष्टादश विज्ञानं प्रियं मोदः प्रमोद आनन्दो ब्रह्म पुच्छं। द्वावि॑ँशतिरसन्नेवाथाष्टावि॑ँ शतिरसत्षोडश। भीषाऽस्मान्मानुषो। मनुष्यगन्धर्वाणां। देवगन्धर्वाणां। पितॄणां। चिरलोकलोकानामाजानजानां। कर्म्मदेवानां। ये कर्म्मणा। देवानामिन्द्रस्य बृहस्पतेः प्रजापतेर्ब्रह्मणः। स यश्च सङ्क्रामत्येकपञ्चाशद्यतः कुतश्च। नैतमेकादश। नव॥ स ह नाववतु। स ह नौ भुनक्तु। स ह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। माविद्विषावहै॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ब्रह्मविद्य एवं वेदेत्युपनिषत्॥ २ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

इति ब्रह्मानन्दवल्ली ॥ ॐ तत्सत् ॥ २ ॥

[ब्रह्म यह इनसैं आदिलेके, जो ऐसैं जानता है सो ब्रह्मवेत्ता है; ऐसी उपनिषद् है]। इहांपर्यंत, या २ वल्लीके द्वितीय मंत्रका अर्थ है ॥ २ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

इति श्रीतैत्तिरीयोपनिषद्गत ब्रह्मानंदवल्लीनामक द्वितीयाध्याय भाष्यभाषादीपिका समाप्त ॥ २ ॥

अथ भृगुवल्ली प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

हरिः ॐ । सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ भृगुर्वै वारुणिः । वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति ॥ तꣳ होवाच । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अथ तैत्तिरीयोपनिषद्गत भृगुवल्लीनामक तृतीयाध्याय भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

अन्नादिककी ब्रह्मता औ व्रत अन्न अन्नाद आदि-कथन.

टीकाः—जो [१६९] सत्य ज्ञान अनंतरूप ब्रह्म, आकाशसैं आदिलेके अन्नमयपर्यंत कार्यकूं सृजिके ताहीके तांई फेर प्रवेशकूं पाया है, सो जातैं विशेषकी न्यांई प्रतीत होवैहै; तातैं सर्वकार्यतैं विलक्षण अदृश्य आदि धर्मवाला आनंदरूपहीं है । ताहीकूं "सो मैं हूं" ऐसैं जानना; काहेतैं, ताके प्रवेशकूं तिस ज्ञानरूप अर्थवाला होनेतैं । तिस ऐसैं जाननेवाले ब्रह्मवेत्ताके शुभ औ अशुभ कर्म जन्मांतरके आरंभक नहीं होवैहैं; इसप्रकारका अर्थ उक्त आनंदवल्लीविषै कहनैकूं इच्छित है, तिसविषै ब्रह्मविद्या समाप्त करी । यातैं

---

१६९ उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक तृतीयवल्लीके संबंधकूं कहैहैं ।

पीछे भृगुवल्लीविषै ब्रह्मविद्याका साधनरूप तप (वाक्यार्थके ज्ञानका साधन पदार्थका वर्णन) कहनेकूं योग्य है । औ अन्नमय आदिककूं विषय करनेवाले उपासन कहैहैं । यातैं पूर्वकी न्यांई शांतिपाठपूर्वक यह आरंभ करिये हैः–सो परमात्मा हमकूं रक्षण करहू । सो हमकूं भुगावहू । सो सामर्थ्यकूं करहू । हमारा अध्ययन किया तेजस्वि होहू । हम शिष्य औ आचार्य परस्पर द्वेषकूं मति करें । ॐ (सत्यहीं) शांति होहू, शांति होहू, शांति होहू ॥ इहां विद्याकी स्तुतिअर्थ प्रियपुत्रके तांई पितानैं कथन करी आख्यायिका हैः–भृगु इस नामवाला प्रसिद्ध वरुण ऋषिका पुत्र था, सो ब्रह्मके जाननेकी इच्छावाला हुया, हे भगवन्! मुजकूं ब्रह्मकूं कथन करो । इसप्रकार कहताहुया वरुण नामक पिताके तांई समीप जाता भया । औ सो पिता विधिपूर्वक समीपकूं प्राप्त भये तिस पुत्रके तांई यह वचन कहता भयाः– ताकूं अन्न (शरीर) औ ताके भीतर प्राण औ इन भीतरके ज्ञानके साधन चक्षु श्रोत्र मन औ वाणी, इन ब्रह्मके ज्ञानविषै द्वारनकूं कहता भया । औ इन द्वारभूत अन्न आदिकनकूं कहिके पीछे, ता भृगुकूं ब्रह्मका लक्षण कहता भया । क्या सो ब्रह्मका लक्षण है ? तहां कहैहैंः–जिसतैं प्रसिद्ध ये ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत भूत उपजते हैं, औ जिसकरि उपजे हुये जीवते हैं (प्राणोके धारणरूप वृद्धिकूं पावते हैं), औ विनाशकालविषै

---

१७० इहां यह भाव हैः—जातैं शरीर आदिककी चेष्टाके अन्यथा (चेतनविना) असंभवकरि तिनका साक्षीरूप चेतन विवेचन करिये है, यातैं ये शरीर आदिक ब्रह्मके लक्षक होनेतैं ताके ज्ञानविषै (अर्थके विवेकके लिये) द्वार हैं । तिनकूं भृगुके तांई कहता भया । केवल अर्थ (त्वंपदार्थ)का ज्ञान वाक्यार्थके ज्ञानका साधन नहीं; किंतु तत्पदार्थका ज्ञान बी है, इस अभिप्रायसैं तत्पदके अर्थरूप ब्रह्मके लक्षणकूं कहता भया॥

जिस ब्रह्मके तांई जाते हैं औ तादात्म्यकूंहीं पावते हैं; [कहिये उत्पत्ति स्थिति औ लय, इन तीन कालनविषै भूतनका देह जाके स्वरूपभावकूं त्यागता नहीं, सो ब्रह्मका लक्षण है ।] ताकूं तूं "सो ब्रह्म है" ऐसैं विशेषकरि जाननेकूं इच्छा कर, कहिये, जो ऐसैं लक्षणवाला ब्रह्म है, ताकूं तूं अन्नादिद्वारा प्राप्त हो। तहां "प्राणका प्राण है, चक्षुका चक्षु है, श्रोत्रका श्रोत्र है, अन्नका अन्न है, मनका मन है, जे ताकूं जानते हैं, वे पुराण औ अग्रविषै स्थित ब्रह्मकूं पावते हैं" यह अन्य श्रुति, ब्रह्मके ज्ञानविषै इन द्वारनकूं दिखावै है। सो भृगु, इन ब्रह्मज्ञानके द्वारनकूं औ ब्रह्मके लक्षणकूं पितातैं सुनिके ब्रह्मज्ञानका साधन होनेकरि तप[171]कूंहीं तपता भया॥ ननु भृगुकूं नहीं उपदेश कियेहीं तपके साधनभावका निश्चय काहेतैं भया? तहां कहैहैंः—अवशेषसहित ब्रह्मके कथनतैं भृगुकूं नहीं कथन किये तपके साधनभावका निश्चय भया। जातैं ब्रह्मके निश्चयविषै अन्नादिरूप द्वारकूं, औ "जातैं प्रसिद्ध ये भूत उपजते हैं" ऐसैं लक्षणकूं कहता भया, सो अवशेष रहे साधनसंहितहीं है; काहेतैं, साक्षात् ब्रह्मके उपदेशतैं। अन्यथा जिज्ञासु पुत्रके तांई "यह ब्रह्म ऐसैं रूपवाला है," इस रीतिसैं उपदेश करनेकूं योग्य है, औ तब ऐसैं अवशेषसहितहीं क्या कहते भये? यातैं जानिये है कि, पिता ब्रह्मज्ञानके प्रति निश्चयकरि अन्यसाधनकूं बी अपेक्षा करै है। औ तिन दोनूंका विशेष निश्चय तो तपकूं सर्वका अत्यंत साधक होनेतैं होवै है। जातैं सर्व नियमित साध्य

---

१७१ इहां यह अर्थ हैः—पदार्थनके लक्षणकेहीं कथनतैं अखंडरूप वाक्यार्थके अप्रतिपादनतैं औ पदार्थके भेद ज्ञानतैं पुरुषार्थके असंभवतैं, औ "जो अल्प बी अंतरकूं करता है, ताकूं भय होवै है" इस वाक्यकरि भेदज्ञानकूं निंदित होनेतैं। यातैं वाक्यार्थके ज्ञानपर्यंत तात्पर्यसैं लक्ष्य पदार्थनके विवरणकूं वारंवार आचरता भया।

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तꣳ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ॥ १ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

नकूं विषय करनेवाले साधनोंका तपहीं अत्यंत साधक, औ साधन है; ऐसैं लोकविषै प्रसिद्ध है। तातैं भृगु पितानैं नहीं उपदेश किये बी तपकूं ब्रह्मज्ञानका साधन होनेकरि जानता भया। औ सो तप बाह्य औ भीतरके करणोंका एकाग्रपना है; काहेतैं, ब्रह्मज्ञानकूं तिस एकाग्रपनैरूप द्वारवाला होनेतैं। औ "मन अरु इंद्रियनका जो एकाग्रपना है, सो परम तप है; सो जातैं सर्व धर्मनतैं बडा है, यातैं सो परम धर्म कहिये है" इस स्मृतितैं। औ सो तपकूं[172] तपिके [अन्न ब्रह्म है, ऐसैं जानता भया। ऐसैं आगिले अनुवाकसैं संबंध है] ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

टीकाः—"अन्न ब्रह्म है," ऐसैं जानता भया। जातैं सो अन्न

---

१७२ सो तपकूं तपिके; कहिये, यह पितानैं कहा जो लक्षण, सो कहां परिपूर्ण भया है? ऐसैं एकाग्र चित्तसैं विचारिके, "अन्न ब्रह्म हैं," ऐसैं जानता भया। इहां यह अर्थ हैः— सर्वकरि भोगिये है, ऐसा जो सर्वकी प्राप्तिका साधारण स्थूलदेहका कारण, विराट्नामवाला स्थूल पंचभूतनका समूह; इहां अन्नशब्दसैं कहिये है। ताकूं स्थूल भौतिक पदार्थनका कारण होनेतैं। जिसतैं ये भूत उपजते हैं, इस ब्रह्मके लक्षणकूं तहां योजना करनेकूं शक्य होनेतैं, सो ब्रह्म है; ऐसैं जानता भया।

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तꣳ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ॥ १ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

उक्त ब्रह्मके लक्षणकरि युक्त है, यातैं ताकूं ब्रह्म है, ऐसैं जानता भया॥ कैसैं सो ब्रह्मके लक्षणकरि युक्त है? तहां कहै हैं:—जातैं अन्नतैंहीं प्रसिद्ध ये भूत उपजते हैं, औ अन्नसैं उपजेहुये जीवते हैं, औ अन्नके तांई सन्मुख जातेहैं, औ प्रवेशकूं पावते हैं, तातैं अन्नका ब्रह्मपना युक्त है। सो ऐसैं तपकूं तपिके लक्षण औ युक्तिसैं ता अन्नरूप ब्रह्म-कूं जानिके फेरहीं संशयकूं प्राप्त हुया वरुण पिताके समीप जाता भया। औ हे भगवन्! ब्रह्मकूं कथन करो; ऐसैं पूछता भया। इहां संशयका कारण कौंन है? तहां कहिये है:— अन्नकी उत्पत्तिके देखनेतैं ताकूं संशय भया है। ता भृगु-कूं पिता कहते भये:— तप ब्रह्म है, ऐसैं तपकरि तूं ब्रह्मकूं विशेषकरि जाननेकूं इच्छा कर। पीछे सो तपकूं तपता भया। सो तपकूं तपिके ॥ १ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

टीकाः—प्राण ब्रह्म है, ऐसैं जानता भया। जातैं प्राणतैंहीं प्रसिद्ध ये भूत उपजते हैं, औ प्राणसैंहीं उपजेहुये जीवते हैं, औ प्राणके तांई सन्मुख जातेहैं, औ प्रवेशकूं पावते हैं। ऐसैं

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् । मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते मनसा जातानि जीवन्ति । मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तꣳ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

ता प्राणरूप ब्रह्म-कूं जानिके फेरहीं संशयकूं प्राप्त हुया वरुण पिताके समीप जाता भया । औ हे भगवन्! ब्रह्मकूं कहो; ऐसैं पूंछता भया । ताकूं पिता कहते भयेः— तप ब्रह्म हैं, ऐसैं तपकरि तूं ब्रह्मकूं विशेषकरि जाननेकी इच्छा कर । पीछे सो तपकूं तपता भया । सो तपकूं तपिके ॥ १ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

टीकाः—मन ब्रह्म है, ऐसैं जानता भया । जातैं मनतैंहीं प्रसिद्ध ये भूत उपजते हैं औ मनकरि उपजेहुये जीवते, हैं आ मनके तांई सन्मुख जाते हैं, औ प्रवेश करते हैं, ऐसैं ता मनरूप ब्रह्मकूं जानिके फेरहीं संशयकूं प्राप्त हुया वरुण पिताके समीप जाता भया । हे भगवन्! ब्रह्मकूं कहो; ऐसैं पूंछता भया ॥ ताकूं पिता कहते भयेः— तप ब्रह्म है, ऐसैं तपकरि ब्रह्मकूं जाननेकी इच्छा कर ॥ पीछे सो तपकूं तपता भया । सो तपकूं तपिके ॥ १ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तꣳ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

टीकाः–विज्ञान (बुद्धि) ब्रह्म है, ऐसैं जानता भया । जातैं विज्ञानतैंहीं प्रसिद्ध ये भूत उपजते हैं, औ विज्ञानसैं उपजेहुये जीवते हैं, औ विज्ञानके तांई सन्मुख जाते हैं, औ प्रवेश करते हैं; ऐसैं ता विज्ञानरूप ब्रह्म-कूं जानिके फेरहीं संशयकूं प्राप्त हुया वरुण पिताके समीप जाता भया । हे भगवन्! ब्रह्मकूं कहो; ऐसैं पूंछता भया ॥ ताकूं सो पिता कहते भयेः– तप ब्रह्म है, ऐसैं तपकरि ब्रह्मकूं जाननेकी इच्छा कर ॥ पीछे सो तपकूं तपता भया । सो तपकूं तपिके ॥ १ ॥

इति पंचमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् । आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ सैषा भार्गवी वारुणी विद्या । परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता ॥ स य एवं वेद । प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ १ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

टीकाः–आनंद ब्रह्म है; ऐसैं जानता भया । जातैं आनंदतैंहीं प्रसिद्ध ये भूत उपजते हैं, औ आनंदसैं उपजेहुये जीवते हैं, औ आनंदके तांई सन्मुख जाते हैं, औ प्रवेश करते हैं; ऐसैं जानता भया ॥ इहां वारंवार जो तपका उपदेश है, सो तपकी अतिशय साधनताके निश्चय अर्थ है । जहांलगि ब्रह्मका निरतिशय लक्षण नहीं होवै है, औ जहांलगि जिज्ञासा निवर्त नहीं होवै है; तहांलगि तुजकूं तपहीं साधन है; तिस तपकरिहीं ब्रह्मकूं जाननेकी इच्छा कर । यह पिताका अभिप्राय है ॥ [१७३]ऐसैं

१७३ इहां यह अर्थ है:–श्रुतिस्मृतिविषै विराट्की उत्पत्तिके देखनेतैं तहां ब्रह्मका लक्षण संपूर्ण नहीं होवै है, यह जानिके फेर तपकूं तपता भया (विचारकूं करता भया) । ता विराट्रूप अन्नके कारण क्रियाशक्तिका आश्रय होनेकरि प्राणशब्दके लक्ष्य औ संकल्प अरु निश्चयकी सामर्थ्यसैं युक्त होनेकरि, मन औ विज्ञानशब्दके लक्ष्य हिरण्यगर्भकूं "ब्रह्म" ऐसैं जानता भया । ता हिरण्यगर्भकूं बी कार्यरूप होनेतैं तहां बी ब्रह्मका लक्षण नहीं होवै है, यह विचारिके ता हिरण्यगर्भके कारणकूं स्वतंत्रपनैकरि निश्चय करिके; प्रार्थना किया होनेतैं आनंद शब्दके वाच्य मायाविशिष्ट चेतनरूप अंतर्यामीकूं ब्रह्म है, ऐसैं जानिके उपाधिविशिष्टकूं अन्य

भृगुऋषि जो है, सो तपकरि शुद्ध चित्तवाला हुया प्राण आदिक-विषै संपूर्णपनैंकरि ब्रह्मके लक्षणकूं देखता भया। कछुक कालसैं तिनके भीतर प्रवेश करिके, अत्यंत आंतर आनंदरूप ब्रह्मकूं तपरूप साधनकरिहीं जानता भया। तातैं ब्रह्मके जिज्ञासु पुरुषकरि वाह्य औ भीतरके करणोंकी एकाग्रता स्वरूप परम तपरूप साधन अनुष्ठान करनेकूं योग्य है। यह इस सारे प्रकरण (प्रसंग)का अर्थ है॥ अब पितापुत्रके आख्यायिकाकूं छोडिके श्रुति, अपने वचनकरि आख्यायिकासैं कथन किये अर्थकूं कहै हैः—**सो यह** भृगुऋषिनैं जानीहुई **भार्गवी** औ वरुणऋषिनैं कथन करीहुई **वारुणी विद्या** अन्नमयरूप आत्मातैं प्रवृत्त हुई **परम व्योम**-गत हृदयाकाशरूप गुहा-विषै स्थित परमानंदरूप अद्वैतविषै **स्थित** (समाप्त) **भई है। जो** अन्य जिज्ञासु बी **ऐसैं** तपरूप साधनकरिहीं इसीहीं क्रमसैं तिन अन्नमय आदिक आत्माविषै प्रवेश होयके आनंदरूप ब्रह्मकूं **जानता है, सो** ऐसैं विद्याकी स्थितितैं आनंदरूप परब्रह्मविषै **स्थित होवे है;** कहिये, ब्रह्महीं होवै है॥ ऐसैं ताकूं अदृष्ट फल कहिके अब, दृष्ट फल कहियेहैः—बहुँतसे अन्नवाला होवै है। जातैं सत्तामात्रसैं (सामान्यसैं) तो सर्व जीव

अविशिष्टकी स्वरूपताके असंभवतैं, कारणभावकरि उपलक्षित शुद्ध आनंदकूं ब्रह्म है; ऐसैं जानता भया।

१७४ इहां मूलश्रुतिविषै अन्नका बहुलतारूप विशेषण सुन्या नहीं है, ताकूं कैसैं रखतेहो? यह आशंका करिके कहै हैं। इहां यह अर्थ हैः— इहां मूलश्रुतिविषै सामान्यमात्र अन्नके कहेहुये, कूकर औ सूकर आदिकनकूं बी शरीरकी स्थिति अर्थ प्राप्त भये अन्नकरि, "अन्नवान् होवै है" इस विद्वान्के विशेषणसैं विद्याके फलका भेद नहीं कहा होवैगा, यातैं ताके बलतैं इहां अन्नका बहुलतारूप विशेषण धरा है।

अन्नं न निन्द्यात् । तद्व्रतम् । प्राणो वा-ऽन्नम् । शरीरमन्नादम् । प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठि-तम् ॥ स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतिति-ष्ठति अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ १ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

अन्नवान् हैं, यातैं वियातैं विशेष न होवैगा । तातैं विद्वान्कूं बहु-तसे अन्नवाला कहा । ऐसैं अन्नकूं जो भोगता है, ऐसा जो प्रदीप्त जठराग्निवाला अन्नका भोक्ता **अन्नाद** कहिये है, सो होवै है । औ पुत्रादिरूप **प्रजाकरि** अरु गौ अश्व आदिक **पशुनकरि**, अ-रु शम दम ज्ञान आदिक निमित्तवाले तेजरूप **ब्रह्मवर्चसकरि म-हान्** होवै है । औ शुभ आचरणरूप निमित्तवाली प्रख्यातिरूप **कीर्तिकरि महान्** (बडा) होवै है; कहिये, तिनकूं साक्षात् अ-नुभव करताहै ॥ १ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

टीकाः—किंवा, [१७५]जातैं द्वारभूत अन्नकरि ब्रह्मका विज्ञान होवै है, तातैं गुरुकी न्याई **अन्नकूं निंदाका विषय करना नहीं । सो इस** ऐसैं ब्रह्मवेत्ताका व्रत उपदेश करिये है । इहां व्रतका जो उपदेश है, सो अन्नकी स्तुति अर्थ है, औ अन्नकूं ब्रह्मके ज्ञानका उपायरूप

---

१७५ दैवगतिसैं प्राप्त भये निकृष्ट अन्नकी निंदा करना नहीं काहेतैं, "आजका रांध्या अथवा कलका रांध्या अन्न भक्षण करना" ऐसैं शास्त्रां-तरविषै कथन किया होनेतैं । इहां ब्रह्मवेत्ताकूं उक्त नियमका जो कथन है, सो साधकके अनुष्ठान अर्थ है ।

होनेतैं स्तुतिकी योग्यता है ॥ [१७६] **वाँ प्राण अन्न है;** काहेतैं, प्राणके शरीरविषै अंतर्भावतैं । जो जाके भीतर स्थित होवै है, सो ताका अन्न होवै है । औ शरीरविषै प्राण स्थित होवै है, तातैं प्राण अन्न है, औ **शरीर अन्नाद** (अन्नका भोक्ता) है । तैसैं शरीर बी अन्न है, औ प्राण अन्नाद है । काहेतैं कि, शरीरकी स्थितिकूं प्राणरूप निमित्तवाली होनेतैं, जातैं **प्राणविषै शरीर स्थित** है, औ **शरीरविषै प्राण स्थित है;** तातैं ये दोनूं शरीर औ प्राण परस्पर अन्न औ अन्नादरूप हैं । जिस हेतुकरि परस्परविषै स्थित हैं, तिसकरि अन्न हैं, औ जिसकरि परस्परकी स्थितिरूप हैं, तिसकरि अन्नाद हैं । तातैं प्राण औ शरीर, ये दोनूं अन्न औ अन्नादरूप हैं । **सो यह अन्न अन्नविषै स्थित है । जो इस अन्नविषै स्थित अन्नकूं जानता है, सो अन्न औ अन्नादरूपसैंहीं स्थित होवै है** किंवा, **अन्नवान् औ अन्नाद होवै है । औ प्रजाकरि पशुनकरि ब्रह्मवर्चसकरि महान् होवै है । औ कीर्तिकरि महान् होवै है ॥ १ ॥**

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

---

१७६ ऐसैं वाक्यार्थके ज्ञानविषै लक्ष्य पदार्थके अनुसंधानरूप मुख्य साधनकूं औ ताके फलकूं समाप्त करिके, अब विचारविषै असमर्थ मंद अधिकारीकूं अन्न औ अन्नादरूपसैं प्राण आदिककी उपासनारूप गौण साधनकूं विधान करे हैं । इहां यह कथन किया होवै है:—उपासना बी फलकी इच्छासैं अनुष्ठान करी हुई मंद अधिकारीकूं बुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानके अर्थ उपकार करै है, औ मुख्य अधिकारीकूं तो प्रपंचके अपवाद अर्थ उपकार करैगी ।

अन्नं न परिचक्षीत । तद्व्रतम् । आपो वाऽन्नम् । ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद । प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ १ ॥

इति अष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

टीकाः—अन्नकूं परित्याग करै नहीं । सो व्रत उदेश करिये है । इहां इस व्रतका जो उपदेश है, सो अन्नकी स्तुतिअर्थ है । अन्न ऐसैं शुभ अशुभकी कल्पनासैं अपरित्याग किया स्तुतिका विषय किया औ महान् किया हुया होवै है वा जल अन्न हैं, औ ज्योति (तेज) अन्नाद है । जलविषै ज्योति स्थित है; औ ज्योतिविषै जल स्थित हैं । सो यह अन्नविषै स्थित अन्न है । जो इस अन्नविषै स्थित अन्नकूं जानता है, सो अन्न औ अन्नाद स्वरूपसैं स्थित होवैहै ॥ किंवा अन्नवान् औ अन्नाद होवैहै, औ प्रजाकरि पशुनकरि ब्रह्मवर्चसकरि महान् होवै है, औ कीर्तिकरि महान् होवैहै ॥ १ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

अन्नं बहु कुर्वीत । तद्व्रतम् । पृथिवी वाऽन्नम् । आकाशोऽन्नादः । पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः । आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद । प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ १ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

टीकाः—अन्नकूं बहुत करना, सो व्रत उपदेश करिये है; कहिये, जल औ तेजके अन्न औ अन्नाद गुणवान्‌पनैकरि उपासकका अन्नका बहुत करना व्रत है ॥ वा पृथिवी अन्न है, औ आकाश अन्नाद है । पृथिवीविषै आकाश स्थित है, आकाशविषै पृथिवी स्थित है । सो यह अन्न अन्नविषै स्थित है । जो इस अन्नविषै स्थित अन्नकूं जानताहै, सो अन्न औ अन्नाद स्वरूपसैं स्थित होवै है । अन्नवान् औ अन्नाद होवै है । औ प्रजाकरि पशुनकरि ब्रह्मवर्चसकरि महान् होवै है । कीर्त्तिकरि महान् होवै है ॥ १ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात् । अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्न॰ राद्धम् । मुखतोऽस्मा अन्न॰ राध्यते । एतद्वै मध्यतोऽन्न॰ राद्धम् । मध्यतोऽस्मा अन्न॰ राध्यते । एतद्वा अन्ततोऽन्न॰ राद्धम् । अन्ततोऽस्मा अन्न॰ राध्यते ॥ १ ॥

टीकाः—तैसैं पृथिवीविषै आकाशके उपासकका, निवासविषै (निवासके अर्थ प्राप्त भये) किसीकूं वी निवारण करना नहीं, सो व्रत है। जातैं वासके दियेहुये अवश्य भोजन देना योग्य है, तातैं जिसी किसीप्रकारसैं बहुत अन्नकूं प्राप्त होना (संग्रह करना)। जातैं अन्नवाले विद्वान्, अन्नके अर्थी अभ्यागतके तांई याके अर्थ अन्न सिद्ध है; ऐसैं कहते हैं। अन्न नहीं है; ऐसैं निवारण करते नहीं, तिस हेतुतैं बहुत अन्नकूं संग्रह करना; ऐसैं पूर्वले पदसैं संबंध है। अब अन्नदानका माहात्म्य कहिये हैः—जैसैं जिस कालके तांई अन्नकूं देता है, तैसैं तिसकालके तांईहीं फेर अन्नकूं पावता है ॥ कैसैं पावता है? सो यह कहैहैंः—इस प्रसिद्ध सिद्ध (रांधेहुये) अन्नकूं मुखतैं (प्रथम वयविषै वा मुख्यवृत्तिसैं) सत्कारपूर्वक अन्नके अर्थी अभ्यागतके तांई देता है। ताकूं क्या फल होवै है? तहां कहिये हैः—मुखतैं (पूर्ववयविषै वा मुख्य वृत्तिसैं) इस अन्नदाता-के तांई अन्न सिद्ध होवै है; कहिये, जैसा दिया है तैसा प्राप्त होवै है ॥ ऐसैं इस प्रसिद्ध सिद्ध अन्नकूं मध्यतैं (मध्यमवयविषै वा मध्यमप्रवृत्तिसैं) अभ्यागतके तांई देता है। तैसैंहीं इस अन्नदाता के तांई मध्यतैं (मध्यवयविषै वा मध्यमवृत्तिसैं) अन्न सिद्ध होवै है ॥ तैसैं इस

य एवं वेद । क्षेम इति वाचि । योगक्षेम इति प्राणापानयोः । कर्मेति हस्तयोः । गतिरिति पादयोः । विमुक्तिरिति पायौ ॥ इति मानुषीः समाज्ञाः ॥ अथ दैवीः ॥ तृप्तिरिति वृष्टौ । बलमिति विद्युति ॥ २ ॥

प्रसिद्ध सिद्ध अन्नकूं अंततैं (अंतके वयविषै अधमवृत्तिसैं) अभ्यागतके तांई देता है । तैसैंहीं इस अन्नदाता-के तांई अंततैं (अंतके वयविषै अधमवृत्तिसैं) अन्न सिद्ध होवै है ॥ १ ॥

टीकाः–जो ऐसैं उक्तप्रकारके अन्नके माहात्म्यकूं जानता है, सो उक्तप्रकारके अन्नदानके फलकूं पावता है ॥ अब ब्रह्मकी उपासनाका प्रकार कहिये हैः–ग्रहण किये वस्तुका रक्षणरूप क्षेम है, ऐसैं वाणीविषै; कहिये ब्रह्म वाणीविषै क्षेमरूपसैं स्थित है; ऐसैं उपासना करनेकूं योग्य है । अग्रहण किये वस्तुका ग्रहणरूप योग औ उक्तप्रकारका क्षेमरूप है । ऐसैं प्राण औ अपानविषै यद्यपि वे योगक्षेम बलवान् हुये प्राण अपानविषै होवै हैं, तथापि वे प्राणअपानरूप निमित्तवालेहीं नही हैं; किंतु ब्रह्मरूप निमित्तवाले हैं, तातैं ब्रह्म योगक्षेमरूपसैं प्राण औ अपानविषै स्थित है, ऐसैं उपासना करनैकूं योग्य है । ऐसैं पीछले अन्य वस्तुनविषै बी तिस तिस स्वरूपसैं ब्रह्महीं उपासना करनेकूं योग्य है । कर्म है ऐसैं हस्तनविषै; कहिये कर्मकूं ब्रह्मसैं निर्वाह करनेकूं योग्य होनेतैं, दोनूं हस्तनविषै कर्मस्वरूपसैं ब्रह्म स्थित है, ऐसैं उपासना करनेकूं योग्य है । गति (गमन) रूप है; ऐसैं पादनविषै ब्रह्म उपासना करनेकूं योग्य है । विमुक्ति (मलत्याग वा मृत्यु) रूप है, ऐसैं पायुविषै ब्रह्म उपासना करनेकूं योग्य है । ये मनुष्यनविषै होनेवाली ऐसी

यश इति पशुषु । ज्योतिरिति नक्षत्रेषु । प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे । सर्वमित्याकाशे ॥ तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत । प्रतिष्ठावान् भवति ॥ तन्मह इत्युपासीत । महान् भवति ॥ तन्मन इत्युपासीत । मानवान् भवति ॥ ३ ॥

अध्यात्मिकरूप मानुषी समाज्ञा (उपासना) हैं ॥ अब देवनविषै होनेवाली ऐसी दैवी समाज्ञा (उपासना) कहिये हैंः— तृप्तिरूप है, ऐसैं वृष्टिविषै । वृष्टिकूं अन्न आदिक द्वारा तृप्तिका हेतु होनेतैं ब्रह्महीं तृप्तिरूपसैं वृष्टिविषै स्थित है, ऐसैं उपासना करनेकूं योग्य है । ऐसैं अन्योविषै तिस तिस रूपसैं ब्रह्महीं उपासना करनेकूं योग्य है । तैसैं बल ऐसैं (बलरूपसैं) वीजलीविषै ॥ २ ॥

टीकाः—यश ऐसैं (यशरूपसैं) पशुनविषै । ज्योति ऐसैं (ज्योतिरूपसैं) नक्षत्रनविषै, प्रजापति औ पुत्रसैं पितृऋणकी निवृत्तिद्वारा अमरभावकी प्राप्तिरूप अमृत औ आनंद (सुख) ऐसैं उपस्थविषै; कहिये, यह सर्व उपस्थरूप निमित्तवाला है, यातैं ब्रह्महीं इस रूपसैं उपस्थविषै स्थित है, ऐसैं उपासना करनेकूं योग्य है। जातैं सर्व आकाशविषै स्थित है, यातैं जो सर्व आकाशविषै है, सो ब्रह्महीं है; ऐसैं उपासना करनेकूं योग्य है । जातैं सो आकाश ब्रह्महीं है, तातैं सो सर्वकी प्रतिष्ठा (आधार) है; ऐसैं उपासना करना । तिस प्रतिष्ठारूप गुणकी उपासनातैं प्रतिष्ठावान् होवै है । ऐसैं पूर्व कही उपासनाविषै बी जो जाके अधीन फल है, सो ब्रह्महीं है; ताकी उपासनातैं तिसवाला होवै है, ऐसैं जानना । काहेतैं "ताकूं जैसैं जैसैं उपासते हैं, सोइं [फल] होवै है" इस अन्य श्रुतितैं । सो महत् (महत्पनेरूप गुणवाला) है, ऐसैं उपासना करना । महान् होवै है । सो मन (मननरूप) है, ऐसैं उपासना करना । मानवान् (मननविषै समर्थ) होवै है ॥ ३ ॥

तन्नम इत्युपासीत । नम्यंतेऽस्मै कामाः ॥ तद्ब्रह्मेत्युपासीत । ब्रह्मवान् भवति ॥ तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत । पर्य्येण म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः । परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः ॥ स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये । स एकः ॥ ४ ॥

टीकाः—सो नम (नमनरूप गुणवाला) है, ऐसैं उपासना करना। इस उपासक-के तांई भोगनेयोग्य विषयरूप काम नमते हैं। सो ब्रह्म (अत्यंत परिपूर्ण) है, ऐसैं उपासना करना। ब्रह्मवान् (तिसके गुणवाला) होवै है। सो ब्रह्मका परिमर (वायु) है, ऐसैं उपासना करना; कहिये, जिसविषै बीजली वृष्टि चंद्रमा सूर्य औ अग्नि ये पांच देवता मरतेहैं, ऐसा जो वायु, सो "यातैं वायु परिमर है" इस अन्यश्रुतिकी प्रसिद्धितैं, ब्रह्मका परिमर कहिये है। सो यह हीं वायु जातैं आकाशसैं अनन्य है, यातैं आकाश ब्रह्मका परिमर है। तिस वायुरूप आकाशकूं ब्रह्मका परिमर है, ऐसैं उपासना कर-ना। ऐसैं जाननेवाले उपासकके प्रतिस्पर्द्धा करनेवाले द्वेष करते हुये बी जातैं शत्रु होवै हैं, यातैं तिनकूं द्वेष करते हुये शत्रु हैं, ऐसा विशे-षण देईता है, वे याके प्रति द्वेष करनेवाले शत्रु च्यारी औरतैं मरते हैं, कहिये, प्राणोंकूं त्यागते हैं। किंवा जो याके अप्रिय भ्राताके पुत्र हैं वे अद्वेषकरनेवाले हुये बी च्यारी औरतैं मरते हैं। ऐसैं "[१७७]वां प्राण अन्न है, औ शरीर अन्नाद है" इहांसैं आरंभकरिके आकाशप-र्यंत कार्यकाहीं अन्न औ अन्नादपना कहा ॥ यह कहा तिसकरि क्या सिद्ध भया? तिसकरि यह सिद्ध भया किः—भोज्य औ भोक्ताका

---

१७७ ऐसैं मंदाधिकारीके विषय उपासनाके समूहकूं अध्यारोपअव-स्थासैं उपदेशकरिके, अब अपवाददृष्टिके अभिप्रायसैं कहै हैं।

किया जो संसार है, सो कार्यकूं विषय करनेवालाहीं है; आत्मा-विषै तौ नहीं है, परंतु आत्माविषै भ्रांतिसैं आरोप करिये है॥ [178] ननु आत्मा बी परमात्माका कार्य है; तातैं याकूं संसारयुक्त है ? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं; असंसारीकेहीं प्रवेशकी श्रुतितैं । जातैं "ताकूं सृजिके ताहीके तांई फेर प्रवेश करता भया" ऐसैं श्रुति-विषै आकाश आदिकके कारण असंसारी परमात्माकाहीं कार्यन-विषै प्रवेश सुनिये है। तातैं कार्यनविषै प्रवेशकूं पाया जो जीवरूप आत्मा है, सो परमात्मारूपहीं असंसारी है। औ "सृजिके फेर प्रवेश करता भया" ऐसैं सृष्टि औ प्रवेशके समान कर्तापनैके संभ-वतैं जब (जातैं) सृष्टि औ प्रवेशरूप क्रियाका एक कर्ता है, तातैं सृजिके प्रवेश करता भया, ऐसा उच्चारण युक्त है॥ जो कहै, प्रवे-श करनेवालेकूं तो अन्य भाव (स्वरूप) की प्राप्ति होवै ? सो बनै नहीं:—काहेतैं, प्रवेशकूं अन्य अर्थपनैकरि पूर्व (षष्ठ मंत्रविषै) निषेध किया होनेतैं ॥ जो कहै, "[179] ईसैं जीवरूपसैं प्रवेश करता भया" इस विशेष श्रुतितैं अन्य धर्मसैं प्रवेश भया है ? सो बनै नहीं:—काहेतैं "सो तूं हैं" ऐसैं फेर तिस परमात्मभावके कथन-तैं ॥ जो[180] कहै, अन्यभावकूं प्राप्त भये परमात्माकीहीं तिस अन्य-

१७८ भोक्तापनैआदिरूप जो संसार है, सो कार्यकूं विषय करनेवाला है; ऐसैं वर्णन किया है। तहां जीवकूं उपाधिरहित (स्वरूपतैं) संसारीपना देख्याहै, ताकूं बी कार्यरूप होनेतैं । इस वैष्णवनके मतकूं प्रकटकरिके दूषण देते हैं।

१७९ छांदोग्यश्रुतिके अनुसारसैं विकार (कार्य) के आकारवाले स्वरू-पसैं परमात्माके प्रवेशकी आशंकाकरिके, तहां वाक्यशेषके विरोधकूं कहै हैं।

१८० भ्रांतिसैं देहादिभावकूं प्राप्तभये ब्रह्मसैं व्यतिरिक्त जीवकूंहीं रागके निषेधअर्थ परस्त्रीविषै माताके बुद्धिकी न्याई, संसारीपनैके निषेधअर्थ ब्रह्म-दृष्टि छांदोग्यश्रुतिविषै उपदेश करिये है। यातैं "तत्त्वमसि (सो तूं है)" इस उपदेशकूं अन्य अर्थवाला होनेतैं, जीवकूं पारमार्थिक असंसारी ब्रह्म-

भावके निषेध अर्थ "सो तूं है" ऐसैं श्रुतिविषै संपत्ति कही है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, "सो सत्य है, "सो आत्मा है, 'सो तूं हैं" ऐसैं जीव औ परमात्माके सामानाधिकरण्य (एक अर्थरूपता) के होनेतैं ॥ जो[181] कहै, जीवका संसारीपना दृष्ट (देख्या) है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, उपलब्धाकूं अप्रतीयमान होनेतैं, ताका देखना संभवै नहीं ॥ जो कहै संसारधर्मकरि विशिष्ट आत्मा प्रतीत होवै है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, धर्मनके औ धर्मीके अभेदतैं अग्निके धर्म उष्ण औ प्रकाशकूं अग्निकरि जलावनेकी योग्यता औ प्रकाशकरनेकी योग्यताके असंभवकी न्यांई, औ नेत्रके धर्मकूं नेत्रकी विषयताके असंभवकी न्यांई आत्माके धर्मनकूं आत्माके विषय होनेके असंभवतैं धर्मविशिष्ट आत्माकी प्रतीति संभवै नहीं ॥ जो[182] कहै, आत्माकूं भय आदिकके देखनेतैं दुःखीपनै आदिक धर्मका अनुमान होवै है? सो[183] बनै नहीं:—काहेतैं, भय आदिककूं औ दुःख-

रूपता नहीं है ! यह आशंकाकरिके ताकूं दूषण देते हैं । इहां यह अर्थ है:—अबाधित तत्पदसैं मुख्य सामानाधिकरण्यके विरोधतैं ब्रह्मरूप जीवविषै अब्रह्मभावके संपादन करनेरूप अर्थवान्पना कल्पना करनेकूं अशक्य है ।

१८१ संसारीभावके ग्राहक प्रत्यक्षप्रमाणके विरोधतैं जीवविषै अबाधितपना असिद्ध है, ऐसैं पूर्ववादी कहै है । इहां सिद्धांती, सर्व प्रमाणोंका अनुग्राहक तर्क अंगीकार करिये है औ आत्माके संसाररूप धर्मवान्पनैकूं तर्ककरि असिद्ध होनेतैं, औ ता संसारीपनैके प्रत्यक्षप्रमाणकूं भ्रांत होनेतैं, ता प्रत्यक्षप्रमाणकूं शास्त्रजन्य ज्ञानका बाधकपना नहीं संभवै है; ऐसैं कहै हैं । सुखादिककूं प्रतीयमान होनेतैं रूपादिककी न्याई उपलब्धा (ज्ञाता) का धर्मपना नहीं संभवै है । यह अर्थ है ।

१८२ प्रत्यक्षप्रमाणके विरोधके अभाव हुये बी अनुमानप्रमाणकाविरोध होवैगा; ऐसैं पूर्ववादी कहै है ।

१८३ भयआदिक जो है सो आश्रयसहित है; कार्य होनेतैं, घटकी न्याई । अन्य आश्रयके असंभवतैं आत्माहीं ताका आश्रय

कूं प्रतीयमान होनेतैं उपलब्धा (ज्ञाता)का धर्मपना नहीं है ॥ जो[१८४]कहै, ऐसैं मानेहुये कपिलमुनिकृत सांख्य औ कणादमुनिकृत वैशेषिक आदिक तर्क इन शास्त्रनका विरोध होवैगा? सो बनै नहीं:- काहेतैं, तिन कपिल आदिककूं मूलके अभाव हुये औ वेदके विरोध हुये भ्रांतिके संभवतैं औ आत्माका असंसारीपना श्रुति अरु युक्तिकरि सिद्ध है, औ जीव[१८५]ईश्वरकी एकतातैं ईश्वरके अधीन जीवकूं सुखीपना निरूपण करनेकूं अशक्य है ॥ ननु, जीव औ ईश्वरकी एकता कैसैं है? तहां कहिये है:—**सो जो यह पुरुषविषै है, औ जो यह सूर्यविषै है सो एक है ॥ ४ ॥**

अनुमानसैं जानिये है। ऐसैं कहनेकूं योग्य नहीं; काहेतैं, जानने योग्य जो वस्तु है, सो उपलब्धा (जाननेवाले)का धर्म नहीं है; रूपादिककी न्याई। इस अन्य व्याप्तिके विरोधतैं अध्यासतैं बी कार्यके दर्शनके संभवतैं। यह अर्थ है ॥

१८४ जीवकी ब्रह्मरूपताकूं प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रकूं तर्कशास्त्रके विरोधतैं अप्रमाणपना है? यह आशंका करिके दूषण देते हैं।

१८५ किंवा तार्किककरि बी जीवका सुखीपना ईश्वरके आधीन निरूपण करनेकूं योग्य है, सो निरूपण करनेकूं शक्य नहीं है; काहेतैं, अपने आत्मारूप ईश्वरविषै सुखदुःखकी हेतुताके असंभवतैं। इस अभिप्रायसैं कहै हैं।

स य एवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । इमाँल्लोकान् कामान्नी कामरूप्यनुसञ्चरन् । एतत्साम गायन्नास्ते । हा३वु हा३वु हा३वु ॥ ५ ॥

टीकाः–"सत्यं[१८६] ज्ञान अनंत ब्रह्म है" इस चोवीसमी ऋचाका अर्थ ताकी विवरणरूप आनंदवल्लीकरि विस्तारसैं व्याख्यान किया। औ "सो विपश्चित् (सर्वज्ञ) ब्रह्मस्वरूपसैं एककालविषै सर्व कामोकूं भोगता है" इस ताके फलवचनके अर्थका "कौंन वे सर्व काम हैं, वा वे किसकूं विषय करनेवाले हैं, वा तिनकूं कैसैं सो ब्रह्मस्वरूपसैं एककालविषै भोगता है"? इस रीतिका विस्तार कहा नहीं, यह कहनेकूं योग्य है; यातैं यह अब आरंभ करिये है। तहां पूर्वउक्त विद्याकी साधनरूप पिता अरु पुत्रकी आख्यायिकाविषै तपरूप ब्रह्मविद्याका साधन कहा। औ प्राणसैं आदिलेके आकाशपर्यंत जो कार्य है, ताका अन्न औ अन्नादपनैकरि उपयोग कहा। औ ब्रह्मकूं विषय करनेवाले उपासन कहे। औ नियमित अनेक साधनकरि साध्य आकाश आदिक कार्यके भेदकूं विषय करनेवाले जे सर्व काम हैं, ये दिखाये। एकताविषै काम औ कामीपनैका असंभव है, काहेतैं, सर्व भेदके समूहकूं आत्मारूप होनेतैं। तहां ऐसैं (उक्त प्रकारसैं) जाननेवाला विद्वान् एककालविषै ब्रह्मस्वरूपसैं सर्व कामोंकूं कैसैं भोगता है? तहां

---

१८६ अब इस तृतीयवल्लीकी समाप्तिपर्यंत जो ग्रंथ है, ताके तात्पर्यकूं उक्त अर्थके कथनसैं कहे हैं।

कहिये हैः–सर्वात्मताके संभवतैं सो एककालविषै ब्रह्मस्वरूपसैं सर्व कामोंकूं भोगता है। ताकी सर्वात्मताका संभव कैसैंहै? तहां कहै हैं:–जो ऐसैं जाननेवाला है सो दृष्ट अदृष्टरूप इसलोकतैं निरपेक्ष होयके पुरुष औ सूर्यविषै स्थित आत्माकी एकताके विज्ञानसैं उत्कर्ष औ अपकर्षकूं दूरीकरिके इस अन्नमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करिके; इस प्राणमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करिके, इस मनोमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करिके, इस विज्ञानमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करिके, इस आनंदमयरूप आत्माकूं उल्लंघन करिके [ऐसैं अविद्याकल्पित अन्नमयसैं आदिलेके आनंदमय पर्यंत जे आत्मा हैं, तिनकूं क्रमसैं उल्लंघन करिके] सत्य ज्ञान अनंत अदृश्य आदिक धर्मवाले स्वाभाविक आनंदस्वरूप अजन्मा अमृत अभय अद्वैत ब्रह्मरूप फलकूं प्राप्त होयके, कामान्नी (कामनाके अनुसार अन्नकूं पावनेवाला) औ कामरूपी (कामनाके अनुसार रूपनकूं धारनेवाला) हुया इन पृथिवी आदिक लोकनके तांई विचरता हुया (सर्वात्मरूपसैं इन लोकनकूं आत्मापनैकरि अनुभव करता हुया) हावु हावु हावु; इस सामकूं गायन करता हुया स्थित होवै है॥ काहेकूं इस सामकूं गायन करता हुया स्थित होवै है? तहां कहै हैं:– समरूप होनेतैं ब्रह्महीं साम है, ता सर्वसैं अनन्य ब्रह्मरूप सामकूं गायन करता हुया (आत्माकी एकताकूं प्रख्यात करता हुया, औ लोकनके अनुग्रहअर्थ अतिशय कृतार्थपनैरूप तिस ज्ञानके फलकूं गायन करता हुया) स्थित होवै है। इहां तीनवार हावु शब्द

---

१८७ विद्वान् जो है, सो अविद्यालेशके वशकरि द्वैतके भ्रमकूं अनुभव करता हुया "सर्वका आत्मा मैं हूं" ऐसैं मानता हुया, अणिमादिक ऐश्वर्यवाले योगिनका जो कामान्नपना (कामनाके अनुसार अन्नवान्पना) औ कामरूपपना (कामनाके अनुसार रूपका धारनेपना) है, ताकूं "मेराही है" ऐसैं देखता हुया, एककालविषै सर्व विषयानंदनकूं भोगता है; ऐसैं कहिये है। यह कहै हैं।

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो२-ऽहमन्नादो २ ऽहमन्नादः । अहꣳश्लोककृदहꣳ-श्लोककृदहꣳश्लोककृत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋता ३ स्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३भायि । यो मा ददाति स इदेव मा३वाः । अहमन्नम-न्नमदन्तमा३ द्मि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां३ । सुवर्णज्योतीः । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥ राध्यते विद्युति । मानवान् भवत्येको हा३वु । य एवं वेदैकञ्च ॥ ६ ॥

जो है, सो अहो, इस अर्थविषै वर्तमान हुया अत्यंत विसयकें जनावने अर्थ है ॥ ९ ॥

टीकाः—यह विसय कौंन है? तहां कहिये हैः—अद्वैत आत्मा-रूप निरंजन हुया बी, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्नाद हूं मैं अन्नाद हूं मैं अन्नाद हूं, किंवा मैं श्लोकका कर्ता हूं, मैं श्लोकका कर्ता हूं, मैं श्लोकका कर्ता हूं, कहिये श्लोक जो अन्न औ अन्नादका संघात, ताका कर्ता चेतनावान् मैंहीं हूं। वा अन्नादरूप परके अर्थ हुये अनेकरूप अन्नकेहीं परार्थरूप हेतुकरि संघातका कर्ता मैंहीं हूं। इहां तीनवार जो कथन है, सो विसयपनैके प्रख्यात करनेअर्थ है ॥ किंवा मैं ऋत (मूर्त अमूर्त) रूप इस जगत्-के प्रथम उत्पन्न भया हिरण्यगर्भ हूं औ व्यष्टिरूप देवनतैं पूर्व विराट्रूपहीं हूं। औ अमृतका नाभि (मध्य) हूं, कहिये, प्राणिनका अमृतभाव मेरेविषै स्थित है। जो कोइक मुज अन्नकूं अन्नार्थिनके तांई देता है (अ-न्नरूपसैं कहता है,) सो ऐसैं अविनाशीरूप हुये मुजकूं रक्षण करता है। जो अन्य मुज अन्नकूं अर्थिनके तांई सम-यके प्राप्त भये न देईकें अन्नकूं भक्षण करता है, तिस अन्नकूं भ-

क्षण करनेवाले पुरुष-कूं मैं अन्नहीं उलटा भक्षण करता हूं ॥ इहां वादी कहै है किः—जब ऐसैं है तब मैं सर्वात्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षतैं भयकूं पावता हूं, मुजकूं संसारहीं होहू। जातैं मुक्त हुया बी मैं अन्नरूप हुया अन्नकाहीं भक्ष्य होऊंगा, तातैं मैं मोक्षतैं भयकूं पावता हूं? तहां सिद्धांती कहै हैं किः—हे वादिन्! भय मति कर; काहेतैं, सर्व कामोंके भक्षणकूं व्यवहारका विषय होनेतैं, यह अविद्वान् अन्न औ अन्नाद आदिरूप अविद्याके किये व्यवहारके विषयकूं भक्षण करता है, औ विद्यासैं ब्रह्मभावकूं प्राप्त भया जो विद्वान् है, ताकूं द्वितीय अन्य वस्तु नहीं है, जातैं भयकूं पावै। यातैं मोक्षतैं भय करनेकूं योग्य नहीं है॥ जब ऐसैं है, तब यह विद्वान् "मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्नाद हूं," ऐसैं यह क्या कहता है? तहां कहिये हैः—जो यह अन्न औ अन्नाद आदिक स्वरूप कार्यरूप व्यवहार है, सो व्यवहार कार्यरूपहीं है; परमार्थ वस्तु नहीं। सो व्यवहार ऐसा हुया बी ब्रह्मरूप निमित्तसैं है, ब्रह्मविना असत् है। ऐसैं होनेकरि विद्वान्के सर्वात्मभावकी स्तुतिअर्थ "मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं। मैं अन्नाद हूं, मैं अन्नाद हूं, मैं अन्नाद हूं" इत्यादिरूप यह ब्रह्मविद्याका कार्य कहिये है। यातैं ब्रह्मभूत विद्वान्कूं अविद्याके नाशतैं अविद्यारूप निमित्तका किया भय आदिक दोषका गंध बी नहीं है। या अभिप्रायसैं विद्वान् फेर कहता है किः—ब्रह्मा आदिक भूतनकरि भोगनेयोग्य, वा जिसविषै भूत होवै हैं, ऐसा जो भुवन है; तिस सारे भुवनकूं मैं परमेश्वर स्वरूपसैं संहार करता हूं। सूर्यकी न्यांई एकहीं कालविषै प्रकाशमान मेरा ज्योति (प्रकाश) है। यह द्वितीय औ तृतीय वल्लीविषै कथन करी उपनिषद् (परमात्माका ज्ञान) है। तिस इस उक्तप्रकारकी उपनिषद्कूं शांत दांत उपरत तितिक्षु औ समाधानवान्

१८८ "ईश्वररूपताके ज्ञानसैं मैं द्वैतकूं बाध करताहूं, तातैं मुजकूं भयका कारण नहीं है"। यह अर्थ है।

भृगुस्तस्मै यतो विशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तत्त्रयोदशान्नं प्राणं मनो विज्ञानमिति विज्ञाय । तं तपसा द्वादश द्वादशानन्द इति । सैषा दशान्नं न निन्द्यात् । प्राणः शरीरमन्नं न परिचक्षीतापो ज्योतिरन्नं बहु कुर्वीत । पृथिव्यामाकाश एकादशैकादश । न कञ्चनैकषष्ठिरेकान्नविंशतिरेकान्नविंशतिः ॥ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ भृगुरित्युपनिषत् ॥ शन्नो मित्रः । आवीद्वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः ॥ ७ ॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

इति भृगुवल्ली ॥ ३ ॥

इति तैत्तिरीयोपनिषत्संपूर्णा ॥ ७ ॥

होयके भृगुकी न्याई बडे तपकूं आश्रय करिके जो ऐसैं जानता है, ताकूं यह उक्त प्रकारका फल होवै है । [सिद्ध होवै है, मानवान् होवै है, एक हावु, जो ऐसैं जानता है औ एक] ॥ ६ ॥

टीकाः–सो हमकूं रक्षण करहू, सो हमकूं भुगाव हूं । सो सामर्थ्यकूं करहू । हमारा अध्ययन किया तेजस्वि होहू । हम शिष्य औ आचार्य परस्पर द्वेषकूं मति करैं । ॐ (यह सत्य है,) शांति होहू, शांति होहू, शांति होहू ।

[या मंत्रके आरंभमैं जो "भृगु ताके तांई" इहांसैं लेके "ए-

कुनतीस" इहांपर्यंत जो या तृतीयाध्यायके मंत्रनकी स्मरणअर्थ संकुल है, ताकूं निरुपयोगी जानिके ताका अर्थ भाष्यकारनैं वा हमने लिख्या नहीं] ॥ ७ ॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

इति तैत्तिरीयोपनिषद्गत भृगुवल्लीनामक तृतीयाध्याय-भाष्य भाषादीपिका समाप्ता ॥ ३ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापुसरस्वतीपूज्य-पादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा श्रीभगवत्पादकृतभाष्यानुसा-रेण विरचिता यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्यभाषादी-पिका समाप्ता ॥ ७ ॥

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

ऋग्वेदीयैतरेयोपनिषद् ॥

अथ प्रथमाध्यायगत प्रथम खंडः ॥ १ ॥

हरिः ॐ ॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत लोकान् नु सृजा इति ॥ १ ॥

श्री

ऋग्वेदीयैतरेयोपनिषद् भाष्य भाषादीपिका॥८॥

अथ ऐतरेयोपनिषद्गत प्रथमाध्याय भाष्य भाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ १ ॥

प्रथमखंड भाष्य भाषादीपिका ॥ १ ॥

आत्मातैं लोक औ लोकपाल आदिककी सृष्टि.

टीकाः—ईहांपर्यंत अपरब्रह्मकी उपासनासहित कर्म समाप्त भया । सो यह उपासनासहित कर्मकी परम गति, उक्थ (प्राण)की उपासनारूप द्वारसैं समाप्त करी । "यह प्राण नामक सत्य ब्रह्म है,"

---

१ इतरानामक माताके पुत्र ऐतरेयनामक ऋषिनैं शिष्यनकूं पढायके यह उपनिषद् प्रवृत्त करी है, यातैं याका नाम ऐतरेयोपनिषद् है ।

२ " यह आगे एक आत्माहीं था " इत्यादि वाक्यसैं केवल आत्मविद्याके आरंभके अवसरकूं कहनेकूं उक्त अर्थका कथन करै हैं ।

३ ता कर्मकी समाप्ति कैसैं जानिये है ? यह आशंका करिके कहै हैं । इहां परागति शब्दका उत्कृष्ट गमन करने योग्य (प्राप्त होने योग्य) फल अर्थ है ।

४ उपासनासहित कर्मकी समाप्तिकूंहीं वाक्यके उदाहरणसैं दिखावै हैं । इहां यह अर्थ हैः—तहां " सर्व भोज्यकरि संयुक्त अध्यात्म औ अधिदैवरूप सो प्राण, एक सत्यशब्दका वाच्य होवै है " इस वाक्यसैं प्राणका स्वरूप समाप्त किया ।

"यह एक देव है," "ईसीहीं प्राणकी सर्व देव विभूतियां हैं" "ईसैं प्राणके आत्मभावकूं पावताहुया देवताकूं पावता है," ऐसैं श्रुतिनविषै कहा है ॥ सो यह देवताकी प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थ है, यह मोक्ष है, औ सो यह मोक्ष उक्तप्रकारके उपासना औ कर्मके समुच्चयरूप साधनसैं प्राप्त होनेकूं योग्य है; यातैं अन्य श्रेष्ठ नहीं है ? ऐसैं केइक वादी निश्चयकूं प्राप्त भयेहैं । तिनंकूं निषेध करनेकी इच्छावाली हुई यह उपनिषद्, केवल आत्माके ज्ञानके विधानअर्थ "यह (जगत्) आगे निश्चयकरि एकहीं आत्मा था"

---

५ तब वाक् औ अग्नि आदिक देव कौंन हैं ? यह आशंका करिके "ताका वाक्रूप संतान है, अब यातैं इस पुरुषका" इत्यादि वाक्यसैं वे वाक् आदिक प्राणकीहीं विभूतियां (विस्तार) हैं, ऐसैं कहा है; यह कहै हैं ।

६ ऐसैं सर्वात्मा प्राणके कर्मसहित आत्मतत्वरूपकरि विज्ञानतैं सर्व देवताके स्वरूप प्राणकी प्राप्तिरूप फल "जो ऐसैं जानता है, सो प्रज्ञामय देवतामय ब्रह्ममय अमृतमय होयके देवताकूं पावता है" इस वाक्यसैं समाप्त किया है; ऐसैं कहै हैं । इहां यह भाव है:-तैसैं हुये उपासनासहित कर्मसैं केवल आत्मस्वरूपकी स्थितिरूप मोक्षकी असिद्धितैं ता मोक्षकी सिद्धिअर्थ केवल आत्मविद्याके आरंभका अब अवसर है ।

७ इहां बीचमैं सर्वरूप सूत्रात्माकी प्राप्तितैं भिन्न मोक्षके अभावतैं, ता सूत्रात्माकी प्राप्तिरूप मोक्ष अर्थ केवल आत्माकी विद्याका आरंभ युक्त नहीं है । ऐसैं केईक वादी कहते हैं । तिनके मतकूं उठावते हैं ।

८ तिन वादीनके मतकूं दिखायके अब ताके निषेध अर्थ होनेकरि केवल आत्मविद्याके वाक्यकूं प्रकट करै हैं । इहां "केवल आत्माके ज्ञानके विधान अर्थ" इस कथनकरि निरुपाधिक आत्माकूं विषय करनेपना, औ कर्मीविषै अस्थितपना, औ कर्मका असाधनरूप औ कर्मका असंबंधीपना, ज्ञानका केवलभाव कहनेंकूं इच्छित है ।

इत्यादिरूप अर्थकूं कहती है ॥ फेर कर्मके असंबंधी केवल आत्माके विधानअर्थ उत्तरग्रंथ है, यह कैसैं जानिये है? तहां कहियेहै किः—अन्य अर्थके न जाननेतैं इसीहीं प्रयोजन अर्थ उत्तरग्रंथ है,

---

९ ननु, "यह आगे एकहीं आत्मा था" इत्यादिरूप वाक्य, केवल आत्माकूं विषय करनेवाला कैसैं बनै ? काहेतैं, "सो इन लोकनकूं सृजता भया" ऐसैं लोकनकी सृष्टिकी प्रतीतितैं, औ ता सृष्टिकी सोपाधिक हिरण्यगर्भकरि रचित होनेकरि पुराणनविषै प्रसिद्धितैं, औ "तिनके अर्थ गौकूं ल्यावता भया" इत्यादि व्यवहारनकी लोकविषै सोपाधिक विषयभावकी प्रसिद्धितैं। औ पूर्व "अब याके पीछे वीर्यतैं सृष्टि होवैगी। प्रजापतिके वीर्यरूप देव हैं" इस वाक्यविषै प्रजापतिशब्दके वाच्य हिरण्यगर्भकूं प्रसंगविषै प्राप्त किया होनेतैं "ताकूं ता विषयभावके उचित होनेतैं आत्माका ग्रहण है" इस अधिकरण सूत्रविषै उक्त पूर्वपक्षकी रीतिसैं वादी शंका करै है।

१० "यह आगे एकहीं आत्मा था" ऐसैं अद्वितीय आत्माके उपक्रमतैं। औ "यह ब्रह्मा है, यह इंद्र है" इस अनुक्रमकरिके "सर्व सो प्रज्ञारूप नेत्रवाला है, औ प्रज्ञानविषै स्थित है;" ऐसैं प्रज्ञानशब्दके वाच्य हिरण्यगर्भ आदिक प्रपंचके अभावकूं कहिके, "प्रज्ञान ब्रह्म है" ऐसैं अद्वितीय आत्माके उपसंहारतैं। औ "इसीहीं पुरुषकूं परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखता भया" ऐसैं मध्यविषै स्मरणतैं, ब्रह्म आत्माके अद्वितीयभावकूं अन्य प्रमाणका अविषय होनेकरि अपूर्व होनेतैं। औ "इस स्वर्गलोकविषै सर्व कामोंकूं पायके अमृत होता भया" ऐसैं स्वर्गशब्दके वाच्य निरतिशयभावरूप सुखस्वरूप ब्रह्मविषै एकभावकरि स्थित भये पुरुषकूं ताके अंतर्भूत विषयसंबंधी सर्व आनंदनकी प्राप्तिरूप फलके कथनतैं। औ सृष्टि आदिक अर्थवादतैं "सो इसीहीं सीमाकूं विदारणकरिके इस द्वारसैं प्रवेश करता भया" ऐसैं प्रवेशके कथनतैं औ "ताके तीन स्थान हैं, तीन स्वप्न हैं" ऐसैं जाग्रत् आदिक तीन अवस्थाके स्वप्नरूपसैं मिथ्यापनैकी उक्तिरूप उ-

यह जानिये है । [११]तैसैं हुये पूर्वउक्त अग्नि आदिक देवनके क्षुधा तृषा आदिक दोषयुक्त होनेकरि संसारीपनैंकूं यह श्रुति आगे "ताकूं क्षुधा तृषाकरि प्रार्थना करते भये" इत्यादि वाक्यसैं दिखावैगी । औ क्षुधा आदिक दोषवाला सर्व संसारहीं है; [१२]कोंहे

पपत्तितैं; ग्रंथके निष्प्रपंच अद्वितीय आत्माके तत्परपनैके जाननेसैं अन्य अर्थकी शंकाके अनवकाशतैं, औ लोकआदिककी सृष्टिके कथनतैं, अध्यारोप औ अपवादकरि उक्त आत्माके निश्चय अर्थ आत्माविषै सृष्टिके आरोपतैं । इहां अन्यस्थलकी न्यांई आत्मशब्दसैं परमात्माहीं ग्रहण करिये है। जैसैं " तिस वा इस आत्मातैं आकाश होता भया " इत्यादि अन्य सृष्टिके श्रवणोविषै आत्मशब्दसैं परमात्माका ग्रहण है । वा जैसैं अन्य लौकिक आत्मशब्दके उच्चारणविषै आत्मशब्दसैं मुख्य प्रत्यगात्माहीं ग्रहण करिये है, तैसैं इहां बी होनेकूं योग्य है; काहेतैं, वाक्यके अर्थके देखनेतैं । " उत्तर ग्रंथतैं अन्यस्थलकी न्यांई आत्माका ग्रहण है " इस अधिकरण सूत्रके सिद्धांतकी रीतिसैं केवल आत्माकी परायणताके निश्चयतैं उत्तरग्रंथकूं सोपाधिक वस्तुकी परायणता नहीं है, ऐसैं सिद्धांती कहै हैं ।

११ जो कहा, यहहीं मोक्ष है, तहां कहै हैं । इहां तिस हिरण्यगर्भके स्थूलरूप विराट्के पिंडकूं ईश्वर, क्षुधा तृषा करि जोडता भया, यह इस श्रुतिका अर्थ है ।

१२ औ जो वादीनैं कहाथाकि निरुपाधिक आत्मस्वरूपसैं स्थितिकूं विषयादिकसैं रहित होनेकरि मोक्षपना नहीं है? सो कथन असत् है; काहेतैं, " जो क्षुधा तृषा शोक मोह जरा औ मृत्युकूं लंघताहै " इस क्षुधा आदिकके उल्लंघनकी श्रुतितैं, ता ब्रह्मरूपसैं स्थित भये पुरुषकूं तिस नियमित दुःखकी अप्राप्तितैं, औ " आनंद ब्रह्म है ऐसैं जानना " इस अन्य श्रुतितैं, औ " इस स्वर्गलोकविषै सर्व कामोकूं पायके अमृत होता भया " ऐसैं आगे इहांबी स्वरूपतैं आनंदरूपताके जाननेतैं, औ स्वर्ग शब्दकूं सामान्य सुखका वाची होनेतैं " अनंतरूप स्वर्गलोकविषै " " याके पीछे ब्रह्मवेत्ता स्वर्गलोककूं पायके मुक्त होवै हैं " इत्यादिक श्रुतिनविषै

तैं, परब्रह्मके क्षुधाआदिकके अभावकी श्रुतितैं ॥ ॥ [13]ऐसैं केवल आत्माका ज्ञान मोक्षका साधन होहु, परंतु इसविषै अकर्मी (संन्यासी) पुरुषहीं अधिकारकूं पावताहै ऐसैं नहीं; काहेतैं, विशेष (अधिकारी भेद)के अश्रवणतैं कहिये कर्मरहित (संन्यासीरूप) अन्य आश्रमीके इहां अश्रवणतैं। औ श्रुतिविषै बृहतीसहस्त्ररूप कर्मकूं प्रसंगविषै प्राप्तकरिके अनंतरहीं आत्मज्ञानका आरंभ करियेहै। तातैं इहां कर्मीहीं अधिकारकूं पावता है। [14]औ कर्मका असंबंधी आत्माका ज्ञान नहींहै; काहेतैं, इहां पूर्वकी न्याई अंतविषै कर्मकी समाप्तितैं। जैसैं कर्मसंबंधी पुरुषकूं सूर्यरूपसैं स्थावर जंगम आदिक सर्व प्राणीनका आत्मापना "सूर्यस्वरूप" इत्यादिरूप वाक्यकरि ब्राह्मणभागसैं औ मंत्रभागसैं कहा है, तैसैंहीं "यह ब्रह्मा है, यह इंद्र है" इत्यादिरूप वाक्यका आरंभकरिके सर्व प्राणीनका आत्मापना कहा है। "औ जो स्थावर जंगम

ब्रह्मानंदविषै स्वर्ग शब्दके जोडनेतैं ताकूं विषयके अभाव हुये बी पुरुषार्थ (पुरुषकी इच्छाका विषय) होनेतैं मोक्षरूपता है, ऐसैं कहै हैं।

१३ ऐसैं निष्प्रपंचरूप आत्माके विद्याकी मोक्षसाधनताकूं अंगीकार करिके, ता विद्याकी कर्मरहित पुरुष (संन्यासी)विषै स्थित होनेके नियमरूप केवलता नहीं संभवै है, ऐसैं कहता हुया वादी संन्यासके ताई आक्षेप करै है।

१४ ऐसैं कर्मके संबंधसैं रहित केवल आत्मविद्याकूं अंगीकार करिके, ता विद्याका कर्मरहित पुरुष (संन्यासी)विषै स्थित होनेका नियम निषेध किया। अब अंगीकारका परित्याग करै है। इहां यह अर्थ है:—पूर्व (कर्मकांडविषै) कर्मसंबंधी ज्ञानके विषयकी सर्वात्मताके कथनतैं। "यह ब्रह्मा है" इत्यादि वाक्यसैं इहां (इस उपनिषद्‌विषै) बी सर्वात्मताके कथनतैं, औ तिस लिंगकरि इस आत्मज्ञानके बी कर्मसंबंधीपनेके अनुमानतैं आगे कहनेके आत्मज्ञानकूं कर्मसंबंधीपना (कर्मरूप सहकारीकरि युक्तपना) है।

सर्व है, सो प्रज्ञा (स्वप्रकाश चेतन)रूप नेत्र (निर्वाहक)वाला है" ऐसैं अंतविषे समाप्ति करियेगी । तैसैं हुये संहितारूप उपनिषद्‌विषै "इसीहीं बृहतीसहस्रनामक सत्र (याग)विषे ऋग्वेदके वेत्ता विचारते हैं" इत्यादिरूप वाक्यसैं कर्मके संबंधीपनैकूं कहिके, "सर्व भूतनविषै इसीहींकूं ब्रह्म, ऐसै कहते हैं" ऐसैं उपसंहार (समाप्ति) करै है । तैसैं "जो यह अशरीर प्रज्ञारूप आत्मा है" ऐसैं कथन किये तिसीहीं आत्माकी "जो यह सूर्यविषै है, ताकूं एकहीं जानना" ऐसैं एकता कही है । इहां बी "कौंन यह आत्मा है?" ऐसैं आरंभकरिके "प्रज्ञान ब्रह्म है" ऐसैं ताकी प्रज्ञारूपताकूंहीं दिखावैगी । तातैं कर्मका असंबंधी आत्मज्ञान नहीं है, अन्यथा पुनरुक्तिदोषसैं अनर्थता होवैगी ॥ कैसैं अनर्थता है किः—"यह प्रसिद्ध प्राण मैं हूं" इत्यादिरूप ब्राह्मणसैं औ "सूर्य आत्मा है" इस मंत्रसैं निर्द्धार किये आत्माका "यह आगे निश्चयकरि एकहीं आत्मा था" इत्यादि ब्राह्मणसैं "कौंन यह आत्मा है?" इस प्रश्नपूर्वक फेर निर्द्धारण पुनरुक्तिदोष है, सो अनर्थता है? ऐसैं जो कहै,[१५] सो बनै नहींः—ताकूं 'तिसीहीं आत्माके अन्यधर्मविशेषके निर्द्धारणअर्थ होनेतैं, ता वाक्यकूं पुनरुक्तिरूप दोष नहीं है ॥ कैसैं पुनरुक्तिदोषका अभाव है किः—तिसीहीं कर्मसंबंधी आत्माके जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति औ संहार आदिक धर्मविशेषके निर्धारणअर्थ होनेतैं, वा [१६]केवल आत्माके उपासनाअर्थ होनेतैं; कहिये, "आत्मा" इत्यादिरूप जो ग्रंथका समूह है, सो कर्मतैं अन्यठिकानैं आत्माकी उपासनाकी अप्राप्तिके हुये औ कर्मके प्रसंगविषै अविधान करी होनेतैं केवल आत्मा बी उपासना करनेकूं योग्य है । इस अर्थविषै भेद औ अभेदकी उपास्यतातैं वा एकहीं आत्मा

१५ सोई शंकाका परिहार करै हैं ।

१६ अन्य प्रकारसैं पुनरुक्तिदोषका परिहार करै हैं ।

कर्मविषै भेददृष्टिवाला (इदंताकरि उपास्य) है, सोइ अकर्मकालविषै अभेदसैं (अहंताकरि) बी उपासना करनेकूं योग्य है। ऐसैं पुनरुक्तिदोषका अभाव है ॥ औ "[17]जो विद्या औ अविद्या, इन दोनूंकूं साथिहीं अनुष्ठान करनेयोग्य जानता है, सो अविद्यासैं मृत्युकूं लंघिके विद्यासैं अमृतकूं पावता है" औ "इहां कर्मकूं करता हुया शतवर्षपर्यंत जीवनेकूं इच्छे" ऐसैं यजुर्वेदिनकी संहिताविषै कहा है। जातैं मनुष्यनकी शतवर्षतैं अधिक आयु नहीं है, यातैं कर्मके परित्यागसैं आत्माकूं उपासना करना ॥ औ जो कहै, "तितनैं पुरुषकी आयुके दिवसनके सहस्र होवै हैं" ऐसैं शतवर्षका पुरुषका आयु दिखाया है। सो आयु कर्मसैंहीं व्याप्त है औ तामैं प्रमाणरूप "इहां कर्मनकूं करता हुयाहीं" इत्यादिरूप । तैसैं "जीवनपर्यंत अग्निहोत्रकूं होमता है। "जीवनपर्यंत दर्श औ पूर्णमासकरि यजन करे" इत्यादिरूप मंत्र, दिखाया है । औ "ताकूं यज्ञके पात्रनसैं दहन करै हैं" औ तीन ऋणकी श्रुतितैं। तहां "व्युत्थानकरिके पीछे भिक्षाटनकूं करते हैं" इत्यादि संन्यास आदिकका प्रतिपादक जो शास्त्र है, सो आत्मज्ञानकी श्रुतिके परायण अर्थवाद है, वा अनधिकारीके अर्थ है? [18]सो बनै नहीं:— काहेतैं, परमार्थतारूप आत्माके विज्ञानके होते फलके अदर्शन हुये क्रियाके असंभवतैं ॥ जो तैनैं कहाथा कि कर्मीकूंहीं आत्माका ज्ञान होवै है, औ सो आत्मज्ञान कर्मका संबंधी है इत्यादिक, सो बनै नहीं:—काहेतैं; जातैं "पूर्णकाम, सर्वसंसारके दोषसैं रहित, ब्रह्म मैं हूं" ऐसैं आत्मापनैकरि तत्वके जानेहुये कर्मसैं वा कर्त-

---

१७ ऐसैं "यह आगे एकहीं आत्मा था" इत्यादि षट् वाक्यनके अपने पक्षविषै अर्थवान्पनैकूं कहिके, तिन वाक्यनके कर्मके त्यागसैं आत्मज्ञानरूप अर्थवान्ताके पक्षविषै बहुश्रुतिनके विरोधकूं वादी कहै है।

१८ तिस इस कथनके तांई सिद्धांती परिहार करै हैं।

व्यसैं आपके प्रयोजनकूं न देखनेवाले ज्ञानीकूं फलके अदर्शन हुये क्रिया संभवै नहीं ॥ जो कहै, फलके अदर्शन हुये बी विद्वान् प्रेरणाकूं पाया होनेतैं क्रियाकूं करता है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, प्रेरणाके अविषय आत्माके ज्ञानतैं । औ आपके इष्टकी प्राप्ति औ अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्रयोजनकूं देखता हुया ताके उपायकी इच्छावाला जो पुरुष होवै है, सो लोकविषै शास्त्रकी प्रेरणाका विषय देख्या है । परंतु तातैं विपरीत प्रेरणाके अविषय ब्रह्मात्माका दर्शी नहीं । ब्रह्मात्मभावका दर्शी हुया बी जब प्रेरणाकूं पावेगा, तब प्रेरणाका अविषय हुया बी कोइ बी पुरुष प्रेरणाका अविषय नहीं होवैगा । ऐसैं हुये सर्व कर्म, सर्व पुरुषकरि, सर्वदा करनेकी योग्यताकूं प्राप्त होवैगा; सो अनिष्ट है । औ सो विद्वान् किसीकरि बी प्रेरणा करनेकूं शक्य नहीं है; काहेतैं, [१९]वेदकूं बी तिसतैं उत्पन्न भया होनेतैं । जातैं अपनै विज्ञानकरि उत्पन्न भये वचनसैं आप प्रेरणाकूं पावता नहीं, औ [२०]बहुत अर्थका वेत्ता स्वामी बी अविवेकी भृत्यसैं प्रेरणाकूं पावता नहीं ॥ जो कहै, वेदकूं नित्यताके हुये स्वतंत्र होनेतैं सर्वकेप्रति प्रेरणा करनेका सामर्थ्य है? सो बनै नहीं:— काहेतैं, नेडेहीं कथन किये दोषतैं । जब प्रेरणासैं रहित विद्वान्कूं

१९ ननु, अन्यके नियोज्य (प्रेरणाके विषय) होनेके अभाव हुयें बी वेदवाक्यसैं विद्वान् नियोज्य होवैगा? ऐसैं द्वितीयपक्षकी आशंका करिके, ईश्वरभावकूं प्राप्त भये तिस विद्वान्कूं वेदकी स्वरूपताके ज्ञानपूर्वक होनेतैं औ अपने वचनसैं, आपके नियोज्यपनैके हुये एक ठिकानैं कर्म कर्ताके विरोधतैं, विद्वान्कूं वेदवाक्यसैं नियोज्यपना नहीं संभवै है, ऐसैं कहै हैं ।

२० किंवा व्याकरण आदिककूं ताके कर्ता पाणिनि आदिककरि ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तुके एक देशकूं विषय करनेपनैके देखनेतैं, ईश्वरजन्य वेदकूं बी ईश्वरकरि ज्ञेय वस्तुरूप एकदेशकूं विषय करनेकरि अल्पज्ञभावसैं बी अधिक जाननेवाले विद्वान्रूप ईश्वरका नियामकपना अयुक्त है, ऐसैं कहै हैं ।

बी कर्म कर्तव्य है, तब सर्व पुरुषकरि सर्वदा विहित कर्म करने योग्य होवैगा, यह कथन किया दोष, निवारण करनेकूं अशक्यहीं है ॥ जो[21] कहै, सो आत्मज्ञान बी शास्त्रनैंहीं कहा है; कहिये, जैसैं कर्मकी कर्तव्यता शास्त्रनैं करी है, तैसैं तिसीहीं कर्मीकूं सो आत्मज्ञान बी शास्त्रकरि विधान करिये है? सो[22] बनै नहीं:—काहेतैं, शास्त्रकूं विरुद्ध अर्थकी बोधकताके असंभवतैं। जातैं एकहीं शास्त्रविषै अग्निकी शीतलता औ उष्णताकी न्याई पुण्यपापका संबंधीपना औ तातैं विपरीतपना बोधन करनेकूं शक्य नहीं है। औ[23] आपके इष्टके प्राप्ति करनेकी इच्छा औ अनिष्टके निवृत्ति करनेकी इच्छा शास्त्रकी करी हुई नहीं है; काहेतैं, सर्वप्राणीनकूं ताके दर्श-

---

२१ असंगी ब्रह्मरूपताके ज्ञानकूं, औ कर्मकी कर्तव्यताकूं शास्त्रसैं रचित होनेतैं, दोनूं शास्त्रनके बी प्रमाणपनैके अविशेषतैं कदाचित् आत्मज्ञान औ कदाचित् कर्मका अनुष्ठान होवैगा। ऐसैं वादी शंका करै है।

२२ एकवार उत्पन्न भयेहीं स्वाभाविक अकर्ता आत्माके बोधसैं कर्ताभावके बोधके बाधतैं फेर शास्त्रकरि कर्ताभावका बोध नहीं संभवै है, ऐसैं कहै हैं।

२३ ऐसैं प्रथम विद्वान्कूं प्रेरणाके अविषय अकर्ता आत्माका दर्शी होनेतैं, औ प्रयोजनके अर्थी होनेके अभावतैं कर्म नहीं है, ऐसैं कहा। अब विद्वान्कूं आपतैं इष्टकी प्राप्ति औ अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्रयोजनके अर्थी होनेके अभाव हुये बी "स्वर्गकी कामनावाला यजन करै" इस शास्त्रकरिहीं प्रयोजनका अर्थीपना सिद्ध करिये है? यह आशंका करिके, स्वभावतैं प्राप्त प्रयोजनके अर्थीपनैके अनुवादसैं ताका उपायमात्र शास्त्रकरि बोधन करिये है, परंतु सो प्रयोजनका अर्थीपना सिद्ध नहीं करिये है। अन्यथा (स्वभावसैं विना शास्त्रकरिहीं प्रयोजनकी अर्थिताके बोधन किये हुये) शास्त्रके ज्ञानसैं रहित पुरुषनकूं ता प्रयोजनकी अर्थिता नहीं होवैगी, ऐसैं कहै हैं। इहां चिकीर्षाशब्दसैं फलकी इच्छामात्र कहिये है, परंतु करनेकी इच्छा नहीं; काहेतैं, फलविषै तिस करनेके असंभवतैं।

नतैं। औ सो दोनूं जब शास्त्रकृत होवैं, तब गोपालआदिकनकूं सो नहीं देखियेगी; काहेतैं, तिनकूं शास्त्रकी अज्ञातता है।[२४] जो आपतैं अप्राप्त वस्तु है सो शास्त्रकरि बोधन करनेकूं योग्य है। औ जब सो निश्चयके अर्थ कियेहुये, यह किया अरु यह कर्तव्य है, ऐसैं ज्ञानका विरोधि सो आत्मज्ञान शास्त्रनैं किया, तब तातैं विरुद्ध कर्तव्यताकूं सो शास्त्र, अग्निविषै शीतलताकी न्यांई औ सूर्यविषै तमकी न्याई कैसैं उत्पन्न करेगा? किसीप्रकार बी करै नहीं। जो[२५] कहै, तैसैं आत्माकूं शास्त्र बोधन करताहीं नहीं? सो बनै नहीं:— काहेतैं "सो मेरा आत्मा है" ऐसैं जानना औ 'प्रज्ञान ब्रह्म है' ऐसैं समाप्तितैं। औ "तिसैं[२६] आत्माकूंहीं जानना, "सो तूं हैं"

---

२४ ननु, शास्त्र जो है, सो जब कृत औ अकृतके संबंधीपनैकूं औ तिसतैं विपरीतपनैकूं विरुद्ध होनेतैं नहीं बोधन करै है, तब कृत औ अकृतके असंबंधीपनैकूंहीं बोधन करैगा? यह आशंकाकरिके, ताकूं अन्य प्रमाणसैं असिद्ध होनैकरि अवश्य शास्त्ररूप प्रमाणकरि बोधन करनेकी योग्यताके कहने योग्य हुये, अन्य प्रमाणकरि सिद्ध तिसतैं विपरीत वस्तुकूं शास्त्रकरि बोधन करनैकी योग्यता नहीं है, विरुद्ध होनेतैं; ऐसैं कहै हैं। इहां यह अर्थ है:—निश्चयरूप अर्थके किये हुये "यह किया, यह कर्तव्य है" इस ज्ञानका विरोधि आत्मज्ञान, जब शास्त्रकरि किया तब ता ज्ञानकी सिद्धि अर्थ तिसतैं विरुद्ध कर्तव्यताकूं कैसैं उत्पादन करैगा।

२५ विधिके अभावसैं वेदांतनकूं तैसैं आत्माकी बोधकता नहीं है? यह आशंका करिके, विधिकूं पुरुषकूं कर्तव्यके सन्मुख करनेरूप अर्थवाला होनेतैं, औ इहां आत्मज्ञानके सन्मुख करने अर्थ विधिस्वरूप अर्थवादके सद्भावतैं, औ स्वरूपबोधक तत्पर वाक्यके बी सद्भावतैं ऐसैं बनै नहीं। यह उत्तर सिद्धांती कहै हैं।

२६ ता वाक्यके साथि रहनेवाले "यह आगे एकहीं आत्मा था" इनसैं आदिलेके उपक्रम आदिक तात्पर्यके लिंगकूं सूचन करै हैं। औ ज्ञानकी उत्पत्तिके, अनुवादकी करनेवालीहीं श्रुतिके बलतैं बी

इत्यादि वाक्यनकूं ताके परायण होनेतैं । उत्पन्न भये ब्रह्मात्माके विज्ञानकूं अबाधित होनेतैं, सो आत्मज्ञान उत्पन्न भया नहीं; वा भ्रमरूप है, ऐसैं कहनेकूं शक्य नहीं है ॥ जो[२७] कहै, विद्वान्कूं कर्मके त्यागविषै बी प्रयोजनके अभावकी तुल्यता है? काहेतैं, "ताका इहां कर्मसैं अर्थ नहीं है, औ कर्मके अभावसैं कोई बी अर्थ नहीं" इस गीता स्मृतितैं । औ "ब्रह्मकूं जानिके संन्यासकूंहीं करना" ऐसैं जो कहते हैं, तिनकूं बी यह प्रयोजनका अभावरूप दोष तुल्यहीं है? सो[२८] बनै नहीं:—काहेतैं, संन्यासकूं अक्रियामात्ररूप होनेतैं। जातैं अविद्यारूप निमित्तका कियाहीं प्रयोजनका भाव है, वस्तुका धर्म नहीं; काहेतैं, सर्व प्राणीनके मध्य ताके देखनेतैं, औ प्रयोजनकी तृष्णासैं प्रेरणाकूं प्राप्त भये पुरुषके वाणी मन औ शरीरकी प्रवृत्तिके देखनेतैं । "सो[२९] मुझेकूं जाया होवै, ऐसैं कामना

अनुत्पत्तिकी शंका करनेकूं योग्य नहीं है, ऐसैं कहै हैं । इहां श्रुतिगत "तिस" पदकरि जीवरूपसैं स्थित ब्रह्मका ग्रहण है ।

२७ विद्वान्कूं प्रयोजनकी तृष्णाके अभावतैं कर्मविषै प्रवृत्ति नहीं है, ऐसैं कहा । तब तिस कर्मके त्यागविषै बी प्रयोजनके अभावतैं तहां बी विद्वान्की प्रवृत्ति नहीं होवैगी, ऐसैं वादी शंका करै है ।

२८ कर्मके त्यागकूं व्यापाररूपताके हुये, औ व्यापारकूं क्लेशरूप होनेतैं ताका अनुष्ठान प्रयोजनसैं अपेक्षित होवैगा । परंतु यह नहीं है; किंतु क्रियाका अभावमात्र उदासीनतारूप है, औ ताकूं स्वस्थरूप होनेकरि स्वरूपतैंहीं प्रयोजनरूप होनेतैं अन्य प्रयोजनकी अपेक्षावान्पना नहीं है, ऐसैं सिद्धांती परिहार करै हैं ।

२९ केवल दर्शनहीं नहीं है, किंतु श्रुति बी है; ऐसैं कहै हैं । इहां यह अर्थ है:— "सो कामना करता है" इनसैं आदिलेके "जातैं दोनूं ये एषणा (इच्छा) हीं हैं" इस वाक्यसैं पुत्र वित्त आदिक जो है सो काम्यहीं है, ऐसैं वाजसनेयि ब्राह्मणविषै निश्चय करनेतैं । इहां पांक्तरूप इस पदकरि जाया पुत्र दैववित्त मानुषवित्त औ कर्म, इन पांचके संबंधतैं पांक्तरूप कर्म कहिये है ।

करता भया'' इनसैं आदिलेके "दोनूं ये (साध्यसाधनरूप) एषणाहीं हैं" इस वाक्यसैं पुत्र औ वित्त आदिक जो है, सो पांक्तरूप काम्यकर्महीं है । ऐसैं वाजसनेयी ब्राह्मणविषै निश्चय करनेतैं विद्वांनूकूं अविद्या आदिक दोषके अभावतैं, अविद्या काममय दोषरूप निमित्तवाली पांक्तरूप वाणी मन औ शरीरकी प्रवृत्तिका असंभव है । औ ताके अभावतैं ताका अक्रियामात्ररूप संन्यास अयत्नकरि सिद्ध है, परंतु सो यागआदिककी न्यांई अनुष्ठेयरूप भावस्वरूप नहीं है; किंतु सो[31] विद्याकी न्यांई पुरुषका धर्म (स्वभाव) है यातैं तिसविषै प्रयोजन खोजनेकूं योग्य (प्रयोजनकी अपेक्षा) नहीं है । [32]जौतैं अंधकारविषै प्रवर्त भये पुरषकूं प्रकाशके उदय हुये जो खड्डा कादव औ कंटक आदिकविषै अपतन है, सो "किस प्रयोजनवाला होवैगा ?" इस प्रश्नके योग्य नहीं है ॥ जो कहै, तब व्युत्थान (संन्यास) अर्थतैं प्राप्त होनेतैं विधिरूप अर्थवाला नहीं है । ऐसैं हुये जब गृहस्थाश्रमविषै परब्रह्मका विज्ञान भया, तब संन्यासकूं न करनेवाले ता ज्ञानीकी तहांहीं स्थिति होहु; तातैं अन्यठिकानें गमन (संन्यासका स्वीकार) नहीं हो-

३० ऐसैं क्रियाके हेतुकूं दिखायके ताके अभावतैंहीं विद्वान्कूं क्रियाका अभाव अयत्नतैं सिद्ध है, ऐसैं कहै हैं । इहां यह अर्थ है:– जाया पुत्र दैववित्त मानुषवित्त औ कर्म, इन पांचकरि लखिये है (साधिये है) ऐसी जो वैदिक प्रवृत्ति, सो पांक्त लक्षण कहिये है । सो पांचकी संख्याके संबंधसैं गौणी वृत्तिकरि पंक्ति छंदके संबंधके आरोपतैं; औ "पांच अक्षरवाला पंक्ति छंद है, औ पाङ्क्त (पङ्क्तिछंदके सदृश पंचसंख्यावाला) यज्ञ है" इस श्रुतितैं है ।

३१ ऐसैं उदासीनतारूप क्रियाके अभावकूं पुरुषका स्वभावरूप होनेकरि अयत्नसैं सिद्धताके हुये, ताकूं प्रयोजनकी अपेक्षा नहीं है, ऐसैं कहै हैं ।

३२ अज्ञानके कार्यकी अज्ञानकी निवृत्तिके हुये अयत्नतैंहीं निवृत्ति होवै है, इस अर्थविषै दृष्टांतकूं कहै हैं ।

वैगा ? सो[33] बनै नहीं:—काहेतैं, गृहस्थाश्रमकूं कामनाका किया होनेतैं । "इतनाहीं निश्चयकरि काम है," जातैं दोनूं ये एषणाहीं हैं; इस निश्चयतैं कामनारूप निमित्तसैं भये पुत्र औ वित्त आदिकके संबंधके नियमका अभावमात्रहीं संन्यास कहिये है । तातैं अन्यठिकाने गमन (लिंगका धारण) संन्यास नहीं कहिये है । यातैं संन्यासकूं न करनेवाले औ विद्याकी उत्पत्तिवाले पुरुषकी गृहस्थाश्रमविषैहीं स्थिति नहीं है । इसैं[35] कथनकरि विद्वान्कूं गुरुशुश्रूषा औ तपका असंभव सिद्ध भया । ईहां[36] केईक गृहस्थ भिक्षाटन आदिकके भयतैं औ तिरस्कारतैं भयभीत हुये अपनी सूक्ष्म दृष्टिवा-

---

३३ क्या इहां गार्हस्थ्य शब्दसैं तेरेकरि "मैं गृहस्थ हूं" इस अभिमानपूर्वक पुत्र औ वित्त आदिकका अभिमान कहियेहै; अथवा गृहस्थके लिंगका धारण कहिये है ? तिनमैं प्रथम पक्ष बनै नहीं:—काहेतैं, विद्यासैं अविद्याके कार्यरूप अभिमानकी निवृत्तितैं । औ द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं:— काहेतैं, गृहस्थके लिंगविषै बी अभिमानसैं रहितपनैके तुल्य होनेतैं। ऐसैं कहै हैं ।

३४ ऐसैं संन्यासके लिंगविषै बी अभिमानके अभावतैं ताकी बी असिद्धि हैं, यह नहीं कहा चाहिये । जातैं सर्वतैं अभिमान रहित होनैकरि सर्वके संबंधसैं रहित होनाहीं परमहंस संन्यासका लक्षण है, लिंगका धारण लक्षण नहीं; काहेतैं, "लिंग, धर्मका कारण नहीं" इस स्मृतितैं । तातैं लिंगविषै बी अभिमानतैं शून्य विद्वान्कूं संन्यास सिद्ध है ऐसैं कहै हैं ।

३५ तब विद्वान्कूं गुरुसेवा आदिकविषै बी अभिमान नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके; यह हमकूं इष्टापत्ति है, ऐसैं कहै हैं ।

३६ ननु, तुह्मारे मतविषै पुत्र आदिकके संबंधके नियमसैं रहित औ देहधारणके अर्थी संन्यासीकूं बी परिग्रह (संग्रह) की निवृत्तिअर्थ भिक्षाटन आदिकहीं है, ऐसा नियम अंगीकार करिये है; तैसैं अभिमानतैं शून्यहीं गृहस्थकूं बी देहधारणके अर्थ गृहविषैहीं स्थिति होहू, संन्यासीपनैके विरोधतैं नहीं ? ऐसैं बादी शंका करै है ।

नताकूं दिखावते हुये उत्तर कहै हैं:—देहधारणमात्रका अर्थी जो संन्यासी है, ताकूं बी भिक्षाटन आदिकके नियमके देखनेतैं साध्य औ साधनसंबंधी दोनूं एषणातैं रहित, औ देहमात्रके धारणअर्थ भोजन औ आच्छादनमात्रके ताईं उपजीविका करनेवाले गृहस्थकी बी गृहविषैहीं स्थिति होहु? सो[३७] बनै नहीं:—काहेतैं, अपनैं गृहविशेषके परिग्रहके नियमकूं कामनाका किया होनेतैं, ऐसैं याका उत्तर कहा है । औ अपने[३८] गृहविशेषके परिग्रहके अभाव हुये शरीरधारणमात्रके किये भोजन औ आच्छादनके अर्थी गृहस्थका अपने परिग्रहविशेषके अभाव हुये अर्थात् संन्यासीपनाहीं है ॥ जो[३९] कहै, जैसैं संन्यासीकूं शरीरके धारणरूप प्रयोजनवाली

---

३७ तहां सिद्धांती:—तिस इस प्रकारके गृहस्थ विद्वान्कूं स्त्रीका परग्रह है वा नहीं है? ऐसैं विकल्पकरिके प्रथमपक्षविषै दूषण कहै हैं ।

३८ द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं:—काहेतैं, स्त्रीके परिग्रहवालेकूंहीं धनसंग्रहके अधिकारतैं, औ स्त्रीके अभाव हुये अर्थतैं द्रव्यके संग्रहकी निवृत्तितैं, ता द्रव्यसंग्रहके अभाव हुये अन्य प्रकारसैं जीवनकी असिद्धितैं, अर्थतैं भिक्षाटन आदिकका नियमहीं सिद्ध होवै है; ऐसैं कहै हैं । इहां पुत्र आदिककरि संग्रह किये द्रव्यसैं जीवन होहू, ऐसैं शंका करनैकूं योग्य नहीं है; काहेतैं, तिन पुत्रादिकनकरि बी अपनै अपनै भावसैं माने हुये द्रव्यविषै संबंधके अभाव हुये आपके द्रव्यकूं बी परके द्रव्यकी तुल्यतातैं, तहां बी भिक्षुकपनैके नियमतैं । यह अर्थ है ।

३९ अन्य तो संन्यासीकूं बी भिक्षाटन आदिकविषै "असंकल्पित सप्त ग्रहनके ताईं जावै" इत्यादि नियम औ शौच आदिकविषै चतुर्गुण आदिकका नियम पापके निवारण अर्थ जैसैं अंगीकार करिये है, तैसैं "जहांलगि अग्निहोत्रकूं करै" इत्यादि श्रुतिके बलतैं पापके निवारण अर्थ निष्काम गृहस्थ विद्वान्की बी नित्यकर्मविषै नियमसैं प्रवृत्ति हुई चाहिये, ऐसैं कहते हैं तिनके मतका अनुवाद करै है ।

भिक्षाटन आदिकमैं प्रवृत्तिविषै औ शौच आदिकविषै नियम है, तैसैं[४०] निष्काम गृहस्थ विद्वान्कूं बी पापके निवारणअर्थ नित्यकर्मनविषै नियमसैं प्रवृत्ति होहु: काहेतैं, "जहांलगि जीवे तहांलगि अग्निहोत्रकूं करै" इत्यादि श्रुतिकरि प्रेरणा किया होनेतैं ? यैह[४१] कथन, विद्वान्कूं प्रेरणाका अविषय होनेकरि औ प्रेरणाकी[४२] विषयताके अशक्य होनेतैं पूर्व निषेध किया है ॥ जो कहै, ऐसैं हुये "जहांलगि जीवे तहांलगि अग्निहोत्रकूं करै" इत्यादि नित्यकर्मके विधिकी व्यर्थता होवैगी ? सो[४३] बनै नहीं:—काहेतैं, ता विधिकूं अविद्वान्का विषय होनेकरि अर्थवान् होनेतैं। औ जो [४४]पूर्व शरीर-

४० पूर्व मतविषै संन्यासकूं न करनेवाले विद्वान्की गृहविषैहीं स्थितिकी शंका करी, औ या मतविषै तो अग्निहोत्र आदिकका अनुष्ठान बी विद्वान्कूं कर्तव्य है, ऐसैं पूर्ववादी शंका करै है।

४१ पूर्व संग्रहकी निवृत्ति अर्थ भिक्षाटन आदिककूं विषय करनेवाला औ शरीरके धारणरूप दृष्ट (इस लोकसंबंधी) प्रयोजनवाला नियम दृष्टांतपनैकरि कहा। इहां तो सो भिक्षाटन आदिकमत सतग्रहपनै आदिककूं विषय करनेवाला औ अदृष्ट (परलोकसंबंधी) अर्थवाला नियम दृष्टांतपनैकरि कहा। इस भेदकूं अब सिद्धांती दूषण देते हैं।

४२ ता विद्वान्कूं सर्वका नियामक ईश्वररूप होनेतैं नियमका विषय होना नहीं है, इत्यादिरूप उत्तर पूर्व कहा है; ऐसैं कहै हैं।

४३ अविद्वान्विषै सो नियमकी विषयता प्रमाणभूत है, यातैं घटे है; तामैं उक्त दोष नहीं है, ऐसैं कहै हैं।

४४ ता पूर्व उक्त प्रतिबंधीके निवारण अर्थ सिद्धांती ताका अनुवादकरिके दूषण देते हैं। इहां यह अर्थ है:— आचमनकी विधिसैं आचमन करनेविषै प्रवृत्त भये पुरुषकूं वांछित जो तृषाका विनाश होवै है, ताकूं तिस प्रवृत्तिकरि अन्य प्रयोजनसैं अर्थवान्पना प्रयोजन नहीं है; कहिये, तिस अर्थवान्पना प्रयोजन है, आचमनविषै प्रवृत्तिकी कारणता नहीं है।

धारणमात्रविषै प्रवर्त भये संन्यासीकी प्रवृत्तिका नियमितपना कहा-था; सो प्रवृत्तिका प्रयोजक (कारण) नहीं है, आचमनरूप कर्म-विषै प्रवर्त भये पुरुषके तृषाकी निवृत्तिकी न्यांई ताका अन्य प्रयो-जनअर्थ होना नहीं जानिये है। औ[४५] तैसैं अग्निहोत्रादिकनकूं अर्थतैं प्राप्त प्रवृत्तिके नियमितपनैका असंभव नहीं है ॥ जो[४६] कहै अर्थतैं प्राप्त प्रवृत्तिका नियम बी प्रयोजनके अभाव हुये अघटितहीं होवै-गा ? सो[४७] बनै नहीं:—काहेतैं, ताके नियमकूं पूर्वकी प्रवृत्तिकरि

ताकी न्याई जीवन अर्थ भिक्षा आदिकविषै प्रवृत्त भये पुरुषकूं जो तहां नियम है, सो भिक्षा आदिकविषै प्रवृत्तिका कारण नहीं है; किंतु तिस जीवनमय प्रयोजनका कारण है।

४५ प्रवृत्ति जब अन्यहेतुतैं सिद्ध है तब प्रेरणासैं क्या प्रयोजन है ? याहीतैं दर्श औ पूर्णमासकी प्रेरणातैंहीं अवहनन (तंडुलके कूटने) विषै नियमसैं प्रवृत्तिकी सिद्धि हुये, तहां भिन्न प्रेरणाका अंगीकार नहीं करिये है, औ ता प्रेरणाके अभाव हुये प्रेरणाके योग्यताकी अपेक्षा नहीं है। ब्रह्मवेत्ताकूं प्रेरणाकी योग्यताके अभाव हुये बी नियम विधिका असंभव नहीं है । अग्निहोत्रादिकविषै प्रवृत्तिकूं तो अन्यतैं सिद्ध होनेकरि ताकी विधितैंहीं तहां प्रवृत्तिके कहनेकी योग्यतासैं ताकी सिद्धि अर्थ प्रेरणाके कहेहुये, ता प्रेरणाकूं तहां प्रेरणाके विषयकी अपेक्षा है, ऐसैं विषमताकूं कहै हैं।

४६ नियमविधिविषै प्रेरणाके विषयकी अपेक्षाके अभाव हुये बी ता विधिकूं क्लेशरूप होनेतैं प्रयोजनकी अपेक्षा कहनेकूं योग्य है, ता प्रयो-जनके अभावतैं नियम सिद्ध नहीं होवै है, ऐसैं वादी शंका करै है।

४७ ताके नियमकूं बी पूर्ववासनाके वशतैंहीं प्राप्त होनेतैं, तहां बी नियम विधिका अवकाश नहीं है, जिसकरि विद्वान्‌कूं प्रयोज-नकी अपेक्षा होवैगी; ऐसैं सिद्धांती परिहार करै हैं । इहां यह अर्थ है:—यद्यपि नियमित वा अनियमित भिक्षाटन आदिकसैं जीवन सिद्ध होवै है, तथापि विद्याकी उत्पत्तितैं पूर्व विद्याकी सिद्धिअर्थ नियमकूं अनुष्ठान किया होनेतैं, ताकी वासनाकी प्रबलतातैं विद्याकी उत्पत्तितैं

सिद्ध होनेतैं, ताके उल्लंघनविषै प्रयत्नके गौरव (अधिकता) तैं । औ[४८] अर्थतैं प्राप्त संन्यासके फेर कथनतैं विद्वान्कूं ताकी कर्तव्यताका संभव है । [४९]अविद्वान् मुमुक्षुकूं वी संन्यास कर्तव्यहीं है । तैसैं

अनंतर वी विद्वान् नियमविषैहीं प्रवर्त होवै है, अनियमविषै नहीं; काहेतैं, ता अनियमकी वासनाकूं नियमकी वासनाकरि अत्यंत पराभवकूं प्राप्त भई होनेकरि फेर तिनके जगावनेकूं यत्नकरि साध्य होनेतैं । तातैं तहां (अनियमविषै) विद्वान् प्रवर्त होता नहीं । यातैं विद्वान्का नियम वी अर्थतैं सिद्ध है ।

४८ इस कथनकरि नियमके अनुष्ठानकूं पापकी निवृत्तिरूप अर्थवान्पना वी निषेध किया; काहेतैं, ता विद्वान्कूं पापकी अप्राप्तितैं ॥ ऐसैं उक्त रीतिकरि संन्यासकूं विधिविना स्वभावतैं प्राप्त हुये ताकी कर्तव्यताके विधिकूं वी जानिके, विद्वान् "तीन एषणाका त्याग करिके भिक्षाटनकूं करते हैं" इत्यादि वाक्यकूं अनुमोदन करै है, ऐसैं कहै हैं ।

४९ औ विधिकूं प्रयोजनके अभावविषै अप्रवर्तक होनेतैं, ऐसैं नहीं कहा चाहिये; काहेतैं, प्रैषमंत्रके उच्चारण औ सर्व भूतनकूं अभयदान आदिक मुख्य विधिकी प्राप्तिरूप अर्थवाला होनैकरि विधिकूं अर्थवान् होनेतैं । औ ता नियमकी वी व्यर्थता शंका करने योग्य नहीं है; काहेतैं, परमहंस विद्वान्विषै लोकसंग्रहरूप अर्थके होनेतैं, औ ता लोकसंग्रहकूं तो पूर्व अभ्यासकरि मैत्री करुणा आदिक वासनासैं प्राप्त होनैकरि ब्रह्मविद्याके उपदेश आदिककी न्याईं प्रयोजनकी अपेक्षासैं रहित होनेतैं । यद्वा प्रारब्धकर्मसैं प्राप्त भये देह औ इंद्रिय आदिकके प्रतिभाससैं अविचारित "जहांलगि जीवे तहांलगि अग्निहोत्रकूं करे" इत्यादि श्रुतिकरि जनित कर्मके कर्तव्यताकी भ्रांतिके हुये सो कर्म निवृत्त होवै है वा नहीं, यातैं विद्वान्कूं संन्यासके विधिकी अर्थवान्ताका संभव है । ऐसैं विद्वान्कूं संन्यासके साधनेकरि विद्याकी अकर्मी (संन्यासी) विषै स्थिति सिद्ध करी । औ तिसीहीं हेतुसैं ता विद्याका कर्मसैं असंबंध वी अर्थतैं सिद्ध किया ॥ अब जिज्ञासुके वी संन्यासकूं साधते हुये विद्याका

“ शांत औ दांत ” इत्यादि श्रुतिका वचन है औ आत्मज्ञानके साधन शम दम आदिकनके अन्य आश्रमविषै असंभवतैं । औ “ अति-आश्रमीनके ताईं ऋषिनके समूहकरि सेवन किये परम पवित्रकूं कहता भया, ” ऐसैं श्वेताश्वतर उपनिषद्‌विषै जानिये है । औ “ न कर्मसैं न प्रजासैं न धनसैं अमृत होवै है, केइक महात्मा त्याग (संन्यास) सैं अमरणभावकूं पावते भये ” ऐसैं कैवल्य श्रुतिविषै कहा है । औ “जानिके संन्यासकूं करना,” औ “ब्रह्मके आश्र-मरूप स्थानविषै वास करना,” इत्यादि स्मृतितैं । औ ब्रह्मचर्य आदिक विद्याके साधनोके संपूर्णताकरि अत्याश्रमी (परमहंस)-नविषै संभवतैं, गृहस्थाश्रमविषै तिनके असंभवतैं, ज्ञान भये पीछे वा ज्ञानके अर्थ संन्यासकी विधि है । [51]औ ऐसैं असंपूर्ण भया जो साधन, सो किसी बी अर्थके साधनेवास्ते परिपूर्ण नहीं हैं । औ जे [52]विज्ञानविषै उपयोगी गृहस्थाश्रमके कर्म हैं, तिनका देवता-प्राप्तिरूप संसारकूं विषय करनेवालाहीं परम फल समाप्त किया

कर्मीविषै स्थितपना औ कर्मसैं संबंधीपना दूरतैं निषेध किया, ऐसैं कहै हैं।

५० तहां श्रुतिकूं कहै हैं । इहां यह भाव है:—“ उपरत तितिक्षु समाहित होयके आत्मा (बुद्धि) विषैहीं आत्माकूं देखे ” यह श्रुतिका शेष है; तहां उपरत शब्दसैं संन्यास कह्या है ।

५१ ननु, गृहस्थकूं बी ऋतुकालमात्रविषै गमनरूप ब्रह्मचर्य, औ कदा-चित् ध्यानकालविषै एकाकीपना संभवै है ? यह आशंकाकरिके, ताकूं अपूर्ण होनेतैं तिसतैं ज्ञानकी असिद्धितैं, औ ध्यानकालविषै पत्नीके संबं-धकी अप्राप्तितैं ताके विधिकी व्यर्थतातैं, यह कथन बनै नहीं; ऐसैं कहै हैं । इहां यह अर्थ है:—यातैं आत्मज्ञानकूं कर्मीविषै स्थितपना औ कर्मसंबंधी-पना नहीं है ।

५२ औ जो “ बृहतीसहस्ररूप कर्मकूं प्रसंगविषै प्राप्त करिके आत्मज्ञानका आरंभ करिये है, ” इत्यादि वाक्यसैं आत्मज्ञानकूं क-र्मका संबंधीपना कह्या है ? तहां कहै हैं । इहां यह अर्थ है:— तैसैं

है।[५३] जबैं कर्मीकूंहीं परमात्माका ज्ञान होवै, तब संसारकूं विषय करनेवालेहीं फलकी समाप्ति नहीं होवैगी ॥ जो कहै; सो- संसार, परमात्मज्ञानके साधनरूप पृथिवी औ अग्नि आदिक देवताकी उपासनारूप ज्ञानका फल है, अंगीरूप परमात्मज्ञानका फल नहीं; यातैं ता परमात्मज्ञानकूं मुक्तिरूप फलवान्‌ताका विरोध नहीं है; सो[५४] बनै नहीं:—काहेतैं, परमात्मज्ञानकूं ता संसाररूप फलके विरोधी आत्मवस्तुकूं विषय करनेवाला होनेतैं। सर्व नामरूप औ कर्मसैं रहित परमार्थरूप आत्मवस्तुकूं विषय करनेवाला ज्ञान, अमृतभावका साधन है। जातैं गुणरूप फलसैं संबंध हुये ज्ञानकूं सर्व विशेषरहित आत्मवस्तुकूं विषय करनैपना नहीं प्राप्त होवै है, सो अनिष्ट है; काहेतैं, वाजसनेयी ब्राह्मणविषे "जहां तो इसकूं सर्व आत्माहीं होता भया" ऐसैं अधिकारकरिके विद्वान्‌कूं क्रिया कारक औ फल आदिक सर्व व्यवहारके निषेधतैं। औ तातैं विपरीत अविद्वान्‌कूं "जहां द्वैतकी न्याई होवै है, तहां अन्य अन्यकूं देखता है" ऐसैं कहिके, क्रिया कारक औ फलरूप संसारकूंहीं दिखाया होनेतैं। तैसैं इहांबी हिरण्यगर्भादि देवताभावकी प्राप्तिरूप संसारकूं विषय करनेवाला जो क्षुधा आदिक धर्मवाला वस्तु-

---

पूर्वउक्त कर्मका संबंधी जो ज्ञान, सो संसाररूप फलवाला अन्यहीं है; औ सो पूर्वहीं मुमुक्षुनैं समाप्त किया है, यातैं सो परमात्माका ज्ञान नहीं है।

५३ ननु, पूर्व उक्तहीं जो परमात्माका ज्ञान है। सो कर्मका संबंधीहीं है? यह आशंका करिके, ता कर्मसंबंधी ज्ञानकूं क्रियाकारकरूप फलवाला होनेकरि ताकी समाप्तितैं, औ परमात्माके ज्ञानकूं मुक्तिरूप फलवाला होनेतैं, सो परमात्माका ज्ञान नहीं है; ऐसैं कहै हैं।

५४ परमात्माके ज्ञानकूं साधनसैं संबंध औ फलसैं संबंध आदिक सर्व विशेषतैं रहित निर्विशेष वस्तुकूं विषय करनेवाला होनैतैं, ताकूं साधन आदिकका संबंधीपना नहीं है; जिसकरि फलकूं सो साधनका विषयपना होवै, ऐसैं सिद्धांती परिहार करै हैं।

रूप फल है, ता फलकूं समाप्त करिके केवल सर्वात्मवस्तुकूं विषय करनेवाले ज्ञानकूं अमृतभावके अर्थ कहूं हूं; ऐसैं प्रवर्त होवै है। औ ऋणरूप प्रतिबंध जो है, सो अविद्वान्कूंहीं है; काहेतैं, "सो यह मनुष्यलोक पुत्रसैंहीं संपादन करनेकूं योग्य है" इत्यादिरूप तीन लोकके साधनके नियमकी श्रुतितैं। [५५]औ "प्रजासैं हम क्या करेंगे" इत्यादिरूप श्रुतिकरि आत्मारूप लोकके अर्थी विद्वान्कूं ऋणरूप प्रतिबंधका अभाव दिखाया है। तैसैं "इस प्रसिद्ध तिस वस्तुकूं विद्वान् जो कावषेयनामक ऋषि हैं, वे "किस प्रयोजन अर्थ हम अध्ययनकूं करें" इत्यादिरूप औ "यह ब्रह्महीं है, याकूं जाननेवाले पूर्वके विद्वान् अग्निहोत्रकूं नहीं होमते भये" यह कौषीतकी उपनिषद्का वाक्य, विद्वान्के ऋणरूप प्रतिबंधके अभावमैं प्रमाण है ॥ जो कहै, तब अविद्वान्कूं ऋणके नहीं दूर किये हुये संन्यासका असंभव होवैगा? सो [५६]बनै नहीं:—काहेतैं,

---

५५ ऐसैं ज्ञानकूं कर्मका असंबंधीपना कहिके, "जहांलगि जीवे तहांलगि अग्निहोत्रकूं करै" इत्यादि श्रुतितैं कर्मका त्याग नहीं संभवै है, ऐसैं जो पूर्ववादीनैं कहाथा; तहां इस उक्त श्रुतिका अविद्वान्कूं विषय करनेपना कहा। अब तीन ऋणकीं श्रुतिकी गतिकूं कहै हैं॥ इहां यह अर्थ है:—नहीं दूरी किये ऋणकूं मनुष्य आदिक लोककी प्राप्तिके प्रति प्रतिबंधक होनेतैं तिन लोकनके अर्थी अविद्वान्कूंहीं ऋणका दूरी करना कर्तव्य है, मुमुक्षुकूं नहीं; काहेतैं, ता ऋणकू मुक्तिकेप्रति अप्रतिबधकरूप होनेतैं।

५६ गृहस्थकूंहीं ऋणकी प्रतिबंधकता है; काहेतैं, ताहीकूं ताके निराकरणके अधिकारतैं। तातैं गृहस्थाश्रमकी प्राप्तितैं पूर्व ब्रह्मचर्यविषैहीं मुमुक्षु भये पुरुषकूं संन्यास संभवै है, ऐसैं सिद्धांती परिहार करै हैं। यद्यपि यज्ञोपवीत धारणके अनंतरहीं ऋणके निवारणविषै अधिकार संभवै है, यातैं "गृहस्थाश्रमके पूर्व" ऐसैं कहा है; तथापि विविदिषा संन्यासविषै अधीतवेदकूंहीं अधिकार है, यातैं अधीतवेदकूं "गृहस्थाश्रमकी प्राप्तितैं पूर्व' यह कहा, ऐसैं जानना।

गृहस्थाश्रमकी प्राप्तितैं पूर्व, ब्रह्मचर्यविषैहीं मुमुक्षुकूं ऋणी होनेके असंभवतैं संन्यासका संभव है। जैंब अधिकारके तांई अनारूढ हुया वी पुरुष ऋणी होवै, तब सर्वकूं ऋणीपना है, यह ५८अनिष्ट प्राप्त होवैगा। ५९गृहस्थाश्रमकूं प्राप्त भये पुरुषकूं वी "गृहतैं वानप्रस्थ

---

५७ ननु, "जन्मकूं पाया हुया ब्राह्मण, तीनसैं ऋणवान् होवै है। ब्रह्मचर्यसैं ऋषिनके अर्थ, यज्ञसैं देवनके अर्थ, प्रजासैं पितरनके अर्थ" या वाक्यकरि उत्पन्न भये मात्रकूं ऋणवान्पना प्रतीत होवै है? यह आशंका करिके, ऋणवान्पनैकी उक्तिका साक्षात् कछु वी प्रयोजन नहीं है; किंतु, ब्रह्मचर्य आदिककी कर्तव्यताका जनावना प्रयोजन है। औ अधिकारके तांई अनारूढ भया पुरुष, सो (ऋणका निवारण) करनेकूं समर्थ नहीं होवै है; काहेतैं, जन्मकूं प्राप्त भये मात्रकूं ताके असामर्थ्यतैं। किंवा उक्त वाक्यविषै ब्राह्मणके ग्रहणतैं क्षत्रियादिककूं ऋणके अभावका प्रसंग होवै है। ब्राह्मण पदकूं द्विजाति (त्रिवर्ण)की उपलक्षणताके हुये अधिकारीकी उपलक्षणताहीं योग्य है। यातैं "जायमान" (उत्पन्न भया) यह पद जो है, सो अधिकारकूं लखावता है। ऐसैं उत्पन्न भया अधिकारी संपादित होवै है, यह ता वाक्यका अर्थ है। तातैं तिस अधिकारतैं पूर्व ऋणका संबंध नहीं है, ऐसैं कहै हैं।

५८ इहां अनिष्ट शब्दका यह अर्थ है:- ब्रह्मचारीकूं वी ऋणीभावके हुये ब्रह्मचर्यविषैहीं मृतक भये नैष्ठिक ब्रह्मचारीकूं परलोककी प्राप्तिका प्रतिबंध होवैगा, यह अनिष्ट है; काहेतैं, "अष्टाशीति सहस्र" इहांसैं आरंभ करिके, "सोई गुरुवासीकूं होवै है" इत्यादि वाक्यसैं पुराणविषै लोकप्राप्तिके कथनतैं।

५९ केवल गृहस्थाश्रमतैं पूर्वहीं संन्यासकी सिद्धि है ऐसैं नहीं, किंतु विधिके बलतैं गृहस्थकूं वी सो है, ऐसैं कहै हैं। इहां यह भाव है:- ऋणकी श्रुतिसैं संन्यासविधिका विरोध नहींहै; काहेतैं, ता श्रुतिकूं शुभकर्मके अर्थवाद (स्तुति)मात्ररूप होनेकरि स्वार्थविषै तात्पर्यके अभावतैं।

होयके गमन करे, वा जब अन्यप्रकार (तीव्र वैराग्य) होवै तब ब्रह्मचर्यतैंहीं गमन करै; गृहतैं वा वनतैं गमन करे" ऐसैं आत्मज्ञानके उपाय (श्रवणादिक)का साधन होनेकरि संन्यास अंगीकार करियेहीं है। औ "जहांलगि जीवे तहांलगि अग्निहोत्रकूं करे" इत्यादि श्रुतिनकी अविद्वान् औ अमुमुक्षुपुरुषविषै कृतार्थता है। औ छांदोग्यश्रुतिविषै कितनैक शाखावालेकूं द्वादशरात्र अग्निहोत्रकूं होम करिके ताके पीछे परित्याग सुनिये है ॥[६०]जो कहै, अनधिकारिनकूं संन्यास कहा है? सो[६१]बनै नहीं:– काहेतैं, तिनके विधिके "नष्ट अग्निवाला वा अग्निके ग्रहणसैं रहित" इत्यादि श्रुतिविषै औ सर्व स्मृतिनविषै भिन्न श्रवणतैं; तिनकूं अविशेषकरि आश्रमका भेद औ समुच्चय प्रसिद्ध है ॥ जो[६२]कहै, विद्वान्कूं अर्थतैं प्राप्त संन्यास है; यातैं शास्त्रके अर्थके अभाव हुये गृहविषै वा वनविषै स्थित होनेवाले विद्वान्कूं विशेष नहीं

अन्यथा सो शुभकर्मनसैंहीं शुद्ध करिये है, ताके वादनकूं शुभकर्मरूपता है, ऐसैं शुभकर्ममात्रके निषेधके कथनसैं ब्रह्मचर्य आदिकके बी अनुष्ठानके अभावके प्रसंगतैं।

६० ननु, संन्यासकी श्रुति बी अनधिकारीविषै संकोचकूं प्राप्त भई है, ऐसैं वादी कहै है।

६१ अन्य श्रुतिके वचनसैंहीं तिन अनधिकारीनके तिस विधितैं इस वचनका अनधिकारी विषय नहीं है, किंतु अधिकारीहीं है; ऐसैं सिद्धांती परिहार करै हैं।

६२ ऐसैं विविदिषासंन्यासकूं साधिके अब पूर्व सिद्ध किये विद्वत्संन्यासविषै जो शंका है, ताका अनुवाद करै है। इहां यह निष्कर्ष है:– पूर्व विद्वान्की ग्रहविषैहीं स्थिति होहू, इस शंकाका निषेध किया, औ इहां तो गृहविषै वा वनविषै स्थिति होहू, ऐसैं अनियमकी शंकाका निषेध करनेकूं सो शंका अधिक यथेष्टाचरणके निवारणअर्थ फेर अनुवाद करिये है।

है? [६३]सो कथन असत् हैः– काहेतैं, संन्यासकूंहीं अर्थतैं प्राप्त होनेतैं विद्वान्‌की अन्य ठिकाने (गृहस्थाश्रमविषै) स्थिति नहीं होवैगी। जातैं अन्य ठिकाने जो स्थिति है, ताकूं हम कामना औ कर्मकी करीहुई कहते हैं। औ तिन काम आदिकका अभावमात्रहीं संन्यास है, ऐसैं पूर्व कथन किया होनेतैं ता संन्यासकूं अनुष्ठेयपना नहीं है; यातैं सो संन्यास, काम आदिकका किया नहीं है। औ यथेष्टाचरण तो विद्वान्‌कूं अत्यंत अप्राप्त है; काहेतैं, ताकूं अत्यंत मूढका विषय होनेकरि जाननेतैं। जातैं शास्त्रविहित कर्म बी आत्मवेत्ताकूं अत्यंत क्लेशरूप होनेकरि जानिये है, यातैं अप्राप्त है, तब अत्यंत अविवेकरूप निमित्तवाला यथेष्टाचरण (इच्छाके अनुसार वर्तना) अप्राप्त है यामैं क्या कहना है! कछु बी नहीं। जातैं उन्माद औ तिमिरदृष्टिकरि जान्या जो वस्तु, सो तिन उन्माद आदिक दोषके दूरी हुये बी तैसैंहीं नहीं होवै है; काहेतैं, ता वस्तुकूं उन्माद औ तिमिरदृष्टिरूप निमित्तका किया होनेतैंहीं। तातैं आत्मवेत्ताकूं संन्यासतैं भिन्न यथेष्टाचरण नहीं है, औ अन्य कर्तव्य नहीं है, यह सिद्ध भया ॥ जो कहा, "विद्या औ अविद्याकूं जो साथिहीं अनुष्ठान करनेयोग्य जानता है" इस वचनकरि विद्या औ अविद्याके सहभाव (समुच्चय) के श्रवणतैं विद्वान्‌कूं बी तिस कारणतैं कामादिक होवैगाहीं, औ तिस निमित्तवाली इच्छाके अनुसार चेष्टा होवैगी? तहां कहे हैंः–इस वचनका विद्वान्‌कूं विद्याके साथि अविद्या बी वर्तती है, यह अर्थ नहीं है; किंतु कालके भेदसैं स्थित हुयी बी विद्या औ अविद्या एकहीं पुरुषविषै संबंधकूं

---

६३ यद्यपि अर्थतैं प्राप्त संन्यासके बी फेरी कथनतैं इहां विद्वान्‌के संन्यासकूं बी शास्त्रार्थकरि युक्तपना कहाही है, तथापि ताके उक्त अशास्त्रार्थकरि युक्तपनैकूं अंगीकार करिके बी कहे हैं।

पावै हैं; यह अर्थ है । जैसैं सीपीविषै एकहीं पुरुषकूं रजत औ सीपीका ज्ञान होवै है, तैसैं । जातैं "दूरी वर्तमान ये विपरीत भिन्न फलवाली हैं; जो अविद्या है औ विद्या है, यह जानिके" ऐसैं कठवल्लीविषै कहा है । तातैं विद्याके होते अविद्याका संभव बी नहीं है । "तपकरि ब्रह्मकूं जाननेकी इच्छा कर" इत्यादिक श्रुतितैं तप आदिक विद्याकी उत्पत्तिका साधन, औ गुरुकी उपासना आदिक जो कर्म है, सो अविद्यारूप होनेतैं अविद्या कहिये है । तिस कर्मकरि विद्याकूं उत्पन्न करिके कामनारूप मृत्युकूं लंघता है, तातैं निष्काम हुया, ब्रह्मविद्यासैं अमृतभावकूं पावता है, इस अर्थकूं दिखावती हुई श्रुति, "अविद्यासैं मृत्युकूं लंघिके विद्यासैं अमृतकूं पावता है" ऐसैं कहती है ॥ जो कहा, "इहां कर्मनकूं करता हुया शत वर्षपर्यंत जीवे" इत्यादि श्रुतिकरि पुरुषका आयु, सर्व कर्मसैंही व्याप्त है? सो अविद्वान्का विषय होनेकरि समाधान किया, अन्यथा असंभवतैं[६४] ॥ औ जो कहा, पूर्व उक्त प्रमाणकूं बी तुल्य होनेतैं कर्मसैं अविरुद्ध आत्मज्ञान है? सो सविशेष औ निर्विशेषरूप होनेकरि निषेध[६५] किया है । सो आगे याके व्याख्यानविषै दिखावैंगे । यातैं[६६] केवल निष्क्रिय ब्रह्म

---

६४ इहां असंभव शब्दका विरोधसैं विद्याके साथि असंभवतैं वा कथनकरि श्रुतिस्मृतिके असंभवतैं । यह अर्थ है ।

६५ इहां यह अर्थ है:— निर्विशेष आत्माके ज्ञानकूं कर्ता आदिक कारकका उपमर्दक (नाशक) होनैकरि विरुद्ध होनेतैं औ "उपमर्दके हुये" इस सूत्रकरि अविरुद्धपना निषेध किया है ।

६६ तातैं आगे कहनैंकी विद्याका अकर्मीविषै स्थित होनैपना कर्मसैं असंबंधीपना, औ केवल आत्माकूं विषय करनेपना, सिद्ध भया । ऐसैं पूर्व उक्त कर्मनसैं औ उपासनासैं शुद्ध चित्तवाले औ ताहीतैं च्यारी साधनकरि संपन्न भये मुमुक्षुकूं केवल आत्मस्वरूपसैं स्थितिरूप मोक्षकी सिद्धि अर्थ केवल आत्माकी विद्याका आरंभ करिये है, ऐसैं अवतरणिका (पिष्टिका)-रूप प्रसंगकी समाप्ति करै हैं ।

औ आत्माकी एकताकी विद्याके दिखावने अर्थ आगिला ग्रंथ आरंभ करिये हैः—प्रसिद्ध यह कथन किया जो नाम रूप औ कर्मके भेदसैं भिन्न जगत् है, सो जगत्की उत्पत्तितैं पूर्व ⁶⁷व्याप्त होनेतैं, वा भक्षण करनेतैं, वा निरंतर रहनेतैं; सर्वतैं पर (उत्कृष्ट), सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, क्षुधा आदिक सर्व संसारके धर्मसैं रहित, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त स्वभाववाला, अजन्मा, अंजर, अमर, अमृत, अभय, अद्वैतरूप, एक आ⁶⁸त्माहीं होता भया ॥ क्या अबी जगत्की उत्पत्तिके अनंतर सोई एक नहीं है? तहां कहै हैं कि:— अबी

---

६७ ननु, आत्मशब्दकरि उक्त लक्षणवाला आत्मा कैसैं कहा है ? यह आशंका करिके, आत्मशब्दकी मनुस्मृतिविषै उक्त व्युत्पत्ति (अर्थ करनेके प्रकार)के बलतैं, औ रूढिसैं कहा है, ऐसैं कहै हैं। इहां यह अर्थ हैः—"जातैं व्याप्त होवै है; औ जातैं धारण करै है, औ जातैं इहां विषयनकूं भोक्ता है, औ जातैं याका निरंतर सद्भाव है, तातैं आत्मा; ऐसैं कहा है" इस स्मृतिवाक्यविषै आत्माका लक्षण कहा है। इहां आप्तिशब्दसैं ज्ञान औ व्याप्ति कहिये है। सत्ता औ स्फुरणसैं सर्वकेतांई व्याप्त होवै है, यातैं ताका सर्वज्ञपना औ सर्वशक्तिवान्पना कहिये है, औ सत्ताके देनेकरि तांकी उपादानताके सूचनतैं ताका सर्वशक्तिवान्पना है। भोक्ता है, इस कथनकरि ताकूं संहारका कर्तापना कहिये है। औ व्याप्त होवै है, इस कथनकरि ताका तीन परिच्छेदतैं रहितपना कहीये है। क्षुधा आदिककरि रहित होनैतैं विषयनके ग्रहणसैं औ रूढिसैं ताका प्रत्यगात्मासैं अभेद कहिये है। ऐसैं उक्तरूपवाला परमात्मा आत्मपदसैं कहिये है।

६८ ननु, आत्माके सविशेष (सप्रपंच)पनैकी प्रतीतितैं ताके विरोधतैं केवल भाव कैसैं कहिये है ? यह आशंका करिके, सर्व विशेषकूं आत्माविषै मायाकरि कल्पित होनेतैं वास्तव निर्विशेषपनैका विरोध नहीं है। यातैं ताके अर्थ मायासैं आत्मातैं सृष्टिके कहनेकूं सृष्टितैं पूर्व आत्माके निर्विशेषरूपके दिखावनेकूं "यह आगे एकहीं आत्मा था" इत्यादिरूप वाक्य है। तहां आत्मशब्दके अर्थकूं कहै हैं।

सोई एक नहीं है ॥ तब कैसें होता भया? तहां कहिये है:—[६९]यद्यपि अबी सोई एक है, तथापि तहां विशेष (विलक्षणता) है। उत्पत्तितैं पूर्व अप्रकट नामरूपके भेदवाला आत्मारूप "एक आत्मा था," इस शब्द औ वृत्तिका विषय जगत् था औ अबी प्रकट नामरूपके भेदवाला होनेतैं अनेक शब्द औ वृत्तिनका विषय, औ एक आत्मा था, इस शब्द औ वृत्तिका अविषय जगत् है। यह विशेष (भेद) है। [७०]जैसें जलतैं भिन्न फेन, नामरूपकी प्रकटतावाला होवै है। तहां जब जल इस एक शब्द औ वृत्तिका विषयहीं सो फेन, जब जलतैं भिन्न नामरूपके भेदसैं प्रगट होवै है, तब जल औ फेन ऐसैं अनेक शब्द औ वृत्तिनका विषय होवै है। तहां एक शब्द औ वृत्तिका विषय जलहीं होवै है, फेन नहीं। ताकी न्याई

---

६९ यद्यपि जगत्का तीनकालविषै बी आत्मातैं भेदकरि अभाव है, तथापि तैसैं बोधनकिये हुये शिष्यकूं प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणके विरोधकी आशंकासैं उक्त आत्मतत्व बुद्धिविषै आरूढ नहीं होवैगा; यातैं उत्पत्तितैं पूर्व था, ऐसैं शिष्यके चित्तकूं अनुसरिके कहिये है । सो बी जगत्के नामरूपकी प्रगटताके अभावकी अपेक्षा करिकेहीं कहियेहै, परंतु अबी (सृष्टिकालविषै) आत्माके केवलभावके अभावके अभिप्रायसैं नहीं, ऐसैं उत्तर कहे हैं।

७० उक्त अर्थकूं दृष्टांतसैं स्पष्ट करै हैं। इहां आत्मशब्दकी व्युत्पत्तिके बलतैं सर्वज्ञ आदिक शब्दकरि लखाया सत्य ज्ञान आनंदरूप अखंड एकरस आत्मा सिद्ध किया। तिसीहीं अर्थके दृढकरनेअर्थ एक आदिक पद हैं। तहां एकशब्दसैं अन्य आत्माका (सजातीय भेदका) अभाव कहिये है। एव शब्दसैं वृक्ष आदिकविषै स्वरूपसैं एकताके हुये बी शाखा आदिकसैं नानारूपकी न्याई, एक आत्माकी नानारूपताका (स्वगत भेदका) अभाव कहिये है।

अन्य[71] कछु बी[72] व्यापारवाला वा[73] व्यापाररहित **नहीं था** । जैसैं सांख्यवादीनके मतमैं आत्माका पक्षपाती स्वतंत्र प्रधान है, औ जैसैं वैशेषिकनके मतमैं परमाणु हैं, तैसैं इहां हमारे मतविषै आत्मातैं अन्य कछु बी वस्तु नहीं है; किंतु एक आत्माहीं था, यह अभिप्राय है । **सो** आत्मा, सर्व ठिकानें अपने सद्भावके होनेतैं एकरूप हुया **ईक्षण** (अवलोकन)**कूं करता भया** ॥ ननु, जगत्की उत्पत्तितैं पूर्व ताकूं अकार्य कारणरूप होनेतैं, कैसैं ईक्षणकूं करता भया ? तहां यह दोष नहीं:—काहेतैं, ताकूं सर्वज्ञ स्वभाववाला होनेतैं । औ तैसैं "हस्तपादसैं रहित हुया, वेगवान् अरु ग्रहणकर्ता है" इत्यादिरूप मंत्रका उच्चारण है ॥ सो किस अभिप्रायसैं ईक्षणकूं करता भया ? तहां कहै हैं:—मैं जल आदिक प्राणिनके कर्मफलके उपभोगके स्थानरूप **लोकनकूं निश्चयकरि सृजूं; ऐसैं** । ईंसैंरीतिसैं ईक्षणकूं करिके **सो** आत्मा, **इन लोकनकूं सृजता भया** ॥ १ ॥

---

७१ सजातीयभेद औ स्वगतभेदके निराकरणरूप अर्थवाले होनेकरि एक औ एव ये दोनूं पद हैं, या अभिप्रायसैं अब विजातीयभेदके निराकरणरूप अर्थवाला होनेकरि "अन्य कछु बी नहीं था," इस पदका व्याख्यान करै हैं ।

७२ ननु, जड प्रपंचकी कारणरूप जड माया वर्तती है, यातैं विजातीय भेदका निषेध कैसैं संभवै ? तहां कहै हैं । इहां यह अर्थ है:—मायाके विद्यमान हुये बी तब (सृष्टितैं पूर्व) व्यापारके अभावतैं व्यापारवाले अन्य वस्तुका निषेध संभवै है ।

७३ ननु, व्यापाररहित तिस मायारूप अन्य वस्तुके बी होते आत्मशब्दकरि उक्त तिस आत्माकी अखंड एकरसरूपता कैसैं सिद्ध होवैगी ? तहां कहै हैं ।

७४ ईक्षणके पूर्वकालसैं संबंधीपनैकूं कहतेहुये ताकूं सृष्टिकी हेतुता कहै हैं ।

स इमाँल्लोकानसृजत । अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः । परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः । पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः॥२॥

टीकाः–[७५]जैसैं इहां बुद्धिमान् शिल्पि आदिक, इसप्रकारके गृह आदिकनकूं मैं सृजूं; ऐसैं ईक्षणकूं करिके तिस ईक्षणके अनंतर गृह आदिकनकूं सृजता है, तैसैं ॥ ननु पाषाण आदिक उपादानसहित जो शिल्पि आदिक, सो गृह आदिकनकूं सृजता है यह युक्त है; परंतु उपादानसैं रहित जो आत्मा सो कैसैं लोकनकूं सृजता है ? तहां यह दोष नहीं है:–काहेतैं, जलस्थायी अरूप औ आत्मा एक था, इस शब्दके वाच्य उपादानरूप अव्याकृतविषै प्रकट भये फेनस्थानी जगत्का संभव है, तातैं आत्मभूत नामरूपका उपादान हुया सर्वज्ञ आत्मा, जगत्कूं रचता भया, यह विरुद्ध नहीं है । अथवा, जैसैं विज्ञानवाला मायावी आपसैं भिन्न उपादानसैं रहित हुया आपकूंहीं आपके भीतर होनेकरि आकाशविषै चलतेहुयेकी न्याई रचता है, तैसैं सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् महामायावाला देव, आपकूंहीं आपके भीतर होनेकरि जगत्रूपसैं रचता है, यह अत्यंत युक्त है । ऐसैं हुये कार्य औ कारण दोनूंके असद्वाद आदिक पक्ष नहीं प्राप्त होवैहैं, औ वे निषेध किये होवै हैं ॥ सो आत्मा किन लोकनकूं सृजता भया ? तहां कहै हैं:–**अंभ मरीचियां मर औ आप इनकूं सृजता भया;** कहिये, [७६]आकाश आदि-

---

७५ इहां ईक्षणपूर्वक सृष्टिके कथनका प्रयोजन सृष्टिकर्त्ताके चेतनभावकी सिद्धिहीं है, इस अभिप्रायकरिके तिसप्रकारके तक्षा (शिल्पि आदिक)के चेतनभावके उदाहरणकरि कहै हैं ।

७६ लोकनकूं भौतिक होनेतैं, औ ब्रह्मांडके अंतर्वर्ती होनेतैं, भूतनकी सृष्टि औ तिनके पंचीकरणद्वारा ब्रह्मांडकी सृष्टिके अनंतर तिन लोकनकी

कके क्रमसैं ब्रह्मांडकूं उत्पन्न करिके जल आदिक लोकनकूं सृजता भया। तहां जल आदिकनकूं आपहीं श्रुति, व्याख्यान करै हैः—यह जो जल शब्दका वाच्य लोक है, सो **स्वर्गलोकतैं पर** जे महर् आदिक लोक हैं, अरु जो तिस जलरूप लोकका आश्रय **स्वर्गलोकरूप** है; काहेतैं, तिन महर् आदिक लोकनविषै वृष्टिजलके विद्यमान होनेतैं। औ जो स्वर्गलोकतैं नीचे **अंतरिक्ष** (आकाश) है, सो **मरीचियां** हैं। इहां सूर्यके किरणोके वाची मरीचिशब्दसैं लखाया जो अंतरिक्ष, सो एक हुया बी अनेक स्थानोके भेदवाला होनेतैं बहुवचनका भागी है। वा सूर्यके किरणरूप अनेक मरीचिनके संबंधतैं सो अंतरिक्षलोक बहुवचनका भागी है। औ जिसविषै भूत मरते हैं, ऐसी जो **पृथिवी** सो **मर** है। औ जो **पृथिवीके नीचे** लोक हैं, वे **आप** कहिये हैं। यद्यपि इन लोकनकूं पंचमहाभूतनका संबंधीपना है, तथापि तिनमैं जलआदिककी बहुलतातैं वे जल आदिक नामसैंहीं "अंभ मरीचि मर औ जल" ऐसैं कहिये हैं ॥ २ ॥

सृष्टि है; ऐसैं गुणोपसंहार न्यायकूं आश्रयकरिके कहै हैं। भिन्नशाखागत अर्थनका जो एकठिकाने कथन, सो गुणोपसंहार न्याय कहिये है।

७७ ननु, उक्तलोकनकूं पंचभूतनसैं संबंधकी तुल्यतातैं अन्यभूतनसैं पृथिवी आदिकनके ऊपरके लोक लखिये हैं। अंतरिक्ष (आकाश)कूं मरीचि (सूर्यके किरण)सैं भिन्न अन्यपदार्थरूप मेघादिकसैं बी संबंधतैं, तिसतैं पृथिवीकूं औ तातैं नीचेके लोकनकूं मरणकी प्राप्तितैं भिन्न गमन आदिक अन्य क्रियासैंहीं संबंधतैं सो अधोलोक जाननेकूं योग्य है? ऐसैं पूर्ववादी शंका करै है।

७८ तिन लोकनविषै जल आदिककीहीं बहुलतातैं तिन जलआदिकनसैंहीं वे लोक जाननेंकूं योग्य हैं "बहुलताकरि तिनके नामसैं कथन होवै है" इस न्यायतैं। ऐसैं सिद्धांती परिहार करै हैं।

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति । सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् ॥ ३ ॥

टीका:— ७९सर्व प्राणिनके कर्मके फल औ ताके उपादान अरु साधनरूप पूर्वउक्त च्यारीलोकनकूं सृजिके, **सो** ईश्वर फेरहीं ये तो जल आदिक मुजकरि रचेहुये **लोक**, पालनकर्तासैं रहित हुये नाशकूं पावैंगे; तातैं इनके रक्षणअर्थ मैं **लोकपालनकूं निश्चयकरि सृजूं, ऐसैं ईक्षणकूं करता भया ।** ईसंरीतिसैं ईक्षणकूं करिके, **सो जलतैं** (जलप्रधान इन पंचभूतनतैं) उक्त जल आदिक च्यारी लोकनकूं सृजता भया । तिन लोकनतैंहीं पुरुषके आकारकरियुक्त शिर औ हस्त आदिक अंगवाले विराट् **पुरुषकूं ग्रहण करिके**, पृथिवीतैं ग्रहण किये मृत्तिकाके पिंडकूं कुलालकी न्यांई **मूर्छित करता भया**. (भूतनके अवयवनसैं अपने अवयवनकी योजनाकरि मिलित करता भया) ॥ ३ ॥

---

७९ इहां "आगे आत्माहीं था" इस वाक्यकरि उक्त आत्माके ज्ञानसैं संसारी जो है, सो मुक्त करनेकूं योग्य होनेकरि कहनेकूं इच्छित है, असंसारीकूं मोक्षके असंभवतैं । औ संसार जो है सो संसारके आश्रय लोक औ ताके उपाधिभूत लिंगशरीर औ ताके अभिमानी देव औ ताके अधिष्ठान स्थूल शरीर, औ संसाररूप क्षुधा आदिक धर्म, औ ता संसारके अभिमानी ताके भोक्ता विना नहीं संभवैहै; यातैं ताकी सृष्टिकूं "यह आवसथ (स्थान) है" इहांपर्यंत जो ग्रंथ है, तिसकरि क्रमसैं कहतेहुये संसारके अधिष्ठानरूप लोकनकी सृष्टिकूं कहिके, लोकपाल देवताकी सृष्टिके ईक्षणद्वारा समष्टि स्थूल शरीरकी, समष्टि लिंगशरीरकी औ तिनके अभिमानी देवनकी सृष्टिके कहनेकूं आरंभ करै हैं ।

८० समष्टि लिंगशरीर औ तिन लोकपालनके अभिमानीनकूं विराट्के अवयवनसैं जन्य होनेतैं तिनकी सृष्टिअर्थ विराट्की सृष्टिकूं कहै हैं । इहां यह भाव है:—यद्यपि "ब्रह्मांडकूं उत्पन्न करिके जल आदिक लोक-

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डम् । मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां । नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतां। अक्षिभ्याञ्चक्षुश्चक्षुष आदित्यःकर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं । श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत। त्वचो लोमानि । लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो । हृदयं निरभिद्यत । हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत । नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत । शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खंडः ॥ १ ॥

टीकाः—तिसैं पुरुष आकारवाले पिंड-के तांई उद्देशकरि च्यारीऔरतैं तपता भया; कहिये, ताके संकल्प (ज्ञान)कूं करता भया, "जाका ज्ञानमय तप है," इस श्रुतितैं । तिस ईश्वरके संकल्परूप तपसैं च्यारीऔरतैं तप्त (ज्ञानकूं प्राप्त) भये पिंड-का मुख (मुखके आकारवाला छिद्र) भेदकूं पावता भया (होता भया;) जैसैं पक्षीका अंड भेदकूं पावताहै, तैसैं। ऐसैं तिस भेदकूं

नकूं सृजता भया" इस वाक्यकरि भाष्यकारनैं लोकनकी उत्पत्तितैं पूर्वहीं ब्रह्मांडकी उत्पत्ति कही है, तथापि ताही उत्पत्तिका लोकपालनकी सृष्टिअर्थ इहां अनुवाद करिये है; यातैं विरोध नहीं है ।

८१ विराट्की उत्पत्तिकूं कहिके अब ताके अवयवनतैं लोकपालनकी उत्पत्तिकूं कहै हैं ।

प्राप्त भये **मुखतैं**[८२] **वाक्** इंद्रियरूप करण होता भया। औ ता वाकूतैं वाक्का अधिष्ठान अग्नि-लोकपालरूप देवता होता भया। तैसैं **दोनासिका भेदनकूं पावती भई**। तिन **नासिका-रूप-तैं प्राण**-गोलकरूप करण होता भया [इहां प्राणशब्दसैं प्राणवृत्ति-सहित घ्राण इंद्रिय कहिये है]। ता **प्राणतैं वायु**-देवता होता भया। तैसैं **दोनूं नेत्र**-रूप गोलक **भेदकूं पावते** भये। तिन **नेत्रनतैं चक्षु**-रूप करण होता भया। तिस **चक्षुतैं सूर्य**-रूप देवता होताभया। तैसैं **दोनूंकर्ण**-रूप गोलक **भेदकूं पावते** भये। तिन **कर्णोंतैं श्रोत्र**-इंद्रियरूप करण होताभया, तिस **श्रोत्रतैं दिशा**-रूप देवता होती भई। तैसैं **त्वचा**-रूप गोलक **भेदकूं पावता भया**, ता **त्वचातैं लोम** (रोम) होते भयें [इहां रोमशब्दसैं रोमसहित त्वचा इंद्रिय कहिये है] तिन **लोमनतैं औषधि औ वनस्पतियां** होतीं भई [इहां औषधि औ वनस्पति शब्दसैं तिनका अधिष्ठाता देवता वायु कहिये है]। तैसैं **हृदय-कमल**-रूप गोलक **भेदकूं पावता भया**। तिस **हृदयतैं मन**-रूप अंतःकरण, होता भया। तिस **मनतैं चंद्रमा**-रूप देवता होता भया। तैसैं **नाभि**-रूप सर्व प्राणोके रहनेका स्थान **भेदकूं पावता भया**। तिस **नाभितैं अपान** (पायु इंद्रिय) होता भया। तिस **अपानतैं मृत्यु**-रूप देवता होता भया। तैसैं **शिश्न** (उपस्थ इंद्रियका स्थान) **भेदकूं पावता भया**। तिस **शिश्नतैं रेत** (उपस्थ इंद्रिय) होता भया। [इहां रेतशब्दसैं शिश्न इंद्रियरूप स्थानवाला रेतका संबंधी उपस्थ इंद्रिय कहिये है । ताकूं रेतके त्याग-

---

८२ यद्यपि वाक् आदिक करणका समूह जो अपंचीकृत भूतनका कार्य है, सो मुखादि गोलकका कार्य नहीं; तथापि मुखआदिक आश्रयविषै तिनके आविर्भावतैं मुखतैं वाक् भेदनकूं प्राप्त भई, ऐसैं कहा।

अथ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् । ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि । यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥ १ ॥

रूप अर्थवाला होनेतैं रेतका संबंधीपना है] । तिस रेततैं जल- (प्रजापतिरूप देवता) होते भये ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्यायगत प्रथमखंड भाष्यभाषादीपिका समाप्त १

अथ प्रथमाध्यायगतद्वितीयखंड भाष्यभाषादीपिका ॥ २ ॥

सृष्ट देवता आदिकके अर्थ स्थानका प्रदान.

टीकाः—वे[८३] ये अग्नि आदिक देवता लोकपालपनैकरी कल्पनाकरिके ईश्वरकरि सृजेहुये अविद्या काम औ कर्मकरि उत्पन्न भये दुःखकी अधिकतावाले, औ तीव्र रोग जरा औ मृत्युरूप महाग्राहवाले, औ अनादि अनंत अपार अरु निराश्रय औ विषय अरु इंद्रियनके संबंधसैं जनित सुखके लेशरूप विश्रामवाले, औ पंचइंद्रियनके विषय औ विषयनकी तृष्णारूप वायुके किये क्षोभसैं उठे सैकडो अनर्थरूप वडी लहरीवाले, औ महारौरव आदिक अनेक

---

८३ ऐसैं समष्टि इंद्रियनकी औ तिनके अभिमानी देवताकी उत्पत्तिकूं कहिके, अब तिन देवताके भोगके योग्य अल्प व्यष्टि देहकी सृष्टिकूं औ तिनविषै देवताके भोगअर्थ व्यष्टिरूपसैं प्रवेशकूं कहनेकूं इच्छतेहुये ताकी उपोद्घातरूप होनेकरि क्षुधा तृषाकी सृष्टिकूं दिखावै हैं ।

८४ क्षुधा आदिककी सृष्टिविषै उपयोगी होनेकरि इन देवनके स्वरूपके अज्ञानपूर्वक जो ब्रह्मांडरूप संसारविषै पतन है, औ आसक्तपना है, औ तन्मात्रापनैके (तिसरूपताके) अभिमानसैं बद्धपना है, ताकूं कहै हैं ।

नरकगत हाहा आदिक शब्दनके पुकारसैं प्रकट भये महाशब्द-वाले, औ सत्य आर्जव दान दया अहिंसा दम शम धैर्य आदिक आत्माके गुणरूप मार्गके भोजनसैं पूर्ण ज्ञानरूप नौकावाले, औ सत्संग अरु संन्यासरूप ज्ञानमय नौकाकी प्रवृत्तिके हेतु मार्गवाले, औ मोक्षरूप तीरवाले इस बडे संसाररूप समुद्रविषै पतन होते भये। तातैं अग्नि आदिक देवताकी प्राप्तिरूप बी जो ज्ञानकर्मके समुच्चयके अनुष्ठानकी फलरूप गति व्याख्यान करी, सो बी संसारदुःखकी निवृत्तिअर्थ परिपूर्ण नहीं है। यह इहां कहनेकूं इच्छित अर्थ है। जातैं ऐसैं है, तातैं इसप्रकार जानिके सर्व संसारदुःखकी निवृत्तिअर्थ आपका औ सर्व भूतनका आत्मा जो आगे कहनेके विशेषणवाला, औ "उत्पत्तितैं पूर्व यह एकहीं आत्मा था" इत्यादि वाक्यकरी जगत्की उत्पत्ति स्थिति औ संहारका हेतु होनेकरि प्रसंगविषै प्राप्त भया है, सो परब्रह्म जाननेकूं योग्य है। [८५]जातैं कर्मसहित प्राणके विज्ञानकूं संसाररूप फलवान्पना है, तातैं "यह (ज्ञानरूप) मार्ग है, यह कर्म है, यह ब्रह्म है, यह सत्य है;" इस श्रुतिविषै "यह" इस पदकरि जो यह परब्रह्म औ आत्माका ज्ञान है, सोइ कहा है; काहेतैं "[८६]तिसीहींकूं जानिके

---

८५ ननु, "यह (ज्ञान) मार्ग है, यह कर्म है, यह ब्रह्म है, यह सत्य है" ऐसैं आरंभकरिके, "उक्थ (प्राण) ऐसैं प्रसिद्ध है" इत्यादि वाक्यतैं कर्मसंबंधी सगुण ब्रह्मआत्माके ज्ञानकूंहीं कथन किया होनेतैं ताहीकूं मोक्षकी साधनता है, उक्त केवल आत्मज्ञानमात्रकूं नहीं? यह आशंकाकरिके, "यह (ज्ञान) मार्ग है" इत्यादि वाक्यसैं ब्रह्मात्माका ज्ञानहीं कहा है, कर्मसमुचित ज्ञान नहीं; काहेतैं, ता कर्मसमुचित ज्ञानकूं उक्त वाक्यकरि संसारकी हेतुताके जाननेसैं सत्यताके असंभवतैं, ऐसैं कहेहैं।

८६ "ताहीकूं जानिके मृत्युकूं लंघता है, मोक्षके अर्थ अन्यमार्ग नहींहै" इस वाक्यसैं बी केवल आत्माके ज्ञानसैं भिन्न मार्गके निषेधतैं बी उक्त ज्ञानरूपहीं मार्ग है, ऐसैं कहेहैं। इहां यह भाव है:—"मार्ग है"

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति। ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ २ ॥

मृत्युकूं लंघताहै, मोक्षके अर्थ अन्यमार्ग नहीं है" इस मंत्रके वर्णनतैं ॥ तिस स्थान करण औ देवताकी उत्पत्तिके बीजरूप प्रथम उत्पन्न किये विराट् पुरुषमय पिंडरूप आत्मा-कूं क्षुधा औ तृषाकरि योजना करता भया। तिस कारणरूप विराट्पुरुषकूं क्षुधा आदिक दोषवाला होनेतैं, ताके कार्यरूप देवताकूं बी क्षुधा आदिक दोषवान्‌पना है। तातैं वे देवता क्षुधा औ तृषाकरि पीडाकूं पावतेहुये इस सृजनेवाले परमेश्वररूप पितामह–के तांई कहते भये किः–हमारे अर्थ स्थान (शरीर)कूं निर्माण करो, जिसँ स्थान विषै स्थित हुये हम अन्नकूं भक्षण करें॥ १ ॥

टीकाः–ऐसैं तिनोंनैं जब कहा, तब ईश्वर तिन देवता-के अर्थ गौ-(गौकी आकृतिकरि युक्त पिंड)कूं पूर्वकी न्याईं तिन जलतैंहीं पिंडविषै ग्रहण करिके दृढ होनेकरि परस्पर अवयवनकी योजनासैं

है:—"यह मार्ग है" ऐसैं ब्रह्मात्माके ज्ञानका आरंभ करिके, मध्यविषै प्राणकी उपासनाका कथन तो प्राणकी उपासनासैं चित्तकी एकाग्रताके हुये, औ ताके फल (विवेकरूप दोषदृष्टि)तैं वैराग्यके हुये, "यह मार्ग है" ऐसैं आरंभ किया मुख्य ज्ञान कहनेकूं शक्य है, इस अभिप्रायसैं है। यद्यपि या वाक्यके व्याख्यानके अवसरविषै कर्ममार्ग बी मार्गशब्दका अर्थ होनैकरि कहा है, तथापि सो कर्ममार्ग ज्ञानमार्गका उपाय होनेकरि कहा है, प्रधानतासैं नहीं; यह अभिप्राय है।

८७ ननु, विराट्का देहहीं आश्रय वर्तता है? यह आशंका करिके, ताकूं अतिशय प्रौढ होनेतैं ताकूं पूर्ण करिके हम तहां स्थित होनेकूं असमर्थ हैं, औ ता देहके पोषण योग्य अन्नकूं संपादन करनेकूं असमर्थ हैं। यातैं

ताभ्यः पुरुषमानयत् । ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति । पुरुषो वाव सुकृतम् । ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ॥ ३ ॥

सृजिके दिखावता भया । वे देवता फेर तिस गौकी आकृतिवाले पिंडकूं देखिके कहते भये कि:–यह पिंड हमारेअर्थ स्थित होयके अन्नके भक्षणकूं निश्चयकरि पूर्ण (योग्य) नहीं है; काहेतैं, या शरीरकूं ऊपर दंतनके अभावसैं दुर्वा आदिक तृणके मूलके उखाडणेकूं असमर्थ होनेतैं ॥ गौके निषेध कियेहुये तैसैंहीं तिन देवता-के अर्थ दोनूंओरतैं दंतवाला होनेकरि उक्त दोषके अभावतैं अश्वकूं दिखावता भया । वे कहते भये कि:–यह पिंड, हमारे अर्थ स्थित होयके अन्नके भक्षणकूं निश्चयकरि पूर्ण नहीं है, ऐसैं [८८]सर्वके निषेध कियेहुये ॥ २ ॥

टीका:–तिन देवता-के अर्थ अपने योनिरूप (विराट् पुरुषके देहके सजातीय) पुरुषकूं दिखावता भया । वे देवता अपनी योनिरूप पुरुषकूं देखिके खेदसैं रहित हुये यह शरीर निश्चयकरि सुकृत (शोभावाला) है, ऐसैं कहते भये । तातैं पुरुषहीं सर्व पुण्यकर्मका हेतु होनेतैं सुकृत है, वा आप परमेश्वरनैं अपनैंहीं स्वरूपसैं अपनी मायाकरि किया होनेतैं, सो शरीर सुकृत कहिये है । पीछे ईश्वर जोंतैं सर्व अपनी योनिरूप शरीरनविषै रुचि करै है, यातैं यह शरीर

हमारे योग्य व्यष्टिदेहकूं सृजो ऐसैं कहते हुये कहैहैं । इहां यह भाव है:—यद्यपि अस्मदादिक व्यष्टिदेहसैं विना बी हमकूं चरुपुरोडाश आदिक हविरूप भक्ष्य है, तथापि सो हविका भक्ष्य व्यष्टिदेवताके देहसैं विना नहीं है ।

८८ इहां गौ अरु अश्वके ग्रहणकूं सर्व तिर्यक् देहके उपलक्षक होनेतैं, इस अभिप्रायकरि सर्वपद कहा है । यह अर्थ है ।

८९ ऐसैं व्यष्टिदेहकी सृष्टिकूं कहिके अब तिनविषै करणोके औ देवताके व्यष्टिरूपसैं प्रवेशकूं कहैहैं ।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नौषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥ ४ ॥

इन देवताकूं प्रिय है; ऐसैं मानिके, तिन देवता-कूं कहता भया किः—यथायोग्य स्थानके तांई (जाका जो वचन आदिक क्रियाके योग्य स्थान है ताकेतांई) प्रवेश करहू ॥ ३ ॥

टीकाः—जैसैं राजाकी आज्ञाकूं पायके, तथाऽस्तु, ऐसैं कहिके सेनापति आदिक नगरीविषै प्रवेशकूं करते हैं; तैसैं ईश्वरकी आज्ञाकूं पायके वाक्‌का अभिमानी जो अग्नि सो वाँक् रूपहीं होयके अपनी योनिरूप मुखके तांई प्रवेश करता भया। तैसैं वायु, प्राण (घ्राण) होयके नासिकाके तांई प्रवेश करता भया। तैसैं सूर्य, चक्षु होयके नेत्रनके तांई प्रवेश करता भया। तैसैं दिशा, श्रोत्र होयके कर्णनकेतांई प्रवेश करता भया। तैसैं औषधि औ वनस्पतियां, रोमरूप होयके त्वचाके तांई प्रवेश करते भये। तैसैं चंद्रमा, मन होयके हृदयके तांई प्रवेश करता भया। तैसैं मृत्यु अपान (गुद) होयके नाभिके तांई प्रवेश करता भया। तैसैं जल जे हैं, वे रेत (उपस्थ) होयके शिश्नके तांई प्रवेश करते भये ॥ ४ ॥

---

९० यद्यपि वाक्‌का अभिमानी अग्नि है, वाक्‌हीं नहीं है; तथापि ता अग्निकी वाचाविना प्रत्यक्ष अप्रतीतितैं, औ ता वाचाके बी देवताविना अपने विषयके ग्रहणके सामर्थ्यके अभावतैं, तिनके एकल तादाम्यकरि

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्र-जानीहीति ॥ स ते अब्रवीदेतास्वेव वा देवता स्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति ॥ तस्मा-द्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावे-वास्यामशनायापिपासे भवतः ॥ ५ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

टीकाः—ऐसैं देवताकूं स्थानकेतांई प्राप्तहुये स्थानरहित हुयी जो क्षुधा औ तृषा, वे दोनूं, तिस ईश्वरकूं कहती भई किः—हमा-रेअर्थ स्थानकूं चिंतन करो (निर्माण करो)। ऐसैं जब कहा; तब सो ईश्वर, तिन क्षुधा औ तृषाके तांई कहता भयाः—जातैं तु-मकूं भाव (धर्म)रूप होनेतैं औ चेतनावाली वस्तुरूप आश्रयतैं र-हित होनेतैं भोक्तापना नहीं संभवै है, तातैं इन अध्यात्म (व्यष्टिदे-हगत) औ अधिदैवत (समष्टि विराट् देहगत)रूप अग्नि आदिक देवताविषैहीं तुम दोनूंकूं वृत्तिके विभागसैं अनुग्रह करताहूं। इन देवता-विषै तुमकूं भागवालियां करताहूं; कहिये, जिस देवताका जो हवि आदिरूप भाग है, ता देवताके तिसीहीं भागसैं तुमकूं भागवालियां करताहूं। जातैं सृष्टिकी आदिविषै ईश्वर ऐसैं करता भया, तातैं अब बी जिसी औ किसी देवताके अर्थ चरु अरु पुरोडाश आदिरूप हविग्रहण करियेहै; इसी देवता-विषै ये क्षुधा औ तृषा दोनूं भागवालियां (भागीदार)हीं होवै हैं ॥५॥

इति श्री प्रथमाध्यायगत द्वितीयखंड भाष्यभाषादीपिका समाप्त ॥ २ ॥

अभेदका कथन है, ऐसैं कहैहैं। यद्यपि देवताका ईश्वरनैं (श्रुतिनैं) प्र-वेश कहा है, तथापि करणोसैं विना तिन देवताके साक्षात् भक्षणादिभो-गके असंभवतैं तिन करणोका बी प्रवेश अर्थतैं कहाहीं है । यातैं तिनका बी सो प्रवेश कहा ।

अथ तृतीयः खंडः ॥ ३ ॥

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ॥ १ ॥

सोऽपोऽभ्यतपत्। ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत। या वै सा मूर्त्तिरजायतान्नं वै तत्॥२॥

अथ प्रथमाध्यायगत तृतीयखंड भाष्यभाषा-दीपिका ॥ ३ ॥

लोकपालार्थ अन्नोत्पत्ति औ ईश्वरका देहमैं प्रवेश.

टीकाः–[९१]सो ईश्वर, ऐसैं ईक्षण करता भया। कैसैं किः–ये प्रसिद्ध लोक औ लोकपाल मैंनें रचेहैं, औ वे क्षुधा अरु तृषाकरि योजना किये-हैं; यातैं इनकी स्थिति अन्नविना नहीं होवैगी। तातैं इन लोकपालन-के अर्थ अन्नकूं सृजुं, ऐसैं ईक्षण करता भया। ऐसैंहीं लोकविषै ईश्वरनका (समर्थनका) अपनें किंकर आदिकनमैं अनुग्रहविषै औ निग्रह (दंड)विषै स्वतंत्रपना देख्या है। तैसैं महेश्वरकूं वी सर्वका ईश्वर होनेतैं सर्वकेप्रति निग्रह औ अनुग्रहकेताई स्वतंत्रपनाहीं है ॥ १ ॥

टीकाः–सो ईश्वर; अन्नकूं सृजनेकूं इच्छता हुया तिन पूर्वउक्त जल (पंचभूत) नके ताईहीं उद्देशकरिके, तप (संकल्प)[९२]कूं करता भया। तिन तप (ईश्वरके संकल्प) कूं प्राप्त भये उपादानरूप जलन-तैं घन (कठिन) रूप औ शरीरधारणके समर्थ चर अच-

---

९१ ऐसैं भोगके साधनकी सृष्टिकूं कहिके, अब भोग्यकी सृष्टिके कहनेका आरंभ करैहैं।

९२ इहां यह अर्थ हैः—इन भूतनके अर्थ मनुष्य आदिकनके अन्नरूप तंडुल आदिक उत्पन्न होहू, औ मार्जार आदिकनके अन्नरूप मूषक आदिक उत्पन्न होहू, ऐसैं अवलोकनरूप संकल्पकूं करता भया।

तदेनदभिसृष्टं । पराङत्यजिघांसत् । तद्वाचा जिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम् । स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ३ ॥

यत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुम् । स यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नंत्रप्स्यत् ॥ ४ ॥

रूप मूर्ति उत्पन्न भई । जो प्रसिद्ध सो मूर्ति उत्पन्न भयी सो निश्चयकरि अन्न हैं; कहिये, जो उत्पन्न भया अन्न है सो मूर्तिरूप है । औ जो सो मूर्ति उत्पन्न भई सो यह अन्न है॥ २ ॥

टीकाः—सो यह अन्न लोकपालके सन्मुख छोड्याहुया जैसैं मूषक आदिक मार्जारआदिककी दृष्टिके सन्मुख छोड्याहुया यह मेरा मृत्यु अन्नाद है, ऐसैं मानिके पीछे जाताहै; तैसैं पराङ्मुख हुया अपने भोक्ताकूं उल्लंघन करनेकूं इच्छता भया । कहिये आपकी पालना करनेकूं प्रारंभ करता भया । तिस अन्नके अभिप्रायकूं मानिके, सो लोक औ लोकपालनके संघातनसैं कार्य औ कारणरूप पिंड (विराट्) प्रथम उत्पन्न भया होनेतैं अन्योकूं अन्नादकी न्यांई ता अन्नकूं वचनक्रियारूप वाणीसैं ग्रहण (भक्षण) करनेकूं इच्छता भया । परंतु ताकूं वाणीसैं ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं भया । सो प्रथम उत्पन्न भये शरीरवाला विराट्, जातैं इसकूं वाणीसैं ग्रहण करता भया, तातैं सर्वलोक बी ताका कार्य होनेतैं अन्नकूं वाचकशब्दसैं कथनकरिकेहीं तृप्त होता भया ॥ ३ ॥

टीकाः—ताकूं प्राणसैं ग्रहण करनेकूं इच्छता भया । ताकूं प्राणसैं ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं भया । जातैं सो इसकूं प्राणसैं ग्रहण करता भया, तातैं सर्वलोक बी इस अन्नकूं सूंघिकेहीं तृप्त होता भया ॥ ४ ॥

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतुम्। स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद्दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ५ ॥

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुम् । स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ६ ॥

तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुम् । स यद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ७ ॥

टीकाः—ताकूं चक्षुसैं ग्रहण करनेकूं इच्छता भया । ताकूं चक्षुसैं ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं भया । जातैं सो इसकूं चक्षुसैं ग्रहण करता भया, तातैं सर्वलोक बी इस अन्नकूं देखिकेहीं तृप्त होता भया ॥ ५ ॥

टीकाः—ताकूं श्रोत्रसैं ग्रहण करनेकूं इच्छता भया । ताकूं श्रोत्रसैं ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं भया । जातैं सो इसकूं श्रोत्रसैं ग्रहण करता भया, तातैं सर्वलोक बी इस अन्नकूं सुनिकेहीं तृप्त होता भया ॥ ६ ॥

टीकाः—ताकूं त्वचासैं ग्रहण करनेकूं इच्छता भया । ताकूं त्वचासैं ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं भया । जातैं सो इसकूं त्वचासैं ग्रहण करता भया, तातैं सर्व लोक बी इस अन्नकूं स्पर्श करिकेहीं तृप्त होता भया ॥ ७ ॥

तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुम् । स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ८ ॥

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुम् । स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ९ ॥

तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत् । स एषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः ॥ १० ॥

टीकाः—ताकूं मनसैं ग्रहण करनेकूं इच्छता भया । ताकूं मनसैं ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं भया । जातैं सो इसकूं मनसैं ग्रहण करता भया, तातैं सर्व लोक बी इस अन्नकूं चिंतनकरिकेहीं तृप्त होता भया ॥ ८ ॥

टीकाः—ताकूं शिश्नसैं ग्रहण करनेकूं इच्छता भया । ताकूं शिश्नसैं ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं भया । जातैं सो इसकूं शिश्नसैं ग्रहण करता भया, तातैं सर्व लोक बी इस अन्नकूं त्यागिकेहीं तृप्त होता भया ॥ ९ ॥

टीकाः—पीछे ताकूं अपान वायु (मुख छिद्र)सैं ग्रहण करनेकूं इच्छता भया । तब तिस अन्नकूं भक्षण करता भया । तिस हेतुकरि सो यह अपान वायु, अन्नका ग्राहक है जो वायु । अन्नतैं जीवनवाला प्रसिद्ध है, सो यह जो वायु है ॥ १० ॥

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति। स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति। स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं। यदि प्राणेनाभिप्राणितं। यदि चक्षुषा दृष्टं। यदि श्रोत्रेण श्रुतं। यदि त्वचा स्पृष्टं। यदि मनसा ध्यातं। यद्यपानेनाभ्यपानितं। यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति ॥ ११ ॥

टीका:—सो[९३] ऐसैं पुर औ पुरके निवासीजन औ तिनके पालक राजभृत्यनकी स्थितिके तुल्य अन्नरूप निमित्तवाली लोक औ लोकपालनके संघातकी स्थितिकूं करिके, पुरके स्वामीकी न्यांई ईक्षण (अवलोकन) कूं करता भया। कैसैं कि:—जो यह कार्यकारणका संघातरूप आगे कहनेका कार्य है, सो परके अर्थ हुया

---

९३ ऐसैं भोगके अधिकरणरूप लोकनकी औ भोगके आयतन समष्टि व्यष्टि शरीरकी, औ भोगके साधन वाक् आदिकनकी, औ समष्टि शरीरविषै लोकपालपनैंकरि अरु व्यष्टि शरीरविषै करणोके अधिष्ठातापनैंकरि स्थित भये देवनकी, औ भोगविषै प्रेरक क्षुधा तृषाकी, औ ताके किये करणोविषै स्थित शब्दादि विषयनके ग्रहणरूप भोगकी बी, औ अन्नरूप वृत्तिवाले प्राणविषै स्थित अन्नपानके ग्रहणरूप भोगकी आत्माके संसारीपनैकी सिद्धि अर्थ सृष्टिकूं कहिके, अब संसारिनके मोक्षकूं दिखावनेकूं सृष्टिकर्ता ईश्वरके विचार अंशके दिखावनेंकूं "सो ईक्षणकूं करता भया" या वाक्यका व्याख्यान करैहैं।

९४ इदं शब्दार्थका "परके अर्थ हुया" यह विशेषण हेतुगर्भित है। इस संघातकूं परके अर्थ होनेतैं, इस हेतुरूप गर्भवाला यह विशेषण है। परके अर्थ होनेवाले पदार्थनकी स्थिति वा चेष्टा मुजविना कैसैं होवैगी? इसीहीं अर्थके "कैसैं" इस शब्दकरि सूचन किये व्यतिरेककूं कहैहैं।

स्वामीविना पुरकी न्यांई मुजविना निश्चयकरि किसप्रकारसैं होवैगा । फेर जब वाणीसैं कथन किया होवै, जब प्राणसैं सूंघ्या होवै, जब चक्षुसैं देख्या होवै, जब श्रोत्रसैं सुन्या होवै, जब त्वचासैं स्पर्श किया होवै, जब मनसैं चिंतन किया होवै, जब अपानसैं भक्षण किया होवै, जब शिश्नसैं त्याग किया होवै, तब मैं कौंन हूं ? ऐसैं ईक्षण करता भया । इसैं वाक्यका यह अर्थ हैः– केवलहीं भोक्तारहित वाणी आदिकसैं उच्चारण आदिक जो है, सो व्यर्थ होनेतैं किसीप्रकारसैं बी होवै नहीं; काहेतैं, सर्वप्रवृत्तिकूं प्रयोजनके अर्थ होनेतैं । जैसैं पुरके वासी औ बंदीजन आदिकनकरि योजना किया जो बलिदान (कर), औ स्तुति आदिक, सो स्वामीके अर्थ होवै है; औ स्वामीविना व्यर्थ है ताकी न्यांई । तातैं पुरके अधिष्ठाता राजाकी न्याई मुज संघातसैं पर (अन्य) स्वामी अधिष्ठाता औ कृतअकृतके फलके साक्षीरूप भोक्ताकरि तहां प्रवेश करना योग्य है । जब यह संघातरूप कार्यका जो परके अर्थ होना है, सो स्वामीविना पुर औ पुरवासीके कार्यकी न्यांई पररूप अर्थी चेतन-

---

९५ ऐसैं वाणीके व्यवहार आदिक कार्यकी सिद्धिअर्थ मुजकूं प्रवेश करना योग्य है; ऐसैं कहिके, अब आत्मस्वरूपके बोधअर्थ मुजकूं प्रवेश करना योग्य है, यह कहनेकूं "सो ईक्षण करता भया, जब वाणीसैं कथन किया" इनसैं आदिलेके "अब मैं कौन हूं ?" इहां पर्यंत जो वाक्य है, ताकूं ताके प्रवेशके प्रयोजनके कथनरूप अर्थवाला होनैकरि "यह मुजविना कैसैं होवैगा ?" या वाक्यके तुल्य होनेतैं, "सो ईक्षण करता भया, किस द्वारकरि प्रवेश करूं" इस वाक्यसैं अंतरायवाले वाक्यकूं बी इहांहीं खींचिके व्याख्यान करै हैं । या वाक्यका यह अर्थ हैः—संघातरूप वाक् आदिक कार्यका परोपकाररूप वदन आदिक क्रियाके कर्तापनैरूप जो परके अर्थ होना है, सो उपकारके भागी परके अर्थीसैं विना जब होवै तब ।

९६ उक्त वाक्यके अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ।

विना होवै; तब मैं किसस्वरूपवाला हूं, वा किसका स्वामी हूं; कहिये जब मैं कार्यकारणके संघातकूं प्रवेशकरिके (पुरके प्रति प्रवेशकरिके) अधिकारी पुरुषनके कृत अकृतके देखनकूं राजाकी न्याई वाक् आदिकके उच्चारण आदिक फलकूं नहीं जानूं, तब कोई बी पुरुष मुजकूं यह आत्मा है औ सो इसरूपवाला है, ऐसैं नहीं विचारेगा। औ विपर्ययके (प्रवेश करिके उच्चारण आदिकके अनुभवके) हुये तो जो यहँ इस वाक् आदिकके उच्चारण आदिककूं जानताहै सो सत् (विद्यमान) है, औ सो संवेदन (ज्ञान)रूप है, ऐसैं मैं जानने योग्य होवूंगा। जिसकेअर्थ यह संघातरूप वाक् आदिकनका उच्चारण आदिक है, सो वाक् आदिकनसैं अन्य औ अमिलित है, ऐसैं जाननेकूं योग्य है। [९८]जैसैं गृहविषै मिलित भये स्तंभ औ भित्ति आदिकनका अपने अवयवनसैं

---

९७ ज्ञानरूपताकूं प्रतिपादन करैहैं। इहां जो यह वाक् आदिकके वदन आदिक क्रियाकूं जानता है, सो ज्ञानरूप है; ऐसैं जाननेकूं योग्य होवैगा; यह अन्वय है। औ जाननेवालेका ज्ञानरूपपना कैसैं है? ऐसैं कहनेकूं योग्य नहीं; काहेतैं; ज्ञाताकूं अचेतनरूपताके हुये ताकूं अन्य ज्ञानकी विषयता कहनी होवैगी। तिस ज्ञानविषै जब ज्ञाताहीं कर्ता है, तब एकहीं ज्ञाताविषै ज्ञानका कर्त्तापना औ ज्ञानका विषयपना विरुद्ध प्राप्त होवैगा। जब अन्य ज्ञाता कर्ता है, तब ताका बी अन्य ज्ञाता होवैगा; यातैं अनवस्था होवैगी। ऐसैं ज्ञाताकी ज्ञानरूपता सिद्ध होवैहै। याहीतैं अन्य श्रुतिविषै "जो जानता है, इसकूं मैं सूंघता हूं, सो आत्मा है" ऐसैं घ्राता घ्रेय औ घ्राणरूप त्रिपुटीके ज्ञानकूं आत्मरूपता कही है। यह भाव है।

९८ संघातरूप भये पदार्थनके संघातसैं भिन्न परके अर्थ होनेविषै दृष्टांत कहैहैं। इहां यह अनुमान कथन किया होवैहै:—वाक् आदिकका संभाषण आदिक जो है, सो अपनैसैं अमिलित परके अर्थ होनेकूं योग्य है, संघातरूप होनेतैं, भित्ति आदिककी न्याईं; औ गृह आदिककी न्याईं।

स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत । सैषा विद्दतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनं । तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥ १२ ॥

अमिलित भये परके अर्थ होना है, ताकी न्यांई । ऐसैं सो ईक्षण करता भया । इस रीतिसैं ईक्षण करिके, यांतैं किस द्वार-सैं इस संघातविषै प्राप्त होऊं; कहिये, इस संघातके प्रवेशके मार्ग पादका अग्रभाग औ मस्तक हैं इन दोनूंविषै किसमार्गसैं इस कार्यकारणके संघातरूप पुरके तांई प्रवेश करूं ? ऐसैं सो ईक्षण करता भया । इसरीतिसैं ईक्षण करिके, प्रथम मेरे सर्व अर्थविषै अधिकारी मेरे मृत्यरूप प्राणके प्रवेशके मार्गरूप दोनूं पादनके अग्रनसैं नीचे नहीं प्राप्त होवूंगा, किंतु परिशेषतैं इस पिंड (शरीर)के मस्तककूं विदारणकरिके प्राप्त होवूंगा ऐसैं निश्चयकरिके ॥ ११ ॥

टीका:—लोककी न्यांई ईक्षणकारी जो स्रष्टा ईश्वर है, सो यह जो स्त्रीके केशनके विभागपर्यंत मस्तकका सीमा है, तिस इसीहीं सीमाकूं विदारणकरिके (छिद्रकरिके) इसद्वार (मार्ग) सैं इस कार्यकारणके संघातरूप लोकके तांई प्रवेश करता भया । सो यंह[१] द्वार

---

९९ अत्र "सो ईक्षण करता भया, किसद्वारसैं प्रवेश करूं" या वाक्यका व्याख्यान करैहैं । इहां यह अर्थ है:—जातैं प्रवेशकी वाक् आदिकके व्यवहारकी सिद्धि, औ मेरे स्वरूपका बोध, इन दोनूं प्रयोजनकी सिद्धि अर्थ कर्तव्यता है, यातैं ।

१०० किंकरके प्रवेशके मार्गसैं स्वामीका प्रवेश अनुचित है, यातैं इसीहीं मार्गसैं प्रवेशकूं निश्चय करता भया; ऐसैं कहैहैं ।

१०१ ननु, "पुरुषविषै नव प्राण हैं, तिनमैं सप्त मस्तकके प्राण हैं, औ दोनूं नीचेके हैं," "नवद्वारवाले पुरविषै देही" इत्यादि वाक्यनविषै शरीररूप पुरके नवद्वार प्रसिद्ध है:—परंतु मस्तकविषै अन्यद्वार नहीं है ?

(मस्तकका छिद्र), मस्तकविषै तैलआदिकके धारणकालमैं ताके रस आदिकके जाननेतैं प्रसिद्ध है । **सो यह** विदारण भया होनेतैं **विदृति नामवाला प्रसिद्ध द्वार है** । अन्य श्रोत्रादिरूप द्वार तो राजाके किंकर आदिक स्थानी देवनके प्रवेशके साधारण मार्गरूप होनेतैं समृद्धिवाले (आनंदके हेतु) नहीं हैं, यह द्वार तो केवल परमेश्वरकाहीं है, तातैं **सो यह द्वार नान्दन** (आनंदका हेतु) है । जिस द्वारकरि जायके परब्रह्मविषै आनंदकूं पावताहै, सो द्वार नान्दन कहिये है । [१०२]**तिसीहीं** (स्रजिके अपने पुरके ताईं राजाकी न्याई जीवरूपसैं प्रवेश भये परमात्मा)**के तीन स्थान हैं** । जाग्रत्-कालविषै दक्षिण चक्षु (चक्षुका गोलक)रूप स्थान है । स्वप्नका-लविषै भीतरका मन (मनका आश्रय कंठ) स्थान है । सुषुप्ति-कालविषै यह हृदयाकाश (हृदयकरि अविच्छिन्न भूताकाश) स्थान है । वा ये आगे कहनेके तीन स्थान पिताके शरीर, माताके गर्भके आशय औ अपने शरीररूप हैं । इनमैं **तीन** जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्ति नामवाली अवस्था **स्वप्न** (भ्रमरूप) हैं ननु, । जाग्रत् अवस्था, प्रबोधरूप होनेतैं स्वप्न नहीं है? ऐसैं नहीं, किंतु सो स्वप्नहीं है ॥ कैसैं किः—[१०३]तंहां परमार्थस्वरूपके प्रबोधके अभावतैं,

---

यह आशंका करिके, प्रत्यक्षतैं औ " तिस (सुषुम्ना नाडी)सैं उंचे जाता-हुया अमरणभावकूं पावता है " इस श्रुतितैं, तिस मस्तकगत अन्यद्वारकी प्रसिद्धितैं ताका निषेध बनै नहीं; ऐसैं कहनेकूं " सो यह " इस रीतिका वाक्य है, ताका व्याख्यान करै हैं ।

१०२ ऐसैं ईश्वरके प्रवेशकूं कहिके, अब ताहीके पूर्वउक्त कार्यकारण-रूप संघातमय उपाधिके किये संसारकूं कहै हैं ।

१०३ अविवेकिनकूं तैसैं प्रसिद्धिके अभाव हुये बी विवेकिनकूं ताके लक्षणके जाननेवाले होनेतैं, तैसैं प्रसिद्धि है; यह कहै हैं । इहां यह अर्थ है:—वस्तुके स्वरूपके तिरोधानसैं असत् वस्तुकी जो प्रतीति, सो स्वप्न है;

स जातो भूतान्यभिव्यैक्षत् । किमिहान्यं वावदिषदिति । स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्शमिति ॥ १३ ॥

औ विवेकी पुरुषनकरि स्वप्नकी न्यांई याके असद्वस्तुरूपताके देखनेतैं । यहहीं **स्थान** दक्षिण चक्षुरूप प्रथम है । **यह स्थान** भीतरका मनरूप द्वितीय है, **यह स्थान** हृदयाकाशरूप तृतीय है । इहां "यह स्थान" ऐसा जो उच्चारण है, सो उक्तअर्थकाहीं अनुवाद है ॥ १२ ॥

टीका:—[१०४]जातैं यह आत्मा, तिन स्थानोंविषै क्रमकरि आत्मभावसैं वर्तमान होयके स्वाभाविक अविद्यासैं दीर्घकालपर्यंत गाढ निद्राकूं पाया हुया प्रबोधकूं पावता नहीं, औ वारंवार मरणके अनुभवनसैं अनेक शतसहस्र अनर्थनकी प्राप्तिसैं जन्य दुःखकूं अनुभव करै है, यातैं ये चक्षु आदिक स्थान (गृह) कहिये हैं ॥ [१०५]**सो** परमात्मा **प्रकट हुयाहीं भूतनकूंहीं** "मैं मनुष्य हूं, मैं काण हूं, मैं सुखी हूं;" इत्यादि प्रकारसैं तादात्म्यकरि **स्पष्ट जानताभया, औ**

यह स्वप्नका लक्षण है । जाग्रत् बी तिसप्रकारकाहीं है; काहेतैं, ब्रह्मस्वरूपके तिरोधानतैं औ अविद्यमान जाग्रत्‌की प्रतीतितैं ।

१०४ ननु, गृहविशेषके वाची आवसथशब्दका नेत्रआदिकविषै व्यवहार कैसैं बनैगा ? यह आशंका करिके, गृहकी न्याईं इन नेत्रादिकविषै स्थित पुरुषकूं दीर्घ निद्राके देखनेतैं, औ तिन नेत्रादिकनविषै गृहमैं सुखसैं सोये हुयेकी न्याईं सोये पुरुषकूं तत्काल जागरणके देखनेतैं, गौणीवृत्तिसैं नेत्रादिकनके आवसथ (गृह)पनैकूं कहै हैं ।

१०५ ननु, जागरण आदिक जो है सो कार्यकारणके संघातरूप भूतनके कार्यका धर्म है, आत्माका नहीं ? तातैं भिन्न आत्माकूं बी तिसविषै तादात्म्यअभिमानतैं तिस धर्मकरि युक्तपना है, ऐसैं कहनैकूं "सो होता भया" यह वाक्य है, ताका व्याख्यान करै हैं ।

तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम । तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः १४

इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

इत्यैतरेये द्वितीये आरण्यके चतुर्थोऽध्यायः ॥ उपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ ॐ तत् सत् ॥ १ ॥

कहता भया । इस शरीर–विषै अन्य (भिन्न) आत्मा–कूं क्या कहता भया? नहीं कहता भया, औ नहीं जानता भया । जातैं ऐसैं है, तातैं भूतनकूं स्पष्ट जानता भया। अथवा, सो प्रकट हुया भूतनकूं चिंतन करता भया; कहिये क्या इनकी स्वरूपतैं सत्ता है वा नहीं, ऐसैं विचारता भया । औ विचार करिके किस अन्य (आत्मातैं भिन्न) स्वतःसत्तावालेकूं कहूं । किसीकूं बी आत्मातैं भिन्न कहनेकूं समर्थ नहीं हूं, ऐसैं निश्चय करता भया ॥ ऐसैं पदार्थके शोधनवाले पुरुषकूं वाक्यार्थका ज्ञान कहै हैंः–सो कदाचित् परमदयालु आचार्यकरि, आत्मज्ञानके प्रबोधके कारक शब्दकूं करनेवाली वेदांतरूप महाभेरीके । कर्णके मूलविषै तांडन किये (बजाय दिये) हुये, सो इसीहीं सृष्टि आदिकके कर्तापनैंकरि प्रसंगविषै प्राप्त भये शरीररूप पुरीविषै रहनेवाले आत्मारूप पुरुषकूं आकाशकी न्याईं परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखता भया। कैसैंकिः– अहो इस ब्रह्मरूप मुज आपके स्वरूप– कूं देखता हूं, ऐसैं । जातैं इसी (यह)इस शब्दका वाच्य जो साक्षात् अपरोक्ष सर्वांतर ब्रह्म है, ताकूं अपरोक्षसैं देखता भया ॥ १३ ॥

टीकाः–जातैं सर्वांतर ब्रह्मकूं यह (अपरोक्ष प्रत्यागात्मा)ऐसैं देखता भया, [१०६]तातैं परमात्मा, इदंद्र नामवाला होता भया। लोकविषै

---

१०६ ताके इदंद्र नामकी प्रसिद्धिसैं बी ताके ज्ञानकूं अपरोक्षपना

ईश्वर, इदंद्र नामवाला प्रसिद्ध है। तिस ऐसैं इदंद्र हुये परमात्मा—कूं, ये ब्रह्मवेत्ता, ताकूं अत्यंत पूज्य होनेतैं औ ताके प्रत्यक्ष नामग्रहणके भयतैं सम्यक् व्यवहारअर्थ परोक्ष नामसैं इंद्र ऐसैं कहते हैं ॥[१०७] तैसैंहीं दिखावै हैः—जातैं (जब) देव परोक्ष प्रिय (परोक्ष नामग्रहणसैं प्रीतिवालेकी) न्याई हैं, देव परोक्षप्रियकी न्याई हैं, तब सर्व देवनका बी देव जो महेश्वर, सो परोक्षप्रिय (परोक्ष नामग्रहणसैं प्रीतिवाला) है यामैं क्या कहना है। कछु बी नहीं। इहां दोवार जो कथन है, सो इस अध्यायकी समाप्तिअर्थ है ॥ १४ ॥

इति श्रीप्रथमाध्यायगत तृतीयखण्डभाष्यभाषादीपिका ३॥

इति श्रीऐतरेयोपनिषद्गत प्रथमाध्याय भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

है, ऐसैं कहनेकूं "तातैं इदंद्र नाम है" यह वाक्य है, ताका व्याख्यान करै हैं।

१०७ पूज्य पुरुषका नाम परोक्षपनैकरिहीं कहनेकूं योग्य है, इस अर्थविषै प्रमाण कहै हैं। इहां यह भाव हैः—याहीतैं लोकविषै आचार्य जे हैं वे उपाध्याय इस नामके कथनविषैहीं प्रीतिकूं करते हैं, परंतु विष्णुमित्र आदिक नामके ग्रहणविषै नहीं ॥ यथार्थ नामका अन्यरूपके करनेकरि स्वरूपका आच्छादन जो है, सो नामका परोक्षपना है। ऐसैं जानना।

अथ द्वितीयाध्यायः ॥ २ ॥

चतुर्थ खंडः ।

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतस्तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भृतमात्मन्येवाऽऽत्मानं बिभर्त्ति । तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैतज्जनयति । तदस्य प्रथमं जन्म ॥ १ ॥

अथ ऐतरेयोपनिषद्गत द्वितीयाध्यायरूप चतुर्थखंड भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ २ ॥

गर्भवासकूं प्राप्त जीवके तीनि जन्म.

टीकाः– [१]इंसं अध्यायविषै यह आगे कहनेका वाक्यका अर्थ, कहनेकूं इच्छित है । [२]जौंतैं जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति औ प्रलयका कर्ता, असंसारी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्ववित् परमेश्वर; इस जगत्कूं स्वरूपतैं भिन्न अन्य वस्तुकूं नहीं ग्रहणकरिकेहीं आकाश आदिकके क्रमसैं सृजिके औ स्वस्वरूपके प्रबोधअर्थ, सर्व प्राण आदिक वाले शरीरनकेतांई आप प्रवेश करता भया। औ प्रवेश करिके अपने आत्माकूं " ज्यूंका त्यूं यह ब्रह्म मैं हूं " ऐसैं साक्षात् जानता

---

१०८ इस प्रथम अध्यायविषै आत्माकी एकता, औ लोकपालनकी सृष्टि औ क्षुधातृषाकी योजना आदिक बहुत अर्थनकूं कथन किये होनेतैं, सर्वके बी कहनेकूं इच्छितपनैकी शंकाके निवारण अर्थ कहनेकूं इच्छित अर्थकूं कहै हैं। इहां सर्व बी शरीरनविषै एकहीं आत्मा है, सोई परमेश्वर है, इसप्रकारका आगे कहनेका जो अर्थ, सो " एतत् (यह) " शब्दका अर्थ है ।

१०९ यहहीं अर्थ कैसैं कहनेकूं इच्छित है ? यह आशंकाकरिकें, पूर्वग्रंथकी रचनाके विचारकरि देखनेसैं यहहीं अर्थ कहनेकूं इच्छित है, ऐसैं कहै हैं। इहां यह अर्थ हैः—यद्यपि लोक आदिककी सृष्टिसैं औ अन्यकी सृष्टिसैं उत्पत्ति औ स्थितिहीं कही, तथापि उत्पत्ति औ स्थितिके कथनकरि

भया [११०]तातैं सोई आत्मा सर्व शरीरनविषै एकहीं है, अन्य नहीं। अन्य वाक्य बी "सो मेरा आत्मा है, ऐसैं जानना" "मैं ब्रह्म हूं, ऐसैं जानना" औ "यह आगे निश्चयकरि एकहीं आत्मा था" "परिपूर्ण ब्रह्मकूं देखता भया" ऐसैं कहा। औ [१११]अन्य वाक्यनविषै बी यहहीं अर्थ कहा है ॥ ननु, [११२]सर्वगत सर्वात्माके प्रवेशसैं रहित बालका अग्रमात्र वस्तु बी नहीं है, यातैं सो छिद्रकेतांई चीटीकी न्यांई सीमाकूं विदारण करिके कैसैं प्रवेशकूं करता भया? [११३]तहीं

अर्थतैं प्रलय बी कथन किया। औ लयका कर्ता, ऐसैं कहे हुये लोकपाल आदिकनकेहीं भोक्तापनैके कथनसैं सो असंसारी है, ऐसैं कहा ॥ सामान्यतैं सर्वकूं जानताहै, यातैं सर्वज्ञ है। विशेषकरि सर्व प्रकारसैं बी सर्वकूं जानता है, याते सर्ववित् है।

११० जातैं सर्व शरीरनविषै एकहींका प्रवेश कहा है, औ जातैं प्रवेशकूं प्राप्त भयेका ब्रह्मभावसैं ज्ञान कहा है, तातैं सर्व शरीरनविषै एकहीं आत्मा है; औ सो सर्वज्ञ ईश्वरहीं है, अन्य नहीं। यह वाक्यका अर्थ कहनेकूं इच्छित है, ऐसैं पूर्वसैं संबंध है।

१११ "सो मेरा आत्मा है, ऐसैं जानना" यह संहितारूप उपनिषद्गत वाक्यका शेष बी इसीहीं अर्थकूं कहै है, ऐसैं कहै हैं।

११२ प्रवेशके वाक्यतैं जो आत्माकी एकता कही, सो अयुक्त है; काहेतैं, ता वाक्यकूंहीं असंगत अर्थवाला होनेतैं; ऐसैं पूर्ववादी शंका करै है। इहां यह अर्थ है:— आत्माकूं अशरीर होनेतैं मस्तकके विदारणका कर्तापना, औ सर्वगत होनेतैं प्रवेश नहीं संभवै है।

११३ इहां क्या प्रतीयमान अर्थविषै असंगतपना है, अथवा कहनेकूं इच्छित अर्थविषै असंगतपना है? ये दोनूं विकल्प हैं। तिनमैं प्रथमपक्षविषै सर्व वेदकूं बी असंगत अर्थवाला होनैकरि सर्वकूं बी अप्रमाणपना होवैगा, औ वेदकूं सो अप्रमाणपना युक्त नहीं है; ऐसैं सिद्धांती कहै हैं। इहां यह अर्थ है:— चक्षु आदिक करणोंसैं ईक्षण प्रसिद्ध है। मृत्तिका आदिक उपादानवालेकूंहीं स्रष्टापना है। दोनूं हस्तनसैंहीं ग्रहण करना, औ अपने अवयवनसैं जोडना होवै है; सो अशरीरकूं असंगत है। शस्त्र आदिक मूर्तसैं विदारण होवै है, अमूर्तसैं नहीं। मुख आदिकनतैं अग्नि आदिककी

सिद्धांती कहै हैः—हे पूर्ववादी! यह तैनैं अत्यंत अल्प प्रश्न किया, औ इहां बहुत प्रश्न करनेकूं योग्य है। करणरहित हुया ईक्षणकूं करता भया। कछु वी वस्तुकूं अग्रहण करिके लोकनकूं सृजता भया। जलनतैं पुरुषकूं ग्रहणकरिके ताकूं अपने अवयवनसैं योजना करता भया। ताके चिंतनसैं मुख आदिक भेदकूं पावता भया। औ मुख आदिकनतैं अग्नि आदिक लोकपाल भये। औ तिनके मध्य क्षुधा आदिकनकी योजना भई औ तिनोंनैं स्थानकी प्रार्थना करी। तिनके अर्थ गौ आदिक शरीरनका दिखावना, औ तिनका यथायोग्य स्थानकेतांई प्रवेश औ उत्पन्न किये अन्नका पलायन, औ वाणी आदिककरि ता अन्नके भक्षणकी इच्छा; यह सर्व, सीमाके विदारण औ प्रवेशके तुल्यहीं है ॥ ननु[११४], तब यह सर्व अघटित (अप्रमाण) होहू? [११५]सो कथन बनै नहींः—काहेतैं

उत्पत्तिके हुये ताका दाह आदिक होवैगा। मूर्तरूप वस्तुकाहीं अन्यसैं जोडना करनेकूं शक्य है, क्षुधा आदिक अमूर्तका नहीं। अग्नि आदिकनकी शरीरकी सृष्टितैं पूर्व प्रार्थनाका असंभव है। तिसकालविषै गौ आदिक शरीरके अभावतैं, औ आपकूं अशरीर होनेतैं, तिनके गौ आदिकनके ल्यावनेका असंभव है। तिन देवनकूं अशरीर होनेकरि अमूर्तरूप होनेतैं, तिनके प्रवेशका असंभव है। अचेतनरूप अन्नके पलायनका असंभव है। वाक् आदिकनकूं हस्त आदिककी न्यांई वस्तुके ग्रहणके असामर्थ्यतैं तिनकरि ग्रहण करनेकी इच्छाका असंभव है। इस रीतिसैं सर्व प्रकरण असंगत अर्थवाला होवैगा।

११४ तब सर्व अप्रमाण होहू, ऐसैं कोइक वादी शंका करै है।

११५ औ कहनेकूं इच्छित अर्थविषै असंगति नहीं है, ऐसैं द्वितीयपक्षकूं सिद्धांती दूषण देते हैं। इहां यह अर्थ हैः—लोकविषै आपहीं द्वारकूं करिके, अनेक ग्रहणविषै स्थित भये देवदत्तकी एकताके देखनेतैं, ताकी न्यांई इहां आत्माकी एकता है, ऐसैं बोध करनेकूं विदारण औ प्रवेश कहिये

इहां आत्माके बोधरूप अर्थमात्रकूं कहनेकूं इच्छित होनेतैं सर्व यह अर्थवाद है, यातैं दोष नहीं । [११६]अथवा मायावीकी न्यांई महामायावी सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् देव, आख्यायिका आदिक प्रपंचविषै लोककी न्यांई सुखसैं वक्ताके प्रतिपादनअर्थ औ श्रोताके निश्चय अर्थ सर्व इस चराचरकूं रचता भया, यह पक्ष अत्यंत युक्त है । [११७]जातैं सृष्टिकी आख्यायिका आदिकके ज्ञानतैं कछु बी फल नहीं

हैं; परंतु सो अर्थ कहनेकूं इच्छित नहीं; काहेतैं, तिनकूं कहनेकूं इच्छित आत्माकी एकताके बोधके द्वार होनेकरि कथन किये होनेतैं, उत्तमतारूप अर्थका द्वार होनेकरि यज्ञ प्रकरणविषै उक्त वपा (पशुअंगविशेष)के भक्षण आदिककी न्याई अर्थवादरूप हैं।

११६ असत्हीं प्रवेश आदिकका इहां कथन है, ऐसैं अंगीकार करिके; वपाके भक्षण आदिकके वाक्यकी न्याई तिस प्रवेश आदिकके गुणार्थवादपनैकूं कहिके, अब "अग्नि हिमका औषध है" या वाक्यकी न्याई ताके भूतार्थवादपनैकूं अंगीकारकरिके कहै हैं । इहां यह अर्थ है:—मायासैं अघटित बी सर्व घटता है; काहेतैं, ताकूं अघटित अर्थकी घटावनेहारी होनेतैं इस कथनकरि सृष्टि आदिककूं अघटित अर्थरूप होनेतैं गंधर्वनगर आदिककी न्याई मिथ्याहीं है! ऐसैं स्पष्ट करनेकूं अघटित सृष्टि आदिक अर्थ बी श्रुतिनैं दिखाया है, ऐसैं कहा ।

११७ ननु, लोकनकी सृष्टि आदिककूं अन्यप्रमाणके अगोचर होनेकरि अपूर्व होनेतैं, इहां कथन करी जो आख्यायिका है, ताकूं तिस सृष्टि आदिकरूप अर्थकी परायणता होहू ? यह आशंकाकरिके, ताकूं अपूर्वताके हुये बी ताके निश्चयकरि फलके अभावतैं, औ फलवान् अरु अज्ञात (अपूर्व) अर्थविषै श्रुतिके तात्पर्यके नियमतैं । अन्यथा रुद्रके रोदन आदिककूं बी अपूर्व होनैकरि, तहां बी तात्पर्यकी प्राप्तितैं सृष्टि आदिकविषै श्रुतिका तात्पर्य नहीं है, ऐसैं कहै हैं ।

अंगीकार करिये है, औ ११८ ऐक्य आत्मस्वरूपके ज्ञानतैं तो अमरण-भावरूप फल सर्व उपनिषदनविषै प्रसिद्ध है; औ "सर्व भूतनविषै समानस्थित परमेश्वरकूं" इत्यादि गीतास्मृतिके वाक्यनविषै बी प्रसिद्ध है ॥ ११९ ननु, जीव ईश्वर औ निरुपाधिक ब्रह्म, इस भेदतैं आत्मा तीन हैं। तिनमैं भोक्ता कर्ता संसारी जीव एक आत्मा है, सो सर्वलोक औ शास्त्रविषै प्रसिद्ध है। औ अनेक प्राणिनके कर्मफलके उपभोगके योग्य अनेक स्थानवाले जे लोक औ देह, तिनके रचनेरूप शास्त्रके अनुसार पूर्व (याके प्रथम वाक्यविषै) कथन किये लिंगकरि पुर औ अट्टालिका आदिककी रचनारूप लिंगसैं ताकी कुशलताके ज्ञानवाले ताके कर्ता तक्षा (शिल्प) आदिककी न्यांई जाननेमैं आवता है, ऐसा सर्वज्ञ जगत्का कर्ता अद्वितीय चेतनरूप जो ईश्वर है, सो द्वितीय आत्मा जानिये है। औ "जिसतैं वाणियां निवर्त्त होवै हैं" "नेति नेति" इत्यादि शास्त्रविषै प्रसिद्ध औ उपनिषदनसैं प्रतिपादित जो शुद्ध ब्रह्मरूप पुरुष है, सो तृतीय आत्मा है। ऐसैं ये तीन आत्मा परस्पर विलक्षण हैं। तहां एकहीं अद्वितीय असंसारी आत्मा है, यह कैसैं जाननेकूं शक्य है? १२० तहां

---

११८ आत्माके निश्चयविषै तो फलके देखनेतैं तिसविषैहीं श्रुतिकी परायणता युक्त है, ऐसैं कहै हैं। इहां यह अर्थ है:—"अरे! इतनाही निश्चयकरि अमृतभाव है" "ताकूं ऐसैं जाननेवाला इहां अमृत होवै है" "विद्वान् अमृत होता भया" इत्यादिक श्रुतिनविषै ज्ञानतैं अमृतभाव (मोक्षरूप फल) प्रसिद्ध है।

११९ आत्माकी एकताहीं इस अध्यायका अर्थ है, ऐसैं कहिके, अब याहीकूं स्थिर करनेकूं वादी आशंका करै है।

१२० तहां जीवकी जो कर्तापना औ भोक्तापना आदिकरूप विलक्षणता कही, सो असिद्ध है; काहेतैं, ता जीवकूं अन्यप्रमाणका अविषय होनेकरि तिस धर्मवान्‌पनैकरि प्रमाज्ञानका विषय करनेकूं अशक्य होनेतैं। या हेतुतैं जीव औ परमात्माका भेद नहीं है, या अभिप्रायसैं सिद्धांती समाधान करै हैं। इहां यह अर्थ है:—ता जीवकूं ज्ञेयताके अभाव हुये क-

सिद्धांती कहै हैं:—तिन तीनो आत्माविषै प्रथम जीवहीं प्रमाणका अविषय होनेकरि कर्ताभोक्तापनैरूप धर्मकरि युक्त कैसैं जाननेमैं आवैगा? किसीप्रकार बी आवै नहीं ॥ ननु, "श्रोता है, मंता है, द्रष्टा है, आदेष्टा (वर्णरूप शब्दका वक्ता) है, आघोष्टा (ध्वनिरूप शब्दका वक्ता) है, विज्ञाता है; प्रज्ञाता है, ऐसैं जानिये है? [१२१] तहां सिद्धांती कहै हैं:—जो श्रवणादिकका कर्ता होनेकरि जानिये है, सोई "अमत हुया मंता है । अविज्ञात हुया विज्ञाता है" ऐसैं अन्य श्रुतिविषै निषेध किया है । तैसैं "मतिके मंताकूं मनन करना नहीं, औ विज्ञातिके विज्ञाताकूं जानना नहीं" इत्यादिरूप यह अन्य श्रुति है ॥ [१२२] ननु, जब आत्मा सुखादिककी न्याई प्रत्यक्ष प्रमाणसैं जाननेमैं आवै, तब ताका श्रुतिविषै निषेध करना सत्य है, औ "मतिके मंताकूं मनन करना नहीं" इत्यादि वाक्यसैं प्रत्यक्ष ज्ञानका निवारण करिये है, परंतु श्रवणादिरूप लिंगसैं आत्मा जानिये है; तहां काहेतैं निषेध होवैगा? [१२३] तहां सिद्धांती कहैहैं:—

र्तापनै आदिक धर्मसैं युक्त होनैकरि बी सो जाननेकूं शक्य नहीं है ।

१२१ पूर्ववाक्यविषै "सो यह अश्रुत है, अमत है, अविज्ञात है" ऐसैं ताकी ज्ञेयताके निषेधतैं तिसविषै सो ज्ञेयपना विरुद्ध है, ऐसैं कहै हैं ।

१२२ दोनूं श्रुतिनके प्रमाणताकी तुल्यतातैं निषेधके असंभवसैं प्रत्यक्षप्रमाणसैं अज्ञेयपना अनुमानसैं ज्ञेयपना कहिये है ।

१२३ आत्माविषै एककालमैं दोनूं ज्ञानोके असंभवतैं, श्रवणादि कालविषै मनन औ विज्ञानके असंभवतैं, श्रवणादिककरि मनन औ विज्ञानरूप आत्माकूं विषय करनेवाला, वा अन्यकूं विषय करनेवाला अनुमितिज्ञान नहीं संभवै है, ऐसैं सिद्धांती कहै हैं । इहां यह अर्थ है:—श्रवणक्रियाकेहीं साथि वर्तमान होनेतैं श्रवणादिक्रियारूप आधारवाले होनेतैं आत्माविषै वा अन्यविषै ताकी मनन औ विज्ञानरूप क्रिया नहीं संभवै हैं । इस प्र-

श्रवणादिरूप लिंगसैं बी आत्मा कैसैं जानिये है? किसीप्रकारसैं नहीं। जहांलगि जब आत्मा श्रवण करनेकूं योग्य है, ऐसा शब्द सुनता है तब; ताकूं श्रवणादि क्रियाकरिहीं सहित वर्तमान होनेतैं (श्रवणादि क्रियाका आधार होनेतैं) ताकूं आपविषै वा परविषै मनन औ विज्ञानरूप क्रिया (अनुमितिप्रमाण) नहीं संभवै है।[१२४] तैसैं अन्यठिकानै बी मनन आदिक क्रियाविषै अन्य मनन आदिक क्रिया बी संभवै नहीं। औ श्रवणादि क्रिया जो हैं, वे अपने विषयनविषैहीं हैं; कहिये अपने विषयकूंहीं विषय करनेवालीयां हैं, परंतु अपने आश्रयकूं विषय करनेवालीयां नहीं। [१२५] जोतैं मनन करनेयोग्य वस्तुतैं अन्यठिकानैं (आत्माविषै) मनन कर्त्ताकी मननक्रिया नहीं संभवैहै; काहेतैं कुठार आदिककी क्रियाके काष्ठतैं अन्यठिकानैं अदर्शनतैं। यातैं मननके अविषय औ मननकर्ता आत्माविषै मननक्रिया संभवै नहीं॥ [१२६] ननु, मनकूं सर्वहीं मनन करनेकूं योग्य है, यातैं आत्माविषै बी मननकी विष-

---

करणविषै मनन औ विज्ञानशब्दकरि अनुमितिज्ञान कहिये है; काहेतैं इहां आत्माकूं ता अनुमितिके विषयताकी शंका कथन करी है यातैं।

१२४ तब श्रवणोके एककालविषै असंभव हुये अन्यकूं विषय करनेवाली मननक्रियासैं आत्मा माननेकूं योग्य है? यह आशंकाकरिके, विजातीय दोनूं क्रियाकी न्याई सजातीय दोनूं क्रिया बी एककालविषै नहीं संभवै हैं; ऐसैं कहे हैं।

१२५ किंवा "मतिके मंताकूं मनन करना नहीं" ऐसैं आत्माकूं मनकी विषयताके निषेधतैं, मननकर्त्ता आत्माविषै मननक्रिया नहीं संभवै है; ऐसैं कहे हैं। इहां कुठार आदिककी क्रियाके काष्ठतैं अन्यठिकानै व्यापारके न देखनेतैं, यह अर्थ है।

१२६ ननु, "मनके अधीन यह सर्व होता गया" इस श्रुतितैं सर्वकूं मनकी विषयतातैं आत्माविषै बी मननकी विषयताहीं है? ऐसैं पूर्ववादी शंका करै है।

यता होवैगी? तहां[127] कहैहैं:—सत्य ऐसैंहीं है! तथापि सर्व बी मननकी विषय, मननकर्ताविना मनन करनेकूं शक्य नहीं है। [128] जब ऐसैं है तब क्या सिद्ध होवै है? तहां सिद्धांती कहै हैं कि, इहां यह सिद्ध होवै है:—जो यह सर्वका मननकर्ता है, सो मनन-कर्ता (मननक्रियाका आश्रय) हीं है, मननका विषय नहीं होवैगा, औ मननकर्ताका दूसरा (अनात्मा) मननकर्ता नहीं है। औ जब सो मननकर्ता आत्मा (अन्यचेतन) सैंहीं मनन करने-योग्य है, तब जिस आत्माकरि मनन करनेयोग्य है, औ जो मनन करनेयोग्य है; सो दोनूं परस्पर भिन्न हैं, यातैं एकहीं शरीरविषै दोनूं आत्मा प्राप्त होवैंगे। एकहीं आत्मा मननकर्ता औ मनन करने योग्य होनेकरि वंश आदिककी न्यांई दोनूं प्रकारसैं खंडित होवैगा, यातैं दोनूं भांति बी असंभवहीं है। जैसैं दोनूं दीपनके परस्पर प्रकाश्य औ प्रकाशकभावका असंभव है तुल्य होनेतैं, ताकी न्यांई। औ मननकर्ताके मनन करने योग्य वस्तुविषै आत्माके मननअर्थ मननरूप व्यापारसैं रहित काल नहीं है। औ जब मननकर्ता बी लिंगसैं आत्माकूं मनन करता है, तब बी पूर्वकी न्याईहीं लिंगसैं मनन करने योग्य आत्मा, औ जो ताका मननकर्ता, वे दोनूं एकहीं शरीरविषै प्राप्त होवैंगे; तातैं इहां बी "सो एक है वा दोप्रकारका है" यह पूर्वउक्त दोष होवैगा॥ [129] ननुं,

१२७ ऐसैं हुये बी मनकूं कारण होनेतैं, औ क्रियाके कर्ता विना असंभवतैं, मनतैं भिन्न मननका कर्ता अवश्य अंगीकार करनेकूं योग्य है; ऐसैं सिद्धांती कहैहैं।

१२८ मननकर्ताकी अवश्यकता होहू, तिसकरि क्या सिद्ध होवै है? ऐसैं पूर्ववादी शंका करै है।

१२९ ऐसैं "अमत है, अविज्ञात है" इस युक्तिसहित श्रुतिकरि सर्वप्रकारसैं आत्माकी ज्ञेयताके अभावतैं, ऐसैं सिद्ध भया। तहां पूर्व-वादी शंका करै है।

जब आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाणसैं नहीं जानिये है, औ अनुमानसैं बी नहीं जानिये है, तब "सो मेरा आत्मा है, ऐसैं जानना" यह कैसैं कहिये है? वा "श्रोता है, मंता है" इत्यादिरूप यह वाक्य कैसैं कहिये है? [130]तहां कहे हैं:—आत्मा, श्रोतापनैं आदिक धर्मवाला नहीं है, काहेतैं, आत्माका अश्रोतापना आदिक श्रुतिविषै प्रसिद्ध है; [131]ईहां क्यूं विषम देखता हैं? हे वादी! [132]यद्यपि तुजकूं विषम नहीं है, परंतु मुजकूं विषम भासता है। कैसैंकि जब यह आत्मा श्रोता है तब मंता नहीं होवैगा, औ जब मंता है तब श्रोता नहीं होवैगा। तहां ऐसैं हुये एक पक्षविषै श्रोता वा मंता है, औ द्वितीय पक्षविषै आत्मा श्रोता नहीं है औ मंता बी नहीं है। तैसैं अन्यठिकानैं (द्रष्टापने औ विज्ञातापनैं आदिकविषै) बी कदाचित् होनेपना है। जब ऐसैं है तब श्रोतापनै आदिक धर्मवाला, औ अश्रोता आदिक धर्मवाला आत्मा है, इस संशयके ठिकाने कैसैं तुजकूं विषमता नहीं भासती है। जैसैं जब देवदत्त चलता है तब स्थित नहीं है, किंतु गंताहीं है; औ जब बैठता है तब सो गंता नहीं है, किंतु स्थितहीं है। जब ऐसैं व्यवस्था है, तब तिसकूं पक्षविषैहीं (क्रमसैं) गंतापना औ स्थितपना है; परंतु गंतापना वा

---

१३० तहां "जानना" इस श्रुतिविषै अन्यके निषेध हुये स्वप्रकाशपनैकरि आत्माका स्वरूपतैं स्फुरणहीं कहियेहै; परंतु विषय होनेकरि वेद्यता नहीं, ऐसैं हम समाधानकूं कहै हैं। या अभिप्रायसैं आत्माके श्रोतापनै आदिककी श्रुतिविषै सिद्धांती समाधानकूं कहै हैं।

१३१ ऐसैं हुये आत्मा श्रोता है, मंता है; औ श्रोता नहीं, मंता नहीं; इस रीतिसैं दोनूं प्रकारके श्रवण हुये श्रोतापनैं आदिक धर्मवालाहीं है, इस प्रकार पीछे विपरीतग्रहण तुजकूं युक्त नहीं; ऐसैं सिद्धांती कहै हैं।

१३२ ननु, लोकप्रसिद्धिके बलतैं अनात्मधर्मताके निश्चयतैं विषमता नहीं है? यह आशंकाकरिके, सिद्धांती निषेध करै हैं।

स्थितपना नित्य नहीं है । ताकी न्यांई आत्माका श्रोतापना आदिक बी नित्य नहीं है । [१३३] इहां वैशेषिक आदिक वादी बी तैसैंहीं देखते हैं । पक्षके प्राप्त हुये श्रोतापनै आदिककरि आत्मा, श्रोता औ मंता इत्यादि नहीं कहिये है । जातैं ज्ञानकूं संयोगसैं जन्यपना औ एककालविषै न होनेपना कहते हैं । औ मैं [१३४] अन्यठिकानैं मनवाला होता भया, तातैं नहीं देखता भया; इत्यादि एक कालविषै ज्ञानका असंभव जो है, सो मनका लिंग है, इस अर्थकूं योग्य देखते हैं । [१३५] जब ऐसैं योग्य होवै तब ऐसैंही होहु; क्या तुह्मारेकूं इष्ट

---

१३३ याके मध्य अभिप्रायके न जाननेवाले वैशेषिक आदिक जे हैं, वे आत्माका श्रोतापना औ अश्रोतापना आदिक दोनूं बी कादाचित्क (अनित्य)हीं होहू, इसप्रकार कहते हैं; ऐसैं कहै हैं ।

१३४ ज्ञानके कादाचित्कपनैविषै औ एककालमैं न होनेविषै क्रमके अनुसार वे प्रमाण कहै हैं । इहां यह अर्थ है:—जब मन न होवै, तब चक्षुरादिक इंद्रियनके एककालविषैहीं रूपादिकनसैं संबंधके हुये एककालविषैहीं सर्व इंद्रियनसैं सर्व विषयनका ज्ञान होवैगा; काहेतैं, इंद्रिय औ विषयनके संबंधरूप सामग्रीके सद्भावतैं, औ तैसैं एककालविषै सर्व विषयनका ज्ञान नहीं होवै हैं; यातैं क्रमकरि तिस तिस इंद्रियसैं संयोगी मन अंगीकार करनेकूं योग्य है । तैसैं हुये एककालविषै सर्व इंद्रियनसैं मनके संयोगके अभावतैं, एककालविषै सर्व विषयनका ज्ञान नहीं होवै है । यातैं एककालविषै रूपादिक सर्व विषयनके ज्ञानके असंभवरूप लिंगसैं, मन है, ऐसैं कहते हुये वैशेषिक आदिक एककालविषै सर्वके ज्ञानोंका असंभव है, ऐसैं कहते हैं ।

१३५ वैशेषिक आदिकके मतके सिद्धांतीकरि दिखाये हुये तब वैशेषिक आदिककी रीतिसैं दोनूं श्रुतिनके संभवतैं, औ आत्माके श्रोतापनै आदिक धर्मकी सिद्धितैं, तैसैंहीं होहू ? ऐसैं पूर्वपक्षी वा तटस्थी, सिद्धांतीकेप्रति शंका करै है । इहां यह अर्थ है:—जब ऐसैं युक्त होवै तब ऐसैंहीं होहू, क्या तुह्मारेकूं इष्ट नहीं है ?

नहीं है? तहां सिद्धांती कहै हैं:—ऐसैं [136]जब तुजकूं इष्ट है तब होहू; परंतु श्रुतिका अर्थ तो नहीं संभवै है ॥ क्या? श्रोता है, मंता है; इत्यादिरूप श्रुतिका अर्थ नहीं है? [137]तहां कहै हैं:—"न श्रोता है, न मंता है" इत्यादि श्रुतिवचनतैं आत्माकूं श्रोतापनै आदिक धर्म-करि रहितपना है ॥ [138]ननु, पक्ष (विकल्प)विषै प्राप्त होनेकरि तु-मनैं निषेध किया? [139]सो बनै नहीं:—काहेतैं, आत्माका जो अ-श्रोतापना आदिक है, सो नित्य है; काहेतैं, "श्रोताके श्रवणका विनाश नहीं है" इत्यादि श्रुतिकरि ताके अंगीकारतैं ॥ जब ऐसैं है तब श्रोतापना आदिक नित्यहीं है, ऐसैं अंगीकार हुये प्रत्यक्ष प्रमाणसैं विरुद्ध एककालविषै ज्ञानका असंभव, औ आत्माके अ-ज्ञानका अभाव कल्पित होवैगा, औ सो अनिष्ठ है? [140]तहां सिद्धां-

---

१३६ आत्माके कादाचित्क ज्ञानसैं श्रोतापनै आदिक धर्मवान्पनैकूं श्रुतिकरि असंमत होनेतैं, सो योग्य नहीं है; ऐसैं सिद्धांती ता पक्षकूं दूषण देते हैं।

१३७ "श्रोता नहीं है" इस श्रुतिकरि विशेषतैं तीनकालविषै बी श्रोतापनै आदिक धर्मकी रहितताके प्रतिपादनतैं तिस धर्मकरि युक्तपना असंमतहीं है, ऐसैं सिद्धांती उत्तर कहै हैं।

१३८ "जब यह श्रोता है" इत्यादि वाक्यकरि श्रोतापनै आदिकके पक्षविषै प्राप्त होनेकूं तुह्मारेकरिहीं कथन किया होनेतैं, औ वैशेषिकके प-क्षके दिखावनेकी वेलाविषै कादाचित्क ज्ञानसैं ताके प्रतिपादनतैं पक्षविषै प्राप्त श्रोतापनै आदिक औ ताके अभावकी विषय होनेकरि दोनूं श्रुतिनके संभवकूं पूर्ववादी शंका करै है।

१३९ पक्ष (उभयरूपता)के असंबंधी श्रोतापनै औ ताके अभावकी श्रुतिनकरि अपनी प्रीतिसैं प्रतीतितैं पक्षके संबंधी होनेकरि तिनका संकोच युक्त नहीं है, ऐसैं सिद्धांती अपने अभिप्रायकूं वर्णन करते हुये कहै हैं।

१४० इहांसैं सिद्धांती, उक्त पूर्वपक्षका समाधान करै हैं। इहां यह

ती कहै हैं:—दोनूं दोषनका संभव नहीं है; काहेतैं, आत्माकूं श्रवण आदिक औ श्रोतापनैं आदिक धर्मवान्‌पनैंकी श्रुतितैं । औ अनित्य अरु मूर्तरूप अरु संयोगवियोगरूप धर्मवाले चक्षु आदिकनकी दृष्टि आदिककूं अनित्यपनाहीं है । जैसैं अग्नि आदिकका जलावना जो है, सो तृण आदिकके संयोगसैं जन्य होनेतैं अनित्य है, ताकी न्याई । परंतु नित्य अमूर्तरूप अरु संयोग औ विभागरूप धर्मसैं रहित आत्माकूं संयोगसैं जन्य दृष्टि आदिकरूप अनित्य धर्मवान्‌पना नहीं संभवै है, तैसैं "द्रष्टाकी दृष्टिका लोप नहीं है" इत्यादिरूप श्रुति है । [१४१]जब ऐसैं है तब दृष्टि दो हैं, तिनमैं चक्षुकी दृष्टि अनित्य है, औ आत्माकी दृष्टि नित्य है । औ तैसैं श्रुति (श्रवण) दो हैं, तिनमैं श्रोत्रकी श्रुति अनित्य है, औ आत्मस्वरूपकी श्रुति नित्य है । तैसैं मति (विज्ञाति) बी बाह्य औ अबाह्य हैं । [१४२]ऐसैं हुयेहीं "दृष्टिका द्रष्टा है, श्रुतिका श्रोता है" इत्यादिरूप यह श्रुति, घटित होवै है । लोकविषै बी चक्षुके तिमिरके आवने औ जानेविषै दृष्टि नाश भई औ दृष्टि उत्पन्न भई, ऐसैं चक्षुकी दृष्टिका अनित्यपना प्रसिद्ध है । तैसैं श्रुति औ मति आदिकनका बी है । औ आत्माकी दृष्टि आदिकका नित्यपनाहीं प्रसिद्ध है । जातैं लोकविषै निमीलित नेत्रवाला पुरुष कहता है कि:—आज मैनैं स्वप्नविषै भ्राता देख्या । तैसैं बधिरभावकूं प्राप्त भया पुरुष कहताहै कि:—आज मैनैं स्वप्नविषै मंत्र सुन्या; इत्यादि प्रसिद्ध है । जब चक्षुके संयोगसैं जन्यहीं आत्माकी नित्य

अर्थ है:—एककालविषै ज्ञानका संभव औ अज्ञानका सद्भाव, इन दोनूं दोषनका संभव नहीं है ।

१४१ नित्य औ अनित्य भेदतैं, दोनूं दृष्टिके अंगीकारविषै पूर्ववादी गौरव दोषकी शंका करै है ।

१४२ श्रुतिकी प्रमाणतातैं दोनूं प्रकारकी दृष्टिके अंगीकारविषै गौरव प्रमाणकरि सिद्ध (अकिंचित्कर) है, ऐसैं सिद्धांती कहै हैं ।

दृष्टि होवै, औ ता चक्षुसंयोगके नाश हुये नाश होवै, तब निमीलित नेत्रवाला पुरुष, स्वप्नविषै नील पीत आदिक पदार्थनकूं नहीं देखेगा। औ "द्रष्टाकी दृष्टिका लोप नहीं है" इत्यादिरूप यह श्रुति अघटित होवैगी। औ "जिसकरि स्वप्नकूं देखता है, सो चक्षु, पुरुषविषै है" इत्यादिरूप यह श्रुति, नित्य आत्मदृष्टिकी औ बाहिरकी अनित्य दृष्टिकी ग्राहक है। बाह्यदृष्टिकूं उत्पत्ति औ विनाश आदिक अनित्य धर्मवाली होनेतैं ताकी ग्राहक आत्मदृष्टिकूं ताकी न्याई प्रकाशकपना औ अनित्यपना आदिक जो लोककूं प्रतीत होवै है, सो भ्रांतिरूप निमित्तसैं है; यह युक्त है। जैसैं भ्रमण आदिक धर्मवाले अलात आदिक वस्तुकूं विषय करनेवाली दृष्टि बी भ्रमते हुयेकी न्याई होवै है, ताकी न्याई लोककी दृष्टि है। तैसैं "ध्यान करते हुयेकी न्याई, औ लीला करते हुयेकी न्याई होवै है" यह श्रुति कहती है। तातैं आत्मदृष्टिकूं नित्य होनेतैं एककालविषै होना वा एककालविषै न होना नहीं है, बाह्य अनित्य दृष्टिरूप उपाधिकें वशतैं, लोककूं औ तार्किकनकूं वेदके संप्रदायकरि रहित होनेतैं "अनित्य आत्माकी दृष्टि है" यह भ्रांति घटितहीं है। औ जीव ईश्वर अरु परमात्माके भेदकी कल्पना इसी भ्रांतिरूप निमित्तवालीहीं है। औ जितने[१४३] वाणीके नाममय औ मनके रूपमय भेद जहां (जिस आत्माविषै) एक होवै हैं; ताकूं विषय करनेवाली (ताकी स्वरूपभूत) याहीतैं नित्य

---

१४३ किंवा "आत्मारूप ज्योतितैंहीं यह है" "यह आत्मा ब्रह्म, सर्वका अनुभवरूप प्रज्ञानघनहीं है" इत्यादि श्रुतिनतैं आत्माकूं नित्य दृष्टिरूप होनेतैं, औ "सर्व प्रजा जहां एक होवै हैं" इत्यादिक श्रुतिकरि सर्वकल्पनाके तन्मात्रपनेकरि तातैं भिन्नताकरि अभावके कथनतैं, आत्माकूं निर्विशेषरूप होनेतैं तिस आत्मारूप दृष्टिकूं बी निर्विशेषरूप होनेतैं; तिस आत्मारूप नित्य दृष्टिविषै है वा नहीं है! इत्यादिक सर्व कल्पना भ्रांतिरूप निमित्तसैंहीं हैं, ऐसैं कहै हैं।

निर्विशेष (भेदरहित) दृष्टिकी "है," ऐसी कल्पना आस्तिकनकूं है; औ "नहीं है" ऐसी कल्पना नास्तिकनकूं है; औ "है, नहीं है," ऐसी कल्पना दिगंबर मतवालेकूं है, औ अन्योकूं बी यथायोग्य सावयवभाव आदिककी कल्पना है, सो सर्व बी तैसैं (भ्रांतिरूप निमित्तवालीहीं) है। केईक[१४४] वादीनके मतविषै आत्मा है, ऐसी कल्पना है; औ किनोके मतविषै नहीं है, ऐसी कल्पना है; औ किनोके मतविषै है अरु नहीं है ऐसी कल्पना है; औ किनोके मतविषै नानागुणवाला है, औ किनोके मतविषै गुणरहित है; औ किनोके मतविषै जानता है, अरु नहीं जानता है; औ किनोके मतविषै क्रियावाला है, औ किनोके मतविषै क्रियारहित है; औ किनोके मतविषै फलवाला है, औ किनोके मतविषै फलरहित है; औ किनोके मतविषै कर्म अरु वासनारूप बीजवाला है, औ किनोके मतविषै बीजरहित है; औ किनोके मतविषै सुखरूप है, औ किनोके मतविषै दुःखरूप है; औ किनोके मतविषै मध्यम (देहतुल्य आकारवाला) है, औ किनोके मतविषै अमध्यम (अणु वा विभु) है; औ किनोके मतविषै शून्य है, औ किनोके मतविषै अशून्य है; औ किनोके मतविषै यह अन्य है, औ मैं अन्य हूं; ऐसी कल्पना है। ऐसी कल्पनाकूं मनवाणीके अगोचर आत्माविषै जो कल्पना करनेकूं इच्छता है, सो निश्चयकरि आकाशकूं बी चर्मकी न्याई वेष्टन करनेकूं इच्छता है, औ सोपान (पगतीया)की न्याई आकाशके तांई दोनूं पादनसैं चढनेकूं इच्छता है, औ जलविषै मत्स्यनके पादकूं औ आकाशविषै पक्षीनके पदकूं देखनेकूं इच्छता है। "ने-

१४४ ननु, वे तार्किक आत्माके हैपनै आदिकनकूं युक्तिरूप तर्कसैं साधतेहैं, यातैं तिनकूं भ्रांतिरूप निमित्तकरि युक्तपना नहीं है? यह आशंकाकरिके, श्रुतिविरुद्ध होनेतैं, औ आत्माविषै असंभवतैं, औ तिन कल्पनाके सद्भाव हुये मोक्षके असंभवतैं, तिन तार्किकनकी कल्पना प्रमाणके मार्गकूं आरूढ होती नहीं, ऐसैं कहै हैं।

ति नेति " औ " जिसतैं वाणियां निवर्त होवै हैं " इत्यादि श्रुतिनतैं औ " कौंन साक्षात् जाने ?" इस मंत्रके उच्चारणतैं आत्माकूं मन वाणीकी अविषयता सिद्ध है ॥ [१४५] ननु, तब ताका "सो मेरा आत्मा है " ऐसा ज्ञान कैसैं होवैगा ? औ "सो मेरा आत्मा है" ऐसैं ता आत्माकूं मैं किसप्रकारसैं जानूं ? ता प्रकारकूं कहो । इहां [१४६] सिद्धांती आख्यायिकाकूं कहै हैं:—कोइक प्रसिद्ध मूढ मनुष्य था, ताकूं किसीबी अपराधके हुये केइक पुरुषोनैं " तुजकूं धिक्कार है, तूं मनुष्य नहीं हैं " ऐसैं कहा । तब सो मूढ होनेकरि आपके मनुष्यपनैकी प्रतीति करनेकूं किसी अन्य पुरुषके पास जायके कहता भया किः—तुम, मैं कौंन हूं, यह कहो । तब सो ताकी मूढताकूं जानिके कहता भया किः—तुजकूं क्रमसैं बोध करूंगा । पीछे स्थावर आदिक स्वरूपभावकूं निषेध करिके, तूं अमनुष्य नहीं हैं; ऐसैं कहिके उपराम होता भया । पीछे सो मूढ पुरुष ताकेप्रति कहता भया कीः—आप मुजकूं बोध करनेकूं प्रवर्त भये हो, औ चुप होते भये, क्यूं बोध करते नहीं ? तूं अमनुष्य नहीं हैं, ऐसैं ताके भावतैं तैसैंहीं वचनकूं कहे हुये जो अपने मनुष्यपनैकूं नहीं जानता है; सो मनुष्य है, ऐसैं कहे हुये बी अपने मनुष्यपनैकूं कैसैं जानैगा ? तातैं शास्त्रके अनुसार उपदेशहीं आत्माके बोधका प्रकार है, अन्य नहीं । जातैं अग्नितैं जलावने योग्य जो तृ-

---

१४५ आत्माकूं वाणी औ मनकी अविषयताके हुये श्रवण औ मननके असंभवतैं, आत्माका ज्ञान नहीं संभवै है; ऐसैं वादी शंका करै है ।

१४६ "ऐसैं नहीं, ऐसैं नहीं " इत्यादिक श्रुतिनके उदाहरणकरिहीं अन्यके निषेधसैंहीं तिस स्वप्रकाशका बोध होवै है; ऐसैं आत्मज्ञानके प्रकारकूं कथन किया होनेतैं, इहां अन्यप्रकारके अभावतैं इसीहीं प्रकारकरि अविषय होनेकरि आत्मा जाननेकूं योग्य है, ऐसैं मानिके सिद्धांती उपहाससहित उत्तर कहै हैं ।

णादिक, सो अन्य किसीतैं बी जलावनेकूं शक्य नहीं । याहीतैं शास्त्र जो है सो आत्मस्वरूपकूं बोधन करनेकूं प्रवृत्त हुया अमनुष्यपनैके निषेधकी न्याई, "नेति नेति" ऐसैं कहिके उपराम होवै है। तैसैं पीछे "अबाह्य" "यह सर्वका अनुभवरूप आत्मा ब्रह्म है, यह अनुशासन (उपदेश) है" "सो तूं हैं," "जहां तो इसकूं सर्व आत्माहीं होता भया, तहां किसकरि किसकूं देखेगा?" इत्यादिक शास्त्र बी आत्माके वेद्यपनैकूं निषेध करै है । जहां लगि यह पुरुष ऐसैं उक्तप्रकारके इस आत्माकूं नहीं जानता है, तहांलगि यह बाह्य अनित्य दृष्टिरूप उपाधिकूं आत्मापनैकरि जानिके अविद्यासैं उपाधिके धर्मनकूं आपके धर्म मानता हुया, ब्रह्मासैं आदिलेके देव तिर्यक् औ नरकयोनिरूप स्थानोविषै फेरिफेरि आवृत्तिकूं पावता हुया; अविद्या काम औ कर्मके वशतैं संसारकूं पावता है । सो ऐसैं संसारकूं पावता हुया ग्रहण किये देह औ इंद्रियके संघातकूं त्यागता है, त्यागिके अन्य संघातकूं ग्रहण करता है । वारंवार ऐसैंहीं नदीके प्रवाहकी न्याई जन्ममरणरूप बंधके अनाशकरि युक्त वर्तमान हुया, किन अवस्थाकरि युक्त वर्तता है? इसी अर्थकूं वैराग्यके अर्थ दिखावती हुई श्रुति कहैहै:—यैंहहीं अविद्या; काम औ कर्मवान् जीव, यज्ञादि कर्मकूं करिके इस मृत्युलोकतैं धूम आदिकके क्रमसैं चांद्रमस (स्वर्ग) लोककूं पायके, कर्मके क्षयवाला हुया वृष्टि आदिकके क्रमसैं इस भूमिलोककूं पायके अन्नरूप हुया, पुरुष (पिता)रूप अग्निविषै होमकूं पाया है । तिस पुरुषविषै प्रसिद्ध यह संसारी, रस आदिक धातुनके क्रमसैं प्रथम

---

१४७ इहां यह भाव है:—जीवकी अवस्थारूप तीन जन्मकू अत्यंत ग्लानिरूप होनेतैं, ताके विचारविषै वैराग्य होवै है ।

१४८ "पुरुषविषै यह प्रथमतैं गर्भ होवै है" इस वाक्यविषै इदं (यह) शब्दके अर्थकूं कहै हैं । इहां यह अर्थ है:—जो मस्तककूं विदारण करिके, तहां प्रवेश करिके स्थित है, सो "यह" ऐसैं कहिये है ।

तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति । यथा स्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति । साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥ २ ॥

वीर्यरूपसैं गर्भ होवै है । ताकूं कहै हैं:—जो यह पुरुषविषै रेत (वीर्य) है, तिस रूपसैं होवै है । औ सो यह रेत, अन्नमय पिंडकें रसादि धातुरूप सर्व अंगनतैं शरीरका साररूप तेज उपज्या है, सो पुरुषका आत्मारूप होनेतैं आत्मा है । ता रेतरूपसैं गर्भरूप भये आत्मा (आप)कूं आत्मा (शरीर) विषैहीं धारता है । ता रेत-कूं जब (जिस कालविषै ऋतुमती भार्या होवै तिसकालविषै) ता स्त्री-रूप अग्नि-विषै स्त्रीके ताईं गमन करता हुया सिंचन करै है, तब पिता तिस इस आपके गर्भरूप रेत-कूं जन्म देता है । या संसारी-का वीर्यके सेचनकालविषै जो ता पुरुषके स्थानतैं निकसना है, सो प्रथम जन्म (प्रथम अवस्थाका प्रकटपना) है ॥ २ ॥

टीका:—भार्याविषै रेतकूं सिंचन करैहै, इस अर्थविषै “ यह आत्मा (पुरुष), इस (अपने रेतरूप) आत्माकूं इस (भार्यारूप) आत्माके ताईं देताहै ” यह वाक्य प्रमाण है । [१४९]सो रेत जिस स्त्री-विषै सेचन किया है, तिस स्त्रीके स्वरूपसैं अभिन्नताकूं पावताहै; जैसैं पिताके स्वरूपसैं अभिन्नताकूं पायाथा तैसैं । औ जैसैं अपना (स्त्रीका) स्तनादिरूप अंग आपके स्वरूपसैं अभिन्नताकूं पाया है, तैसैंहीं अभिन्नताकूं पावता है । तिस हेतु-तैं सो गर्भ इस माता-कूं पिटका (शरीरविषै उत्पन्न भये व्रणरूप ग्रंथिविशेष)

---

१४९ ननु, स्त्रीके शरीरविषै प्रवेशकूं पाया पुरुषका वीर्य, स्त्रीकूं शरीरविषै लगे बाणकी न्याईं उपद्रवकारी होवैगा ? यह आशंका मनमैं ल्याय-के, “ सो वीर्य स्त्रीके आत्मभावकूं पावता है ” इत्यादिरूप यह वाक्य कहा है, ताका अब व्याख्यान करै हैं ।

सा भावयित्री भावयितव्या भवति । तं स्त्री गर्भं बिभर्त्ति । सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । स यत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । आत्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३ ॥

आदिककी न्याई नाश करता नहीं । जातैं स्तन आदिक अपने अंगकी न्याई आत्मभावकूं पाया है, तातैं सो रेत, माताकूं बाध करता नहीं । सो गार्भिणी, ऐसैं इस गर्भरूप भर्ता-के इस आत्माकूं इहां (उदरविषै) प्रवेशकूं पाया जानिके पालन करै; कहिये, गर्भसैं विरुद्ध भोजन आदिकके परित्यागकूं औ गर्भके अनुकूल भोजन आदिकके उपयोगकूं करै ॥ २ ॥

टीकाः–[१५०] सो गर्भरूप भर्ताके स्वरूपकी पालन करनेहारी गर्भिणी, भर्ताकरि रक्षण करनेकूं योग्य होवै है । जातैं लोकविषै उपकारके प्रतिउपकार कियेविना किसीका किसीसैं बी संबंध संभवै नहीं, तातैं सो गर्भिणी, भर्ताकरि रक्षण करनेकूं योग्य है । ता गर्भकूं स्त्री, जन्मतैं पूर्व उक्त गर्भधारणके विधानसैं धारण करै है । सो पिता, जन्मतैं पूर्वहीं उत्पन्न होनेवाले कुमारकूं औ जन्मतैं पीछे उत्पन्न भये कुमारकूं जातकर्म आदिकसैं जो पालन करता है, सो आपकूंहीं पालन करै है; कहिये, पिताका आत्मा (शरीर) हीं पुत्ररूपसैं जन्मता है । तैसैं "पति जो है सो गर्भरूप होयके जायारूप माताके ताईं प्रवेश करता है । तिस जायाविषै फेर नवीन होयके दशममासविषै जन्मता है" यह वाक्य कहा है ।

---

१५० सो गर्भिणी ता गर्भरूप भर्ताका बी रक्षण करै है, यातैं सो भर्ताकरि रक्षण करनेकूं योग्य है, ऐसैं कहै हैं ।

सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यः कर्म्मभ्यः प्रतिधीयते । अथास्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति । स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते । तदस्य तृतीयं जन्म । तदुक्तमृषिणा ॥ ४ ॥

सो किस अर्थ आपकूं पुत्ररूपसैं उपजायके पालन करै है ? तहां कहिये हैः—इन पुत्रपौत्रादिरूप लोकनकी संतति (अविच्छेद) अर्थ पालन करै है । जातैं जब पुत्रके उत्पादन आदिककूं नहीं करै, तब ये लोक विच्छेदकूं पावैंगे । औ जातैं वे ये लोक, पुत्रके उत्पत्ति आदिक कर्मके अविच्छेदसैंहीं प्रबंध (संकेत) रूपकरि वर्तते हैं, तातैं तिनके अविच्छेदअर्थ सो पुत्रकी उत्पत्ति आदिक कर्म कर्तव्य है, मोक्षके अर्थ नहीं । कुमाररूपसैं माताके उदरतैं जो निकसना है सो रेतरूपकी अपेक्षासैं इस संसारी पुरुषका द्वितीय जन्म (द्वितीय अवस्थाकी प्रकटता) है ॥ ३ ॥

१५१ इस पिता-का सो यह पुत्ररूप आत्मा, शास्त्रयुक्त पुण्य कर्मनके अर्थ (कर्मनके संपादन अर्थ) स्थापन करिये है; कहिये, पिताकूं जो कर्म कर्तव्य है ताके करने अर्थ पिताके स्थानविषै स्थापन करिये है । तैसैं बृहदारण्यक उपनिषद्विषै संप्रतिनामक विद्याके प्रकरणमैं "पिताकरि शिक्षाकूं पाया हुया, मैं ब्रह्म हूं, मैं यज्ञ हूं, इत्यादि रूपकूं पावता है" ऐसैं कहा है । पीछे पुत्रविषै अपनै भारकूं स्थापन करिके इस पुत्र-का यह जो पितारूप अन्य आत्मा है सो कृतकृत्य (तीन ऋणरूप कर्तव्यतैं मुक्त) औ जीर्ण हुया मरता है। सो इस लोक-तैं शरीरकूं परित्याग करता हुयाहीं तृणजलूकाकी न्याईं कर्मरचित अन्य देहकूं ग्रहण करता हुया फेर जन्मता है । मरणकूं पायके जो प्राप्त होनेकूं योग्य है, सो इस पु-

---

१५१ तहां पुत्रके उपयोगकूं कहै हैं ।

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ॥ शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति ॥ गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥ ५ ॥

रुष-का तृतीय जन्म (तृतीय अवस्थाकी प्रकटता) है ॥ ननु, संसारकूं करनेवाले पितातैं रेतरूपसैं प्रथम जन्म कहा । ताहीका मातातैं कुमाररूपसैं द्वितीय जन्म कहा । ताहीके तृतीय जन्मके कहनेकूं योग्य हुये मरणकूं प्राप्त भये पिताका जो जन्म सो तृतीय जन्म है, यह कैसैं कहिये है ? तहां सिद्धांती कहै हैं किः—यह दोष नहीं है; काहेतैं, पिता औ पुत्रकी एकताकूं कहनेकूं इच्छित होनेतैं। सो पुत्र बी अपने पुत्रविषै भारकूं स्थापन करिके इहातैं देहकूं त्यागता हुयाहीं पिताकी न्याई फेर जन्मकूं पावता है, तातैं पुत्रका ही तृतीय जन्म कहा है; अन्य (पिताके) ठिकानै कथन किया सो जन्म, अन्य (पुत्रके) ठिकानै कथन कियाहीं होवै है; ऐसैं श्रुति मानती है; काहेतैं पिता औ पुत्रकी एकताके होनेतैं । ऐसैं तीन अवस्थाकी प्रकटताकरि संसारकूं पावता हुया (जन्ममरणरूप बंधविषै आरूढ भया) सर्व लोक, संसार समुद्रविषै पतनकूं पाया है। सो किसीप्रकारसैं बी जिस किस अवस्थाविषै श्रुतिप्रतिपादित आत्माकूं जानता है, तबहीं सर्व संसारके बंधनोतैं मुक्त हुया कृतकृत्य होवै है । सो यह वस्तुका तत्व मंत्रनैं बी कहा है । ऐसैं आगिले वाक्यविषै यह ब्राह्मणभाग कहै है ॥ ४ ॥

टीकाः—[१५२] **मातके गर्भस्थानविषैहीं हुया,** अनेक जन्मांतरकी

---

१५२ इहां यह अर्थ हैः—वाक् औ अग्नि आदिकनके शरीरके ग्रहणरूप जन्म कहे, तिसकरि उपलक्षित सर्व संसार बी वाक् आदिक करण औ तिनके अधिष्ठान देवता आदिकके संघातरूप लिंगशरीरकूंहीं है; परंतु असंग औ अपापी मुजकूं नहीं । इसकरि पदार्थके विवेकपूर्वक आत्माका

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् । समभवत् ॥ ६ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

इत्यैतरेयारण्यके पञ्चमोऽध्यायः ॥ उपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ॐ तत्सत् ॥ २ ॥

परिपाकके वशतैं "मैं इन वाक् औ अग्निआदिक देवनके सर्व जन्मोंकूं अहो (आश्चर्य है कि) जानता हूं। मुजकूं अनेक लोहमयीकी न्यांई भेदन करनेकूं अयोग्य शरीररूप पुरीयां रक्षण करती भई (पंजरेकी न्यांई बंधन करती भई)। मैं संसार पाशसैं निकसनेतैं नीचे (नीचे देखता) हुया श्येनपक्षकी न्यांई आत्मज्ञानके किये सामर्थ्यसैं जालकूं भेदन करिके निकस्या हूं"। इस रीतिसैं अहो गर्भविषैहीं स्थित हुया वामदेवऋषि, यह ऐसैं कहता भया ॥५॥

टीकाः–सो[१५३] वामदेव ऋषि उक्त आत्माकूं ऐसैं जानता हुया, इस शरीरके भेदतैं; कहिये, अविद्याकल्पित औ लोहके पंजरकी न्यांई भेदन करनेकूं अयोग्य जन्ममरण आदिक अनेक सैकडो अनर्थनकरि व्याप्त शरीररूप बंधके परमात्माके ज्ञानरूप अमृतके योग-

---

ज्ञान कहा। यद्वा सर्वज्ञ आत्मातैंहीं इनके जन्म हैं, ऐसैं इनके जन्मके हेतुरूप मूलकारण आत्माकूं मैं जानताहूं। इहां यह भाव हैः–यद्यपि गर्भविषै श्रवणादिरूप ज्ञानकी सामग्री नहीं है, तथापि पूर्वजन्मविषै किये श्रवणादिरूप सामग्रीके वशतैंहीं प्रतिबंधकी निवृत्तिके हुये बी गर्भविषै ज्ञानकी उत्पत्ति संभवै है।

१५३ ज्ञानकूं अव्यभिचारी होनैकरि फलवान्‌ताके जनावने अर्थ, वामदेवने फल पाया, ऐसैं कहनेकूं "सो ऐसैं जाननेवाला" यह वाक्य है; ताका व्याख्यान करै हैं।

अथ तृतीयाध्यायः ॥ ३ ॥
पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

॥ हरिः ॐ ॥ कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे । कतरः स आत्मा ? येन वा रूपं पश्यति । येन वा शब्दं शृणोति । येन वा गन्धानाजिघ्रति । येन वाचं व्याकरोति । येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥ १ ॥

सैं जनित सामर्थ्यके किये भेदतैं (शरीरकी उत्पत्तिके बीजरूप अविद्या आदिक निमित्तके विनाशतैं शरीरके विनाशतैं) ऊर्ध्व (परमार्थरूप) हुया अधोभावरूप संसारतैं निकसिके ज्ञानसैं प्रकाशित निर्मल सर्वात्मभावकूं प्राप्त हुया इस उक्त प्रकारके अजर, अमर, [१५४]अमृत, अभय, सर्वज्ञ, अपूर्व (अकारण), अनपर (अकार्य), अनंत, अबाह्य, प्रज्ञान, अमृत, एकरस, स्वस्वरूपभूत स्वर्गलोकविषै निर्वाणकूं प्राप्त भये दीपकी न्यांई प्राप्त होता भया. आपूर्व आत्मज्ञानसैं प्राप्त कामनावाला होनेकरि जीवता हुयाहीं सर्व कामोंकूं पायके अमृत होता भया, होता भया । इहां दोवार जो कथन है, सो फलसहित औ वामदेवके उदाहरणसहित आत्मज्ञानकी परिसमाप्तिके दिखावनेअर्थ है ॥ ६ ॥

इति श्री ऐतरेयोपनिषद्गत द्वितीयाध्यायरूपचतुर्थखण्डभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ २ ॥ ४ ॥

अथ ऐतरेयोपनिषद्गत तृतीयाध्यायरूपपंचमखण्डभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ३ ॥ ५ ॥

दो अवांतरवाक्यसहित महावाक्य.

टीकाः—[१५५]वामदेव आदिक आचार्यनकी परंपरासैं श्रुतिकरि प्रका-

१५४ इस स्वर्गविषै मनुष्यदेह आदिकके भावकूं छोडिके स्वरूपभावसैंहीं स्थित होता भया, ऐसैं कहै हैं ।

१५५ पूर्वके द्वितीय अध्यायविषै ज्ञानकी उत्पत्तिअर्थ तीन जन्मके

शित भई औ ब्रह्मवेत्ताकी सभाविषै अत्यंत प्रसिद्ध ब्रह्मविद्यारूप साधनके किये सर्वात्मभावरूप फलकी प्राप्तिकूं जानते हूये आधुनिक ब्राह्मणरूप मुमुक्षु, ब्रह्मकी जिज्ञासावाले, औ जीवभावपर्यंत अनित्य साधनरूप संसारतैं निकसनेकी इच्छावाले होयके विचार करते हुये परस्पर पूंछते भये ॥ कैसैं[१५६] पूंछते भये? तहां कहिये है:— जिस आत्माकूं "यह आत्मा है" ऐसैं साक्षात् हम उपासना करें, कौन सो आत्मा है? ऐसैं औ जिस आत्माकूं "यह आत्मा है," ऐसैं साक्षात् उपासना करता हुया वामदेव ऋषि अमृत होता भया। तिसीहीं आत्माकूं हम बी उपासना करें। कौन प्रसिद्ध सो आत्मा है? ऐसैं परस्पर पूंछते भये ॥ [१५७]इसरीतिसैं जिज्ञासापूर्वक परस्पर पूंछनेवाले तिन ब्राह्मणोकूं पूर्व कथन किये जे देहविषै प्रवेशकूं प्राप्त भये प्राण औ आत्मा, तिनकूं विषय करनेवाली श्रवणसैं जनित अनुभवसैं जन्य संस्कारसैं उदय भयी स्मृति उपजती भई। "तिस इस पुरुष शरीरके ताई दोनूं पादनके अग्रनसैं ब्रह्मा (परब्रह्मरूप प्राण) प्रवेशकूं पाया है। सो इसीहीं मस्तककी सीमाकूं विदारण करिके तिस द्वारसैं प्राप्त होता भया" इस श्रुतिकरि इसीहीं पुरुषके ताई दोनूं ब्रह्म परस्परकी

निरूपणसैं वैराग्य निरूपण किया। औ पदार्थके शोधनविना वैराग्यमात्रसैं ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होवै है, यातैं पदार्थके शोधनपूर्वक वाक्यार्थके कहनेकूं तृतीय अध्याय है। या अभिप्रायसैं पदार्थकें शोधनविषै अधिकारीकूं दिखावते हुये वाक्यकूं प्रकट करे हैं।

१५६ विचारके प्रकारकूंहीं वाक्यके अन्वयसैं स्पष्ट करनेंकूं पूंछता है।

१५७ ननु, भूतनके मध्य प्रकटता अर्थ जो प्रवेशकूं पाया है, सो आत्मा है; इस निर्द्धारणके संभवतैं विचारका असंभव है? यह आशंका करिके, ऐसैं हुये बी प्राण औ आत्मा दोनूंकूं प्रविष्ट होनैकरि स्मरण किये होनेतैं, तिनका निर्द्धारण नहीं हैं; ऐसैं कहनेकूं दोनूंका प्रविष्टपना स्मरण किया, ऐसैं कहै हैं।

प्रतिकूलताकरि प्रवेश करते भये, ऐसी स्मृति होती भई । औ वे प्राण औ परब्रह्म, इस पिंडके आत्मरूप हैं । तिनं[१५८] दोनूंविषै एक आत्मा उपासना करनेयोग्य होनेकूं उचित होवै है । जो इहां उपासना करनेयोग्य है, कौंन निश्चयकरि सो आत्मा है? ऐसैं विशेष निर्द्धारणके अर्थ फेर विचार करते हुये परस्पर पूंछते भये ॥ फेर[१५९] तिन विचार करनेवालेकूं विशेष विचारके आश्रयकूं विषय करनेवाली बुद्धि होती भई ॥ कैसैं होती भईकीः—इस पिंडविषै अनेक भेदकरि भिन्न करणसैं दोनूं वस्तु प्रतीत होवै हैं । जिसकरि प्रतीत होवै हैं, औ जो एक अन्य करणोकरि जाने हुये विषयनकी स्मृतिके संधानतैं प्रतीत होवै है । तहां प्रथम जिसकरि प्रतीत होवै हैं, सो आत्मा होनेकूं योग्य नहीं है ॥ किसैंकरि[१६०] प्रतीत होवै हैं? [१६१] तहां कहिये हैः—**जिस चक्षु-करि प्रसिद्ध रूपकूं देखता है; जिस श्रोत्र-करि शब्दकूं सुनता है, जिस घ्राणरूप-करि गंधोंकूं सूंघता है। जिस वाणीरूप करण-करि गौर है, औ श्रेष्ठ है, इत्यादिरूप नाम-**

---

१५८ ऐसैं विचारविषै अपेक्षित दोनूं आत्माकी स्मृतिकूं कहिके, अब विचारकूं कहै हैं ।

१५९ ऐसैं विचारके किये हुये अतिशय शुद्ध अंतःकरणवाले होनेतैं, तिनकूं पादके अग्रनसैं प्रवेशकूं प्राप्त भये प्राणविषै करणपनैकरि अनात्मताका निश्चय होता भया, औ मस्तकसैं प्रवेशकूं प्राप्त भये आत्माविषै उपलब्धापनैकरि आत्मताका निश्चय होता भया; ऐसैं कहै हैं । याका यह अर्थ हैः—तिनकूं विचारके स्थान प्राण औ आत्मा, इन दोनूंकूं विषय करनेवाली एकविषै करणपनैरूप औ अन्यविषै उपलब्धापनैरूप प्रकारसैं विशेष (विलक्षण)रूप बुद्धि होती भई ।

१६० ऐसैं वर्णनकरिकें, तिस अर्थकूं श्रुतिके अक्षरनसैं आरूढ करनेकूं वादी पूंछता है ।

१६१ अब सिद्धांती पूंछे हुये अर्थकूं श्रुतिसैं आरूढ करै हैं ।

दो अवांतरवाक्यसहित महावाक्य.

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् । सञ्ज्ञानमाज्ञानं । विज्ञानं । प्रज्ञानं । मेधा । दृष्टिर्धृतिर्म्मतिर्म्मनीषा । जूतिः । स्मृतिः । सङ्कल्पः । क्रतुरसुः । कामो । वश इति । सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥ २ ॥

मय वाचाकूं बोलता है । जिस जिन्हारूप-करि स्वादु औ अस्वादु रसकूं जानता है ॥ १ ॥

टीकाः—सो[१६२] एक करण अनेक प्रकारसैं क्यूं भेदकूं पाया है? [१६३]तहां कहिये हैः—"प्रजाका रेत (सारभूत कार्य) हृदय है, औ हृदयविषै स्थित रेत (सारभूत कार्य) मन है, औ मनसैं जल औ वरुण सृजे हैं । हृदयतैं मन औ मनतैं चंद्रमा होवै है" इत्यादि श्रुतिनविषै जो यह पूर्व कथन किया हृदय औ मन रूप करण; सोई यह तेरेकरि पूंछा हुया करण एक हुया चक्षु आदिकके भेदकरि अनेक प्रकारसैं भेदकूं पाया है । इस एकहीं चक्षुरूप हुये अंतःकरणकरि रूपकूं देखता है, श्रोत्ररूप हुये अंतःकरणकरि सुनता है, घ्राणरूप हुये अंतःकरणकरि सूंघता है, वाक्‌रूप हुये अंतःकरणकरि बोलता है, जिन्हारूप हुये अंतःकरणकरि रसका स्वाद लेता है । आपहीं विकल्परूप मनकरि विकल्पकूं करता है । हृदय (बुद्धि) रूपकरि निश्चयकूं करता है । तातैं सर्व करण औ विषयरूप व्यापारवाला एक यह करण उपलब्धाकूं सर्व उपलब्धिके अर्थ होवै है ।

---

१६२ ननु, चक्षु आदिकनकूं करणरूपताके हुये बी पादके अग्रनसैं प्रवेशकूं प्राप्त भये प्राणकी करणरूपताविषै क्या आया? ऐसैं पूर्ववादी शंका करै है ।

१६३ तहां प्राणकीहीं करणताके कहनेकूं प्रथम हृदय औ मन शब्दके वाच्यकी चक्षु आदिकके भेदसैं भिन्नताकूं कहै हैं ।

तैसैं कौषीतकि उपनिषद्विषे "प्रज्ञा (बुद्धि)सैं वाचाके तांई आरूढ होयके वाचासैं सर्व नामोंकूं पावता है (तिनके स्फुरणरूपसैं आपहीं आत्मा वर्तता है) । प्रज्ञासैं चक्षुके तांई आरूढ होयके चक्षुसैं सर्व रूपनकूं पावता है" इत्यादि वाक्यसैं कहा है । औ बृहदारण्यकविषे "मनसैंहीं देखता है, मनसैं सुनता है; हृदयसैंहीं रूपनकूं जानता है" इत्यादिरूप वाक्यसैं कहा है । तातैं हृदय औ मन शब्दके वाच्यकूं सर्व उपलब्धि (ज्ञान)का करणपना प्रसिद्ध है । औ तिस हृदयरूप प्राण है । तहां "जो प्रसिद्ध प्राण है, सो प्रज्ञा है, औ जो प्रसिद्ध प्रज्ञा है सो प्राण है" यह ब्राह्मण प्रमाण है । औ । "करणोका समूहरूप प्राण है, ऐसैं हम कहते हैं" इस प्राण संवाद आदिकविषे स्थित वाक्यके बलतैं प्राणकी करणसमूहरूपता जानिये है । तातैं जो पादके अग्रभागनसैं शरीरविषे प्रवेशकूं पाया प्राण आदिक करण है, यह उपलब्धिका करण होनेकरि ब्रह्म है; ऐसैं कहिये है, परंतु यह करणका समूहरूप वस्तु गुणरूप होनेतैं ब्रह्मभावसैं उपासना करने योग्य (जानने योग्य) आत्मा होनेकूं योग्य नहीं है । [१६४]परिशेषतैं जिस उपलब्धाकी उपलब्धिअर्थ इस हृदय औ मनरूप करणकी आगे कहनेकी वृत्तियां हैं, सो उपलब्धा, उपासना करने योग्य (जानने योग्य) हमारा आत्मा होनेकूं योग्य है; ऐसैं वे मुमुक्षु निश्चय करते भये । [१६५]प्रज्ञानरूप तिस अंतःकरण उपाधिविषे स्थित उपलब्धा स्वरूप ब्रह्मकी उपलब्धि (ज्ञान) अर्थ जो बाहिर भीतर वर्त-

१६४ तब तैसैं जाननेयोग्य कौंन है ? तहां कहै हैं ।

१६५ "जिसकरि प्रसिद्ध देखताहै" इनसैं आदि लेके, "औ यह मन" इहांपर्यंत प्राणके करणपनैकरि अनात्मतारूप अर्थकूं कहिके, "संज्ञान" इनसैं आदि लेके "वश" इहांपर्यंत जो वाक्य है, सो अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा तिसतैं भिन्न उपलब्धाके दिखावने अर्थ है; ऐसैं कहै हैं ।

मान विषयनकूं विषय करनेवाली अंतःकरणकी वृत्तियां है, वे यह वृत्तियां कहिये हैंः— **संज्ञान** (सम्यक् ज्ञप्तिरूप चेतनभाव)। **आज्ञान** (सर्व औरतैं ज्ञप्तिरूप ईश्वरभाव)। **विज्ञान** (चौसठ कला आदिकसैं जन्य लौकिकज्ञान)। **प्रज्ञान** (तत्काल भावरूप प्रज्ञता) **मेधा** (ग्रंथके धारणविषै सामर्थ्य)। **दृष्टि** (इंद्रियद्वारा सर्व विषयनका ज्ञान)। **धृति** (शिथिल भये शरीर औ इंद्रियनका सावधान होना जिसकरि होवै है) जातैं धृतिसैं शरीरकूं वहन करै-हैं, ऐसैं कहते हैं; यातैं ऐसा जो धारण सो)। **मति** (मनन)। **मनीषा** (मनन करनेसैं स्वतंत्रता)। **जूति** (चित्तका रोग आदिकसैं दुःखी होनैपना)। **स्मृति** (स्मरण)। **संकल्प** (रूपादिकनका शुक्ल औ कृष्ण आदिक भावसैं कल्पनाका करना)। **क्रतु** (निश्चय)। **असु** (प्राणन आदिक जीवनक्रियाकी निमित्तरूप वृत्ति)। **काम** (असमीपवर्ति विषयनकी इच्छारूप तृष्णा)। औ **वश** (स्त्रीके संग आदिककी इच्छा)। ईत्यादिक[१६६] ये अंतःकरणकी वृत्तियां हैं। ये चेतनमात्ररूप उपलब्धाकी उपलब्धिके अर्थ होनेतैं, शुद्ध प्रज्ञानरूप औ नामरूपसैं रहित ब्रह्मकी जातैं उपाधिरूप हैं, यातैं ता उपाधिसैं जनित गौणनाममय संज्ञआदिक ये सर्व प्रज्ञप्तिमात्र **प्रज्ञानके नाम** होवै हैं, साक्षात् स्वरूपतैं नहीं। तैसैं "प्राणनकूं करता हुयाहीं प्राणनाम होवै है" ईत्यादिरूप[१६७] वाक्य प्रमाण है ॥ २ ॥

---

१६६ इत्यादिक वृत्तियां प्रज्ञानके नाम होवै हैं, ऐसैं आगिले वाक्यसैं अन्वय है।

१६७ इहां यह कथन किया होवैहैः— संज्ञान आदिक जे शब्द हैं, वे प्रकाशरूप वस्तुके वाची हैं; औ जडरूप अंतःकरणकी वृत्तिनकूं साक्षात् प्रकाशरूपता नहीं संभवै है। यातैं प्रकाशरूप वस्तुविषै अध्यासतैंहीं इन वृत्तिनकी प्रकाशरूपता है, ऐसैं कल्पते हुये अधिष्ठानरूप भिन्न प्रकाशकूं ज-

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि । पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि । चेतराणि चाण्डजानि च । जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि । चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो । यत् किञ्चेदं प्राणिजङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम् । सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम् । प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम् । प्रज्ञानेत्रो लोकः । प्रज्ञा प्रतिष्ठा "प्रज्ञानं ब्रह्म" ॥ ३ ॥

टीकाः—सो[१६८] यह प्रज्ञानरूप आत्मा ब्रह्म है, [मुख्य ब्रह्मभावकूं आगे कथन किया होनेतैं इहां ब्रह्मशब्दकरि सर्व शरीरविषै स्थित प्राण औ प्रज्ञारूप आत्मा, जलभेदगत सूर्यके प्रतिबिंबकी

नावते हुये तात्पर्यसैं प्रकाशरूप प्रज्ञानकेहीं नाम होवै हैं । इहां संज्ञान आदिक जड वृत्तिनकूं अनित्य होनेकरि प्रकाशरूप वस्तुके वाचक संज्ञान आदिकनामवान्‌ताके असंभवतैं, तिनतैं भिन्न कोईक प्रकाशरूप है,ऐसैं कहा। तैसैं संज्ञान आदिक शब्दनकी वाच्यताके कथनसैं सो प्रज्ञान विज्ञानरूप चैतन्य है, इहांहीं प्राज्ञतारूप वृत्ति नहीं होवैहै; ऐसैं कहा; काहेतैं, ताकी अनेकरूपताकरि तिस तिस वृत्तिगत तिस तिस नामवान्‌ताकरि सर्व नामवान्‌ताके असंभवतैं, औ "प्रज्ञानके" इस एकवचनके असंभवतैं । यातैं "जिसकरि प्रसिद्ध देखता है" इनसैं आदि लेके "प्रज्ञानके नाम होवै हैं" इहांपर्यंत जो वाक्य है, तिसकरि सर्व करण औ तिनकी वृत्तिनतैं भिन्न स्वप्रकाशरूप सर्वका साक्षी सर्व वृत्तिनविषै अनुगत एक आत्मा शोधन किया।

१६८ ऐसैं शोधन किये आत्माके शरीर शरीरके प्रति नानाभावके निवारण करनेकूं "सो यह ब्रह्म है" इत्यादिरूप वाक्य है, ताका व्याख्यान करै हैं ।

न्यांई अंतःकरणरूप उपाधिनविषै प्रवेशकूं पाया समष्टिलिंग शरीरका अभिमानी हिरण्यगर्भरूप प्राण प्रज्ञानात्मारूप अपरब्रह्म कहिये है] यहहीं इंद्र (इदंद्र) है; काहेतैं, "इसकूं देखता भया" इस श्रुतिउक्त गुणके योगतैं। वा देवराज है । औ यह प्रजापति है (जो प्रथम उत्पन्न भया शरीरी है औ जातैं मुख आदिकके भेदनद्वारा अग्नि आदिक लोकपाल उपजे हैं, सो प्रजापति वा प्रजासहित प्रजापति)। ये अग्नि आदिक सर्व देव यहहीं है । औ ये सर्व शरीरनके उपादानरूप पृथिवी वायु आकाश जल तेज रूप ये अन्न औ अन्नाद भावस्वरूप पंचमहाभूत यहहीं है । औ ये अल्प जंतुनकरि मिश्रित सर्प आदिक यहहीं है. । बीज (कारण) औ इतर (कार्य) रूप यहहीं है। औ अन्य स्थावर औ जंगम भेदसैं कथन किये अंडज (पक्षी आदिक) औ जरायुज (मनुष्य आदिक) औ स्वेदज (यूका आदिक) औ उद्भिज्ज (वृक्षादिक) अश्व-गौआं मनुष्य हस्ती औ अन्य जो कछुवी यह प्राणीनका समूह जो दोनूं पादनसैं चलता है, ऐसा जंगम औ जो आकाशसैं उडनेके स्वभाववाला पतत्रि (पक्षी) है, औ जो स्थावर (अचल) है, सो सर्व सर्व औरतैं [१६९]प्रज्ञा-रूप नेत्र (निर्वाहक) वाला है, औ प्रज्ञान—रूप ब्रह्मविषै उत्पत्ति स्थिति औ लयकाल-विषै स्थित है (प्रज्ञाके आश्रित है)। जातैं प्रज्ञारूप नेत्र (निर्वाहक) वाला लोक है, वा प्रज्ञारूप नेत्र (चक्षु) वाला सर्व लोक है; यातैं प्रज्ञा (ब्रह्म) सर्व जगत्की प्रतिष्ठा (आश्रय) है । तातैं [१७०]प्रज्ञान (प्रत्यगात्मा)

१६९ प्रज्ञप्ति नाम प्रज्ञाका है, औ सो ब्रह्महीं है। जिसकरि सत्ताकूं पावता है, सो नेत्र कहिये है । प्रज्ञारूप है नेत्र जिसका, ऐसा जो सर्व जगत्, सो प्रज्ञारूप नेत्रवाला कहिये है ।

१७० ऐसैं हुये प्रज्ञानरूप प्रत्यगात्माका निर्विशेषपना आदिक प्रसिद्ध

ब्रह्म है। सो[१७१] यह ब्रह्म, सर्व उपाधिनके भेदसैं रहित सत् निरंजन निर्मल निष्क्रिय शांत एक अद्वैत औ "नेति नेति" इस श्रुतिकरि सर्व विशेषके निषेधसैं जानने योग्य, औ सर्व शब्द औ वृत्तिनका अविषय है। सो अत्यंत शुद्ध प्रज्ञा (माया) रूप उपाधिके संबंधसैं सर्वज्ञ ईश्वर नामवाला होवै है। औ सर्वकूं साधारण अव्याकृतरूप जगत्के बीजका प्रवर्तक नियंता होनेतैं अंतर्यामी नामवाला होवै है। औ सोई जगत्की बीजरूप समष्टि बुद्धिविषै आत्मापनेके अभिमानरूप उपाधिवाला हुया हिरण्यगर्भ नामवाला होवै है। औ सोई ब्रह्मांडरूप उपाधिवाला हुया विराट् नामवाला होवै है। औ ता विराट्के भीतर प्रकट भये प्रथम शरीररूप उपाधिवाला हुया प्रजापतिनामवाला होवै है। औ तिस ब्रह्मांडतैं उत्पन्न भये अग्नि आदिक उपाधिवाला हुया अग्नि आदिक देवता आदिक नामवाला होवै है। तैसैं विशेष (व्यष्टि) शरीररूप उपाधिनविषै बी तिस तिस नामवाला होवै है। ऐसैं ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत भूतनविषै ब्रह्मकूं तिसतिस नामरूपका लाभ होवै है। सोई एक ब्रह्म सर्व उपाधिनके भेदसैं भिन्न हुया सर्व प्राणीनकरि औ तार्किकनकरि सर्व प्रकारसैं जानिये है, औ अनेक प्रकारसैं विकल्पका विषय करिये है। इस अर्थविषै "इस आत्माकूं केईक अग्नि कहते हैं, औ केईक मनु कहते हैं, औ अन्य प्रजापति कहते हैं, औ केईक इंद्र कहते हैं, औ अन्य प्राण कहते हैं, औ अन्य नित्य ब्रह्म कहते हैं" इत्यादिरूप यह स्मृति प्रमाण है[१७२] ॥ ३ ॥

है, ऐसैं कहै हैं। प्रज्ञानकूंहीं अवशेषरूप होनेकरि परमार्थतैं सत्य होनेतैं, इहां यह अर्थ बनै है।

१७१ अब ब्रह्मशब्दके अर्थकूं कहै हैं।

१७२ ऐसैं प्रथम "कौन यह आत्मा है ?" इहांसैं आरंभकरिके

दो अवांतरवाक्यसहित महावाक्य.

स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्। समभवत् इत्योम् ॥ ३ ॥

इति पंचमः खंडः ॥ ५ ॥

इति ऐतरेयारण्यके षष्ठोऽध्यायः ॥ उपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ३ ॥ ॐ तत्सत् हरिः ॐ ॥ ३ ॥

॥ इतीशाद्यष्टोपनिषदःसंपूर्णाः ॥

टीकाः–जिसीहीं[173] प्रज्ञानरूपसैं ब्रह्मके जाननेवाले विद्वान् पूर्व अमृत होते भये, तिसीहीं प्रज्ञानरूपसैं उक्त प्रकारके ब्रह्मकूं जाननेवाला जो वामदेव वा अन्य विद्वान्, सो अमृत होता भया। तैसैं यह आधुनिक विद्वान्‌वी इसीहीं प्रज्ञानरूपसैं ब्रह्मकूं जानिके इसलोकतैं उत्क्रमण करिके (देहात्मभावका त्याग करिके) उस (ब्र-

---

" प्रज्ञान ब्रह्म है " इहांपर्यंत जो ग्रंथ है, तिसकरि विचारपूर्वक आत्मतत्व निर्द्धार किया। यातैं आत्मा करणोके संघातरूप प्राणसैं भिन्न औ संज्ञान आदिक सर्व अंतःकरणकी वृत्तिनसैं भिन्न तिनविषै अनुगत स्वप्रकाशरूप सर्व शरीरनविषै एक सर्व प्रपंचका अधिष्ठानरूप प्रज्ञान ब्रह्म नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त स्वभाववाला है।

१७३ अब इसप्रकारके ब्रह्मात्माके ज्ञाताके फलके कहनेकूं " सो इसकरि" इत्यादिरूप श्रुतिका वाक्य है। तहां एकवचनांत "सो" इस शब्दसैं प्रसंगविषै प्राप्त भये "कौन यह आत्मा है ?" ऐसैं विचारनेवाले बहुत मुमुक्षुनके स्मरणकी अयोग्यतातैं, औ आधुनिक विद्वान्‌के "सो" इस भूतकालके वाची शब्दकरि स्मरणकी अयोग्यतातैं, पूर्वअध्यायविषै उक्त वामदेव स्मरण करिये है; ऐसैं कहै हैं।

ह्मरूप) स्वर्गलोकविषै सर्व कामोंकूं पायके अमृत होता भया होता भया, ऐसैं ॐ[१७४] (अंगीकार किया) है ॥ ४ ॥

इति श्रीऐतरेयोपनिषद्गत तृतीयाध्यायरूप पंचमखंड भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ३ ॥ ५ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापुसरस्वती पूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा श्रीमद्भगवत्पादकृत भाष्यानुसारेण विरचिता ऋग्वेदीयैतरेयोपनिषद् भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ८ ॥

इतीशाद्यष्टोपनिषद् भाष्यभाषादीपिका संपूर्णा ॥

---

१७४ उक्त आत्मतत्वकूं अंगीकाररूप अर्थके वाची ॐकारसैं अनुभवके प्रकट करनेकरि, औ " ॐकार अरु अथ, ये दोनूं पूर्व ब्रह्माके कंठकूं भेदनकरिके निकसे हैं, यातैं दोनूं मांगलिक हैं" इस स्मृतितैं, ॐकारसैं ब्रह्मात्माके स्मरणरूप मंगलके करनेकूं अंतमें " ॐ " ऐसैं कहा है ।